Registered No J. II.

समालोचक

भाग ३] मासिकपुस्तक [संख्या २५

वार्षिक मूल्य १॥)] अगस्त १९०४ [यह संख्या ≡) आने

विषय । पृष्ठ

प्रोप्राइटर और प्रकाशक ।
मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को, जयपुर ।

Printed at the Medical Hall Press, Benares.

प्रेस की भूल !!!

गत मई की संख्या में 'टाटा' महोदय का चित्र न निकल सका इस लिए इस संख्या में दे दिया गया है पाठक ! इस भूल को क्षमा करें ... ... प्रेस का मनेजर ।

इधर ध्यान दीजिए ।

समालोचक पत्र हिन्दी की जो सेवा करता है, वह पाठकों से गुप्त नहीं है । किन्तु इस पर हिन्दी हितैषियों की कृपा नहीं है । अनेक ग्राहक पत्र बराबर लेते चले जाते हैं परन्तु मूल्य देना 'पाप' समझते हैं और वी॰ पी॰ जाने पर 'इनकार' करके हानि करते हैं । अतएव यह संख्या सर्व ग्राहकों के पास (जिनने मूल्य दिया है या नहीं दिया) भिजवाते हैं । आगामि संख्या केवल उनहीं के पास भिजवाई जायगी जिनका स्वीकार पत्र आजायगा अन्यथा पत्र अब किसी को न भेजा जायगा—मनेजर ।

उपहार की बात !

समालोचक के स्वामी उपहार देने का विचार करते हैं । उपहार कोई साधारण रद्दी पुस्तकों का नहीं होगा किन्तु उत्तम सर्व-प्रशंसित ग्रन्थ उपहार में दिए जावेगें । कालान्तर में, इस का विशेष वर्णन कर दिया जायगा । केवल ग्राहकही (अग्रिम मूल्य देनेवाले) उपहारके पात्र होंगे । उपहार का मूल्य बहुतही अल्प होगा । ग्राहकों को जल्दी करना चाहिए ।

प्रश्न पूछनेवालो ! ! !

समालोचक में अनेक लेख गुप्त नाम से प्रकाशित होते हैं । इसलिए हम किसी को उन 'गुप्त' महोदयों का नाम नहीं बता सकते और न हम, वर्तमान सम्पादकों का नाम, बतला सकते है । प्रश्नकर्त्ता ! क्षमाकरें ।

३ भाग अगस्त २५ संख्या

१९०४

श्री परमात्मने नमः ।

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा ।
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम् ॥
तं बन्दे साधुबन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तम् ।
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥ १ ॥

वर्षारम्भ ।

"वर्षारम्भ आज होता है"—यह सुख की है, बात ।
जहां सभी अल्पायु, वहां पर यही बहुत है, भ्रात ! ॥
"ज्यों त्यों जीवन को राखै" जब विधि हो अनुकूल ।
फल पावे तब तरुसेचक जो रहे सुरक्षित मूल ॥ १
अतीत के चिन्तन से यद्यपि चित में शोक अपार ।
"गया समय दुर्लभ है फिर" यह लोक वेद का सार ॥
बीत चुका जो काल लौटकर आवे कौन प्रकार ?
गंगा जी के प्रवाह सम सो पीछे गया सिधार ॥ २
भविष्य की आशा से तो भी है मन में आनन्द ।
एक समय होगी प्रकाश, यह ज्योति हुई जो मन्द ॥
सदा रहे नहीं दुःख सदा नहीं रहता है अन्धेर ।
चक्र समान काल निज दौरा करता है चौफेर ॥ ३
हिन्दी के इस सुप्रभात से कविकुल कमल बिकाश ।
हो, अब निश्चय भरत धरा पर निशिचर मत का नाश ॥
निद्रामग्न उठैं सब भाई निज जननी के हेत ।
गया गया सो गया करैं सब वर्त्तमान पर चेत ॥ ४

अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

तीसरा वर्ष—तीनों वेद जिसके निश्वास हैं, तीनों काण्ड जिस की छाया को छूने का उद्योग करते है, तीनों लोक जिसकी लीला हैं, तीनों गुण जिसके नचाए नाचते हैं, तीन वर्ण, तीनों मनोराग, तीनों विशेषण और तीनों तरह की तल्लीनता जिसके जानने में लोटन कबूतर हो रहे हैं, ऐसा होने पर भी जो किसी का तीसरा नहीं है उस 'तत्सत्' परात्पर अनन्त शक्ति का भक्ति पूर्वक स्मरण करके, 'समालोचक' अपने तीसरे वर्ष में पैर रखता है। उसके अतिरिक्त कौन है जिसे हमारी चिन्ता है? उसके अतिरिक्त कौन है जो अशरणों का शरण, निराधरों का आधार, निरवलम्बों का अवलम्ब, अनाथों का नाथ और असहायों का सहाय है? चाहे हमारे पापों की अधिकाई और दम्भ की मात्रा बढ़ने से वह हमें-अपने प्यारे भारतवासियों को न भूल गया हो, किन्तु यदि वह क्षण भर भी किसी को भूलने की कल्पना करे तो उसका कहां पता ठिकाना रहे? उस अनन्त मन की अनन्त लीला के, जो अनन्तविश्व की अनन्त चालों के अनन्त परिवर्तनों को, अनन्त नेत्रों से, देखती है, सामने हम अपने किन गुणों के भरोसे दया के पात्र हैं? उसके नाम पर, उसके रूप धर्म के नाम पर, हमने क्या क्या अत्याचार न किए, क्या क्या अधर्म न किए, क्या क्या दुराचार न किए, और किस किस के साथ, अपने स्वार्थ के लिए उसको न लपेटा? प्रभो ! गत पन्द्रह शताब्दियों में हमने जो दुःख, क्लेश मोह शोक पाए हैं वे [illegible]

तुलना में समुद्र में छींटे के समान भी नहीं हैं; यदि आप सूखा दण्ड देते, तो हमारा पता भी न रहता, किन्तु आपने हमारे बड़ों के गुणों की ओर, या हमारे भविष्यत् की ओर, या अपनी दयालुता की ओर, देख कर, न्याय की कड़ी दवाई में दया का मधु लपेट कर, अब लों बचाया, इसके लिए क्या कृतज्ञ न हों? भगवन्! हमारी परीक्षा बहुत हो चुकी, हमने पूरी तरह पहचान लिया कि तुझे ताक में रखकर, तेरे नाम से पण्डिताई के घमण्ड में सच्चे ग्रन्थों के झूंठे अर्थ करके, या कल कांटे की कलकल में काले बनकर हम सुखी नहीं हो सकते। हम जानगए कि हमारे भीतर एक अनन्त है जो सान्त से नहीं ढक सकता, एक जीव है जो पेट से नहीं ढक सकता। उसके लिए दया दिखा। उस अनन्त के आगे हम चाहे अण्डे को ऊपर के छोर से तोड़े, या नीचे से, कुछ भेद नहीं पड़ता, चाहे एकादशी दशमी विद्वा करें, चाहें द्वादशी को भूखे रहें, कुछ अन्तर नहीं आता उस। अनन्त सच्चिदानन्दमय ज्योति की लो की एक झलक इस झुलसे देश पर भी डाल दो, जिससे श्वेत श्याम का भेद मिट जाय और सभी के मुंह से निकले, "तत्र को मोहः कः शोक एकत्व मनुपश्यतः?" हिन्द, हिन्दू हिन्दी इस पवित्र त्रयी की सेवा की योग्यता और सामर्थ्य सब को दे, और समालोचक को दे, जिससे यह तीसरा वर्ष इन तीनों—हिन्द, हिन्दू हिन्दी—के गौरव को जागरूक और वर्द्धमान देखे।

"ब्रज की तोहि लाज मुकुटवारे"!

राष्ट्र भाषा का प्रस्ताव—पं० वामनराव पेठे को हिन्दी को भारतवर्ष की राष्ट्र भाषा बनाने के प्रस्ताव का उठानेवाला

कहा जाता है। भारतमित्र ने यह महत्व बङ्किम बाबू को दिया है। संवत १९२९ में (शाके १७९५) में बम्बई निर्णयसागर प्रेस मे बाबा किसनदास उदासी निरंजनी ने 'कबीरपद संग्रह' नामक ग्रन्थ-'छपाय के प्रसिद्ध किया"। उसकी 'सूचना' में बाबा जी लिखते हैं-"ए पुस्तक छापने को शुरू करने के अव्वल मेरे कितनेक मित्रों ने कहा के गुजराती अक्षरो में कबीरपद छपाओ तो अच्छा लेकिन मैंने सोचा के गुजराती लिपी जो है सो फ़क़त मुठी भर गुजरातीयों के वास्ते है, लेकिन बालबोध लिपी जो है सो सारे हिन्दुस्तान वग़ैरः देशों के वास्ते है इस वास्ते मैने बालबोध लिपी में छपाने का निश्चय कीया। भाइओ जब तक्के हिन्दुस्तान में एक लिपी एक भाषा, एक धर्म न होगा तब तक्कें हिन्दुस्तान मे पूर्ण सुधारना न होगी। लिपी तो बालबोधही याने देवनागरी चाहिए। भाषा हिन्दुस्तानी या हिन्दी दोनों में से कोई भी होय तो हरकत नहीं है सबब साधारन हिन्दी और साधारन हिन्दुस्तानी हर कोई समज सकते हैं। धर्म ऐसा चाहिए जिसमें एक ईश्वर की भक्ति, मनुष्य मात्र की एकता, स्वदेशाभिमान और नीति हो। ए मेरे स्वदेश हितचिन्तको जो हिंदुस्तान मे तुमारी पूर्ण सुधारना करने की इच्छा होयतो पहिले एक लिपी एक भाषा करने के वास्ते कमर बांधो और मेहेनत करना करो तब पूर्ण सुधारना होगी, ए मेरे स्वदेशाभिमानी मित्रो ए मेरी विनती पर विचार करो और करोगे ऐसी मैं उम्मेद रखता हूं हाल इतनाही बस"। राष्ट्रभाषा के प्रेमी लोग इसपर ध्यानदें।

अर्धाङ्गिनी–सुप्रसिद्ध विद्वान जान स्टुअर्ट मिल, अपने 'स्वतन्त्रता' विषयक ग्रन्थ के समर्पण में अपनी पत्नी के विषय में लिखते हैं-"मैं इस ग्रन्थ को उसके प्रिय और शोचनीय स्मरण को समर्पण करता हूं, जो मेरे ग्रन्थों में जो कुछ सर्वोत्तम है उसकी किसी अंश में रचनेवाली और प्रेरणा करनेवाली थी, जिस मित्र और पत्नी का सत्य और न्याय का उच्च विचार मेरा सब से प्रबल प्रेरक था, और जिसका साधुवाद मेरा प्रधान पारितोषक था। कई वर्षों से मैंने जो कुछ लिखा है, उसके समान यह ग्रन्थ जैसा मेरा हैं वैसा उसका भी है, किन्तु जिस रूप में यह ग्रन्थ अब है, उसमें बहुतही अपूर्ण रूप से उसकी आवृत्ति का अमूल्य लाभ पहुंचा है, कुछ सबसे प्रधान अंश अधिक सावधानी से पुनरावृत्ति के लिए रख छोड़े थे, जो उनके भाग्य में कभी नहीं थीं। उसकी समाधि में जो बड़े विचार और उदारभाव गड़े हैं उनका यदि मैं आधा भी जगत् को समझा सकता, तो जगत् को अधिक लाभ पहुंचता, उसकी अपेक्षा जो उसकी अद्वितीय बुद्धि की प्रेरणा और सहायता के बिना जो कुछ मैं लिखू उससे कभी हो सकेगा"। इस चित्र के सामने 'आनन्दकादम्बिनी' के "बिवाह" लेखके कुत्सित चित्र को रख करहम किस मुख से अपने देश की असार स्तुति किया करते हैं? यदि 'मिल' की मनभावती साधारण न हो तोभी कादम्बिनी' की कलह प्रिया या धूमावती देश भर में व्याप्त है; विशेषतः विद्वानों पर उनकी अपार कृपा है!!.

सहयोगि सहित्य—आज कल समाचार पत्रो में रूस जापान वा तिब्बत की लड़ाई के अतिरिक्त प्राय गंभीर लेख बहुत कम होते हैं भारतमित्र में उर्दू, मासिक पत्रो' पर अच्छा लेख लिखा गया हैं और इस के लेख तथा भाषा से सब मनुष्य प्रसन्न हैं। हितवार्ता के लेख अच्छें राजनैतिक होने पर भी सरल भाषा में न होने के कारण, सर्वोपयोगी नहीं हैं 'हिन्दी बंगबासी' में अब गंभीर लेखो का प्राय: अभाव रहता हैं आज कल हमारे मित्र 'राय साहब' एक कथा के रूप में मिसेज़ बेसेण्ट की स्तुति कर रहे हैं ठीक ही है। श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार मे, रामजीवन नागर के शिल्प, और वाणिज्य के लेखो के स्थान, में उपन्यास' छपने लगा था, ।।। वैश्योपकारक तथा भारतजीवन, सम्पादको की 'बदली' से कुछ अधिक उन्नति करसके ! क्या 'मोहिनी' एसें बढ़िया (!) चित्र छाप कर 'मोहिनी' होने का अभिमान कर सकती है ? प्रयाग समाचार की वर्तमान अवस्था तथा प्राचिन अवस्था में रात दिन का भेद मालुम होता हैं। 'सुदर्शन' के लिए, भक्त जन 'माधव' से प्रार्थना करते करते थक गए हैं।।। 'सरस्वती' में और लेखों कें अतिरिक्त 'इंगलेण्ड की व्यापार निती' लेख मि० सप्रे, बी० ए० का समयोपयोगी हैं आनन्द है मिस्टर सप्रे अब कुछ फिर लिखने लगे। 'राज पुत' जी क्या अब फिर 'जादूगर' आदि उपन्यासो के पिछे दौड़ेगें ? 'आनन्द कादम्बिनी' का नया वर्ष प्रारम्भ हो गया है। चातक प्रसन्न हुए। अबकें 'बिवाह' पर उतम लेख लिखा गया है। जयपुर संस्कृतरत्नाकर को 'मित्रगोष्टीपत्रिका' का अनुकरण करना चाहिए, । बम्बई से 'जैनयन्थरत्नाकर' अच्छा पत्र निकल ने लगा है। जैनमित्र ने अच्छी उन्नति की है। जैनगजट को सावधान होना चाहिए।

हिन्दी प्रदीप का वहही पुराना हाल हैं लोग सहायता देने से मूंह मोडते हैं। आज कल लोग नया पत्र निकालने के लिए दोडते हैं किन्तु पुराने को सहायपता करना "पाप" समझते हैं। नागरी-सभाओं को द्वेष से बचना चाहिए। काशी के उपन्यास एकही धारा से बहे चले जाते हैं । भारतधर्म' मासिक से साप्ताहिक हो गया है। काशी की सभा का वार्षिक अधिवेशन हो गया । कुछ सभा के सभ्यो की कृपा से मिस्टर 'दत' का इतिहास पाठको को पढने को मिले होगा । आज कल आरा में ' पदक ' बहुत मिल रहे है। इन्दोर में हिन्दी का प्रचार प्रायः हो गया है इसलिए ' हिन्दी समाज' प्रसन हैं। अन्य देशो के लिए हिन्दी वालो को कुछ कठिन परिश्रम करना चाहिए। भगवान ! एक दिन हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाए ।

———o———
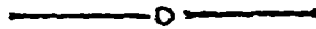
उपन्यास अपने प्यारे पाठकों से हठात् पाप नहीं कराते, केवल उन्हें पाप करना सिखाते हैं। पापों के फल इस प्रकार से बताए जाते हैं जिससे दुर्बल मनुष्यों के सिवाय और भी पाप में फंस जावें। बहुत थोड़ी नायिकाओं का अच्छा परिणाम होता है ।

(ह्विमरमेन)

अन्योक्ति सप्तक ।

मेघ

(१)

[छन्द द्रुतविलम्बित]

जलद ! दे जल रे ! दव सों भुनो
तृषित चातक ये अतिही घनो ॥
चलतही छिन मारुत तूं कहां ?
जल कहां ? यह चातक हू कहां ?

(२)

[छन्द प्रहर्षिणी]

त्यागे हैं यह सब दीन धान्यही ते
कीन्ही है प्रकट उदारता गिरी पै ॥
होके जो दुरमद ! उच्च तूं घनेरो
जान्यो रे ! घन अविचार यार ! तेरो ॥

चातक ।

(३)

[छन्द वसन्त तिलक]

अम्भोज बन्धु यह अस्त भयो दिनेश
धाता रची वह कहूं हटती न लेश ॥

रे चक्र! धैर्य धर तू तज शोक मित्त! ।
धीरा तरैं विपद को नहिं दीन चित्त ॥

भृङ्ग ।

(४)

[छन्द रथोद्धता]

रैन में रहि मधू पियो जहां ।
भृङ्ग! शीघ्र सब भूलिगो कहां? ॥
कान्ति हीन हिम पद्मिनीन पै ।
जो प्रवीन! दृगमीन कौन तैं ॥

(५)

[छन्द शार्दूल विक्रीडित]

लक्ष्मी के सुविलास के कमल को किञ्जल्क जाने पियो ।
खेल्यो जो हरि-नाभि के नलिन की उत्सङ्ग बैठो भयो ॥
ह्वैहै और प्रसून पै कहुं नहीं वा भृङ्ग की हो स्थिती ।
नौ प्रीती न रती न केलिहु तथा ह्वै नांहि विस्मै अती ॥

कमल ।

(६)

जन्म्यो निर्मल नीर सों, मधुरता स्त्री वक्र स्पर्धा करी ।
पायो उच्चनिवास हाथ हरि को सौगन्ध देतो हरी ॥
बानी को सरवस्वही कविन के तू काम को प्राण है ।
राखै प्रेम सरोज! जो मधुपसों तासौं अरे! का कहै? ॥

सिंह ।

(१)

[शिखरिणी]

अहो ! जाके आगे भयविकल भागे वन फिरै ।
मर्दो के माते हूं अलिकुल भ्रमाते गज डरै ॥
जहां मुक्ता भारे लुढ़कत रहै सिंह जब हो ।
बिना ताके द्वारे अज्ञ कर रहै श्यारख हो ॥

कन्हैया लाल पोधार ।

दुष्ट मनुष्य डर से आज्ञा मानता है, भला आदमी प्रेमसे ।

(अरस्तू)

जो हुक्म देना नहीं जानते वे हुक्म मानना ही सीखें ।

(शेक्सपीयर)

महाराजा एडवार्ड

और।

समाचार पत्र।

भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर वज़ीरियों के एक दल ने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था। उनके दमन करने के लिये एक सैनिक समूह प्रेरित किया गया था। उसके साथ एक विलायती समाचार पत्र का सम्बाददाता भी था। अवकाश मिलने पर मेरी उससे अनेक बातें होती थीं। एक दिन अपने देश के राजा महाराजाओं की चर्चा आई तो उसने पूछा कि इस देश के राजा महाराजाओं को समाचार पत्रों से कैसा अनुराग है। मैंने कहा मेरा इस विषय में कुछ अच्छा ज्ञान नहीं है परन्तु इतना मैं कह सकता हूं कि उनको केवल उन्हीं समाचार पत्रों का ध्यान है जो अंगरेज़ों द्वारा सम्पादित होते हैं। देशी भाषा के पत्रों में अनुराग रखनेवाले बहुत थोड़े हैं। सम्बाद दाता ने शोक प्रकाश करके कहा कि महाराज एडवार्ड की समाचार पत्रों में बड़ी श्रद्धा है यह किसी प्रकार संभव नहीं है कि महाराज के सम्बन्ध में कोई लेख किसी पत्र में प्रकाश हो और वह उसे न देखें। कम से कम एक समाचार पत्र वह प्रतिदिन पढ़ते हैं और यह देखते हैं कि प्रजा उनके सम्बन्ध में क्या कहती है। तथा अन्य देशवासी उनके कार्यों की क्या समालोचना करते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि महाराज अकेले यदि चाहें तो समस्त संसार के समाचारपत्रों को नहीं पढ़ सकते हैं अस्तु उनके सेक्रेटरी उनके लिये "समालोचक" का काम करते हैं अर्थात् सब समा-

चारपत्रों में जो विषय पढ़ने योग्य हैं वे अंकित कर दिये जाते हैं और कटिंग मेशीन के द्वारा काटकर एक कोरी पुस्तकके पत्रों पर चिपका दिये जाते हैं साथ में समाचार पत्र का नाम और तिथि रहती है। महाराज उन सब को पढ़कर जिस लेख को पसन्द करते हैं उस पर अपना चिन्ह लगा देते हैं ये चिन्हित लेख पुनः काटकर महाराज की निज की एल्बम में रक्खे जाते हैं। जब महाराज किसी सर्व साधारण के उपकार करने वाले कार्य के परिचालक बनते हैं तो उस सबंध का पृथक् फ़ाइल रक्खा जाता है। कभी कभी ऐसा होता है कि किसी ऊटपटाग लेखक से महाराज के सम्बन्ध में कोई उलटीपलटी बात निकल जाती है महाराज उसको पढ़कर प्रधान सम्पादक के पास सावधान की आज्ञा (प्रार्थना स्वरूप से) भिजवाते हैं। चिन्हित पत्रों को महाराज बड़े अनुराग से देखते हैं। एक वार महाराज के एक मित्र का चित्र प्रकाशित हुआ परन्तु भूल से चित्र के नीचे नाम अशुद्ध लिख गया। महाराज ने सम्पादक के पास इस की सूचना भिजवाकर पत्र के कर्मचारियो को आश्चर्य में डाल दिया। यद्यपि महाराज खुशामदपसन्द नहीं है परन्तु उनको यह बड़ा रुचिकर होता है कि उनके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाय वह बड़े नम्र और प्रतिष्ठापूर्ण शब्दों में हो। महाराज जिस सभा, भोज, नृत्य और यात्रा में जाते हैं सम्वाददाताओं को अपने सम्बन्ध के समाचार देने में सब भांति की सरलता कर देते हैं। उनके लिखे हुए लेख महाराज अवश्य देखते हैं और "समालोचक" की भांति जब उन में लेखक की योग्यता का परिचय पाते हैं तो उसे अपनी प्रसन्नता का समाचार अवश्य देते हैं।

महेन्दुलाल गर्ग,
झेलम-पंजाब।

जापान के प्रति भारत भूमि।

(वसन्त तिलका)

(१)

हे! धर्म-पुत्र! सुख-कारक! सु प्रजा के,
आनन्द-वर्धन! बृहद्बल! एशिया के॥
प्रख्यात, रूस-बल-दर्प-विनाश-कारी!
जापान! हो, जय सदा, रण में, तुम्हारी॥

(२)

मैंने सुनी न चिर से निज वीर वार्ता,
प्लेग-प्रपीड़ित हुई सब भांति आर्ता॥
दुर्भिक्ष, रोग चय[1] से अपनी मराई
सन्तान, किन्तु तुझसी न करी लराई॥

(३)

तो भी त्वदीय[2] रण दुन्दुभि नाद से मैं
आनन्दिता अब हुई, सुत याद से मैं॥
[3]शौद्धोदनी विदित जो गुरुदेव तेरा,
था, शान्त चित्त वह पावन पुत्र मेरा॥

(४)

माना कि शाक्यमत वैदिक से निराला
दोषी बना, इसलिए, हर ने निकाला॥

---

१ चय=समूह। २ त्वदीय=तेरा।
३ शौद्धोदनी=शुद्धोदन का बेटा=बुद्धदेव।

किन्तु प्रचण्ड, सुत-विग्रह से सुभ्राता
भूले, कभी न, सुत को, तनु जन्मदाता ॥

(५)

तेरे नवोदित पराक्रम सूर्य से, तो
प्राची समुज्वल हुई यह देख के, सो ॥
यूरोप शक्तितिमिरावृत हो रही है
मर्म्माहता, सभय शङ्कित रो रही है ॥

(६)

रूसी पराभव असम्भव मानते थे
ऐसा बली न तुझको, वह जानते थे ॥
तूने पराक्रम दिखा कहला लिया है
"वीर प्रसूति, अब भी, यह एशिया है" ॥

(७)

संग्राम-पोतव्रय को जल में डुबा के,
"यालू" नदी-समर में, सबको हटा के ॥
आश्चर्यकारक सुदृश्य मुझे दिखाया,
सौभाग्यचक्र विधि ने फिर से फिराया ॥

(८)

उद्योग और मति वैभव से बढ़ाया,
ऐसा प्रताप अवलम्ब रुटीश पाया ॥
इंग्लैण्ड-मित्र, जग में दबने न पाते,
कोई कभी, यह सभी इतिहास गाते ॥

(९)

रूसाधिराज, कर कम्पित लेखनी से,
तेरा चरित्र कहता, अब है, सभी से॥
"जापान ने, अब किया, बरताव जैसा,
कोई कभी कर सका नहीं वीर ऐसा॥

(१०)

"आनन्द-नृत्य-सुख-लिप्सु, कुदैव घेरे,
निद्रा निमग्न, जब थे, सब वीर मेरे॥
थी अर्द्धरात्रि, तब, की उसने चढ़ाई
मेरी तरी सहित कीर्ति निजा डुबाई"॥

(११)

है नीति सद्भुत नहीं यह रूस बानी,
दुर्नीति-तत्पर, बली, वह घोरमानी॥
"मञ्चूरिया" वचन देकर भी दबाया
ऐसा महत्व अपना उसने दिखाया॥

(१२)

चाहे, कहै, अब तुझे वह, बात नाना,
हे वत्स! नीति अपनी मत भूल जाना॥
हारे हुए धरम की सब दें दुहाई,
जीते हुए सब करे बल की बड़ाई॥

(१३)

जो दीन है, कब, उसे वह है बचाता?
धर्म्मोपदेश, उसका, मुझको, न, भाता॥
स्वार्थान्ध हो जब करे उपदेश कोई,
माने न बात उसकी तब देश कोई॥

(१४)

कोई कथा जब सुनीति सभा चलावें,
चीनाभियान, तब दुःखद, याद आवे ॥
सीमन्तिनी कुल वधू सब रो रही थीं,
हा! जार शक्ति, बधिरा तब हो रही थी ॥

(१५)

थे नेत्र, किन्तु न दिया कुछभी दिखाई,
मारी गई जब असंख्य सती लुगाई।
पीताङ्ग रक्त सरिता सुख से बहाई।।
हा! हा! दया न ममता नहिं लाज आई ॥

(१६)

बूढ़े, अनाथ, शरणागत को सताना,
कन्या, अबोध अबलागण को रुलाना ॥
जो वीरता! तब कहो निरलज्जता क्या?
रुग्णेश चित्त गति का लगता पता क्या? ॥

-(अपूर्ण)

श्रीराधा कृष्ण मिश्र।

खरे सज्जनों को खरी चिट्ठियां (१)

श्रीमान् आनरेबल पण्डित मदनमोहन मालवीय

बी॰ ए॰ एल॰ एल॰ बी॰

मान्यवर महोदय,

आप बड़े हैं। बड़ों को पुरानी बातें याद होती हैं। हमारे एक पुराने दयालु मित्र खो गए हैं। वे हमारे बड़े कृपालु थे, हमारी हिन्दी के बड़े भारी सेवक और लेखक थे। उनका क्या आपको कुछ पता है? कहां हैं? क्यों एकान्तवास करते हैं? उनकी बोलती क्यों बन्द होगई है, इसका आपको पता है? हमारे वे सौम्यदर्शन ब्राह्मण मित्र "पण्डित मदनमोहन बी॰ ए॰" इस नामको भूषित करते थे और दैनिक हिन्दोस्तान के वे चिराग़ थे। क्या आपने कभी उन्हें देखा है? क्या मालूम है वे कहा है? अथवा क्या आपको उनका स्मरण भी नहीं? कुछ लोग तो कहते हैं कि वे ही महाशय शैलूष की तरह नई भूमिका में 'आनरेब्ल मालवीय' के नाम से आगए हैं। क्या यह भी सच है? युक्तप्रान्त की कचहरियों में नागरी का चञ्चुप्रवेश करनेवाला जो प्रसिद्ध है, वह और जो किसी कालमें हिन्दी का लेखक था, क्या एकही व्यक्ति की सविधि (=चित्र, यह शब्द हुज़ूरही की तसनीफ़) है? तो क्या वह महाशय धूपछाया के रंग का है? वा 'अनेक रूपरूपाय' का भक्त होने से 'रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव' हो गया है?

या लोगों के चश्मे का रंग बदल गया ? या उसे हिन्दी लिखने में लज्जा मालूम होती है ? या इसमें यश नहीं मिलेगा ? क्या कारण है कि उसके हाथ में नड की ग्रामीण कलम न देखकर सभ्य फाउन्टेन पेन देखते हैं ?

क्या उसने और बातों में भी अपनी चाल बदल ली है ? अंग्रेजी में एक कहावत है, जो कथा के रूप में आपने सुनी होगी। महाराज ! एक शिक्षक को अपने इन्सपेक्टर के दौरे का भय हुआ और वह क्लास को भूगोल रटाने लगा। कहने लगा कि पृथ्वी गोल है। यदि इन्सपेक्टर पूछे कि पृथ्वी का आकार कैसा, और तुम्हें याद न हो, तो मैं सूंघनी की डिबिया दिखाऊंगा, उसे देखकर उत्तर देना। गुरुजी की डिबिया गोल थी। इन्सपेक्टर ने आकर वही प्रश्न एक विद्यार्थी से किया और उसने बड़ी उत्कंठा से गुरु की ओर देखा। गुरु ने जेब में से चौकोर डिबिया निकाली (भूल से दूसरी डिबिया आगई थी)। लड़का बोला "बुधवार को पृथ्वी चौकोर होती है, और सब दिन गोल"। वैसेही जिन लोगों ने मालवीयजी की देखादेखी हिन्दी का पक्ष लिया था, जो मालवीय जी की हिन्दी को हिन्दी मानते थे, वे आज मालवीयजी की दूसरी डिबिया को देखकर, चकराते हुए कह रहे है 'सरल हिन्दी, उर्दू मिश्रित हिन्दी'। जिज्ञासा यह है कि यह डिबिया, जेब में कहा से आगई ? पहलेही से थी, या अब इसकी ज़रूरत पड़ी है ? और क्या पालसी में हिन्दी भी बुधवार को चौकोर, सप्ताह में छै दिन गोल हो जायगी ?

क्या यह भी आश्चर्य की बात नहीं है कि आपके से कट्टर और पुराने कांग्रेसमैन के रहते भी युक्तप्रान्त में तीसरी कांग्रेस का नम्बर न आवे ? बम्बई तो पाच पांच कांग्रेस कर डाले, और

अयोध्यानाथ का देश तीसरी कांग्रेस का मुंह न देखे? जस्टिस चन्द्रावर्कर जिस सप्ताह में कांग्रेस के सभापति चुने गए थे, उसी सप्ताह वे हाईकोर्ट के जज नियत हुए। इसपर एक मसखरे ने कहा था कि वे एक दिन तो भारतवर्ष के बिना मुकुट के राजा थे और दूसरे दिन विदेशी सरकार के तुच्छ (puny) दास होगए। भगवान् आपके मनोरथ सुफल करें, यदि आपके भी प्यूनि (puisne) होनेका मौका आवे, तो हम लोग तो बधाइयां देंगे ही, किन्तु आपकी तो मन की मनमें रह जायगी? समय रहते कर लीजिए नहीं तो फिर स्मृतिकी दूरबीन उस प्रशस्त पण्डाल में विराजमान मालवीय को देखेगी, और स्मर्त्ता का मन "तिरश्चीनम-खातशल्यं" भोगेगा।

इधर आपकी संस्कृत यूनिवर्सिटी दोहद लक्षणों को धारण करेगी। किन्तु इस काम में आपको दो बातों से बचना चाहिए। एक तो उस भिड़ों के छत्ते से, जो अपने हितकारियों को शत्रु कहा करता है, और दूसरे स्वयं काम न करके औरों के यत्नों में मीन मेष करने वालों से। वे लोग आपको "अन्तःशाक्ता बहिः शैवाः" कहें तो भी निडर होकर काम करते जांय। किन्तु विचारी हिन्दी में आप अवश्य कुछ लिखें। भक्तवत्सल मदनमोहन ने एक बलवान् भक्त की प्रतिज्ञा के लिए अपना हठ छोड़ दिया था, आप तो चीज़ ही क्या हैं? तथापि सुन छोड़िए—

आशाप्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतांश्चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥

और—

रहिमन वे नर मरचुके, जे कहुं मागन जांहि।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नांहि॥
आप शतायु हों। दिन दिन आपका यश बढ़े।
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमावद, तूष्णी मासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।

चिट्ठीवाला

मनुष्य का दुःखी रहना उसके बड़प्पन का फल है। मनुष्य को असन्तोष इसलिए रहता है कि उसके भीतर एक "अनन्त" है जो कितनीही चालाकी करने पर भी सान्त मे नहीं ढक सकता। क्या सारे योरोप भर के मन्त्री, खजानची और राजा एक "चमार" को भी सुखी करने का ठेका ले सकते हैं? वे यह कभी नहीं कर सकते, क्योंकि चमार के भी एक आत्मा है जो उसके पेट से पृथक् है। पेट को तो तुम भरदोगे, किन्तु उस अनन्त ब्रह्म का क्या करोगे?

(कार्लाइल)

बीते कल का परदा गिर गया, आनेवाले कल का परदा उठा। किन्तु दोनो "कल" हैं। समय में होकर घुमो, अनन्त-भगवान् की भांकी करो।

(कार्लाइल)

खेल भी शिक्षा है।

(गताङ्क से आगे)

लोग कहते हैं कि मस्तिष्क तो मन का केन्द्र है और बुद्धि की आवश्यकताओं के अनुसार बढ़ता है। माना, किन्तु साथही साथ स्नायुशक्ति का, इन्द्रियों के और शरीर के बल का भी तो यही केन्द्र है। आधुनिक विज्ञान से जाना जाता है कि मस्तिष्क का अधिकांश स्नायवीय शक्ति का प्रतिनिधि है और उसके अधिकार में एड़ी से लेकर चोटी तक का बल है। मस्तिष्क का कुछ भाग ही बुद्धि का प्रतिनिधि है, बाकी अंश शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों के काम सम्हालता है। मस्तिष्क के किसी निर्दिष्ट चवन्नी भर केन्द्र में बिजली की शक्ति लगावें तो उसके मुकाबिले का अङ्ग (अंगूठा, आंख वा ओठ) संकुचित वा विकसित हो जायगा, उस केन्द्र को नष्ट कर दें तो वह अङ्ग "पक्षाघात" से नष्ट हो जायगा। लकवे में वा पक्षाघात में, जिस अङ्ग में शिथिलता आई हो, उसकी पहचान से वह मस्तिष्क केन्द्र जो बेकाम होगया है जाना जासकता है। यों देखिए। मस्तिष्क के सामने के वर्ग इञ्च भर स्थान को नष्ट कर दीजिए, बोली बन्द हो जायगी। यों करने पर आदमी सुन सकता है, जो कहना है उसे सोच सकता है, लिखे को पहचान सकता है ध्वनि कर सकता है किन्तु उस शब्द को नहीं बोल सकता। योंही एक दूसरे अंश को नष्ट करने से कहे शब्द को याद करने की शक्ति नष्ट हो जाती है, तीसरे को नाश करने से बांच नहीं सकते, चौथे को नष्ट करने पर लिखे अक्षरों से शब्द नहीं बना सकते। इन सब शक्तियों के केन्द्र यों मस्तक में नियत जाने गए।

अवश्यही मानसिक कर्म के केन्द्र पहचाने जाते हैं, और ऐसे स्थान जाने गए हैं जिनपर आघात होने से अन्धता, बधिरता, प्रभृति पूरी वा अधूरी हो सकती हैं। किन्तु मस्तिष्क के दोतिहाई भाग का यो समाधान नहीं हो सकता और उसे शक्ति वा स्नायु चलन के केन्द्रों का समावेश कहना पड़ता है।

पहले मानते थे कि इनमें स्मरण शक्ति, निश्चय, बुद्धि प्रभृति की स्थिति है किन्तु अब प्रयोगों से जाना गया है कि इस खाली दो तिहाई अंश में यह कुछ नहीं है, क्योंकि इनका बहुत सा अंश मानसिक शक्तियों को बिना हानि पहुंचाए निकाल लियाजा सकता है। कबूतरों, और कुत्तों के मस्तिष्क का बहुत सा अंश निकाला जा सकता है और उनकी बुद्धि नष्ट नहीं होती। एक कुत्ते के मस्तिष्क के इस अंश मेंसे कोई तीसरा हिस्सा निकाल लिया गया और वह सब काम यथावत् करता रहा, हाँ उसमें कुछ सुस्ती आगई थी। मनुष्य में भी यह मस्तिष्क का ऊपरी हिस्सा, जिसे लोग बुद्धिकेन्द्र मानते आए हैं निकाला जा सकता है और बुद्धि व्यापारों में उससे क्षति नहीं पहुचती। हर्वोड मेडिकल स्कूल में एक खान खोदनेवाले का सिर रखा हुआ है। बारूद से उड़कर एक लोहे की शहतीर उसके ललाट में से घुसकर चोटी के पास निकल पड़ी। साथियों ने उसे निकाला और इलाज करने से वह चंगा होगया। वह मरा नहीं, किन्तु बरसों तक गाडी हांकता रहा और सुस्ती के सिवाय उसके बुद्धि सम्बन्धी कार्यों में कोई भी अन्तर न पडा। मरने के बाद कई आदमियोंके मस्तिष्क की परीक्षा से सिद्ध हुआ है कि मस्तिष्क के अंशों में हानि पहुंचने से जीवन भर सब कामों में कोई खलल न पड़ा, केवल कुछ सुस्ती और काम करने में कठिनाई पाई गई। अवश्यही कई काम तो नहीं होसके

जैसे कि कई कई भाषाओं को जाननेवाले, मस्तिष्क में चोट लगने के पीछे, अपनी भाषा के सिवाय और सब भाषाएं भूल गए ।

तात्पर्य यह है कि मस्तिष्क की विलक्षण कारीगरी में तीसरे हिस्से के तो मानसिक काम बताए जा सकते हैं, बाकी के मिटाने पर मानसिक कर्म में हानि नहीं पहुंचती । किन्तु एक बात तो जगत् प्रसिद्ध है कि स्नायु चलन से, व्यायाम से, कसरत से मस्तिष्क के कई प्रधान अङ्ग बढ़ाए जा सकते हैं। कसरत मस्तिष्क की माता है । खेलने से शक्ति, तितिक्षा, फुर्त्ती ही नहीं बढ़ती किन्तु शान्ति, उत्तर का औचित्य, चालाकी, निर्णय, सब बढ़ते ही हैं। शिक्षामें कवायद और कसरत से हानि पहुंचने पर भी वास्तव में बड़ा लाभ है । यही नहीं, यह भी बताया जा सकता है कि शारीरिक पुष्टि और मानसिक पुष्टि कहां मिलती हैं । बोलने की शक्ति का केन्द्र मस्तिष्क में एक ही तरफ़ है और हाथ के पास है । अर्थात् हाथ के अधिक चलाने फिराने के अभ्यास से दहने हाथ से काम करनेवालों के बाईं ओर और बाएं हाथवालों के दहनी ओर जो मस्तिष्क में करकेन्द्र है उसके पासही वाक्केन्द्र उत्पन्न हो जाता है । यही नहीं, करकेन्द्र और वाक्केन्द्र के स्थानो के सम्बन्ध से सिद्ध होता है कि खड़े रहना, हाथ की चेष्टा, मुद्रा, शस्त्रप्रयोग और हस्तपरिचालन से बोलने की शक्ति मनुष्य में आई है । विना बोलने की शक्ति के मनुष्य और पशुओं में क्या भेद है? सो वही बोलने की शक्ति मनुष्य में कर चालनसे, खेलने से आई है । बालक भी हाथ पांव चलाते चलाते अन्त को बोलना सीखते हैं । बालक के मस्तिष्क में यद्यपि मनुष्य के मस्तिष्क का सभी कुछ मसाला रहता है तो भी वह मानो गारा है जिसमें से कुम्भकार चक्रभ्रमण से कई चीज़ें बनावेगा । अङ्ग प्रत्यङ्ग में कर्म विशेषका नियत करना, उन तारों को मांजकर रस्ते पर लगाना, यह काम खेलने

से होता है। उस समय यदि मस्तिष्क के किसी अंश को बढ़ने से रोक दिया जाय तो वह विना सान चढ़े चक्कू की तरह सदा निकम्मा ही रहेगा। खेलना, सान चढ़ाना, मशीन को छोड़ना, प्रयोग का अभ्यास करना इन सब के तुल्य है। जब, खेलका देह वृद्धि और मस्तिष्क वृद्धि से इतना सम्बन्ध है तो क्या उसकी सम्हाल शिक्षा-विभागो को नहीं करनी चाहिए?

यह क्या अच्छी बात मानी जायगी कि "खेल" गम्भीर शिक्षा में मन लगाने मात्र के ही काम की है, जिससे बालक विश्राम पाकर अधिक सूत्र रट सकें? अब भी खेल की हिमायत डरते डरते करना होगी और यह कहना होगा कि खेल के नाम से अधिक विद्यार्थी आएंगे, और मदरसे की प्रतिष्ठा बढ़ेगी? साफ़ साफ़ इस बात को अङ्गीकार करो कि बालकों को खेल गौण रूप से नहीं चाहिए, खेल पढ़ाई के अधीन नहीं है, किन्तु खेल भी शिक्षा है और जब बालक बालिका खूब खेल रहे हैं तो वे बड़ी बढ़िया शिक्षा पा रहे हैं।

किण्डर गार्टेन शिक्षा प्रणाली में इस बात को ध्यान में रक्खा गया है किन्तु उस में गणित के खेल और सदाचार के सूत्रों से बालकों पर बोझ डाल दिया जाता है। हवा और मैदान की बहार के साथ ही साथ "क्यों कैसे" इन प्रश्नों का उत्तर सिखाना ज़रूरी है और इस लिए खुले मैदान से अच्छी पाठशाला कहीं नहीं हो सकती।

प्रत्येक पाठशाला में प्रति छात्र १० वर्ग गज के हिसाब से (४० विद्यार्थियों के स्कूल में ३० × १२० गज़) खेलने के लिए भूमि होनी चाहिए। मदरसे के मकानपर एक रुपया लगाओ तो खेल घर में आठ आना लगाने की अपेक्षा और कोई सद्व्यय नहीं है। मुझ से यदि पूछा जाय कि विना खेल के मैदान का

मदरसा अच्छा वा बिना मदरसे का खेल का मैदान, तो मैं झटपट बिना मदरसे के खेल के मैदान को पसन्द करूंगा । यह खेल घर असली खेल घर हों, बगीचे और सिंगारे हुए बाग़ न हों । फूलों से मुझे घृणा नहीं है और मुझे फूलों से प्रेम है किन्तु यदि फूलों के होने से बालकों को खेलने के लिए गली कूचों में वा घर के भीतरही रहना पड़े, वा जो फूल हमारे दीन शुष्ककाय मनुष्य बान्धवों के उपयोगी वायु को स्वयं खा जाय तो उनको हटा देने में कोई आपत्ति न की जानी चाहिए । प्रति स्कूल में प्रति ४० छात्रों के लिए क्रीडाशिक्षक वा क्रीडाशिक्षिका नियत होने चाहिए जो उपद्रव न होने दें, अन्याय न होने दें, जो छोटाई बड़ाई, पहले पीछे खेलने के अधिकारों का निर्णय करदें, क्रीडा में शरीक हों और नए नए खेल सिखावें । कदापि अपने अधिकार से बालको को डरावें नहीं और उनका उत्साह भङ्ग न करें । घर घर में ज़मीन ख़रीद लीजाय, वा जो बनजर भूमि पड़ी रहती है उसे ही इस कामके लिए साफ़ कर के समतल बना लिया जाय और ताज़ा रेत बिछाकर उस का कुछ भाग पाटकर शीत वा बर्सात का उपयोगी बना लिया जाय । खाली स्थानों में, यों, घास वा अन्न वा तमाखू न उगाकर लड़के उगाने चाहिएं । कई शहरों में, जहां बड़े बड़े धनवानों का निवास होगा, पांच सात लड़कों के लायक भी स्थान न मिलेगा । बड़े बड़े वृक्ष, और कृत्रिम उद्यानो का बड़े आदमियों को इतना चसका है कि वहा सुकुमार पद चिह्न नहीं पहुंचने पाते ।

इन बाललीला क्षेत्रों की सजावट बहुतही सादा होनी चाहिए । कुछ अंश ऊपर से ढका हुआ और हवा से रक्षित रहे, किन्तु गर्मियों में उसका आवरण भी उतार लिया जाय और बालक भीतरही भीतर न घुटें । अनुभवी लोग जानते होंगे कि बाहर हवा

में टहलनेवाले बालकों को घर में और लाडले बालकों की तरह ठंड नहीं लगती । "ठंड लगना" गन्दी हवा से होता है, ताज़ी से नहीं ! बालकों के लिए तो ताज़ी रेत का अखाड़ा होना चाहिए जहां वे जितना जी चाहे, गिरें पड़ें, लड़ें । बड़े लड़कों के लिए कसरत की सामग्री के साथही साथ खाती का वा और किसी उपयुक्त काम का सामान भी होना चाहिए । स्थान हो तो कोने पर बग़ीचा वा पक्षियों को पालने का स्थान भी बना देना चाहिए, किन्तु इनके होने से बालकों की स्वतन्त्र क्रीड़ा में विघ्न न पड़े । बालक जितना चाहें उतना ही कूदें फांदें, मारपीट करें, किन्तु उन्हें डांटा न जाय ।

ज्यों ज्यों बालक बड़े होते जावें त्यों त्योंही वनविज्ञान, खेती वग़ैरः की प्रायोगिक शिक्षा आरम्भ हो जाय । बालक खेतों में, नदियों में, वनों में, पहाड़ियों में घुमा जाय, और पासके मिल, मैशीन, कारखाने प्रभृति भी दिखाए जांय । यों सब विज्ञानों की वास्तव शिक्षा और ज्ञान का आरम्भ किया जाय ।

खेल के सिखानेवालों में फुर्ती, सहानुभूति, दया, प्रसन्नवदनता, बोलचाल और आचार में मुलायमी, अच्छा देह और स्वास्थ्य, यह गुण आवश्यक हैं, किन्तु इनकी पहचान खाली परीक्षा के आधीन न की जाय । यों बाहरी शिक्षा के शिक्षक बढ़ाने होंगे सही, किन्तु भीतरी शिक्षा (पढाई) के शिक्षक घटाए भी जासकते हैं । सब मानते हैं कि पढाई के घंटे कम कर देने चाहिएं किन्तु माता पिता आलस्य से या अपने आराम की दृष्टि से बालकों को घर पर नहीं सम्हालते, अत एव अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए उन्हें मदरसे में अधिक काल रखा चाहते हैं । यदि यह कारण न हो, तो जैसी पढ़ाई अब होती है उससे अच्छी उससे आधे काल में हो सकती है । जो बालक कुछ बड़े होकर पाठशाला में भरती होते हैं वे दो ही तीन वर्ष मे सब बालकों को

उलांघ कर आगे बढ़ जाते हैं। इससे खेल का पूरा प्रबन्ध होने से मदरसे के भीतर जो शिक्षा की और मेहनत की नकल होती है उसके लिए ७ वर्ष से पहले तो बालक स्कूल में बिठाए जानेही नहीं चाहिएं, ६ वर्ष से ९ वर्ष की अवस्था तक एक या दो घण्टे, ९ वर्ष से १२ वर्ष की अवस्था तक दो या तीन घण्टे, बारह से १५ तक तीन वा चार घण्टे से अधिक पढ़ाई नहीं होनी चाहिए।

यों वही अध्यापकों की शक्ति, जो तीस चालीस विद्यार्थियों को दिन भर रटाया करती है उन्हें क्रम क्रम से घण्टा घण्टा भर पढ़ाकर अधिक काम दे सकता है। इससे अध्यापकों पर अधिक बोझ पड़ेगा सो कहना ठीक नहीं। अध्यापकों को पढ़ाने में बोझ नहीं पड़ता, पड़ता है इन्तजाम करने में। दर्जे में आध घण्टे तक तो विद्यार्थी शान्त रहते हैं और अधिक सीखते हैं, और ज्यों ज्यों समय बढ़ता जाता है त्यों त्यों उनका ध्यान हट जाता है यह सब अध्यापक जानते होंगे। अत एव उन पाठशालाओं में, जहां अध्यापक और अध्यक्ष समझदार हैं तीसरे वा चौथे घण्टे में कोई गम्भीर काम नहीं कराया जाता। तीन घण्टे की भाग दौड़ में बालक जितना सीखता है, उससे अधिक एक घण्टे के स्वतन्त्र अवधान में सीख सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि बालक अपनी चित्त वृत्तियों को जमा नहीं सकते, वे जमाते हैं, किन्तु सम्मिलित चित्तवृत्तियां बिजली की तरह काम कर जाती हैं। बिजली की शक्ति ने दो लोहे के शहतीरों को क्षण भर में जोड़ दिया तो फिर तीन घण्टे तक कोयलों का नाश करके उस शहतीर–युग्मापर धौकनी चलाते रहना निष्फल है।

परिशेष में यह कहना है कि बालकों को अपनी वृद्धि के नियमों के अनुसार स्वयं बढ़ने देना चाहिए। बालक के देह की तरह मन में भी स्वयं बढ़ने की शक्ति है, और यदि उसे न रोका जाय, तो वह खूब बढ़ जायगा। बालक चलना सीखता नहीं, बोलना सीखता

नहीं, जब उसको पैर वा जीभ के स्नायु पर पूरा अधिकार हो जाय और उसे न रोकें तो, वह स्वय चल पड़ेगा । बालकको खिलानेवाले उसे बोलना" सिखाते हैं उसका अनुकरण भलेही किया जाय किन्तु वास्तव बोलने की प्राप्ति में यह बाधा डालता है । वैसेही स्कूल की शिक्षा भी, कभी कभी, मन की उन्नति में बाधा डालती है ।

भूख प्यास की तरह बालक में दो शक्तियां, पशुवृत्ति के रूपमें सदा विद्यमान रहती हैं । एक तो जानने की इच्छा और दूसरे काम करते रहना । मनकी प्रवृत्ति सदा बढने की ओर रहती है ।

यहां मुदर्रिस लोग जो इस लेख को पढ़ने की कृपा दिखा चुके हैं चिढेंगे, क्योंकि "खेलने से बालक का मन पढ़ने में लगता है" इस तत्व की हमने चर्चाही न की । उनका यह सिद्धान्त है है कि बालक जो चाहता है (खेलना) वह करने देने से वह जो न चाहता है (पढना) वह कराया जा सकता है इस लिए खेलना ज़रूरी है । यह सिद्धान्त झूठा है । मनुष्य न तो खेल में अपने शास्त्रों पर सान चढ़ाकर पढता है, न अभ्यास से और न बलात्कार से, किन्तु प्रत्येक काम में परिणाम के लोभ से और अनुराग से ही काम होता है । रोटी, प्रतिष्ठा, ज्ञान वा कीर्ति के लिए सभी काम करते हैं ।

जैसे श्वास लेना कोई गुण नहीं है, वैसेही परिश्रम करना वा व्याप्टत रहना भी कोई गुण वा धर्म नहीं है । केवल जीवन के लिए आवश्यक कर्ममात्र है । (समाप्त)

मामयिक पत्रों के लिखनेवालेही आजकल के ब्राह्मण और क्षत्रिय है । आज से आगे ऐतिहासिकों को, यदि वे गधे न होंतो चन्द्रवंश, सूर्यवंश वा कात्यायन गोत्र का चरित नहीं लिखना चाहिए, किन्तु छपे हुए रायल वा सुपररायल वंशो का, जो किसी योग्य सम्पादक के द्वारा, नए नए नामों से, जगत् का कान पवित्र करते हैं ।

(कार्लाइल)

(महाकवि भूषण)

(क्रमशः)

इस समय शिवाजी की ऐसी धाक बंध गई थी कि ईरान वाले, फिरंगी तथा पुर्तगालवासी तक इन महाशय को नजरें भेजते थे, बीजापुर एवं गोलकुंडावाले इनसे पीछे दबते थे और औरंगज़ेब का राज्य रेवा के पार तक रह गया था—यह शिवा जी के बलकी अन्तिम अवस्था थी कि जब भूषण ने औरंगज़ेब को यों ललकारा—

दाराकी न दौर यह रारि नहीं खजुवेकी,
बांधिबो नहीं है कैधों मीर सहवाल को ।
मठ विश्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ॥
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु वैरी कतलान कीन्हें,
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को ।
बूडत है दिल्ली सो संभारैं क्यों न दिल्ली पति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ॥

शिवराज के प्रयत्नों के फलों के वर्णन में भूषण ने यह यथार्थ छन्द कहा है:—

बेद राखे बिदित पुराण राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं ।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे मैं जनेउ राख्यो माला राखी गर मैं ॥
मीडि राखे मुगल मरोडि राखे बादशाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो घर मैं ।

राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ॥

(५) शिवराज भूषण ।

इस ग्रन्थ में बंगवासी की गणनानुसार ३२७ छन्द हैं और यही गणना मुंशी नवलकिशोरवाली प्रति में है। यद्यपि दोनों प्रतियों में यत्र तत्र छन्दों में हेर फेर है। इन दोनों प्रतियों मे इस ग्रन्थ की वन्दना का कवित्त छूट गया है वह यों है—

बिकट अपार भव पन्थ के चले को श्रम,
हरन करन बिजना से ब्रह्म ध्याइये ।
यहि लोक पर लोक सुफल करन को
कनद से चरन हिये आनि कै जुड़ाइये ।
अलि कुल कलित कपोल ध्यान ललित,
अनन्द रूप सरित मैं भूषण अन्हाइये ।
पाप तरु भंजन बिघन गढ गंजन,
भगत मन रंजन द्विरद मुख गाइये ॥

इसके पश्चात् भूषण महाराज ने युद्ध प्रधान ग्रन्थ होने के कारण भगवती जी की एक बड़ेही प्रभावोत्पादक छन्द द्वारा स्तुति की है। इस ग्रन्थ में हमारे कविने अधिकांश अलंकारों का लक्षण देकर प्रत्येक के उदाहरण दिये हैं और उदाहरणों में विशेषता यह रक्खी है कि प्रत्येक उदाहरण में शिवराज का यश वर्णित है। वे स्वयं कहते हैं "**भूषण भूषण मयकर शिव भूषण मग्र-अन्था**"—यह एक बड़ाही कठिन कार्य था और इन से प्रथम कोई कवि ऐसा करने में समर्थ नहीं हुआ था। हां आज कल हमारे ज्येष्ठ भ्राता **लेखराज** कवि ने इसी प्रकार **गंगाभूषण** नामक ग्रन्थ रच कर **गंगा**जी की स्तुति में सब अलङ्कारों के उदाहरण दिखा

दिये हैं । यह ग्रन्थ अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है । जब एक एक अलंकार पढ़कर इसके उदाहरण देखते जाइये तब विदित होता है कि कविने कितनी चतुराई एवं सूक्ष्मदर्शिता से उदाहरण दिखाये हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में राजगढ़ का बड़ाही चित्ताकर्षक वर्णन किया है और अलङ्कार का निबन्ध रख कर भी शिवराज के यश वर्णन में और उस समय के मनुष्यों के वास्तव भावों के चित्र खींचने में ये महाशय ऐसे कृतकार्य्य हुये हैं कि देखतेही बनता है । उदाहरणार्थ इनके दो एक छन्द उद्धृत किये जाते है ।

अहमद नगर के कि थान थान लैके,
नवसेरी खानते खुमान भिस्यो बल तें ।
प्यादेन सों प्यादे पखरै तन सों पखरै,
तब खतर वारे बखतर वारे हल ते ॥
भूषन भरत एते मान घमसान भयो,
जान्यो ना परत कौन आयो कौन दल ते ।
समबेब ताके तहां सरजा सिवाके बांके,
बीर जाने हांके देत मीर जाने चलते ॥
पूना वारी सुनि कै अमीरनि की गति लई,
भागिबे को मीरनि समीरनि की गति है ।
मास्यो जुरि जंग जसवन्त जसवन्त जाके,
संग केते रजपूत रजपूत पति है ॥
महाराज सिवराज तेरे बैर पेखियत,
घन बन ह्वै रहे हरम हबसीन के ।
भूषन भनत तेरे बैर धाम नगर उजार,
पर वह बहे रुधिर नदीन के ॥
सरजा समत्थ बीर तेरे बैर बीजापुर,
बैरी बैयरनि कर चीन्ह न चुरीन के ।

तेरे बैर देखिय तु आगरे दिली मैं विन्द,
सिन्दुर के बुन्द मुख इन्दु जमनीन के ॥

उपर्युक्त छन्दों में उस समय के हिन्दू मुसल्मानों के वैर तथा शिवराज के प्रताप का कैसा सुन्दर वर्णन है ? तृतीय छन्द भी बड़ा ही मन हरण है यद्यपि उसमें मुसल्मानों की स्त्रियो के मस्तको पर सिन्दूर के अभाव से उनकी वैधव्य अवस्था व्यंजित की गई है जो बात असत्य है। वास्तव में यह रीति केवल हिन्दुओं की है। आज-कल हमारे मुसल्मान भाइयो के यहां विवाह के दिन सिन्दूर का पुडा मँगाया जाता है और उसी दिन उससे सोहाग भी लिया जाता है परन्तु फिर सिन्दूर कभी नहीं लगता चाहे युवती सधवा रहे चाहे विधवा हो जाय। परन्तु उस समय अकबर के समय से हिन्दू मुसल्मानो मे बड़ा मेल था सो सम्भव है यहरीति भी तब प्रचलित हो।

* इन महाशय ने प्रायः सभी अलङ्कारों के उदाहरण दिये है केवल निम्न लिखित छूट रहे हैं:-लुप्तोपमा, द्वितीय तथा, पंचम प्रतीप, तद्रूपरूपक, द्वितीय सम्बन्धातिशयोक्ति- तृतीय एवं चतुर्थ तुल्य योगिता, पदावृत्ति एवं अर्था-वृत्ति दीपक, असदर्थ एव सदर्थ निदर्शना, सम तथा न्यूनव्यतिरेक, प्रस्तुतांकुर, द्वितीय पर्य्यायोक्ति, व्याज निन्दा तथा स्तुति निन्दा, निषेधाभास, व्यक्ताक्षेप, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं षष्ठ विभावना, विशेषोक्ति, द्वितीय तथा तृतीय असंगति, तृतिय विषम, द्वितीय तथा तृतीय सम, प्रथम अधिक, अल्प, द्वितीय तथा तृतीय विशेष, द्वितीय व्याघात, कारक दीपक, द्वितीय अर्थान्तन्यास, विकस्वर, ललित, प्रथम एवं तृतीय प्रहर्षण, मुद्रा, रत्नवली, गूढ़ोत्तर, चित्र, सूक्ष्म, गूढ़ोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, प्रतिषेध, और हेतु। (क्रमशः)

ग्राहक हो जायेंगे । जयपुर के सुन्दर दृश्यों के सुन्दर चित्र अलभ्य और ऐतिहासिक चित्र और फोटो, हाथ की बनाई बढ़िया तसवीरें आपकी आज्ञानुसार भेजी जा सकती हैं । एक बार मंगाइए तो हमारे यहां के चित्र प्रायः इङ्गलैण्ड भी जाया करते हैं और सुप्रसिद्ध सचित्र पत्रों ने उनकी अच्छी क़दर की है ॥

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को,
जौहरी बाज़ार जयपुर ।

समालोचक में विज्ञापन की दर ।

पहली बार प्रति पङ्क्ति =)
छः बार के लिए ~) छपे विज्ञापन की बटाई ५)
वर्ष भर के लिए एक पेज २०) आधा पेज १२) ¼ पेज ८)
चौथाई पेज से कम का विज्ञापन नहीं लिया जायगा ।

असली पान का मसाला !!!

कथ्था, चूना, सुपारी इलायची कोई चीज़ की ज़रूरत नहीं पान पर ज़रासा मसाला डालकर खाने से सब चीज़ों का स्वाद आता है मुंह लाल सुर्ख होता है दाम ।) दर्जन का २।) थोक लेने से और भी किफ़ायत ।

सैकड़ों अजीब चीज़ों से भरा हुआ हमारा बड़ा सूचीपत्र ज़रूर देखना—बेदाम भेजा जाता है ॥

पता—जसमाईन इन्डिया एजन्सी,
कालवा देवी रोड बम्बई ।

नोटिस

यहां चूरू में सोदा अफीम नीलाम का पटने का पेटी तेजीमन्दी अंबर दडे का होता है । अगर किसी को कराना हो तो हम को लिखें आढ़त लेकर फ़ायदे से करदेंगे ।

तार चिट्ठी भेजने का पता-तेजपाल लोहिया,
मु० चूरुज़िला बीकानेर ।

Registered No J. II.

समालोचक

भाग ३] मासिकपुस्तक [संख्या २६

वार्षिक मूल्य १॥)] सितम्बर १९०४ [यह संख्या ≡) आने

विषय । पृष्ठ

प्रोप्राइटर और प्रकाशक ।

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को, जयपुर ।

Printed at the Medical Hall Press, Benares.

इधर ध्यान दीजिए।

समालोचक पत्र हिन्दी की जो सेवा करता है, वह पाठकों से गुप्त नहीं है। किन्तु इस पर हिन्दी हितैषियों की कृपा नहीं है। अनेक ग्राहक पत्र बराबर लेते चले जाते हैं परन्तु मूल्य देना 'पाप' समझते हैं और वी॰ पी॰ जाने पर 'इनकार' करके हानि करते हैं। अतएव यह संख्या सर्व ग्राहकों के पास (जिनने मूल्य दिया है या नहीं दिया) भिजवाते हैं। आगामि संख्या केवल उनहीं के पास भिजवाई जायगी जिनका स्वीकार पत्र आजायगा अन्यथा पत्र अब किसी को न भेजा जायगा—मनेजर।

उपहार की बात!

समालोचक के स्वामी उपहार देने का विचार करते हैं। उपहार कोई साधारण रद्दी पुस्तकों का नहीं होगा किन्तु उत्तम सर्व-प्रशंसित ग्रन्थ उपहार में दिए जावेगें। कालान्तर में, इस का विशेष वर्णन कर दिया जायगा। केवल ग्राहकही (अग्रिम मूल्य देनेंवाले) उपहारके पात्र होंगे। उपहार का मूल्य बहुतही अल्प होगा। ग्राहकों को जल्दी करना चाहिए।

देखिये!!!

संस्कृत कविपञ्चक छपकर तयार होगया है जिनको लेना हो शीघ्रता करके मंगवा लेवें दाम-॥।) डाकव्यय -)॥

मिलने का पता—

मेसर्स जैनवैद्य एण्ड को,

जपुरय (-)

समालोचक

३ भाग { सितम्बर १९०४ } २६ संख्या

अत्र, तत्र, सर्वत्र।

विचार-स्वातन्त्र्य— 'यदि एक मनुष्य को छोड़कर सारे जगत् के मनुष्यों का एक मत हो, और उस एकही मनुष्य का मत जगत् से विरुद्ध हो, तो मनुष्यजाति को उसे चुप करने का उतनाही अधिकार नहीं है जितना उसे सामर्थ्य हो तो मनुष्य जाति को चुप करने का। यदि मत किसी मनुष्य की घरू चीज़ हो तो उसे रोकना या दबाना केवल व्यक्तिगत हानि है जो थोड़े या अधिक मनुष्यों को पहुंचाए जाने से हानि-कारक हुई। किन्तु किसी मत को प्रकाश न होने देने का परम पाप तो यह है कि सम्पूर्ण मनुष्य जाति को ऐसा करने से हानि पहुंचती है; वर्तमान सृष्टि और भावी सृष्टि को, उस मत के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों को, हानि हुई। यदि वह मत सच्चा है, तो भूल छोड़कर सत्य को पकड़ने का उनका अवसर छीना जाता है। यदि वह झूंठ हो तो भूल से संघर्ष होने से सत्य को जो प्रबलता प्राप्त होती है वह खोई गई"। यह मत जान स्टुअर्ट मिल का है। धर्म, राजनीति, प्राचीनता का पक्ष, सब इसके विरुद्ध हैं। विशेषतः भारतवर्ष में।

* * *

भिक्षा के कण—मान्यवर राय निहालचन्दने युक्त प्रान्त की व्यवस्थापक सभा में गोरक्षा के कुछ विफल प्रश्न किए थे, किन्तु अब उनने भिक्षा-व्यवसायियों पर दृष्टि डाली है। दीन भारतवर्ष की दुरुपयुक्त भिक्षापर प्रायः ५२ लाख हृष्टपुष्टों का निर्वाह होता है जिनमें से तीन चौथाई युक्त प्रान्त और पंजाब के वासी हैं। उनकी संख्या बढती जाती है, वे उत्पादक नहीं हैं, भक्षक हैं और हिन्दू धर्म में अपात्र को दान देने का निषेध है। इन अठारह करोड रुपया प्रति वर्ष स्वाहा कर जानेवालों पर अपनी धर्म नीति से सरकार कुछ न कह सके, किन्तु हानिकारक धर्म कलङ्कों को सरकार मिटाती रही है इस से नाबालिगों को, माता पिता की आज्ञा से, या उसके बिना, साधु बनाने वालो को दण्ड देने का बिल पास कराना राय साहब को इष्ट है। जब देश इतना ग़रीब हो गया है कि भिक्षा के कणों पर बड़े बडे आदमियो की दृष्टि पडने लगी है, और जब भिक्षा कामो में लगाने का उपाय न हो कर मुफ़्तखोरो की जननी हो गई है, तो राय बहादुर का प्रस्ताव ठीक है। किन्तु जो माता पिता बच्चे पालने के बोझ से, या दीनता से, या भ्रमात्मक धर्म से, सिखाए या बिना सिखाए, साधुओं को अपने बालक बेच या सौंप देते हैं, उन्हें भी दण्ड मिलना चाहिए। इस भिक्षुक समुद्र की वेला उल्लङ्घित हो चुकी है, और कई परिश्रमी ब्राह्मणों के घर इसने बहाए है, क्योंकि प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय के साधुओं को दीन और परमुखप्रेक्षक ब्राह्मणों में ही नई शिकार मिलती है; यों ब्रह्मकुल का नाश हो रहा है और साधुओं के नाम मात्र के ब्रह्मचर्य से देश का सदाचार धूल में मिल रहा है!!!

*** *** ***

लासा के लासा लग गया—वहां तिब्बतमिशन का महारास हो गया और रहा है। किन्तु कुछ आशा पूरी नहीं हुई। जिस नगर के मन्दिर का सोने का चूडा आठ आठ मील से दिखाई देता था, और सूर्य के प्रकाश को प्रतिविम्बित करता वर्णन किया जाता था, वहां मणिकुट्टिम नहीं पाए गए; किन्तु गन्दी गलियें में सूअर और कुत्ते विचरते मिले। वहां कोई थीवा का महल नहीं; और न पीक्ह की पुरानी निधि मिली। यह सभ्यता और प्राचीनता का संघर्ष पूरा हुआ। प्रश्न है कि तिब्बत मिशन के साथही साथ 'एशियाटिक सोसासाइटी' के दूत क्यों न गए जो कवच पहने पहने प्राचीन पुस्तकों की नोटिस कर लाते, और असभ्य लामाओं को रिवाल्वर के दर्शन भी करा आते। और थियासोफ़िस्टों के पृष्ठपोषक महात्मा अब कहा जांयगे? वे भी क्या दलायलामा की तरह अस्पृश्य सभ्यता से नहीं भागेगें? क्या यह सम्भव नहीं कि वहां वृटिश रेज़िडेन्ट जलदी जमजाय? हम तो जी जान से यही चाहते हैं कि वहां रेज़िडेन्टी लगै, क्योंकि कुछ भारत वासियें की नौकरियां तो लगेंगी। चाहे बङ्गाली बाबुओं से अन्त को घृणा हो जाय, किन्तु पहले तो डाक, तार और शासन में कुछ देशियें की रोटी चले। लड़ाई के व्यय के बदले भारतवर्ष को कुछ नौकरियां ही मिले सही। मिशन के दूत तिब्बतियें की उदासीनता पर दुःखी हैं। तिब्बती उनकी उपेक्षा करते हैं मानो इङ्गलेण्ड की सेना को रोजही देखते हो। जब मिशन गया तो सड़को में कोई न था। एक स्त्री ने आटा गूंधते सिर उठाकर देखा, एक ने खिडकी में से झाका, फिर सिर नीचा किया। बस! औरों को कुछ पर्वाहही नहीं। यह पुरानी असभ्यता है। भला

क्यों नहीं वे मधुपर्क और पाद्य लेकर इन अतिथियों का आदर करने आए? अतिथियों को यह पता नहीं कि उनके चरणारविन्द वहां से कब तक लौट सकेंगे। तिब्बत वाई को हम बधाई देते हैं कि प्राचीन पड्दे को तुड़ाकर वह यंगहज़-बैण्ड (युवापति) से मिली। अब यंगहज़बैण्ड की 'मुरादें' पूरी होनी चाहिए। उसे अपने शीघ्र लौटनेवाले गुरुजन को अपनी नव वधू से प्रणाम कराने का मौक़ा शीघ्र ही मिले।

* * *

'उपन्यास'—मासिक पुस्तक के साथ एक छपा पत्र बाँटा गया है। उस में पं॰ किशोरी लाल गोस्वामी अपने ग्राहकों से ग्राहक बढ़ाने की प्रार्थना करते हैं और प्रार्थना की नींव बांधते हैं अपनी स्त्री के मरने और अपने ब्राह्मणत्व पर। एक स्वर्गीया नारी और पवित्र वंश को यों नीचे खैंचना अच्छा नहीं। क्या वे भिक्षा मांगते हैं? उपन्यास को ग्राहक बढ़ाने के लिए आप उनसे कहैं, किन्तु ब्राह्मणत्व को क्यों दूषित करते हैं?

* * *

अनमेल—जिसे अंग्रेज़ी में Anamoly अनामली कहते हैं उसे हम अनमेल कहै तो कुछ ठीक ही है। समय के परिवर्तन से, जब पुरानी बोतलों में नया सुवास भरना पड़ता है, जब पुराने कपड़े नए अङ्गों पर ठीक फ़िट नहीं करते किन्तु अङ्ग सिकोड़ कर या पेबंद लगाकर लोगों को दिखाना चाहा जाता है कि वे ठीक आते हैं; जब वास्तव शरीर कपड़ों को छोड़ जाता है और दूर जाकर अपने लिए नए कपड़े बनाने बैठ जाता है और लोग पुराने कपड़े को ही सदेह वस्त्र माने रहते हैं या माने रहते हुए होने का मिस करते हैं उस समय कई अनमेल बातें हो जाती हैं। इङ्गलैण्ड के बादशाहों के राज्याभिषेक में एक ऐसी ही घटना धर्मपूर्वक की जाती

है। इङ्गलैण्ड के राजा का हिमायती (Champion) शस्त्रों और कवचों से लदा हुआ, उठाया जाकर घोड़े पर बिठाया जाता है और वहां से भाला हिला कर चारों दिशाओं से प्रश्न करता है कि कोई व्यक्ति इस राजा के अभिषेक का विरोधी होवे तो मेरे सामने आवे। चारों दिशाएं प्रतिध्वनि के मिससे हंसने के सिवा इस का उत्तर नहीं देतीं। जब हिमायती जी स्वयं उठाये जाकर घोड़े पर चढ़ाए जाते हैं, तो वे उस समय की अनमेल छाया मात्र है तब राजा को लड़झगड़ कर अपना ऊंचा आसन पाना पड़ता था। कार्लाइल ने रोम के पोपों के विषय में एक ऐसी अनमेल घटना का बहुत रोचक वर्णन दिया है। किसी पवित्र दिवस को क्रस्तान धर्माचार्य 'पोप' का कर्त्तव्य था कि गाड़ी में घुटनों के बल खड़े हो, प्रार्थना करते हुए, नगर की प्रदक्षिणा करे। एक विलासी 'पोप' के मोटे शरीर में पीड़ा होती थी। उस वातग्रस्त पोप ने लकड़ी, कपड़े, पत्थर से, अपनी एक मूर्त्ति बनवाई, जो अवनितल विन्यस्त जानु मण्डल, कमल मुकुल की सी अञ्जलि को सिर पर रक्खे, पीछे एक कुर्सी पर छिपे पोप देव को बैठाए, नगर की प्रदक्षिणा कर आई। मानो पोप का काम ऐसा रह गया था जिसे निर्जीव लकड़ी की मूर्त्ति भी कर सकती थी। मेरे पास ठाकुरजी नृत्य करते हैं, ऐसा कहकर एक धूर्त ने. चूहों के पैर में घुंघरू बांध कर, उन्हीं से देवदेव का काम निकाल लिया था। ऐसे समय में, जब कि केवल देह मात्र को छोड़ कर आत्मा चला गया है और लोग देहही में इत्र मलमल कर उसे उजला दिखाना चाहते हैं, परस्पर कई विरोध हो जाते है, जो शोचनीय है, दुःख दायी हैं और कष्टमय है। सनातन धर्मी लोग आर्यसमाजियों को वेद मन्त्रों के उलटे अर्थ करने

को बुरा कहते हैं किन्तु "अश्मा भवतु ते तनूः" का स्वयं अण्ड बण्ड अर्थ करते हैं। थियासोफ़िस्टों को हेतुवादी कह कर पतित कहते हैं किन्तु स्वयं वैश्यों के 'गुप्त' उपनाम का हेतु यह बताते हैं कि वे अपने सिद्धान्त गुप्त रखते हैं। क्या इस तर्क से मन्त्रों के गोप्ता और राजनीति के गोप्ता भी वैश्य नहीं कहला सकते? और छिपानेही से व्यापार बढ़ता तो अमेरीका का प्रगट वाणिज्य क्यों जगत् को व्याप्त कर रहा है? मि० रमेशदत्त की ऋग्वेद गवेषणा को 'अल्पश्रुत' का काम बताते हैं किन्तु अपनी फूटी आँख के शहतीर 'विद्या सागरों' को कुछ नहीं कहते जो गुरु से वेद न पढ़कर भी पुराने भाष्यकारों से टक्कर मारना चाहते हैं। इससे अधिक अनमेल क्या हो सकता है कि राजा के ईश्वरत्व का मण्डन करते भी कांग्रेस और प्रजातन्त्र का पक्षपात दिखाते है और श्रीवेङ्कटेश्वर का सा धार्मिक पत्र भी एक ऐसा वाक्य लिख सकता है जो हिन्दू राजाओं के राज्य में ईश्वर द्रोह के तुल्य माना जाता 'कितनेही राजा प्रजा के सेवक, प्रजा के रक्षक बनने के बदले, अपने आपको राज्य का, प्रजा का, मालिक समझ कर, प्रजोपकार के बदले, अपने आनन्द के कामों में मनमाना ख़र्च करते हैं"? वही पत्र राजनैतिक मिष्टर तिलक की स्तुति करता हुआ उस पण्डित के जातिबहिष्कृत होने पर हर्ष करता है और उनके वैदिक प्राचीनता साधक ग्रन्थों को अर्वाचीनता–साधक कहकर उनके खण्डन की आशा रखता है। अवश्यही वह यह सुनकर प्रसन्न न होगा कि डाकृर थीबो उसका खण्डन करके वेदों को १२०० ख्रिष्ट पूर्वाब्द पर लाना चाहते है। यदि हमें पाप न लगे तो हम कह सकते हैं कि 'जगद्गुरु' का वर्तमान अभिनय भी इसी 'अनमेलपन' से खाली नहीं है। जो गद्दी विद्याबल से और धर्म

वीरता से भगवान् शङ्कराक्तार की है, उसकी मर्यादा का, सोने चांदी के सिंहासन, दिन में जलती मशालों और बड़ी बड़ी भेंटों से, क्या सम्बन्ध है सो समझा नहीं जाता। और दिन में जलती मशालें बिजली की रोशनी के सामने! मानो जगद्गुरु गद्दी के स्वामी शताब्दियो तक अचेत सोकर अब जाग पड़े हैं, और उन शताब्दियों की अपरिच्छेद्य भेंटों का डकार लेते हुए, आंखें मलते मलते, अब उस शैव वैष्णवों के झगडों को बुझाना चाहते हैं जो स्वयं बुझ चुका है और जिसे उनके आसन्न अदूरदर्शी पूर्वजों ने चमकाया था। इतने सैकड़ों वर्षों के दान का प्रति फल सौ प्रथम श्रेणी के कालेज, दसो अनाथालय और बीसों प्रशस्त पुस्तकालय होने चाहिए जिन में भक्तों का एक पैसा न लगकर सब धन गद्दी से ही मिले। क्या सैकड़ों 'ताताओं' का धन इन गद्दियो पर नहीं चढ़ाया जा चुका है? और अब जगद्गुरु का काम कौन करता है? जो लड़का आठ आने कालम पाकर आधे पेट, बारह बजे तक, आखों का तेल जला कर, झुकी कमर से, समाचार पत्र के कार्यालय की गन्दी काल कोठडी में लिखता है, क्या वह जगद्गुरु का कायम मुकाम नहीं है? क्या यह कथा बाचने वा बेचनेवालों का उत्तराधिकारी नहीं है? अथवा जो महोपदेशक व्याख्यान के पीछे थाली फेरते हैं उन का काम वह नहीं करता? प्राचीन नवीन की सदृष्टि और अनमेल का अनमेलतम दृश्य जो शताब्दियोंने न देखा होगा वह जगद्गुरुका "गुजराती" पत्र के सम्पादक को रुद्राक्षमाला देना और लेडी नार्थकोट अनाथालय में २५) बाँटना है। जैसे कोई सुपने से उठकर चिल्लावे "भगवन्, क्या यह मेरा काम था?" और काम, अपनी आंखो से उसके हृदय को चीरता हुआ, बोले;—"क्यों जी, मैं तो तुमारा काम या न?"

महाकवि भूषण।

(गताङ्क से आगे)

इस अलंकारों की नामावली में बहुत से तो ऐसे हैं जिनमें मुख्य अलंकार का वर्णन हुआ है परन्तु उसके किसी विभाग का नहीं हुआ। ऐसा ग्रन्थ के संक्षिप्त बनने के कारण किया गया। कुछ अलंकार ऐसे हैं जिनके न वर्णित होने का कोई कारण नहीं है। यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे विदित अथवा आवश्यक नहीं हैं जिनको वर्णन करने पर कवि बाधित हो। शेष कुछ ऐसे भी अलंकार हैं जिनके उदाहरण देने से नायक की निन्दा होती अतः उनके उदाहरण नहीं दिये गये यथा **द्वितीय प्रतीप, द्वितीय सम्बन्धातिशयोक्ति, समएवं न्यून व्यतिरेक, व्याज निन्दा और स्तुति निन्दा।**

तद्रूप रूपक का भी वर्णन भूषणजी ने नहीं किया है। **विहारी लाल** जी ने भी सैकड़ों रूपक लिखने पर भी एक भी तद्रूप रूपक नहीं लिखा। वास्तव में तद्रूप रूपक एक निषिद्ध प्रकार का रूपक है। रूपक का मुख्य प्रयोजन है वसी रूप का होना फिर कोई वस्तु किसी द्वितीय की पूर्ण प्रकारेण अनुरूप तभी हो सक्ती है जब उन दोनों वस्तुओं में कुछ भी भेद न हो, अर्थात् जब वे अभेद हों। अतः मुख्यशः अभेद रूपकही शुद्ध रूपक है। जब दो पदार्थों में विभिन्नता प्रस्तुत है जैसा कि तद्रूप रूपक में होता है तब रूपक श्रेष्ठ कैसे हो सक्ता है?

इन महाशय ने दो अलंकारों के उदाहरण अन्य आचार्यों से उनमतर दिये हैं—

(क) **परिणाम—सर्वस्वकार** का मत है कि जहां अप्रकृत प्रकृत

का रंजन मात्र करै वहा रूपक और जहां अप्रकृत का प्रकृत का उपयोगी होवे वहा परिणाम अलंकार है-यथा।

मुख शशि देत अनन्द ... ... रूपक

मुख शशि हरत अँध्यार ... ... परिणाम

दूलह आदि ने इसके उदाहरण में यही कह मारा है कि "कपि नाघ्यो सिन्धु राम पद पंकज प्रसाद ते" परन्तु वास्तव में यह रूपक है क्योंकि पंकज यहां पद का रंजन मात्र करता है परन्तु भूषण कवि ने इसका अत्यन्त शुद्ध उदाहरण दिया है-

"भूषन तीषन तेज तरन्नि सो बैरिन को किया पानिप हीनो"-यहां तरणि तेज का केवल रंजन मात्र नहीं करता वरन् उसका उपयोगी है।

(ख) दीपक-इसमें भाषा के आचार्य्य उपमेय उपमान का सम्बन्ध जोड़ते हैं। यह भाषा के आचार्य्यों की भूल है। काव्य प्रकाश में यह लक्षण दिया है-यथा-सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम् 'प्रकृत और अप्रकृतों के धर्म्म के एक बार वर्त्तन में दीपक अलंकार है-'

अहिफनि मनि सिंह सुसटा कुच कलत्र कुच जान।
कृपन जनन को धन कहो को परसै छुत प्रान॥

भूषण ने भी उदाहरण में उपमेय उपमान का सम्बन्ध नहीं रक्खा है यद्यपि न जाने लक्षण में वह कैसे वर्त्तमान है-यथा-

"कामिनि कन्त सों जामिनि चन्द-सों,
दामिनि पावस मेघ घटासों।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै,
हिंदवान खुमान सिवा सों॥

दीपक में उपमेय उपमान का सम्बन्ध लगाने के कारण अन्य

आयो आयो सुनत ही, शिव सरजा तव नाउं ।
बैरि नारि दृग जलनि सों, बूड़ि जात रिपु गाउं ॥

(घ) असंगति—हेतु किसी दूसरे स्थान पर हो और कार्य्य किसी दूसरे पर—

महाराज चढ़त तुरंग पर ग्रीवा जात,
नैकर गनीय अति बल की ।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत खरी सुअखिल खलकी ।
कियो दौरि घाव घाव वीर मीर उमरावपर,
गई कटि नाक सिगरेई दिलीदल की ॥
सूरत जराई कीन्हों दाहु पात साहु उरस्याही,
जाय सब पात साही मुख झलकी ।

(ङ) विरोधाभास—

जहँ विरोध सो जानिये साँच विरोध न होय ॥

दच्छिन नायक एक तुही भुव भामिनि को अनुकूल है भावै-
दीनदयाल न तोसो दुनी अरु म्लेच्छके दीनहिं मारि मिटावै।
सूर के वंस मैं सूर सिरोमनि है करि तू कुल चन्द कहावै ॥

(च) विरोध—जहां कारण का रंग अथवा गुण अन्य हो और कार्य्य का उस्के विरोधी । इस्को अन्य आचार्य्य द्वितीय विषम कहते हैं ।

श्री सरजा शिव तो जस सेत सों होत हैं वैरिन के मुहुं कारे-
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेद लखे कुनवा नृप सारे ।
साहि तनै मुख कोप अगिन्नि सों वैरी जरैं सब पानिप वारे ॥

(छ) पूर्वरूप—

प्रथम रूप मिटि जाय जहँ फेरि वैसई होत ।

यों सिर को छहरावत छार हैं जाते उठैं असमान बभूरे ।
भूषन भूधरऊ धरकैं जिनके धुनिधकनि यों बलरूरे ॥

ते सरजा सिव राज दिये कविराजनि को गजराज गरूरे ।
सुंडनि सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महामद सों नद पूरे ॥

शिव राज भूषण मे कवि ने अलंकारों ही पर पूर्ण ध्यान दिया है अतः युद्ध प्रधान ग्रन्थ होने पर भी पूर्ण वीर रस के अच्छे उदाहरण इस ग्रन्थ में नहीं मिलते । हां भयानक तथा रौद्र रसों के उदाहरण कुछ उत्तम भी यत्र तत्र देख पड़ते हैं मुख्यशः भयानक रस के जिस रस के वर्णन में भूषण महाराज बड़े पटु हैं । इन्होंने शिवा जी के दल का वर्णन इतना नहीं किया है जितना कि शत्रुओ पर उसकी धाक का । इसी हेतु इनके ग्रन्थ में भयानकरस का बहुत अधिक समावेश है । रौद्ररस का भी वर्णन बहुत स्वल्प है और वीर रस का तो एकही स्थान पर मिलता है । यथा—

यह रूप अवनि अवतार धरि जेहि जालिम जगदंडियव ।
सरजा शिव साहस खग्ग गहि कलियुग सोइ खल खंडियव॥

इस वर्णन में भी व्यभिचारी भाव के न रहने से रस अपूर्ण रह गया है । रसों के उदाहरण **शिवा बावनी** तथा **छत्रसाल दशक** में कुछ सन्तोषप्रदायक देख पड़ते हैं । सब बातों पर विचार करने से विदित होता है कि शिवराजभूषण एक बड़ाही प्रशंसनीय ग्रन्थ है । इसमें प्रायः समस्त सत्य घटनाओं ही का वर्णन है और शिवा जी का शील गुण आद्योपान्त एक रस निर्बाह कर दिया गया है । इतिहास देखने से जो जो गुण शिवा जी में पाये जाते हैं उन सब का पूर्ण विवरण इस ग्रन्थ में मिलता है । हां एक बात में अवश्य विभेद है और वह इस प्रकार है कि इतिहास से प्रकट होता है कि शिवा जी भवानी के बड़े भक्त थे और प्रायः समस्त बड़े कार्य्य उन्हीं की आज्ञा से करते थे परन्तु भूषण जी ने इन्हें केवल शिव भक्त बताया है । परन्तु इस विषय में हमारा इन्हीं का प्रमाण मानने को चित्त चाहता है । कारण यह कि भूषण के पिता भवानी के

भक्त थे और कहा जाता है कि भवानीही की कृपा से उन के चार पुत्र हुये थे। फिर स्वयं भूषण ने ग्रन्थारम्भ में भवानी की स्तुति की है तब यह कैसे सम्भव है कि यदि शिवा जी भवानी के भक्त होते तो ये महाशय इस बात का वर्णन न करते विशेष करके जब भवानी ही इनकी कुल देवी थीं और ये स्वयं उन के भक्त थे।

हमारे भारत वर्ष में **पृथ्वी राज** के पश्चात् चार स्वतन्त्र राजा बड़े प्रभावशाली एवं पराक्रमी हुये अर्थात् **महाराणा हम्मीर देव, महाराणा प्रतापसिंह, महाराजा शिवाजी,** और **महाराजा रणजीतसिंह**। इन सब में हम लोगोंसे दूरतमवासी शिवाजी ही थे तथापि एतद्देशीय साधारण हिन्दू समाज में सब से अधिक प्रसिद्ध येही महाराज हैं और इस असाधारण प्रख्याति का कारण यहां शिवराज भूषण ग्रन्थ है। यद्यपि महाराजा रणजीत सिंह के सब से पीछे होने के कारण उनका नाम लोग यहां जानते हैं तथापि उनकी भी विजय यात्राओं का हाल यहां बहुत कम मनुष्यों पर विदित है परन्तु शिवाजी की लड़ाइयो का समाचार ग्राम ग्राम तथा घर घर सब से पूछ लीजिये। क्याही अच्छा होता यदि हमारे वर्त्तमान समय के कवि गण अनुपयोगी विषय छोड़ ऐसे ऐसे उच्च विषयो पर काव्य रचना करने में भूषण महाराज का अनुगमन करके अपनी अद्य पर्य्यन्त पोथी उपाधियो को सार्थक करने का प्रयत्न करते।

श्री शिवा बावनी।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है किन्तु भूषण के ५२ छन्दो का संग्रह है। इस ग्रन्थ के छन्दों का स्वतन्त्रता पूर्वक निर्मित होने के कारण इसमें उद्दंडता अधिक आई है और इसमें रसों के पूर्ण उदाहरण भी बहुत पाये जाते है। परन्तु इसमें भी भयानक रस का प्राधान्य है। रौद्र रस के छन्द भी इसमें यत्र

तत्र दृष्टि गत होते हैं तथापि इस ग्रन्थ में भी शुद्ध वीररस के दोही छन्द हैं उन में भी प्रथम छन्द में मुख्य वर्णन पिशाचों का है और गौण शिवाजी का। हां द्वितीय छन्द में वीर रस पूर्ण हैं। यथा—

छूटत कमान और तीर गोली बानन के,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट में।
ताही समय शिवराज हुकुम कै हल्ला कीन्हों,
दावा बँध परहला भटन के जोट में।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहां लों कहौं,
किम्मति इहां लगि है जाके भट जोट में।
ताव दैदै मूछन कँगूरन पै पावँ दैदै,
घाव दैदै अरि मुख कूदे परै कोटमें॥

इस छन्द में रस के चारों अंग अर्थात् विभाव, स्थायीभाव व्यभिचारी भाव, तथा अनुभव प्रगट देख पड़ते हैं। इस वर्णन को देखकर जापानियों की चढ़ाई का स्मरण हो आता है। इस ग्रन्थ में भूषण ने शत्रुओं की दुर्गति काबडा ही सुन्दर चित्र खींचा है वह देखते ही बन आता है एक दो छन्दों से उसका अनुभव नहीं कराया जा सक्ता। तथापि निम्न लिखित छन्द उद्धृत करते हैं। इसमें उपर्युक्त दुर्गति का वर्णन है और यह भयानक रस का भी अच्छा उदाहरण है— यथा—

कत्ता की सुधार सों चकत्ता के कटक काटि,
कीन्ही शिवराज बीर अकह कहानियां।
भूषन भनत तेरे धौसा की धुकार सुनि,
दिल्ली औ बिलाइति सकल बिललानियां। [प्रधान गुण से अधिक]
आगरे अगारन है फाँदती कगारन है,
बांधती न बारन मुखन कुम्हिलानियां

सीवी कहे मुखते गरीवी गहे भाग जैवे,
बीवी गहे मूथनी सुनीवी गहे रानियां ॥

सब मिलाकर यह ग्रन्थ भी अत्यन्त विलक्षण है और इसके प्रावल्य और गौरव बड़ेही प्रशंसा पात्र हैं । इसमें बहुत सा वर्णन शिवराज के अभिषेकानन्तर का है यह समय ऐसा था कि जब कि शिवा जी बीजापूर तथा गोलकुंडा को भली भांति पद दलित कर-चुके थे और ये दोनो राज्य उन के प्रभुत्व को स्वीकार करके ५ लाख तथा ३ लाख रुपये वार्षिक कर उन्हें देने लगे थे । इसी कारण इस ग्रन्थ में इन दोनों राज्यो का स्वल्प रीति से वर्णन हुवा है और मुख्यांश में दिल्ली का वर्णन है ।

श्री छत्रसाल दशक ।

(७) जान पडता है कि भूषण महाराज ने छत्रसाल के बहुत से छन्द बनाये थे सो उन से चुनकर ये दश छन्द रक्खे गये हैं क्योंकि इस ग्रन्थ के दशो छन्द ऐसे मनोहर बने हैं कि इच्छा होती है उदा-हरण में दशो उद्धृत कर दें । अतः इस ग्रन्थ का उदाहरण स्वरूप हम एक अविदित छन्द यहां देते हैं कारण यह कि इसकेविदित छन्द सभी लोग जानते हैं । इस ग्रन्थ की जितनी प्रशंसा की जाय थोडी है ।

चाक चक चमू के अचाक चक चहूं ओर
चाक सी फिरति धाक चम्पति के लाल की ।
भूषन भनत बादसाही मारि जेरि कीन्ही,
काहू उमाराव ना करेरी करवाल की ।
सुनि सुनि रीति-बिरदैत के बडप्पन की,
...ण क ५२ ... उथप्पन की रीति छत्र साल की ।
पूर्वक निर्मित हुे लेवा ते वै हे कै दाम देवा भूप,
इसमें रसों के पू गे करन महेवा महि पाल की ॥
भी भयानक रस

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित छत्र प्रकाश से विदित होता है कि छत्रसाल भारतवर्ष भर के सब युद्धकर्त्ताओं में केवल शिवाजी को पूज्यबुद्धि से देखते थे यहां तक कि वे एक बार शिवा जी से मिलने भी गये थे । शिवाजी ने उन्हें बहुत प्रोत्साहित किया और एक खड्ग भी दिया । भूषण के प्रस्तुत ग्रन्थों में इस घटना का वर्णन नहीं है । इस महाकवि ने इन भारतमुखोज्ज्वलकारी युगल मित्रों का वर्णन करके भारतवासियों का बड़ा उपकार किया है ।

फुटकल ।

(८) इस ग्रन्थ में भूषण के पांच या छः कवित्त लिखे गये हैं जिनके विषय विशेषतया कुछ वक्तव्य नहीं है । जैसे इनके सब छन्द हुवा करते हैं वैसेही इस छोटेसे ग्रन्थ में भी हैं ।

(९) अब हम इन महाशय के चारों ग्रन्थों के विषय में अपने विचार प्रकट कर चुके अतः चारों ग्रन्थ मिलाकर इनके समस्त काव्यों में जो कुछ विशेष करके कथनीय हैं उसका वर्णन देते हैं ।

भूषण की कविता का परिचय ।

इन महाशय की कविता में न तो कोई बड़े दोष हैं और न बहुत बड़े गुणही देख पड़ते हैं । हां विषयों के चुनने में इन्होंने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया है । भाषा कवियों की गणना में न तो इन का स्थान नीचा है न बहुत ऊंचा । ये महाशय मध्यम श्रेणी के कवि हैं परन्तु इनके उत्तम विषय चुनने के कारण इनकी ख्याति बड़ी ही विस्तीर्ण है । इन के कनिष्ठ भ्राता मतिराम में और इन में कविता के गुणों में बड़ा अन्तर है परन्तु इनकी ख्याति मतिराम से अधिक नहीं तो बराबर अवश्य है । इनकी कविता के प्रधान प्रधान गुणा-वगुण नीचे लिखे जाते हैं ।

इन महाशय के छन्दों में दो चार स्थानों पर यतिभङ्ग हो गया है। यथा—

विख जाल ज्वाला मुखी लवलीन होत,
जिन आख चिकार दिग्गज मद उगलि गो ।
अथह जल विमल कालिंदी के तट केते,
परे युद्ध विपत के मारे उमराव हैं ।

इन के यतिभंग चरणों के मध्य में कभी नहीं आते हैं अतः वे क्षन्तव्य भी हैं क्योंकि चरणार्द्धवाले यतिभंग मुख्यतः दूषित होते हैं।

इन्होंने कभी कभी अव्यवहृत अथवा विकृत रूप धारी शब्दों का व्यवहार किया है। यथा जम्पत है (जपता है, कहता है; पृष्ठ ३ उदाहरण १४), चकत्ता (चगताई), अमाल (आमिले) खुमान (आयुष्मान), गारो (गर्व, अथवा न जानें क्या; पृष्ठ ३४ उदाहरण ७७), विगूचे (इसका शुद्ध शब्द नहीं विदित होता क्या है; पृष्ठ ३७ उदाहरण ८४), भतार (भरतार) हथामें जमान (दस्तमे ज़मां),

परन्तु इतने ग्रंथों में और विशेष करके युद्ध वर्णन के ग्रंथों में यदि इन्होंने इतने अथवा कुछ और शब्दों का अव्यवहृत स्वरूप में समावेश किया तो कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं है वरन् आश्चर्य्य तो यह है कि इन्होंने इतने कम शब्द मरोड़ कर अपना काम कैसे चला लिया।

अनुप्रास—इन महाशय के काव्य में अनुप्रास बहुतायत से आए हैं तथापि इनके वीरता प्रधान ग्रन्थों के रचयिता होने से इनपर कोई दोषारोपण नहीं कर सक्ता। फिर इन्होंने पद्माकर जी की अनुप्रास का स्वांग भी नहीं बनाया है। उदाहरण।

इन्द्र जिमि जम्भपर, बाड़व ज्यों अम्भ पर,
सूरज ज्यों चंद पर, रघुकुल राज हैं।

पौन बारि बाह पर, शम्भु रति नाह पर,
ज्यों सहस्रबाह पर, राम द्विजराज हैं ॥
दावा द्रुम दुंड पर, चीता मृग झुंड पर,
भूषण वितुंडपर, जैसे मृग राज हैं ।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ वंस पर, सेर सिवराज हैं ॥
तेरो करवाल भयो, दक्खिनको ढाल भयो,
हिन्दको दिवाल भयो, काल तुरकान को ।
भै भरकी करकी हरकी घरकी,
डर एदिलसाहिकी सेना ।
रंकी भूत दुवन करंकी भूत दिगदन्ती,
पंकी भूत समुद सुलंकी के पयान ते ॥

भाषा—इनकी भाषा विशेषतया ब्रजभाषा है जैसा कि उस समय के प्रायः सभी कवियों की थी । युद्ध काव्य रचने के कारण इन्हें अपनी कविता में प्राकृत मिश्रित भाषा भी लिखनी पड़ी तथापि इन्होंने उस समय के अन्य युद्ध काव्य के रचयिताओं से न्यूनतर इस भाषा का प्रयोग किया है । यह बात इनके कवित्वशक्ति सम्पन्न होने का एक प्रमाण है । और कविता में अन्य कवियो को प्राकृत भाषा का अधिक प्रयोग करना पड़ा है । फिर अन्य कवियो के युद्ध काव्य में माधुर्य्य और प्रसाद गुणों की बड़ी न्यूनता रहती है परन्तु ये महाशय इन गुणो को भी बहुतायत से अपने युद्ध काव्य में सन्निविष्ट करने में समर्थ हुये हैं । इन्होंने दो एक छन्द खड़ी बोली में भी कहे हैं । यथा—

प्राकृत मिश्रित भाषा ।

सिवराज सहिसुत सत्थ नित लक्ख हत्थि हय लक्ख रह ।

पक्कर गयन्द यक्कइ तुरँग किमि सुरपति सरवरि कह ॥

खड़ी बोली।

बचैगा न समुहाने बहलोलखां,
 अपाने भूषन बषानै दिल आय मेरे चरजा।
तुझते सवाई तेराभाई सलहेरी पास,
 क़ैद किया साथ का न कोई वीर गरजा ॥
साहिन को साहसी औरंग हु के लीन्हें गढ़,
 जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहिका ललन, अफ़ज़लका मलन, दिल्ली दल
 का दलन, सिवराज आया सरजा ॥

कुल बातो पर ध्यान देने से बिदित होता है कि इनकी भाषा विषय देखते बड़ीही सन्तोष जनक है।

उद्दंडता भी इनकी कविता का एक प्रधान गुण है। इन्होंने शिवाजी की चढ़ाइयो का ऐसा उद्दंड और भयावन वर्णन किया है कि देखतेही बनता है। इसके उदाहरण पूर्व उल्लिखित कविता में बहुत मिलैंगे।

कई स्थलों पर इन महाशय ने ऐसा बिचित्र एवं भड़कीला वर्णन किया है कि देखकर हँसी आजाती है। वास्तव में दूर की कौडी लाना इसी को कहते हैं।

पक्को मतो करिकै मलिच्छ मन सब,
 छोड़ि मक्काहिके मिसि उतरत दरियाव हैं।
हेरी २ कूटि सलहेरी बीच सरदार,
 घेरि २ लूट्यो सब कटक कराल है ॥
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
 अवरंग डरी सिवाजी पै भेजत रसाल है।

दुवन सदन सब के बदन, शिव शिव आठो जाम।
निज बचिबे को जपत मनु, तुरकौ हर को नाम॥

सीनो धकधकतु पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बायें दाहिने।
सिवाजी की संक मानि गये हौ सुखाय,
तुम्हें जानपत दक्खिन को सूबा कियो साहिने।

काल करत कलिकाल मैं, नहिं तुरकन को काल
काल करत तुरकान को, शिव सरजा करवाल॥
हिन्दुनि सों तुरकिनि कहैं, तुम्हें सदा सन्तोषु।
नहिन तिहारे पतिन परा, शिव सरजा कर रोषु॥

इन महाकवि की कविता के गुणदोष हम यथाशक्ति ऊपर दिखा चुके। वास्तव में युद्ध काव्य करने में इन्होंने बड़ी ही कृतकार्य्यता पाई है। ऐसा उत्तम वर्णन किसी कवि ने नहीं किया है—इन के विषय शिवसिंहसरोज का यह मत है "रौद्र, बीर, भयानक ये तीनो रस जैसे इनके काव्य में हैं ऐसे और कवि लोगों की कविता में नहीं पाये जाते, (इन्होंने) ऐसे ऐसे शिवराज के कवित्त बनाये हैं जिनके बराबर किसी कवि ने और यश नहिं बनाय पाया"। इन की युद्ध कविता के विषय इतना अवश्य कहा जा सक्ता है कि इन्होंने सर वालटर स्काट की भांति किसी युद्ध का पूर्ण वर्णन नहीं किया। स्यात् इस ओर इनका ध्यान कभी आकृष्ट नहीं हुवा नहीं तो जब ये महाराज शिवराज के साथ रहा करते थे और कितनेही युद्ध इन्होंने अपनी आखों देखे तो उन का वर्णन करना इनकैसे महाकवि के लिये कितनी बात थी। यह हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य था कि इन महाशय ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। इन के विषय इतना और कह देना चाहिये कि

टेनिसन की भांति ये महाशय भी प्रतिनिधिकवि(Representativepoet) थे क्योंकि इन्होंने भी अपने समय के मनुष्यों के विचार और इच्छाओं का अपनी कविता में वर्णन कियाहै। अब हम इस लेख को भूषण महाराज के कुछ चुनेहुये चरणों के साथ समाप्त करते हैं।

उलदत्त पद अनुमद ज्यों जलधिजल,
बलहद भीमकद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंड मण्डित मधुप वृन्द,
विंध से बिलन्द सिंध सालहू के थाह के॥
भूषत भनत झूल झम्पत झपान झुकी,
झुकट झुमत उहरात रथ डाह के।
मेघ से घमंडित मजेदार तेजपुञ्ज,
गुंजरत कुंजर कुमाऊं महराज के॥
कढ़ि गई रैयति के मनकी कसक अरु,
मिटिगई ठसक तमाम तुरकाने की।
मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सिर,
खोटी भई सम्पति चकता के घराने की॥
मेहता से मुगल महाजन से महाराज,
डाड़ी लीन्हें पकरि पठान पटवारी से॥
भूषन जू खेलत सितारे में सिकार सम्भा,
सिवाको सुव जाते दुवन सचै नहीं।
बाजी सब बाज की चपेटै चग चहूं ओर,
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचै नहीं॥
चले चन्द बान घन औ कुहूक बान,
चलत कमान धूम आसमान छै रहो।

चलीं जम दाढ़ै बाढ़ वारे तरवारै जहां,
लोह आंच जेठ के तरनि मान वै रहो ॥
ऐसे समै फौजै विचलाईं छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाये पाय बीररस चै रहो।
हय चले हाथी चले संग छांड़ि साथी चले,
ऐसी चला चाली मैं अचल हाड़ा है रहो ॥
सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान।
भुज भुजगेस भुजंगिनी, भखति पौन अरि प्रान ॥

॥ इति ॥

श्याम बिहारी मिश्र एम० ए०
शुकदेव बिहारी मिश्र बी० ए०।

(२)

'कुछ लोगों' के नाम।

महाशयो,

एक राजधानी में, जिसका नाम लेना उचित नहीं, एक पण्डित हैं। उनका नाम बहुत बड़ा है। उनकी उपाधियां कोसों तक लटकती है। किसी पण्डित को एक उपाधि, शास्त्री, या विद्यावागीश, मिली तो क्या, पण्डितजी की उपाधियों में सब की उपाधियों का तीर्थ है। प्रतिक्षण वे उपाधियां बढ़ती जाती हैं। एक, दृष्टान्त लीजिए। राह चलते मुझसे उन्होंने कुशल प्रश्न पूछा। मैंने उत्तर दिया। घर जाकर उनकी नामकी बही में (उनका नाम किसी की जिह्वा पर नहीं है, और न उन्हें ही याद है; वह है उनकी बही पर) यह नाम जोड़ा गया। "विद्वानों से पूजित, अमुक अमुक ग्रन्थों के वेत्ता, अंग्रेज़ी में इतनी योग्यता रखनेवाले, समालोचक के लेखक, हिन्दी के फ़लाने, अमुकजी महाराज, राजमान्य से सम्भाषण करके शास्त्रार्थ के सभी प्राचीन नवीन नियमों से उनके मन को रञ्जित करनेवाले, उनको पराजित करनेवाले या अपने शिष्य प्रशिष्य प्रशिष्य के द्वारा उनसे वाङ् मिश्रण करनेवाले——"यह विशेषण चट उनकी बही में जुड़ गया। कहां उनने खांसा, किसे देखकर उन्हें हंसी आई, कहां उन्हें लघु शङ्का की बाधा हुई, यह बातें उनकी सदा उपचीयमान विशेषणप्रचारिणी माला में जुडकर उसे सफल करेंगी या नहीं, यह निश्चय नहीं किन्तु हिन्दी के कितने सेवक और भारतवर्ष के 'कुछ लोग' ऐसी ही चेष्टा किया करते हैं। वे समझते

हैं, अब तक जिनने कुछ काम किया है, वे सभी मूर्ख हैं, काम हम करेंगे। अपनी कुल्हिया में गुड़ वे फोड़ने भी लग जाते हैं। किसी परिषद् ने किसी दोष को सुधारने का यत्न किया, कि एक चिट्ठी 'ईजानिब' को भी पहुंच गई और यदि वह दोष सुधर गया तो सब मेहनत यारों की, और काम करनेवालों ने यारों की नकल की। घरही में सब दफ़्तर, जोर अपना, कुछ मिल गए, ऐसे जो कहें सो लिख दें, छाप दें, बड़ों को उपदेश दें ये कि 'स्वायत्तनामधेय' जो करते हैं वैसा करो। किसी ग्रन्थ को छपवाने की किसी समाज को ज़रूरत पड़ी या सूझी। यारों को पता लगा। बस, अखबारों में यह तो निकला कि "कुछ लोग" उसे छपवाने का यत्न कर रहे हैं। दो तीन आदमियों को चिट्ठियां लिखी गईं कि हमारा यह प्रस्ताव है, और इसका यह फाइल नम्बर है। उसने उत्तर न दिया तो उसकी मूर्खता। नहीं तो उसकी चिट्ठी, खूब सफ़ाई से छाप दी जाती है, चाहे उसमें इन्हें सूखा बूराही खिलाया गया हो। इत्तिफ़ाक से इनने एक ऐसे को चिट्ठी लिखी जो पहले से उस किताब को छपा रहा था। बस, यह भी छाप दिया गया। पूछे कि इस में आपका 'क्रेडिट' क्या? आप के सजेश्चन और धूम से क्या हुआ?

कुछ लोगो! तुम ध्यान धरो। काम से प्रेम है, काम करना है, तो स्वयं कुछ करो। दुनियाभर में ढोल पीट मारा कि जो यह करेगा, वह करेगा उसे हम मैडल देंगे, किन्तु काम करने के नाम भागते हैं। स्वयं क्यों नहीं काम करके रुपया लेलेते? औरों के काम का न्याय कर सकते हो स्वयं क्यों नहीं कुछ बनाते? जिन कामों में और लगे हुए हैं उनमें क्यों भांजी मारते हो? और काम कुछ नहीं हैं? या अपने नाम का इतना विचार है? मेरा लेख अच्छा हो तो चाहे अपने को मैं सी० आइ० ई० कहूं, चाहे 'क, ख, ग,' से

चिट्ठी दूं, उसका आदर होगा । फिर यह चिन्ता क्यों कि कोरे 'घघड़ातामट' नाम से बहुत कुछ अगाड़ी पिछाड़ी के बिना लगाए हम लिखें नहीं ।

कुछ लोगो ! तुम्हारे घर में जानते हो कितना कूड़ा भरा पड़ा है ? उसे क्यों नहीं साफ़ करते ? तुमारा हिस्सा कितना 'अनकूथ है, दूर दूर क्यों झांकते हो ? मुहल्ले के म्युनिसिपलिटी ठीक न करके देश के सुधार के क्यों दौड़ते हो ? और उस चन्द्रमा के किरणों की कृपा पाए पण्डित की तरह कैसे नाम बढ़ाते हो ?

इन्हीं कामों का परिणाम तुम में एक और है, जिससे हम Carlyle के शब्दों में तुम्हें Pruinent windbag कह दें । जब तक तुम्हारे लिए हम अख़बारों में न लिखें, तब तक तुम्हें अन्न न पचे । अखबारों में लीडर लिखो हमारी तारीफ़ करो, भगवान् दुहाई हमें कुछ मानो, बिना उसे पढ़े हमें नींद नहीं आती, हमारे खांसने तक की रिपोर्ट करो, यह क्या बोखलपन है ? भले मानसो, कुछ ठोस काम करो, पराए धन पर व्यापार मत चलाओ । बड़ों की नकल करो, उनके दोषों को सुधारो, पर स्वयं काम करके । जगत् में तुम्हीं कोरे वैयाकरण नहीं हो । तुम में ही सब काव्य नहीं आगए हैं । तुम समझते हो, कि हम यों कह कर बड़ा पाप करते हैं । क्योंकि तुमने यह व्यापार छोड़े कि जगत् के घूमने की कीली में जंग लगा । पहिए रुके । ऐसी चिन्ता मत करो । जगत् ने बड़े बड़े बिछोहे सहे हैं । वह इसे भी सह लेगा, और कल सवेरे पृथ्वी अपनी धुरी पर ऐसे ही घूमती मिलेगी जैसी कि आज आप के साकल्य की बदौलत ।

अच्छा तुम अपने रूप को जान गए ? अब यही निवेदन है कि यह टोपी तुम्हारे सिर पर आती है तो ओढ़लो ।

वही-चिट्ठीवाला ।

लाला रामचन्द्र।

हम लोगों के प्राचीन ज्योतिष और गणित के ग्रन्थों को देख कर क्या भारतवासी और क्या योरोपवासी सभी को आश्चर्य्य होता है कि किस कारण से, ऐसी उत्तम कल्पनाओं और युक्तिओं के रहते भी, इस विषय में कुछ आगे उन्नति न हो सकी। मेरी समझ में इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि मुसलमानी राज्य होने पर शास्त्र चर्चा की उत्तम सामग्रियां जाती रहीं। भास्कर के समय यवनों, वा, मुसलमानों का, भारतवर्ष में आना आरम्भ हुआ और बस फिर उनके पश्चात् प्राचीन आचार्य्यों में नवीन युक्तियां निकालनेवाला कोई गणितज्ञ न हुआ। हां कमलाकर भट्ट भी बहुत अच्छे थे परन्तु भास्कर से उनकी तुलना नहीं हो सकी। और फिर जितने गणितज्ञ हुए वे सब प्राचीन आचार्य्यों की लकीर के फ़क़ीर बने रहे। उसका फल यह हुआ कि अन्य देशवासी इस विषय में हम लोगों से बहुत बढ़ गये। हमारे यहां के बीजगणित के कुछ सिद्धान्तों को देखकर योरोपवासी अब भी चकित होते हैं। अंग्रेज़ी राज्य होने पर सर्कार ने शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। मुख्य अभिप्राय यह था कि भारतवासी बड़े बुद्धिमान् हैं और इनकी बुद्धि का पुनः उत्तेजन करना चाहिये। सर्कार को इस बात का बहुत दिनों तक खेद था कि अंग्रेज़ी शिक्षा का फल बहुत सन्तोषजनक न हुआ परन्तु लाला रामचन्द्र पहले भारतवासी थे जिन्होंने हिन्दुस्थानियों की तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय अंग्रेज़ों को दिया।

लाला रामचन्द्र का जन्म पानीपत में जो दिल्ली से पचास मील के लगभग है सन् १८२१ ईसवी में हुआ। ये हिन्दू कायस्थ थे

और इनके बाप का नाम सुन्दरलाल था । इनके पिता सुन्दरलाल रेविनिउ कलेक्टर (Revenue Collector) के मातहत काम करते थे और इनका देहान्त दिल्ली में सन् १८३१-३२ ईसवी में हुवा । इनकी विधवा स्त्री ने अपने बालक रामचन्द्र के पढ़ाने में बड़ा प्रयत्न किया । कुछ छोटे मदरसों में पढ़कर रामचन्द्र दिल्ली के सर्कारी स्कूल में भरती हुए । यहां हर एक लड़के को २) रु० महीने पारितोषिक दिया जाता था । ऊँचे वर्ग के बालकों को ५) रु० महीना मिलता था । इस स्कूल में यह छ वर्ष तक पढ़े । इस स्कूल में गणित के अध्ययन की ओर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था परन्तु स्कूल छोड़ने के थोड़ेही दिन पूर्व उस शास्त्र में इन्हें कुछ रुचि हो गई और रामचन्द्र ने, घर पर, जो पुस्तक मिले, उन्हें विशेष ध्यान से पढा । स्कूल छोड़ने के बाद रामचन्द्र ने दो या तीन साल तक मोहर्रिरी का काम किया । सन् १८४१ में बंगाल अहाते के शिक्षा विभाग में कुछ परिवर्त्तन हुवा और स्कूल का कालेज बन गया । रामचन्द्र ने परीक्षा देकर तीस रुपये मासिक का उत्तम पारितोषिक प्राप्त किया । ये सन् १८४४ में कालेज के ओरियेंटल विभाग में योरोपीय साइन्स के शिक्षक नियुक्त किये गये । पचास रुपया मासिक इन्हें और इस कार्य्य के लिये मिलता था । इन्हें उर्दू में सब विषय पढ़ाने पड़ते थे । प्रचलित भाषा में अनुवाद करने के लिये एक सोसाइटी बनाई गई और रामचन्द्र ने इसके साहाय्य में बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद किया । बीजगणित, त्रिकोणमिति, चलनकलन, चलराशिकलन इत्यादि बहुत से ग्रंथों को तय्यार किया । ये सब ओरियेंटल विभाग में पाठ्य पुस्तक रखी गईं जिससे दो तीन वर्ष में अरबी और फ़ारसी विभाग के छात्र अंग्रेज़ी साइन्स की बहुत सी बातें जान गये । अरबी दर्शन शास्त्र के प्राचीन असद्भूत मतों का खण्डन किया गया । "पृथिवी इस

विश्वमण्डल का केन्द्र है" इस प्राचीनमत को सुनकर अंग्रेज़ी और ओरियेंटल विभाग के सभी छात्र हँसते थे। परन्तु बड़े बड़े मौलवी जो शहर में रहते थे इस नवीनोक्ति को जिससे उनके प्रिय प्राचीन दर्शन शास्त्र का अनादर होता था नहीं पसन्द करते थे।

लाला रामचन्द्र ने दोनों विभागों के उत्तम छात्रों की सहायता से एक सोसाइटी स्वदेश में सद्विद्या प्रचारणार्थ स्थापन की। स्पेक्टेटर (spectator) का अनुकरण कर उसे चलाने का विचार था। पहले मासिक और फिर द्विमासिकपत्र "फ़वायदानाज़रीन" नाम का निकाला। इसका मूल्य केवल चारआना महीना था। इसमें बहुतसी अंग्रेज़ी साइन्स की बातें प्रकाश की जाती थीं। बहुत से मुसलमानी और हिन्दूदर्शन शास्त्र के मतों का खण्डन भी छपता था। यहां तक कि मूर्त्तिपूजा खण्डन आदि धर्म सम्बन्धी विषयों पर भी लेख निकलते थे। इसका फल यह हुवा कि लोग इन्हें नास्तिक और धर्मच्युत समझने लगे। नगर के लोग कहने लगे कि ये भी अमुक पण्डित की नाईं ईसाई हो जांयगे। लाला रामचन्द्र दृढ़तापूर्वक इस बात को कहते थे कि हमें कौन पादड़ी ईसाई नहीं बना सक्ता। ध्यान देने की बात है कि इतने शिक्षित होने पर भी अपने वचन का प्रतिपालन लालारामचन्द्र न कर सके और उनने अन्त में प्रसन्नता पूर्वक क्रिष्टीय मत का ग्रहण किया। मौलवी और पण्डित प्रायः इन्हें तंग किया करते थे और लाचार होकर इन्हें यह कहना पड़ता था कि मैं सब धर्मों को एक सा मानता हूं। इस पर इन्हें लोग ब्रह्मज्ञानी और वेदान्ती समझते थे॥

एक प्रतिष्ठित और आलिम मुसलमान ने नगर के और मौलवियों की सहायता से एक ग्रन्थ पृथ्वी के चलन के खण्डनार्थ प्रकाश किया। प्रमाण के लिये उसमें अरस्तू के बहुत से लेखों का शरण

लेना पड़ा । * परन्तु ज्योंहीं यह ग्रंथ प्रकाशित हुवा एक मौलवी और कुछ अरबी के छात्रों ने उन सबूतों का खण्डन प्रकाश किया जिसका पुनः उत्तर न मिला । पीछे से द्विमासिकपत्र के सिवाय रामचन्द्र ने एक और मासिकपत्र "मोहीबेहिन्द" नाम का निकाला परन्तु आजकल के ऐसा उन दिनों भी पब्लिक ने इन पत्रों का कुछ आदर न किया । आज कल भी तो इन गणित और साइन्स सम्बन्धी पत्रों को कोई पूछता भी नहीं । धन्य ये लाला रामचन्द्र कि उस कुविद्यान्धकार-समय में भी लोगों के चित्त को उन्होंने अपनी ओर खींच लिया था । आज कल तो भारतवर्ष मे ऐसे पत्रों का एक दम अभाव है । विलायत में ऐसे कितने पत्र निकलते हैं जिन में प्रायः सब नवीन सिद्धान्त ही प्रकाश होते हैं । इनको पत्र निकालने में निम्न लिखित महानुभावो ने बहुत सहायता दी थी ।

SIR JHON LAWRENCE	...	*The Magistrate of Delhi.*
MR A A ROBERTS	...	*Ditto ditto*
DR A ROSS	.	*Judge at Delhi*
MR P F GUBBINS	...	

परन्तु समय के हेर फेर से ये सब बन्द हो गये । सन् १८५२ में द्विमासिक पत्रिका भी पांच वर्ष से कुछ अधिक चल कर बन्द हो गई ।

सन् १८५० में रामचन्द्र ने एक ग्रंथ "Problems of Maxima and minima" नाम का रचा । मुख्यतः इसी की रचना से आज तक लाला रामचन्द्र का नाम प्रसिद्ध है । गणित जाननेवालों को मालूम होगा कि वास्तव में ये सब प्रश्न चलनकलन की रीति से किये जाते हैं जिन विद्यार्थी महीने भरमें अच्छी तरह सीख सक्ता है । लाला साहब ने यह विचार किया कि ये सब प्रश्न केवल बीज-गणित की रीति से किये जांय । वर्षों सोचने के पश्चात् एक अद्भुत

* अरबी के 'मैसूदी' ग्रन्थ से बहुत सी बातें ज्यों की त्यों उद्धृत की गई थी ।

नवीन युक्ति लाला रामचन्द्र ने निकाली। इस युक्ति के निकलने के पूर्व ऐसे प्रश्नों को बीज गणित की रीति से करना असंभव-सा जान पड़ता था। एक गणितज्ञ ने डीमार्गन साहब (De Morgan)* से यह कहा कि यह क्योंकर हो सक्ता है। किसी फल के महत्तम वा न्यूनतममान को क्योंकर जान सक्ते हैं जब तक कि इस फल को न घटावें या न बढ़ावें। और घटाने, बढ़ाने में तुरन्त चलन कलन की सहायता लेनी पड़ती है डीमार्गन साहब इनकी युक्ति को रामचन्द्र का प्रकार Ram Chandia's method. के नाम से पुकारते हैं। इससे कोई सन्देह नहीं कि लाला साहब के पूर्व इस कठिन प्रश्न का उत्तर कोई नहीं निकाल सक्ता था। हां यह हो सक्ता है कि यह प्रश्न किसी किसी के मन में उठा हो। बीजगणित में अब इन्हीं की रीति से ऐसे प्रश्न किये जाते हैं परन्तु खेद का विषय है कि इनका कोई ग्रंथकार नाम भी नहीं लेता। हिन्दुस्थानियों के भाग्य में आज कल यही है कि उनकी नवीन युक्तिओं का आदर करना विलायतवालों को बुरा मालूम होता है। भाग्यवश डा० मुखोपाध्याय का नाम एक साहब ने अपने ग्रंथ में लिखा है। बड़े आश्चर्य्य की बात है कि कलकत्ता के पत्रों ने इनके ग्रंथ की समालोचना इनके विपक्ष की। मैं समझता हूं उस समय यहां कोई ऐसा भारी गणितज्ञ न था जो उनकी नवीन युक्ति का आदर करता। इंग्लिशमैन (Englishman,) पत्र में इनकी विपक्ष समालोचना का उत्तर भी छपा था। बहुत से लोग इनके साहस पर हंसते थे और कहते थे कि इन्होंने अंग्रेज़ी में क्यों इस ग्रंथ को छपवाया। पर ध्यान देने की बात है कि यदि यह ग्रंथ अंग्रेज़ी में न लिखा गया होता तो कोई इसका नाम भी न जानता क्योंकि यहां के लोग उसकी कुछ क़दरही नहीं कर सक्ते थे और भी करने लायक नहीं हुए।

* डीमार्गन साहब बड़े भारी गणितज्ञ थे। इन्होंने इस ग्रन्थ को देखकर लाला साहब की बड़ी प्रशंसा की है और स्वयं उनके ग्रन्थ को छपवाया भी है।

लाला रामचन्द्र को डा० स्प्रेंजर (Dr. Spencer) ने, जो पहले दिल्ली कालेज के प्रिंसिपल थे सुप्रीम कौन्सिल (Supreme council) के आनरेबुल डी० बेथून (Honourable D. Bethuen) से मिलाया। उन्होंने इस ग्रन्थ की छत्तीस प्रतियाँ ली और २००) रुपया इनाम दिया। उन्हों ने कुछ प्रतियों को विलायत भी भेजा। लाला रामचन्द्रने इस ग्रन्थ को अपने ख़र्च से छपवाया था।

अंग्रेज़ी सर्कार ने इनकी बहुत प्रतिष्ठा की और खिल्लत और इनाम २०००) रु० समर्पण किया। इनके जीवन में इनका क्रिष्टीय-मत की ओर झुक जाना एक विचारार्ह बात है। इन्हें ईसामसीह में ऐसा विश्वास हो गया कि सब मतों पर से इन का विश्वास उठ गया। पहले बहुत दिनों तक लाला साहब बपतिस्मा नहीं लेते थे। डर था कि ऐसा करने से जातिच्युत हो जायँगे और घर से सब सम्बन्ध छोड़ देना होगा। वे कहा करते थे कि धर्म में विश्वास और श्रद्धा मुख्य है। बपतिस्मा लेने से क्या होता है। परन्तु इनने चर्च में जाना प्रारम्भ कर दिया और बड़े २ लोगों को झुककर, प्रेयर करते देख बपतिस्मा लेने की इच्छा इनकी भी होगई। पहले इनका यह ख्याल था कि अंग्रेज़ लोग जो पढ़े लिखे हैं ईसा-मसीह में नहीं विश्वास करते पर चर्च में जाने से वह जाता रहा और सन् १८५२ ईसवी की ११ वीं मई को बपतिस्मा ले ही लिया॥

ये दिल्ली कालेज में बराबर टीचर थे। इस कालेज के अध्यक्ष (Principal) टेलर साहब (Mr. F Taylor) थे और लाला रामचन्द्र इनकी बहुत प्रशंसा किया करते थे। ये साहब सन् १८५७ के बलवे में मारे गये। इस बलवे में लाला साहब को भी बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। ये ईसाई होही चुके थे और बाग़ी सब ईसाई मात्र को मारना चाहते थे। इनके छोटे भाई सब हिन्दू थे

जिनने इन्हें बडी कठिनता से ज़नाने घर मे छिपा रखा और इनके परिचित पड़ोसियों ने इन पर दया की। परन्तु सन् १८५७ के १३ वीं मई के संध्या को इन्हें नगर से भागना पड़ा और इनके दो हितैषी दासों ने इनको माटोल गांव में जो दिल्ली से पांच कोस के के लगभग है पहुंचा दिया। लाला रामचन्द्र यहां महीने भर तक ठहरे थे परन्तु उन्हें बागियों के हाथ पड़ जाने का बहुत ही डर था। उस ग्राम के ज़मींनदार ने इन पर दया कर अपने घर में इन्हें छिपा लिया। लाला साहब प्रतिदिन ज़मींनदार से कहा करते थे कि ऐसा कदापि न सोचो कि अंग्रेज़ भारतवर्ष से सदा के लिये चल दिये। अंग्रेज़ो को बहुत बल और पराक्रम है। सन् सत्तावन की १० वीं जून को बागियों का एकदल इस ग्राम के पास पहुंचा और उनसे किसी ने कह दिया कि यहां भी एक ईसाई रहता है। "परन्तु मेरे पुराने नौकर ने इसकी ख़बर मुझे तुरन्त दी, मुझे जगाया और इस संकट की सूचना दी" ऐसा लाला रामचन्द्र ने स्वयं लिखा है। पहले ज़मींनदार की एक झोपड़ी में इन्होंने अपने को छिपाया पर निरन्तर डरते थे कि बाग़ी हमें पकड़ कर मार न डालें एक बुद्धिमान् ब्राह्मण ज़मींनदार ने इनको यह सलाह दी कि आप अपने नौकर के साथ इसके पहिले कि बाग़ी यहां आवें, जंगल की ओर भाग जाइये। लाला साहब ने वैसाही किया, परन्तु पौन मील भी न गये होंगे कि पीछे ग्राम मे बड़ा कोलाहल मचा। बन्दूक़ की गोलियां इनके चारों ओर सन सनाने लगीं और ऐसा जान पड़ता था कि घुड़सवारों ने इनका पीछा किया क्योंकि घोड़ों के दौड़ने का शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ता था। तब लाला साहब एक कटीली झाड़ी में घुस पड़े और शरीर में कांटों के चुभने का कुछ भी ख्याल न किया। ईश्वर की अपरम्पार दया से बाग़ियों ने जङ्गल का रास्ता न लिया और ग्राम में लूट मार मचाकर सब दिल्ली की ओर चल

दिये । जब ग्राम के पास शान्ति जान पड़ी तब लाला साहब अपने जाट नौकर के साथ सारा जङ्गल पार कर १२ वीं जून को अंग्रेज़ी कम्प में पहुंचे । लाला रामचन्द्र यहां दिल्ली के दैनिक समाचारों का अनुवाद कर जेनरल और कम्याण्डर को सुनाने के लिये रखे गये और यहीं दिल्ली के पुनर्ग्रहण तक रहे । सन् १८५८ के जनवरी मास में यह रुड़की के इञ्जीनियरिङ्ग कालेज के नेटिव् हेड्मास्टर नियुक्त किये गये । यहां अढ़ाई सौ रुपये मासिक पर आठ महीने तक रहे और सेप्तम्बर महीने के प्रारम्भ में जो दिल्ली में स्कूल स्थापित हुआ उसके हेड्मास्टर बनाये गये ।

खेद का विषय है कि इनके मरने का समय ठीक ठीक मुझे नहीं ज्ञात हुआ । इस प्रान्त में इनको बहुत कम लोग जानते हैं । पञ्जाब में इनकी बहुत प्रसिद्धि है । परन्तु इनकी बनाई हुई पुस्तकें अब बहुत कम पढ़ाई जाती हैं ॥ *

कमलाकर द्विवेदी एम. ए.

* लाला साहब धर्म्म विश्वास से क्रस्तान हुए थे, खाने पीने के लिए नहीं । आचार व्यवहार में इनकी हिन्दू सादगी कभी न गई । बपतिस्मा लेने के दूसरे दिन इनके पाचक ब्राह्मण ने इनसे यह कह कर विदाई मांगी कि "अब तो यहां खानसामा आवेगा" लाला साहब ने इस बात का खण्डन किया और कहा कि पहले की तरह चौके में बनाकर हमें खिलाया करो ।' (सं. स.)

❀ एशिया की विजया दशमी । ❀

※ जापान का सीमोल्लङ्घन ※

(१)

प्राचीन लोग, विजया दिनमें, बतावैं,
सीमा उलाघ अपनी रिपुधाम जावैं ।
जो शत्रुपास नहिं हो, रिपु चित्र ही को,
सग्राम में हत करैं, बल वृद्धि जो हो ॥

(२)

लङ्केश आज रघुनायक ने हराया,
अन्यायका परम नाशन यों सिखाया ।
होती कहीं पर कही पर रामलीला,
है पेट में पर नही अब हा! वसीला ॥

(३)

दुर्भिक्ष वर्ष प्रतिवर्ष यहां पधारें
न प्लेगभी अब कहीं भ्रम से सिधारे ।
स्वाधीनता जबगई नव धर्म छाए,
प्राचीन धर्म कुल गौरव भी नसाए ॥

(४)

त्योंहार तो वहकरे जिसके कुशूलै[१] !
हों अन्नपूर्ण बनते रिपु ने त्रिशूल ।
हो पेट पूरित जभी तब खेल सूझे,
रोगी, ऋणी, विजित, क्योंकर मोद बूझे ?

---

(१) कोठी अन्नका भडार ।

(५)

"मेरी विभूति नरमें नरनाथ ही है"
कृष्णोक्ति से हम सदा प्रभुभक्त ही है।
अंग्रेजराज बलकी जय हैं मनाते,
यों ही रहे युग युगान्तर लाभ पाते ॥

(६)

जापानने शुभमयी विजया मनाई !
श्वेतांग हार उसने अबके दिखाई !
पीतांगके विजयकी तुरही बजाई !
पौरस्त्य[२]! कायर कलङ्क कथा मिटाई।

(७)

है रूस दुष्ट अतिही उसके चरित्र
अन्याय पूर्ण सुनके डरते विचित्र।
सेनाधिनाथ[३]! उसका जब गप्प मारे
"लू हिन्द" किचनर तभी डरते विचारे।

(८)

जापान धन्य? तुमने उसको पछाड़ा,
अत्युग्र शल्य अपने मनसे निकाला।
जो एशिया विजित, भक्ष्य, बना हुआथा,
जेता बना, न पहिले वह सो रहाथा?

(९)

बाल्टीक पोतचय एक नवीन आता,
हे टार्पिडो! सब कहीं उसको दिखाता।
श्रीकृष्ण चिन्तन किए पर कंस जैसे,
निःसार, जय्य[४], ? उसको अब मान वैसे ॥

---

(२) पूर्व देशवासी ?
(३) कुरूपटीकिन !
(४) जीतने लायक ?

(१०)

है हारते हम न चार शताब्दियों से ?
लोगे न वीर ! बदला तुम रूस ही से !
खाडा पखाले[५] ? अब बाल्टिक तोयमें तू ।
पूर्वान्धकार रवि आज नया उगा तू ॥

(११)

प्राची त्वदीय मुख देख खुशी मनाती
आशीस आज तुझको अपनी सुनाती ।
लाखों कुपुत्र उसके जब भार भूत
हे वंशरत्न ! जगमण्डन तू सपूत!

(१२)

विद्या जरा प्रिय! हमें अपनी सिखाना
धर्मादि देश निज भारत भूलना ना ।
जीओ सदा युग युगान्तर; वृद्ध जो थे,
भूमिष्ठ होकर यही कुछ सीखते थे ॥

इति ।

---

(५) शस्त्र को धो (युद्ध समाप्त होने पर) ?

॰ प्रेरित पत्र ॰

प्रिय मिष्टर जैन वैद्य,

"वैश्योपकारक" ने और उस के आधार से "भारत जीवन" ने मुझे समालोचक का सम्पादक बतलाया है। अब, जब मैंने परतन्त्र जीवन आरम्भ कर दिया है, ऐसे अन्यथावाद, चाहे वे समालोचक के हितकारक हीं क्यों न हों, नहीं चलने देनें चाहिए। और यह भरम अधिक दिन नहीं रहने देना चाहिए। मैंने अपने नाम से, या विना नामसे आपके सम्पादकों को, केवल दो तीन लेख दिए थे। कृपा करके आप मेरे इस पत्र को प्रकाशित करदें, जिससे लोग वास्तविक स्थिति को जान जॉय और टक्करें न मारे।

भवदीय

श्री चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी।

४—११—०४

बालचन्द्रयन्त्रालय—जयपुर।

ग्राहक हो जायेंगे । जयपुर के सुन्दर दृश्यों के सुन्दर चित्र अलभ्य और ऐतिहासिक चित्र और फोटो, हाथ की बनाई बढ़िया तसवीरें आपकी आज्ञानुसार भेजी जा सकती हैं । एक बार मंगाइए तो हमारे यहां के चित्र प्रायः इङ्गलेण्ड भी जाया करते हैं और सुप्रसिद्ध सचित्र पत्रों ने उनकी अच्छी क़दर की है ॥

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को,
जौहरी बाज़ार जयपुर ।

समालोचक में विज्ञापन की दर ।

पहली बार प्रति पङ्क्ति =)
छः बार के लिए -) छपे विज्ञापन की बटाई ५)
वर्ष भर के लिए एक पेज २०) आधा पेज १२) ¼ पेज ८)
चौथाई पेज से कम का विज्ञापन नहीं लिया जायगा ।

असली पान का मसाला !!!

कथ्था, चूना, सुपारी इलायची कोई चीज की ज़रूरत नहीं पान पर ज़रासा मसाला डालकर खाने से सब चीज़ों का स्वाद आता है मुंह लाल सुर्ख होता है दाम ।) दर्जन का २।) थोक लेने से और भी क़िफ़ायत ।

सैकड़ों अजीब चीज़ों से भरा हुआ हमारा बड़ा सूचीपत्र ज़रूर देखना—बेदाम भेजा जाता है ॥

पता—जसमाईन इन्डिया एजन्सी,
कालवा देवी रोड बम्बई ।

नोटिस

यहां चूरू में सोदा अफीम नीलाम का घटने का पेटी तेजीमन्दी अंगर टडे का होता है । अगर किसी को कराना हो तो हम को लिखें आढ़त लेकर फ़ायदे से करदेंगे ।

तार चिट्ठी भेजने का पता-तेजपाल लोहिया,
मु० चुरुज़िला बीकानेर ।

समालोचक

भाग ३] मासिकपुस्तक [संख्या २७, २८, २९

वार्षिक मूल्य १॥) { अकटूबर, नवम्बर, दिसम्बर १९०४ } यह संख्या ॥~) आने

विषय	पृष्ठ

प्रोप्राइटर और प्रकाशक।

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को, जयपुर।

Printed at the Medical Hall Press Benares.

विज्ञापन।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी को कौन नहीं जानता? वह हिन्दी के बड़े भारी कवि हैं। उनकी कविता में जो शब्द का, अलङ्कार का, भाव का, निर्भाव होता है वह और जगह मिलना मुश्किल है। उनके कोई ३० काव्यों का संग्रह हमने "काव्यमञ्जूषा" नाम से छपाया है। टाइप, काग़ज़, सब कुछ बहुत बढ़िया है। कविता के प्रेमियों को ऐसा मौक़ा बहुत बिरला मिलता है जब वे अच्छे कवि की अच्छी कविता का अच्छा संग्रह पा सकें। अब उन को मौक़ा है, उन्हें अपनी २ रुचि के अनुसार बहुत बढ़िया कविता मिल सकती हैं। उन्हें चूकना नहीं चाहिए और झटपट ॥) भेजकर एक प्रति ख़रीद लेनी चाहिए।

पुस्तक मिलने का पता—

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को।

जयपुर।

जयपुर एजेन्सी।

यदि आपको जयपुर की प्रसिद्ध दस्तकारी की चीज़ें मंगानी हो तो उचित है कि और जगह व्यर्थ अधिक व्यय न करके हमारे यहा से अच्छी चीजें मंगवाले। दाम उचित लगेगा, चीज़ ऐसी मिलेगी कि जिस से जयपुर की कारीगरी का नमूना जाना जाय। मांगानेरी छीटे, पत्थर मकरानी और पीतल की मूर्त्तियां और बरतन, लकड़ी का काम, सोने की मीनाकारी प्रभृति सब चीज़ें उचित मूल्य पर भेजी जा सकती हैं। यदि आप यहां से मगवायेंगे तो हम विश्वास दिला सकते हैं कि आप धोखा न खायेंगे और सदा के लिए

॥ समालोचक ॥

भाग ३	अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर । १९०४ ।	संख्या २७, २८, २९,

भारत की जय ।

(राग खम्माच)

(१)

मिलो सर्व भारतसन्तान,
एक तान–मन–प्राण

गाओ भारतका यशोगान ।

भारतभूमि तुल्य नहि कोई स्थान
नहि गिरि हिमाद्रि समान
फलवती वसुमती, स्रोतस्वती पुण्यवती

शतखण्ड रत्नका निधान ।

सब मिलकर {
रहो भारतका जय
जय भारत का जय
गाओ भारतका जय
क्या भय ? क्या भय ?
गाओ भारतका जय ।
}

(२)

वीरोंकी यह भूमि, वीरोंकी जननी
अपाप रहीं यः उज्ज्वल रजनी ।

सुगम्भीर तिमिर, कभी रहे नहि चिर,
दीख रहा अब दीप्त दिनमणि ।
(सब मिलकर)

(३)

रामभूमि, कर्णाटक, कुर्ग, मध्यप्रान्त
मालव, सिन्ध, पञ्चनदीधाम ।
वग, मद्र, गुर्जराष्ट्र, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र,
ब्रह्मदेश, राजपुत्रस्थान ।
(सब मिलकर)

(४)

हिन्दू, जैन, सिख, बौद्ध, क्रुस्ती, मुसल्मान,
पारसीक, यहूदी, और ब्राह्म ।
भारतके सब पुत्र, परस्पर रहो मि
रखो चित्ते गणना समान ।
(सब मिलकर)

(५

हिन्दूभूमि दुःखडूबी, दारिद्र्य विस्तार
महा सभा करो बारंबार बार ।
उठो उठो करउत्साह, मांगो सुख प्रभुहाथ
कर धरि करलो उद्धार ।
(सब मिलकर)

(६)

क्यों डरो भीरु ? करो साहस आश्रय
यतो धर्मस्ततो जयः
छिन्न भिन्न हीनबल, ऐक्यसे पाओगे बल
मातामुख उज्ज्वल करो, कौन भय ?
(सब मिलकर)

❀ खुली चिट्ठी ❀

(३)

काशी नागरी प्रचारिणी सभाके कार्य कर्ता !

प्रिय महाशयो !

भारतवर्ष के दो विप्रकृष्ट प्रान्तोंमें, गतमास, दो घटनाएं ऐसी होगई हैं जिनका परस्पर कोई भी सम्बन्ध नहीं दिखाई देता, परन्तु उन दोनों को मिलाकर आप लोगों की और सर्वसाधारण के मतकी अवस्थापर दो तीन बातें कहने का मन करता है।

भारतवासियों में पुरातत्व की खोजके लिये जो नाम राजा राजेन्द्रलाल मित्रने पाया था, उससे कहीं अधिक यश डाक्टर भाण्डारकर के भाग्यमें था। उनका वाक्य योरोप और अमेरिकाके पुरातत्ववेत्ता आदरसे मानतेहैं। उनकी खोज में निष्पक्षपात विवेक है। गोत्राङ्गण की यूनीवर्सिटी में उन्हें डाक्टर की पदवी बहुमान के साथ मिली थी। सरकार की ओर से पुरातत्ववेत्ताओंकी कांग्रेस में वे प्रतिनिधि बनाए गए, और शुष्क पण्डिताई के लिये उनका सम्मान कई बार किया गया। इतना होने पर भी वे प्रजा से पृथक् रहे। कुछ तो पुरातत्व के सच्चे या झूंठे, परन्तु देश के माने सिद्धान्तों के विरुद्ध विचारों को मानने से, कुछ

वास्तव समाज संशोधन के नेता होने से, और कुछ बात बात में राजकर्मचारियों को "जो आज्ञा" कहनेके सन्देह में लिपटे जाने से वे प्रजाप्रिय न होसके। गत वर्ष सरकार की एक नीति में सत्यवचन कहने वाले बनकर उनने एक ऐसे कामका मण्डन किया जिस के सारा देश विरुद्ध था, और यों "बिल्ली का पञ्जा" बनने के कारण उनकी सारी पण्डिताई और एन्टिकेरी उनकी ओर की प्रजाकी उदासीनताको घटा न सकी। बम्बई यूनिवर्सिटीने इन्हें, यल. यल. डी की उपाधि से विभूषित करना विचारा जो उन की विद्वत्ता के योग्य होने पर भी, सार्वजनिक मत की वर्त्तमान अवस्थामें, जो भाण्डारकरके नए उल्वण कर्त्तव्य को न भूल सका था, उलटे अपमान सूचक हुई। चाहे चान्सलर ने अपने भाषण में उनकी स्तुति की, किन्तु श्मशान की तरह शून्य विश्वविद्यालय के हालमें लोगोने भाण्डारकर को लपूटाके टापूमें रहने वाले उस पण्डितसे तुलना दी जो प्रजा के रोषकी कमचियां खाकर भी नहीं चेतता। इससे आप समझ जायें कि कोरी रिपोर्ट लिखनेसे लोकप्रियता पाने की आशा भ्रम है, और सरकार से कुछ रुपया सहायता पालेना ही अपनी उपयोगिता और प्रजाप्रियता की जाँच नहीं है।

दूसरी शोकदायक घटना पञ्जाब में हुई है। वह लाला मुन्शीराम एम. ए. का यावत् आर्यसमाजिक प्रबन्धों से पृथक् होना है। चाहे कोई संकीर्ण हृदय सनातन धर्मी इस घटना पर दर्प करें और इसका उल्लेख हर्ष से करें परन्तु हमें इस पर वास्तव में शोक हुआ है। चाहे लाला महात्माजी

ने अपने साथियों की कार्रवाईयों से तङ्ग आकर यह लौकिक नीति चली हो, चाहे उनका आर्यसमाजीयप्रबन्धसम्बन्धी उपकारिता से विश्वास हट गया हो, एक बात निश्चय है; वह यह कि भारतवासी समाज की जड़ में बड़ा बुरा कीड़ा लग गया हुआ है जो सच्चे हितकारियों को काम नहीं करने देता। अवश्य ही लालाजी ने अपने धर्मसिद्धान्त नहीं बदले है और न इन का छोड़ना उनकासा है जो आर्यसमाज का हलुआ पूरा करके सनातनधर्मियों की खीर के लिए मतवाले बनते हैं। जहां तक सुना गया है, लालाजी ने अपनी अच्छी चलती वकालत में बट्टा डालकर, अपना और अपने मित्रों का हजारों रुपया एक अपनी समझ में देशोपकारी कार्य के लिये इकट्ठा किया और लगाया है। उस समय उनका बोझ बहुत कम लोगों ने बाँटा। जब उनका काम पूरा होगया तब उस में दोष दिखानेवाले, छिद्र निकालने वाले, समाचार पत्रों के कालम और पढ़ने वालों के मस्तिष्क को खानेवाले कई मिलगए, और अन्त को मुन्शीजी को यह "स्टेप" लेना पड़ा। यहही इस देश के मनुष्यों में गुण है। वे कन्स्टीट्यूशन से नियम से, क्रम से, किसी काम को चलने देना नहीं चाहते। यह देशवासियों के मन और देशकी मट्टी की दुर्बलता का सूचक है कि यहां प्रबन्ध से कोई कार्य टिक नहीं सकता। पहले तो लीडर नहीं मिलते। यदि कोई लीडर मिला भी, तो उसका कहना मानने वाले नहीं। यदि लीडर वास्तव में योग्य हो तो उस से कोई भय नहीं, किन्तु कई मनुष्य लीडर न बनके लीडर बनने की हवा बांधा करते हैं। यह सत्य है कि सेनापति अपने सं-

ग्राम के प्रैनको दीनता के साथ प्रत्येक सिपाही को नहीं दिखाता, और न अपने हृदय को अपनी आस्तीन पर बाँधे फिरता हैं जिसमे कौए भी उसपर चोंच मारते जाय, प्रत्युत यदि उसके हाथ में मुट्ठी भर सत्य है तो समय पर वह अपनी चिट्टी अंगुली ही खोलता है। किन्तु यदि कल्पित सेनापति इन सब अधिकारों को काम में ले तो ठीक नहीं। इसके अतिरिक्त यदि पन्द्रह मनुष्यों में एक का मन चौदह से न मिला, तो वह अपने को चतुर्मुख विधाताका ताऊ मानता है। और कभी अपने विचारों को सुधारनेका स्वप्नभी नहीं करता। वह, यदि उसके मतपर लोग न चलें तो त्रिवेणी मे कूदने की धमकी देता है, मानों वैसा करने से सारी मण्डली डूब जायगी।

सभा समझजाय, उसको यदि कभी खतरा है तो काल्पित नेताओं से, और उन्हें दिक करनेवाले और उनका धैर्य नष्ट करनेवाले त्रिवेणी में कूदनेवाले से। वे स्वयं न कुछ करते हैं न कुछ करसकते हैं। नेता नहीं बन सकते, पर पीछे भी नहीं चलना चाहते, और सिवाय त्रिवेणी में कूदने की धमकी के, वे परमेश्वर ने किसी कामके लिए नहीं रचे। उनके इस चिढाने पर काम करने वाले यदि पतवार छोड बैठते हैं तो जगत हंसाई होती है। और वे महाशय भी मूसा पैगम्बर के प्यारे मित्रोंकी तरह मुंह चिढाया करतेहैं। मुसलमान धर्म्ममें एक कथा बडी विलक्षण सत्य और रोचक है। मेत समुद्र के पास किसी नगर के वासी बड़े विलासी, और आलसी थे, और परमेश्वरने उन्हें धर्म्मोपदेश करनेको हजरत मूसाको भेजा। मूसाने बडी गम्भी-

रतासे उन्हे अपने सिद्धान्त समझाए और धर्मोपदेश दिया।
उन महाशयों ने मूसाकी और मुंह चिढाया, और उस
के भाषण को सुनकर जंभाइयां लीं। और दांत निकालकर
मूसाको स्पष्ट सुनादिया कि हमें तुम्हारी जरूरत नहीं है।
मूसाने अपना रास्ता लिया। और कथा कहती हैं कि वे सब
मनुष्य बन्दर होगए। अब वे जगत की ओर मजे में मुंह चि-
ढाते हैं और चिढाते ही रहेगें। क्यों मित्रो! कभी आपने
भी ऐसे मनुष्यों को देखा है? उनकी दृष्टि में सारा जगत् ही
"हम्बग्" है और आप लोग और भी ज्यादा। मालूम होता
है मूसाके वैसे मित्र आज कल बढ गये हैं। वे अपने काम
काम पर काम करने वालों का धैर्यच्युत करना चाहते हैं।

गत दो वर्षों में "भारत धर्म महामण्डल" के नाम से जो
तमाशे हुए है, उनसे कमसे कम पच्चीस वर्ष तक कोई मनुष्य
जिसे चांवल भर भी आत्मगौरव होगा, कभी महामण्डल या
धर्मसभाओं से अपना सम्बन्ध रखना नहीं चाहेगा। यदि
लाला मुन्शीरामजी का मामला बढ़ा तो आर्यसमाज में रहना
उतने चावकी बात न रहेगी। अभी तक आप लोगों में गि-
ना जाना प्रतिष्ठा समझी जाती है। आप लोग इसीबात का
यत्न करें कि परस्पर की खेंचाखेंच से वह समय कभी न आ-
वे जब आप के साथी कहलाना प्रतिष्ठा न मानी जाय। बस
अपना काम करो और बकबकको और त्रिवेणी में कूदने
वालों को पीछे रहनदो।

वही चिट्ठीवाला।

पुनश्च

सभाके गृहप्रवेशोत्सव पर सर जेम्स लाटूश ने जो संस्कृत शिक्षा विस्तारका चित्रपट खैंचा था, उस के विषय में अबके कन्वोकेशन में उनने जो शब्द कहे थे आप लोगों को कैसे लगे ? अलीगढ़ ने तो कथनानुसार एक अंग्रेज प्रोफेसर और एक सहकारी रखलिया। किन्तु "जो सलाह देने योग्य थे" उन ने क्या किया ? यदि काशी के पवित्र संस्कृत पीठ में भी किसी विदेशी आचार्यहीका जमना इष्ट हो; तो संस्कृत की वह उन्नति नहीं चाहिए किन्तु क्या सर जेम्स को नहीं मालूम है कि उनके सलाहकार यातो काशीसे एनीबेसैन्ट के कालेज को अपदस्थ करने के विचार में है और या उन के मन्तव्य हमारी संस्कृत यूनिवर्सिटी की चार मील की परिधि के भीतर शूद्र न आने पावैं इसीमें समाप्त होते है ? और सभा के उद्देश्यो में संस्कृत की उन्नति कदाचित नियमावली की ही शोभा के लिए है।

भ्रातृद्वितीया !

भ्राताओ तथा भगिनिओ !

यही भारत वर्ष एक दिन हिन्दूलोगों का वासस्थान था, इसहिन्दू जातिनेही संसारमें "आदर्श" जाति रूपसे उन्नत हो अपनी इस जन्मभूमिको "देवभूमि" करदियाथा। इन्हों ने अपने बाहुबलसे ही ऐसा नहीं किया वरन उनके धर्म-बल, ज्ञानबल, चरित्रबल, तथा हृदयके असीम बल से यह कार्य किया गया था; इन सम्पूर्ण बलोंसे बलवान होकरही प्राचीन हिन्दूगण जनसमाजमें प्रशंसनीय हुएथे, उनका धर्म, धर्म-भाव, गार्हस्थ, साहित्य, दर्शन, शिल्प, राजनीति और समाज-नीतिके नियम तथा दैनिकक्रियाकलाप इत्यादि सभी अलौकिक कार्यो में बड़ी बुद्धिमानी दिखाई देती थी। बहुतसे मनुष्य इस संसारमें सदाही उपयोगी हैं, उनकी अवस्था और उनके कार्यका विचार करते हुए हम सब चैतन्य हो जाँयगे। देखो ! इस भाँतिकी अलौकिक सामर्थ्य रखनेवाली जातिका जिस देश में जन्म हो वह देश धन्य है ! और उसी देश का सौभाग्य "अपरिसीम" होताहै; हमारे इस भारतमें भी यही हुआथा; परन्तु उन्नति पर अवनति और अवनति पर उन्नति यह एक संसारका स्वाभाविक नियम है, इस नियमसे ही हो या अल्पबुद्धि के कारणसे हो कोई भी जाति वंशकी परंपरासे क्रमानुसार उन्नति प्राप्त नहीं करसकती। रोमवाले, ग्रीक और भारतीय आर्य लोग इसका यथार्थ उदाहरण हैं। जिस समय धार्मिक मनस्वी तथा तेजस्वी आर्यगण संसारसे अन्तर्धान होने लगे, जिस समय धर्म-

विप्लव, राष्ट्र विप्लव और उनके आनुषंगिक समाजविप्लवसे आर्यवंशी हताश और अधीर हो उठे, उसी समय देवात्मा ऋषियोंके सनातन धर्मशास्त्र विकृत रूपसे विख्यात होने लगे, तभी उनकी प्रचलित की हुई प्रथा स्वार्थी लोगों के हाथ में पड़कर कलंकित होने लगी, उस समय जो "हिन्दूओं-का सारा धर्म था वही संसार का धर्म होगया" प्रायः इस अमूल्य सत्यका समझना मनुष्योंको असंभव होगया। हिन्दू-जातिके पितृ पुरुषों के संचित किये हुऐ रत्न छार और मिट्टी में मिलने लगे। उस समय हिन्दूओं की कैसी शोचनीय अवस्था हुई थी। कैसी अवनति हुई थी? यहां तक कि उनकी मातृभाषा का प्रचार रहित होगया; उधरतो धर्म कहा कर उपधर्म, सत्य कहा कर असत्य, न्याय कहाकर अन्यायका ग्रहण होनेलगा और उधर यथार्थ धर्म को अधर्म समझागया, महत्व दुर्बलता का विचार भी बदलगया, कदाचार अच्छा मानागया। राजा की ताड़ना से प्रायः सभी लोग पुकार उठे! परन्तु सत्य कब तक छिप सकता है? अग्नि कितने दिनोंतक कपड़े में बंधीरह सकती है? संसारके अणु और परमाणु से भी जिनका कार्य सिद्ध होताहै यह उन्ही देवादिदेव की कृपा चातुरीहै, भ्रम और प्रमाद अधिक दिन तक अपना अधिकार नहीं करसकता अनेक देशोंमें हिन्दूधर्म और हिन्दूनीति जानने के निमित्त मनुष्यरूपधारी देवता जन्म लेनेलगे; उनके महान् परिश्रम से जैसे जैसे सत्यका उद्धार होनेलगा वैसेही सर्व साधारण भी कुछ कुछ समझने लगे, उन्हीं के प्रसादसे देशके आचार व्यवहार में भी श्रद्धा न रखनेवाले मनुष्योंमें श्रद्धा उत्पन्न हुई तब बहुत से मनुष्य इसबात को जान गये कि "कुसंस्कार" विचारकर कितने ही उत्तम संस्कारों को भी त्याग दिया,

छाँई बताकर बहुत से रत्नों को भी फेंक दिया, इस दुर्घटनार को निवारण करने की आशा से जब कि बहुतसे महात्मा प्राचीन व्यवहारादिके मूलको खोजने के लिये तत्पर हुए तब जाना गया कि इस कार्य से देश का एक शुभलक्षण होगा; परन्तु भारत के भविष्यत् भाग्य में क्या होगा सो अभीतक नहीं जाना गया। मैं एक अल्पमति अबला हूं बड़े बड़े महात्मा पुरुष भी विचार कर इस बात का निश्चय न करसके। अधिक क्या कहूं किंचित् विचार कर देखनेसेही यह विषय अगम्य जाना जाता है। वर्तमान भारतनिवासी प्राचीन महात्माओं के सत्य, नीति, और उनके आचार, व्यवहार इत्यादि को विचार कर उनमेंसे ग्रहण करने योग्य बातों को ग्रहण करैं; वरन सभी देशों में सत्यका जो अंश न्याय संगत है; जो जन समाज में मंगल का देनेवाला है; उन सम्पूर्ण बातों की शिक्षाका भी अभ्यास करैं। कहनेका साहस तो नहीं होता परन्तु एक दिन भारतवर्ष भी धीरे धीरे पहले की समान गौरव प्राप्त करलेगा, इस कार्य में उपयोगी होना हमारे देशी भाइयों का अवश्य कर्तव्य है!

सनातनधर्मावलंबियोंका जातीय चरित्र देखनेसे जानाजाता है कि उनके हृदयकी शक्ति असीमथी। दया, क्षमा, सहानुभूति गुणानुराग, विनय, सहनशीलता, आत्मत्याग और परोपकार में आर्यगण आज पर्यन्त मनुष्यजातिके मुकटस्वरूप गिनेगयेहैं और आशा है कि इसी भांति चिरकाल तक रहैंगे। आर्य संतानका प्रधान प्रेमही था, प्रेमकी ही साधनासे आर्यगण देवसमान पदको प्राप्त करतेथे। पाठिकागण! जिस हृदयमें प्रेमका विकाश होता है वह हृदयही निःसंदेह स्वर्ग के सुखको

प्राप्तकरताहै. आर्यगण भी प्रेमहीके बलसे स्वर्गके असीम सुखको भोगते थे, प्रेमकी महिमामें आर्यगण सर्वस्व त्यागदेतेथे, प्रेम हीकी महिमामें आर्यगण परोपकारी होजातेथे, अधिक क्या कहा जाय, प्रेमहीकी महिमामें मग्न होकर आर्यगण देवताओं के हृदयमे विराजमान होजाते थे। उनका यह कथन था—

अरे! वृथा क्यों पचि-मरो ज्ञान गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै लाखन करहु उपाय॥
प्रेम सकल श्रुतिसार है प्रेम सकल श्रुतिमूल।
प्रेम पुराण प्रमाण है कोउ न प्रेमके तूल॥

उनको पूर्ण विश्वास था कि प्रेमसे बढ़कर संसारमें कोई भी पदार्थ नहीं है, अतः मनुष्यको एकमात्र प्रेमही सीखना चाहिये। बिना प्रेमके विकाशसे मनुष्यका हृदय शुष्क मरुभूमि के समान होताहै, शुष्कहृदयमें धर्म, विश्वास और सरलता प्रभृति श्रेष्ठ वृत्तियोंका यथार्थ रीतिसे प्रकाश नहीं होसकताहै। आर्योंका विश्वासथा कि प्रेमके बलसेही संसारमें हिंसा, द्वेष, विवाद, शत्रुता आदि कुसंस्कार दूर होकर समस्त जगत एक गृह और समस्त स्त्रीपुरुष एकात्म परिवाररूपसे गिने जा-सकते हैं। आर्यगणों को विश्वास था कि जगतके साथ जगदी-श्वर का जो अलक्ष्य मिलन होताहै वह केवल प्रेमही के प्रता-पमे होसकताहै; इन सभी विश्वासोंपर चलकर आर्यगण प्रकृतप्रस्तावमें प्रेमसाधक और प्रेम प्रचारक हुएथे। सांसा-रिक शिक्षामें भी आर्यगण आदर्शस्वरूप थे। वर्तमान समयकी लोकशिक्षामें (विशेष मास्तिष्ककी शिक्षामें) हिन्दुस्तानियोंसे अंग्रेज़ और अंग्रेज़ों से अमरीकावाले श्रेष्ठ गिनेजातेहैं। परन्तु

पूर्वसमयमें आर्यगण लोकशिक्षामें इनसे कहीं अधिक श्रेष्ठ थे, वे लोग जानतेथे कि साधारण मनुष्य भलीभांति शिक्षा न पानेसे मनुष्यसमाजकी यथार्थ उन्नति वा कल्याण नहीं करसकते किन्तु केवल वेद उपनिषद्से अथवा ऊपरी उपदेश से सर्वसाधारणको "मनुष्यत्व" प्राप्त नहीं होसकताहै, उनको उत्तम कार्य सिखानेसेही श्रेष्ठता सरलरीतिसे प्राप्त होसकतीहै, इसी कारणसे सर्वसाधारणकेलिये दैनिक सामयिक प्रभृति नियम से उन्होंने कुछ नियम और रीतिएं निकालीथीं। उसीके अनुसार चलनेसे सबको धर्म और नैतिक रीतियें ज्ञात होतीं सभी लोग प्रेमके सीखनेमें समर्थ हों यही हमारे आर्यगणोंका यथार्थ उद्देश्य था। समयके हेरफेर से छल, कपट और अज्ञानके कारण, अनेक रीति पलटी गईहैं तौभी किसी२ रीतिपर विचार करनेसे जानाजाताहै कि उससे बड़ी शिक्षायें प्राप्तहोसकतीहैं। आज आर्यगणोंकी निर्माण कीहुई "भ्रातृद्वितीया" से जो ज्ञान प्राप्त होताहै मैं उसीके दिखाने की यथासाध्य चेष्टा करती हूं।

पाठिकागण! भ्रातृद्वितीया की रीति वार्षिक नियम से अर्थात् प्रत्येक वर्ष के कार्तिक मासमें सम्पादित होती है। प्रेमकी पहली अवस्थाको सद्भाव कहते हैं; फूल एकही साथही नहीं खिलताहै, पहले पहल कली निकलतीहै, पीछे वह कली फूल रूप धारण करती हैं, प्रेमभी एक वारही "प्रेम" रूपधारण नहीं करसकता। सद्भावसे प्रेमकी उत्पत्ति है, फिर वही सद्भाव प्रेमरूप होजाता है, इस कारण प्रेमिक होनेमें सबसे पहले सद्भावकी आवश्यकता है। पहले पहल हृदय में सद्भाव का अभ्यास करे तो प्रेम उदय होता है। प्राचीनकाल के वडे २ मुनि और ऋषि इसी कारण सद्भाव की शिक्षा देनेके अभि-

प्राय से भ्रातृद्वितीया की रीति चला गये हैं । हमारे पाठकागण इस बात को भलीभाँति जानजॉयगे कि पहली पहले भ्रातृद्वितीया की रीति किसप्रकार से थी । इस समय उसी का विचार करना चाहिये ।

कार्तिककी शुक्लद्वितीया तिथिको "भ्रातृद्वितीया" कहते हैं । हमारे बड़े शास्त्र और पुराणोंमें लिखाहै कि इस दिन श्रीमती यमुनादेवीजीने सहोदर भाई यमराजको अपने गृहमें बुलाकर उनकी पूजा भलीभाँतिसे की, और भोजन कराया था । " संसारके प्रत्येक भाई बहनकोभी उन्हींका अनुकरण करना योग्य है " । भाईदोयजके दिन सभी भाई अपनी २ बहनोंके निकट पूजित होतेहैं, बहनोंके घरमेंही जाकर भोजन करतेहैं । वर्तमान समयमें हिन्दुओंके प्रत्येक घरमें सभी भगिनिऐ अपने २ भाइयोंको नवीन वस्त्र पहराकर उनके माथेपर रोली तथा केसर चंदनका तिलक लगातीहैं, इस तिलकको "भाईतिलक" कहते हैं । इसके उपरान्त जब बहनें भाईका तिलक कर चुकती हैं तब भाईके हाथमें भाँति २ के मिष्टान्न देतीहैं छोटी बड़ीके सम्बन्धमे भाईभी भगिनीको आशीर्वाद प्रणामादिक करताहै। भोजन करानेके समयमें भगिनी निम्नलिखित संस्कृत श्लोक पढ़कर भाईको कुल्ला करानेकेलिये जल देतीहैं ।

"भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम् ।
प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः" ॥

यदि बड़ी बहन होतो "स्तवाग्रजाताहं" ऐसा उच्चारण करे। हमारे शास्त्रके अनुसार इस दिन भाईकोभी सुन्दर २ वस्त्र तथा आभूषण आदि देकर अपनी २ भगिनियोकी पूजाकरनी उ-

चित है। यदि अपनी सगी बहन न हो तो अपने नाते रिश्ते की भगिनियोंसे अपनी पूजा करावै। (१)

भ्रातृद्वितीयामें भाईको बहनोंके हाथसे पुष्टिवर्द्धक भोजन करनेकी विधि है यदि सगी बहन न होतो चचेरी बहनसे तिलक करावै फिर दूसरी वार ममेरी बहनसे तिलक करावै, तीसरीवार बुआसे तिलक करानेकी विधि है फिर चौथी वार अपनी सहोदरा भगिनीके हाथसे पुष्टिवर्द्धक आहारको ग्रहण करै अपनी सभी नाते रिश्तेकी बहनोंके यहां भाईको भोजन करना उचित है भ्रातृद्वितीयाकी रीतिका इसी प्रकारसे प्रचार हुआहै लौकिक व्यवहार से वर्तमान समयमें त्रुटि होनेपर आर्यगण इस प्रकार से भ्रातृद्वितीया की प्रथा चलानेकी आज्ञा देगये हैं। (२)

---

(१) :-कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितियाया युधिष्ठिर !
यमो यमुनया पूर्व भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥
अतो यमद्वितीयेय त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः ॥
स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम् ।
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ॥
स्वर्णालङ्कारवस्त्रान्नपूजासत्कारभोजनैः ।
सर्वा भगिन्यः सपूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः ॥

(२) "पितृव्यभगिनीहस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ।
मातुलस्य सुताहस्ताद् द्वितीयायां तथा नृप ॥
पितुर्मातुः स्वसुःकन्ये तृतीयायां तयोः करात् ।
चतुर्थ्यां सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम् ॥
सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्य बलवर्द्धनम्" ।

यमद्वितीयाके दिन भाई बहनका इस प्रकार व्यवहार होनेसे भाईको यमराजका भय नहीं रहता । ऐसा विश्वाश कर सर्वसाधारण मनुष्य भ्रातृद्वितीयाके कार्यमें प्रवृत्त हों; यही मेरी अभिलाषा है। और फिर अपनी इच्छानुसार चलनेवाले मनुष्य "यमराज के द्वार कॉटा" पडनेकी बात सुनकर इसको कुसंस्कार विचारकर भ्रातृद्वितीयासे विरक्त होजॉयगें; और जिन महाशयों ने भ्रातृद्वितियाके तत्वको समझलिया है वे किसी प्रकार भी अपना मन न हटाऐंगे; वरन ऐसी आशा है कि इस कार्यमें दृढ़प्रतिज्ञ होंगे; जो कुसंस्कार के वशीभूत हैं वेही इस बात में भ्रम करैंगे; जिन्होंने कुसंस्कार विचारकर श्रेष्ठ आचारको त्यागदिया है वे भी इस में भ्रम करेंगे; हमारे देशीभाई इतिहास और पुराणोंका अभाव होनेसे भ्रातृद्वितिया की सूचनाको भली भॉतिसे नहीं समझ सकते; और सद्भाव सिखानेकी इस सरल रीतिको जो देवतारूपधारी मनुष्योंके मस्तकसे उत्पन्नहुई थी नहीं जान सकते * भ्रातृद्वितीया के तत्व को विचारने से उसका उद्देश्य जिस प्रकार जाना जाता है उससे ज्ञात होता है कि भ्रातृद्वितीया अर्थात् भाईदोयज सर्वसाधारण संस्कारों से वहुत ऊपर है । भ्रातृद्वितीयाही मनुष्योंके मनुष्यत्व प्राप्त करनेका एक प्रधान उपाय है; जिस भावसे संसार के प्रत्येक स्त्री पुरुष भाई वहनके भावमें मिलित हो परस्पर भायपका व्यवहार करना सीखैं, इस बातके सिखानेकाही भइयाद्वोयज सकत करती है । मैं अपनी अल्पबुद्धिसे इस बातको जिस

---

* भ्रातृद्वितीया के संस्कृतश्लोकोको देखने से जाना जाता है कि पौराणिक युग मे भ्रातृद्वितीया की उत्पत्ति हुई है ।

प्रकार जानचुकी हूं आज वही देशवासी महानुभाव महात्मा तथा अपनी भगिनियोंके सन्मुख अपनी शक्तिके अनुसार कहती हूं ।

भली भांति विचारकरनेसे जानाजाताहै कि भ्रातृद्वितीयाका पहला उद्देश्य मनुष्योंमें सद्भाव अर्थात् सहोदर सहोदराओंके प्रति ममता और स्नेह बढ़ाना है । जो मनुष्य अपने कुटम्बियोंके प्रति अपना यथार्थ कर्तव्य पालन नहीं करता वह परिवारिक सामाजिक अथवा सांसारिक कर्तव्य पालनके अयोग्यही है। योग्यहोनेपरभी ऐसे मनुष्यको निष्फल कहा जासकताहै, इसी कारणसे आर्यगणोंका इस भ्रातृद्वितीयाके सम्बन्धमें यही उद्देश्य था कि मनुष्योंमें सद्भाव हो । भगिनी भ्राताके स्नेह बढ़ानेमें भ्रातृद्वितीयाही एक प्रधान सहायक है । ब्रह्माजीने इस संसारमें भ्राता भगिनीकी अपूर्व सृष्टि कीहै; दोनोंका जन्म एकही माताके गर्भसे होताहै, दोनोंका लालन पालन एकही माताके हाथसे होताहै, भाई बहन दोनों अपने जीवनकी रक्षा एकही स्नेहसे पातेहैं । इस प्रकारकी स्वभाविक सहयोगिता संसारमें दूसरी नहीं देखीजाती । परन्तु घटनाके हेरफेरसे दोनोंके बीचमें बड़ा अन्तर होजाताहै; पाठिकागण ! जिस भगिनीका भाईके साथ लालन पालन हुआथा उस परमप्यारी भगिनीको एक अपरिचित दूसरे मनुष्यके करकमलमें सोंपाजाताहै; उसी दिनसे भगिनी जन्म भरकेलिये पराई होजातीहै । भाईके घरमें, भाईकी सम्पत्तिमें, भाईके गोत्रमें, अधिक क्या भगिनीका अधिकार भाईकी किसी वस्तुमेंभी नहीं रहता । भाई ठीक दुपहरियोंमें बड़ी कठिनतासे

घोर परिश्रम कर रुपया पैदाकरके लातेहैं सो वह अपनी स्त्री तथा संतान के लियेही इस परिश्रमको करते हैं, अपनी भगिनीके लिये उनका यह परिश्रम नहीं होता; हाँ केवल भगिनी इस बातकी अधिकारिणी है, कि अपने प्यारे भाई के दुःखसे दुःखी और सुखसे सुखी रहती हैं। बहनका प्रेम स्वार्थका नहीं है उसका प्रेम निःस्वार्थ है, कारणकि दोनोंने एकही माताके गर्भमें पैर फैलायेहैं। भगिनीकाभी गृहस्थधर्म अपने सास श्वसुर तथा स्वामीकेलियेही है; भाईकेलिये नहीं; इसी कारणसे अवस्थाके आनेपर भाई बहनका प्रेम धीरे २ शिथिल होजाताहै, जिसकेलिये मन सर्वदा चिन्ता करता-रहताहै। प्रत्येक कार्यमे जिसकी सहायता ग्रहण करनीहोतीहै जिसके ऊपर सुख, शांति, आशा, भरोसा सभी निर्भर है, साधारण मनुष्यमात्रका हृदय उसकी ओर अधिकतर खिंचताहै। उसी भाईके निकट उसके पालनकरनेवाले कुटम्वी मनुष्य अत्यन्त ममता दिखातेहैं; और बहनकी ममता उसके सास श्वसुर व पति इत्यादि करतेहैं परन्तु भाई बहनसे चाहैं कितनी हो दूर क्यों न हो भाईदोयजके दिन बहनके विना भाईका कार्य, और विना भाईके बहनका कार्य नहीं चलसकता। भाईदोयजके दिन माताका अधिकार नहीं, स्त्रीका अधिकार नहीं, कन्याका अधिकार नहीं, भाईदोयजके दिन तो भाईकी अधिकारिणी बहनही है; इसी कारणसे भाईदोयजके दिन भाई बहनके हृदयमें प्रेमकी तरंगें उठाकरतीहैं। भइयादोयज को ऐसा ज्ञात होताहै कि दोनोके शरीर एकही उपादानसे निर्माण हुए हैं; दोनोंके शरीरमें एकही जीवन है ये दोनों एकही हैं और एक सेही दो हुएहैं।

"भाईवहन" कहने पर यह बोध होता है कि परस्पर दोनों एक दूसरे पर अधिकार रखतेहैं। यह मैं नहीं कहसकती कि इन दोनोंको क्या आपलोग जानतीहोंगी, परन्तु इतना तो मैं अवश्यही कहतीहूं कि यह दोनों भाई वहन एकही वृक्षके दो फल हैं; एकही शरीरकी दो छाया हैं। "भाई" कहतेहुए भगिनीका हृदय अपूर्व आनन्दमें मग्न होजाताहै, उस समयके आनन्दको भगिनीही जानती होगी, उस आनन्दको वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है; और यदि किसीप्रकार वर्णनकरभीसकूं तो उस अनुपमसौन्दर्यकी रक्षा नहीं होसकती, उसकातो केवल अनुभवही करना ठीक है।

इस ससारमें वहन का प्रेम एक अमूल्य प्रेमहै, जो प्रेम निःस्वार्थ कहाताहै, वह प्रेम केवल भगिनीके ही हृदयमें है। भाईके घरमें न रह कर भ्राताके साथ सांसारिक कोईभी कार्य न रखकर भाईके सुख दुःखसे भगिनीका हृदयही सर्वदा परिपूर्ण रहताहै। यहीं पर भगिनीके जीवनका विशेषत्व है, इस स्थानमें वहन स्त्री, कन्या इत्यादिके ऊपरभी स्थान पासकतीहै। सरलचित्त महात्माओं-ने इस स्वर्गीयप्रेमको भली भाँतिसे जानलियाथा। कदाचित् संसारचक्रमें पड़कर, यह स्वर्गीयप्रेम भलीभाँति से प्रकाशित न हो, कदाचित् वहनके प्रेमका वदला देनेमें भाई विमुख हो, ऐसी शंकाकरके ऋतु वदलनेके समय हेमन्तके प्रथममासमें पीड़ित भाइयोंकी (कार्त्तिकके महीनेसे फसली वीमारी विशेष फैलतीहै इस वातको सभी मनुष्य जानतेहैं) दीर्घायु प्रार्थनाके निमित्त इस कार्यमें वहनोंको नियुक्त कियाहै। भाईदोयजके दिन कार्त्तिक मासमें जवकि रोग फैलताहै जो भगिनी भाई-की पूजा करतीहैं, और जिस भाईने वहनके जीवन प्राणभर

अमोल सुखको ग्रहण कियाहै वही भाई, वहन धन्य हैं। भाई, वहनकी सृष्टि विधाता ने कैसी अमूल्य वस्तु बनाई है, इसका सुख भाई वहनही समझसकतेहैं, दूसरे नहीं। इन दोनोंके प्रेमको देखकर पत्थरभी पसीज जाताहै; अत एव जब तक भाईदोयजकी मर्यादा इस संसारमें रहेगी तबतक भाई, बहनका हृदयभी ममता और स्नेहसे पूर्णरहेगी, इसी कारणसे महात्मागण भइयादोयजकी रीतिको चलागयेहैं।

भाईदोयज का दूसरा उद्देश्य यह है कि अपने कुटम्ब में सद्भाव रहै, व्यक्तिगतभावके पीछे दूसरा नम्बर कुटम्बके भावका है। सहोदर, सहोदराके कर्तव्य पालनहोनेपर परिवारके कर्तव्यपालनपत्त में भी भ्रातृद्वितीया की सहायता है; हिन्दूजाति ताऊ चचा से लेकर मौसा और फूफा इत्यादिके साथभी एकान्तभोजी होकर रहतीहै। सब मनुष्योका स्वभाव एकसा नहीं होता विशेषकरके, हिंसा, द्वेष, अहंकार इत्यादि दुष्ट प्रवृत्तियें सर्वदा अपना अवसर खोजतीरहतीहैं, मनुष्योंकी संयम शक्तिका अल्प देखतेही झट उसपर अपना अधिकार कर लेतीहै, इसी कारणसे जहाँ वहुतसा कुटम्ब होताहै वहाँ परस्परमें झगड़ा झंझट हुआकरताहै, अनन्तर उसीके फल बढ़ते २ विशेष क्लेशके कारण फूट पड़तीहै, फिर सबलोग अलग २ होते और अपनी ढपली व अपने२ रागकी कहावत चरितार्थ करतेहैं। शांति जभी रहतीहै कि पत्तपातका न करना, परोपकार करना और सबको बराबर देखना, यही गृहस्थके सुख और शांतिका प्रधान उपाय है। आपके धर्मशास्त्रमें उलटपुलटकर बारम्बार इसी बातका उल्लेख कियागयाहै। भ्रातृद्वितीयासेभी इसी बातकी शिक्षादेनेकेलिये उन्होंने भाईदो-

यज करने की रीति चलाईथी। भाईदोयजके दिन भाईको सबसे पहले बडे भाईकी लड़की तथा तयेरी बहनके हाथसे अथवा इन सबसे पीछे अपनी सगी बहनके हाथसे भोजनकरना योग्यहै; ऐसा करनेसे सगी बहनके गौरवमें भी कुछ हानि नहीं होगी; और रिश्तेकी बहनें भी संतुष्ट होजॉयगी। ऐसें बहुतसे मनुष्यहैं कि जिनकी सगी बहन नहींहै; और ऐसी बहुतसी बहनेंभी हैं कि जिनके सगा भाई नहींहै; परन्तु महात्मापुरुषोंने भइयादोयजकी प्रथा ऐसी अपूर्व निकालीहै कि इस दिन विना सगे भाईकी बहनेंभी भाईवाली होजातीहैं और विना सगीबहनके भाईभी सगीबहनवाले होजातेहैं। भाईदोयजके दिन भगिनियोंको भाईका न होना कष्ट नहीं देता, बहन भाई चाहै कितनीही दूर हों, परन्तु भाईदोयजके दिन सभी भाई बहन सहोदर सहोदराके स्थानपर पहुँचजातेहैं, विना प्रेमके चाहै अपना हो, चाहै पराया हो, चाहै मित्र हो, चाहै अन्यजाति हो, हिन्दूजातिके गृहस्थधर्मकी रक्षा किसी भाँति नहीं होसकती। प्राचीनकालके महात्मापुरुष इस बातको जानतेथे। इसीकारणसे वे भ्रातृद्वितीया की रीतिको चलागयेहैं कि कुटम्बमें प्रेम बढे। इतनी भलमनुषाई आजानेपर यह सम्भव नहीं कि पराया अपना न होजाय?

भ्रातृद्वितीयाका तीसरा उद्देश्य जातिमें प्रेम बढ़ानेका है। कुटम्बके उपरान्त जातिही मनुष्योंको अवलम्बनीय है। भ्रातृद्वितीयामें भाई बहनका सम्बन्ध रखनेवाले जातिके प्रत्येक नरनारी भ्रातृद्वितीयाका कृत्य करसकतेहैं। मौखिक सम्पर्क से भी यह आचरित होजाताहै। महर्षियोंने कहाहै कि—

"सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्द्धनम्"।

सम्पूर्ण सम्पर्कीय भाई वहनोंके सहोदर सहोदरा के भावमें भावितहोजाने पर मनुष्यजातिका कौनसा कल्याण नहीं होसकता ।

प्रेमकी सीमाका विस्तार होनेसे, मनुष्यके हृदयका महत्त्व सूचितहोताहै । दया, क्षमा, इत्यादि श्रेष्ठगुणोंके समान प्रेमभी एक गृहसे आरम्भ होकर संपूर्ण संसारमें व्याप्त होसकताहै । ऐसा होनेसेही मनुष्योंकी जाति देवजाति होसकतीहै; भाई वहनके स्नेहके समान निःस्वार्थ पवित्र प्रेमही यथार्थ प्रेम है। इसप्रकारका प्रेम जैसे २ वढ़ैगा वैसेही वैसे जातिकी उन्नति होती जायगी। इस भाई वहनके स्वार्थहीन प्रेमका विस्तार करनेके आशयसेही महर्षियोंने, भाई वहनका सम्वन्ध रखनेवाले समस्त मनुष्योंके लिये भइयादोयजकी रीति चलाईथी। भाई वहनका प्रेम जातिके प्रेमका आदर्शस्वरूप है इस वातको विचारकरतेही आप समझ सकतीहैं। प्रेमका सबसे ऊँचा स्थान मातापिताका है, अर्थात् प्रेम करनेमें माता पिताका पहला दरजा है, परन्तु वास्तवमें पितामाताका स्वार्थहीन प्रेम है या नहीं इस वातको पूरे तौरसे नहीं कहाजासकता, जिन्होंने हमारा लालन पालन प्राणार्पणसे कियाहै, जो कि हमारे पसीना गिरनेसे अपना रुधिर तक देनेके लिये तैयार होजातेहैं । हमे कहीं कुछ कष्टहुआ कि उनका वचना असंभव होजाता है, हमारे हृदयमें उनकी भक्तिका न होना असंभव है । ऐसे मातापितामें किस कारणसे हमारी भक्ति न होगी ! इनके अतिरिक्त गुरु, शिष्य, उपकारी, उपकृत, प्रभु, भृत्य, इत्यादिके समान सम्वन्धी न होने पर दूसरा कोईभी पितामाताके समान भक्ति प्राप्त करनेवाला नहीं हो-

सकता । प्रेमका मध्य विन्दु दम्पतिको समझिये, मनको आकर्षणकरनेवाला इसप्रकारका दूसरा प्रेम संसारमें दिखाई नहीं देता, इस प्रकारके एक प्राण दो देह कहीं भी दिखाई नहीं देते; परन्तु यह प्रेम निःस्वार्थमय है या स्वार्थहीन है सो जान लेना असंभव है । मैं समझतीहूं कि इस बातसे स्त्री पुरुषोंके दाम्पत्य प्रेमका गौरव नहीं घटायाजाता है; कारण कि इस भारतवर्षकी स्त्रियाँ स्वामीकी सहधर्मिणी, सहयोगिनी, आश्रिता, पालिता और सेविका होकर ही रहतीहैं । इस कारण जबकि एक को सदा ही दूसरेका प्रयोजन रहता है, सबही बातमें जो परस्परमें साथी हैं, उस दम्पतिके स्नेहमें कितना स्वार्थ है । और कितना स्वार्थ नहीं है, सो कैसे जानाजासकताहै । विशेष करके, स्वामी स्त्रीका स्नेह व्यक्तिगत स्नेह है, सो स्नेह केवल स्त्रीपुरुषोंकेही प्राप्त करने योग्य है । कुटम्बके स्नेहकी पिछली सीमा सन्तान है, परन्तु वात्सल्य वा स्नेह अतोल होनेपरभी जाति के लिये साधारण पदार्थ नहीं है, परन्तु किसी विशेष मनुष्यके ऊपर किसी मनुष्यका संतानके समान स्नेह होसकताहै, इस ही कारण निवेदन है कि भाई वहनका स्नेह जातिप्रेमका उदाहरण बनाने योग्य है ।

भाई वहनके स्वार्थहीन प्रेम से ही संसारके स्वार्थहीन प्रेमका आरंभ होताहै । भाई बच्चा है, बहन छोटी है, कोई किसीकी कुछभी सहायता नहीं करसकता, तथापि दोनों भाई वहनोंके बीचमें गाढ़ा प्रेम देखाजाताहै । यही प्रेम सदा स्वार्थशून्य है । भाई वहन परस्परमें प्रेम करके ही सुख पातेहैं । किसी दिन भी ऐसा अवसर नहीं आता कि वह अपने प्रेमका बदला चाहते हो, और उन को इस बातका अव-

काश भी नहींहै । बड़े होनेपर पुरुषके सुख दुःखमें सदा साथ रहनेवाली, समभागिनी भार्याको हृदयमें जैसा दुःख सुख होता है, वैसाही कष्ट बहुत दूर रहनेवाली अनधिकारिणी बहनके हृदयमें भी होजाता है । बहूजी तो आवश्यकता होने पर डेढ़ हाथका घूंघट भी काढ़सकती है, पलक मारनेमें सप्तम या पंचम परभी पहुँच सकती है, तथा इन बातोंके सिवाय कोई विशेष कठोर विधि भी चलासकतीहै क्योंकि उनको सब कुछ अधिकार है, परन्तु बहन तो भाईको प्यारकरके ही संतुष्ट रहतीहै । भाई चाहे कितनीही दूर पर क्यों न हो, उसके मंगलसेही भगिनी अपना मँगल समझतीहै । बहन पराये घरकी है, दूसरेके घरकाही काम काज करतीहै, परन्तु भाई को भी इसीमें संतोष है । भगिनी की बड़ाई सुनकर भाई अपने को कृतार्थ मानताहै, इस प्रकारका प्रेमहीतो जातिगत प्रेम कहाजाता है । भाई बहन ही तो जातिप्रेमकी भींतरूप हैं, स्त्री पुरुषसे ही मनुष्यजाति गठित हुई है । हमारी जाति की रीतिके अनुसार स्त्री पुरुष विशेष कारणके विना एक दूसरेके सन्मुख न भी आवें तो भी परस्पर में सम्बन्ध रखनेकी बहुतही आवश्यकता हैं । इसीसे जातिके स्त्री, पुरुष, भाई, बहन, सम्बन्धका, अभ्यासकरके, जातिके कर्तव्यको सरलतासे पालनकरसक्तेहैं । स्त्रीपुरुषोंमें प्रेम, शिष्टाचार, श्रेष्ठव्यवहार, अवस्था और उपयोगिताके अनुसार एक दूसरेकी मन, वचन, कायसे सहायताकरनाही सीमान्तिक कर्त्तव्य माना गयाहै । विना जातिकर्त्तव्यको पालनाकिये मनुष्योंकी जाति पशुगणोंके समान होजाय इसीकारणसे सामाजिक स्त्रीपुरुष यदि भाई बहनके प्रेमका अभ्यास करलें, तो बडी सरलतासे जा-

तिकर्त्तव्यका पालनहोसक्ताहै। भ्राताका शब्द सुनतेही हमारे नेत्रोंके सन्मुख आत्मत्यागी, न्यायपरायण, पवित्र, देवकुमारकी मूर्ति हमारी आंखोंके सामने प्रगटहोतीहै। भाईकी मूर्तिका आदर्श ऐसाही है, और "बहन" नाम सुनकर अपनेको भुलानेवाला प्रेम तथा पवित्रता मूर्तिमान् होकर हमारे हृदयमें विराजमान होजातीहै। जातिके स्त्रीपुरुषोंको भाई बहनकी पवित्र मूर्तिमें सजानेके लिये भ्रातृद्वितीयाकौशल है, हिन्दूस्त्रियोंको जो कोई "भगिनी" कहकर पुकारताहै, भ्रातृद्वितीया के दिन वह भाई का स्थान पासकताहै, भाईके स्नेहमें निमग्न होकर हिन्दू स्त्री उसीकी दीर्घायु मनातीहै, और उसके लिये भोजन बनातीहैं। अबवताइये कि परार्थपरताकी शिक्षा और कहांपर मिलसकती है! कहो तो सही कि ऐसी सद्भाव सिखानेवाली कौशल, और भी कहीं देखी है?

भ्रातृद्वितीयाका चौथा उद्देश्य समस्त मनुष्योंमें सद्भाव बढ़ाना है। मेरी यह वात सुनकर बहुतसे मनुष्य विस्मित होंगे कारण कि प्राचीन लोगोंनें भ्रातृद्वितीयाके वीचमें ऐसा तो कहींभी नहीं कहा है कि "इस दिन सभी स्त्री पुरुष भाई वहनकी समान व्यवहार करें" तथा हमने ऐसाभी कहीं भइयादोयजके सर्वजनीन सद्भावकी रक्षाकरनेके लिये, भारतकी किसी स्त्रीको, अंग्रेज़ या फरासीसी के टीका लगाता नहीं देखा है। परन्तु वास्तवमें इन बातोंके न होनेपर भी, महर्षियोंने, भ्रातृद्वितीयामें जो शिक्षा लगारक्खीहै, उस शिक्षाको अभ्यास करलेनेसेही सर्वव्यापी सद्भावका प्रकाश सरलतासेही होसक्ताहै। यह महान् संकेत भइयादोयज है, इसीसे महर्षियोंकी यह भइयादोयज विश्वजनीन सद्भावका संकेतमात्र है।

इस जगत्में व्यक्तिगत सम्बन्ध या कुटम्बका सम्बन्ध छोड़ देनेपरभी, स्त्री पुरुषोंमें, भाई वहनका सम्बन्ध रखनेके वहुतसे कारण पायेजातेहैं। प्रथमतो जातिके सभी स्त्री पुरुष जातिकी सन्तान हैं, यह जातीय भ्रातृभाव और भगिनीभाव सवहीमें विराजमान है, इसी कारणसे एक पश्चिमोत्तरवासी-का गौरव होनेपर समस्त पश्चिम के निवासी अपनी इज्जत समझतेहैं, और एक अंग्रेजकी इज्जतसे समस्त इंगलेण्डकी प्रतिष्ठा होतीहै। दूसरे देशीय सम्वन्धसे नरनारियोंमें भाई वहनके भावका वढ़ना, जिन्होंने "जननी जन्मभूमिश्च" को समझ लियाहै वह अपने देशके स्त्रीपुरुषोंके "भाईवहन" भावको अवश्यही समझेंगे; अपने देशवालोंकी सहानुभूति कैसी स्वाभाविक होतीहै, भारतवासी भारतवासीसे और फरासीसी फरासीसीसे कैसा स्वाभाविक अनुराग रखता है, सो अनेक महाशय जानते होंगे, परन्तु भाई वहनका यह सम्वन्ध ऊँचा होने पर भी सीमामें वँधाहुआहै। हमारे भाई वहनोंमें जो उदार और महान् तथा स्वर्गीय सम्वन्ध है, उसकी वरावरीमें प्रथमके सम्वन्ध कुछभी नहीं हैं; यदि अपने सम्वन्धके अनुसार हम अभ्यास करले तो एशिया, युरोप, अफ्रीका, और अम्रीका एकही घर वनजाय, इस सम्वन्धमें हम सवही उस विश्वजननीकी सन्तान है। इस विराट् संसाररूपी शरीरके हम सभी एक २ परमाणु हैं, हमारी समान अनन्त अणु और परमाणुओंके मेलसे यह मनुष्यरूपी संसार वनाहुआहै, जो समस्त संसारका मङ्गलकरनेवाला है। प्रथम उसी कार्यको करना हमारा मुख्य कर्तव्य है। इस कर्तव्यके पालनकरनेमें एक दूसरे

की सहायता करना मनुष्योंके जीवनका मुख्य उद्देश्य है। हम सबही एक माताकी सन्तान हैं। सभी हमारे भाई हैं और सभी हमारी बहनें हैं, इस कारण, भ्रातृत्व सभी मनुष्योंमें रहै और भगिनीत्व स्त्रियोंमें, नहीं तो हमारे जीवनका एक महान् उद्देश्य निष्फल होजायगा। भाईको देखनेसे मनमें यह बात आतीहै कि पुरुष जातिही स्त्रियोंकी रक्षा करनेवाली तथा उनको शिक्षा देनेवाली है। यह जाति संसारमें प्रधानता स्त्रियोंको धर्मज्ञान और अभय देनेके निमित्तही आई है, इससेही अबलाओंके गौरव और प्रतिष्ठाकी रक्षा हुई है और भ्राताका भ्रातृत्व इसी बात में है। बहनको देखतेही हमारे मनमें स्मरण होता है कि स्त्रीजातिही पुरुषोंकी सखी और सेविका है। प्रधानतः पुरुषके दग्ध हुए हृदयमें शीतल छाया देनेके लियेही, इस-जातिका संसारमें आगमन है। दया और पवित्रताकी प्रति-रूप बनकर, पुरुषोंकी सेवा और सहायताके लियेही नारी-जातिका जन्म है। पुरुषोंकी नित्यसंगिनी न होनेपर भी, उन-के सुख, दुखमें हृदयपूर्ण सहानुभूतिदेनेकेलियेही, भगि-नीका आगमन है। सम्पूर्ण स्त्री पुरुषोंका परस्पर यही कर्तव्य है। सम्पूर्ण स्त्री पुरुष भाई बहनके भावका अभ्यास करलें तो इस कर्तव्यका पालन होजाय, और इस कर्तव्यका पालन होतेही सम्पूर्ण संसारके सद्भावकी रक्षा होजायगी।

परन्तु सर्वसाधारणको यह शिक्षा पुस्तक पढ़ाने अ-थवा उपदेश देनेसे नहीं होसकती। नीतिशास्त्र की पुस्तक को कंठ करलेनेसेही कोईभी नीतिपरायण नहीं होसकता। नीतिकी शिक्षा अलग बात है। ज्ञानार्जनि वृत्तियें ज्ञानका अनु-शीलन करनेसे प्रस्फुटित होसकतीहैं। स्मृति, बुद्धि, धारणा,

इत्यादि विद्यालयमें मार्जित होसकतीहैं, परन्तु कार्यकारिणी वृत्तियोंको यदि प्रकाशित करना है, तो साधुजनोचित कार्योंका अभ्यास करना चाहिये। त्याग स्वीकार, सहनशीलता, परार्थपरता, इत्यादि सीखनेकेलिये सद्भावका अभ्यास करना उचित है। हजारों वर्ष पहले भारतीय ऋषि मुनियोंने इस बातको भलीभाँतिसे जानलियाथा, जानकरही वह चुप नहीं हुए, वरन, उन्होंने इसी आशयसे कि जिससे मनुष्य, भाई बहनके जीवनकी मर्यादा जानजाय और सबके हृदयमे भाई बहनके प्रेमका अभ्यास हो, तथा सबही मनुष्य, भ्राता भगिनीका कर्तव्य पालनकरसके, भ्रातृद्वितीयाकी रीतिको चलाया। भ्रातृद्वितीयाके भीतरी आशयसे भाई बहनके प्रेमका हृदयमें उदय होकर, मनुष्योंके चित्तको निर्मल करेगा, स्वार्थपरता दूर होगी, सबही सबका मंगल मनावेंगे। भ्रातृद्वितीयाका कर्तव्य है कि स्त्रियें भगिनीभावमें प्रणोदित होकर पुरुषकी मंगलकामना करतीहुई उनकी सेवा करें और पुरुष भ्रातृस्थानीय होकर स्त्रियोंको "भगिनी" समझे तथा उनके सन्मान व गौरवकी रक्षाकरें। भ्रातृद्वितीया सिखातीहै कि पवित्र भाई बहनका प्रेमभाव, निष्काम प्रेम, स्नेह करके त्यागस्वीकार, सहोदर सहोदरासे उसकी उत्पत्ति होतीहै। कुटुम्बमे उन्नति और समाजमे विस्तार व संसारमें उसकी परिणतिहै यही सद्भावके नाम हैं, यही स्वर्गीय भावके नाम हैं, और यही विश्वजनीन सद्भाव हैं।

हिन्दू स्त्री अंग्रेजको अथवा मेमसाहबा किसी हिन्दू भाईके माथेपर भ्रातृद्वितीयाका टीका लगादे, तो भ्रातृद्वितीयाका उद्देश्य सफल नहीं होसकता। भ्रातृद्वितीयाके उपदेशानुसार

आत्मगठन करने पर एक दूसरेके भ्राता भगिनीही बनें तो भ्रातृद्वितीयाका उद्देश्य सफल होसकताहै। महर्षिलोगोंने यह रीती इसी आशयसे चलाई है।

वर्तमान युग सभ्यताका युग है। इसी समय स्वाधीनता की उन्नति है, वर्तमान युग शिल्पविज्ञानका युग है. वर्तमान-युग वाणिज्य व अर्थनीतिका युग है। इन समस्त बातोंसे वर्तमान वाणिज्य व अर्थनीतिका युगहै, इन समस्त बातोंसे वर्तमान युगका गौरव है; परन्तु यह कहना कि वर्तमान युग प्रेमका युग नहीं है, उचित नहीं जाना जाता। क्या इस युगमें ही प्रेमिक म्याटसिनि, ग्यारिवल्डी, कुमारी, नाइटिङ्गेल व फाउलर आदि महात्माओंने जन्म नहीं लिया, वर्तमान समयमें क्या पं० दीनदयालजी, महर्षि विशुद्धानंद व ईश्वरचंद विद्यासागर इत्यादि महात्माओंने भारतवर्षको उल्लंघन नहीं किया? परन्तु बात इतनी है कि जिस निष्काम प्रेमकी साधनासे भारतीय हिन्दूगण देवता हुएथे और भारतभूमि देवभूमिके समान हुईथी, वह प्रेमही अब नहीं है! प्रेमभी चलागया! सद्भावका भी लोप होगयाहै!!! हाँ! बहन भाईका प्रेम भाव केवल नाममात्रका है ऐसा होनेका कारण क्या हैं? निःसंदेह इस बातको सभी मनुष्य भली भांतिसे जानते होंगे कि प्रत्येक मनुष्यही एक परस्परसे भाई बहनका सम्बन्ध रखताहै, और सभी एक माताकी संतान है; परन्तु कार्य करनेवाले कितनेहैं? बहुतही कम! इस देशमें भाई बहनके प्रेमभावका नाम तो सुनाजाताहै। परन्तु वास्तवमें यदि सभी मनुष्य भाई और सभी स्त्रियें बहनें होजाँय तो इस देशकी ऐसी कुदशा काहेको होती! यदि सभी भाई बहनके कर्तव्यका पालन क-

रते तो इतना विवाद, इतना पाप, तथा इतना महापाप काहे-
को उत्पन्नहोता ? यदि सभी भाइयोंके हृदयमें भगिनीका हृदय-
पायाजाता तो भारतवासी मनुष्य स्त्रियोंको पैरोंसे ठुकराकर
अपनेको सुखी नहीं मानते ? स्त्रियोंका सुख, दुःख, कर्त-
व्याकर्तव्य, अवस्था, उपयोगिताके विषयमें नेत्रहीनों के
समान अपना कार्य नहीं करते। भाईके विद्यमान रह-
तेहुए भगिनी अंधकारमें काहेको रहती ? भाईहोते हुए
बहनको पुरुषके समान न बनाते ! भाई होकर बहनके साथ
ठट्ठा न उड़ाते भाई होकर बहनकी बारम्बार निन्दा न करते !
भगिनी जिस बातको जानना चाहै, भाई उसको तुरंत सिखा
दे। बहन जिससे शोभित हो, सो उपाय भाई अपने प्राणापेक्षा-
से उसको सिखानेका यत्न करते। बहनके आँसु पोंछनेका
भाई सदा यत्न करैं। बहनका धर्मभाव, पवित्रता, लज्जा और
सन्मानकी रक्षा करनेमें भाई भली भाँतिसे सहायता करैं।
बहनको उचित है कि भाईके मंगलार्थ, भ्राताकी सेवाके निमित्त
आत्मसमर्पण करे। परन्तु आजकल ऐसा भ्रातृभाव और भ-
गिनीभाव कहाँ है ? इसी कारण कहा जाचुकाहै कि भ्रातृ-
भाव और भगिनीभावका इस देशमें नाममात्र रहगयाहै !!!
एक देशमें ही नहीं वरन समस्त भारतवर्षकी यही दशा है।
जिस मार्गमें व्यास अष्टावक्र गये, जिस मार्गमें जनक और शि-
वि गये, जिस मार्गमें गौतम, गार्गी वा महाराणी सीता तथा
देवी सावित्री गईं। ज्ञात होताहै कि भारतका तेजस्वी प्रेमभी
उसी मार्गमें पयान करगया !!!

हमारे भारतवर्षमें आज प्रेमकी बड़ी भारी खैंचाखैंच है।

दूसरेमें जो कुछ भी हो परन्तु भारतवर्षके बीच यह हँसकर उड़ानेकी वार्ता नहीं है।

सद्भावके कीर्तिमन्दिर, अमायिकताके शिक्षागृह, प्रेमके आनंदमठ, भारतवर्षने आज जिस अमूल्य प्रेमको खोदियाहै, सो कोई हँसीकी बात नहीं है। प्रेममयी भारतभूमि आज झगड़े झंझटका राज्य होगईहै, यह बड़ी दुःखकी बात है। जिस देशमें भाई बहनका भाव सिखानेकेलिये, भ्रातृद्वितीयाका जन्म हुआथा, आज उसी देशमें अनेक भाँतिके विवाद फैल रहेहैं। उस देशमें धर्मके ऊपर विवाद है। सभीके धर्ममें कहाहै कि "देवताओंकी भक्ति करो, जितेन्द्रिय हो और सत्यप्रिय होकर आत्मसमर्पण करो" इसमें कुछ भेद नहीं है, यह बात नहीं कहसकती, परन्तु प्रधान नीतियोंमें जब कि समञ्जस है, तब विवाद "अपरिहार्य" नहीं है। भारतवर्षमें परस्पर सामाजिक आचार, व्यवहार परभी विवाद होताहै। सबहीकी कर्तव्य बुद्धि कहतीहै कि "जो बात सत्य है, न्यायसंगत है, जो जाति हितकारक है, उसीको ग्रहण करो" तौभी दारुण विवाद होताहै। आजकल, इस भारतमें छोटीछोटी बातों परभी झगड़ा होताहै। कुटम्बमें ऐसी बातों पर जो बहुतही तुच्छ होतीहैं झगड़ाहोताहै। खोज करनेसे देखाजाताहै कि बहुधा इन्हीं बातोंसे गृहफूटका आरम्भ होजाताहै। वर्तमान भारतवासियों के सामाजिक वा जातीय विवादका मूलभी बहुत छोटी २ घटनाओं पर लक्षित होताहै। संसारके समस्त स्त्रीपुरुषोंने एकही विश्वमाताके गर्भसे जन्मलियाहै। यह संतान जिस प्रकारसे माताको पुकारती है उसकी वह पुकार माताके चरणों में पहुँचही जातीहै, परन्तु तौभी भाई बहनोंके बीचमें घोर बै-

मनस्य रहताहै। यह वैमनस्य स्नेहभावसे त्रुटि समझानेका नहीं है। इस विवादमें प्रेमके साथ दोषोंकी समालोचना नहींहै, न यह झगड़ा किसी मंगलकी आशासे कियागयाहै। इसका आशय तो केवल अपने डाहको बुझानाही है। तीखे दुर्वचन मर्मको छीलनेवाले अवाज़े तवाज़े और घोर क्लेश!! कहां तो वह भाई वहनका भाव, और कहाँ यह सवतिया डाह ? कहाँ वह सद्भाव, और कहाँ यह वैर ? लिखतेहुए लेखनी लजातीहै कि वहुतसे ज्ञानी लोग जो संसारको गला फाड़, २ कर उपदेश दियाकरतेहैं, वहभी अपने अपने घरों में ऐसे झगड़ोंके समर्थक वनजातेहैं और अपने माता पिताको दुःख देनेमें सद्भावके गलेपर छुरी फेरदेतेहैं। सुनीतिके पोषण न करने वाले ज्ञानपर खाक पड़नाही अच्छा है; विशेष करके, अज्ञानी मूर्खोंके अपराधकी अपेक्षा, बुद्धिमान और ज्ञानावानका अपराध, चित्तको वेतरह छीलताहै। इन समस्त शोचनीय वातोंके अनुसंङ्गिक कारण चाहे जितने हों, परन्तु मुख्य करके इनका जन्म प्रेमके अभावसे ही होताहै। किसीका किसीके हृदयकी वातका न जानना, किसीकी दशा कुदशाकी परवाह न करना, किसीके साथ हमदरदी न दिखाना, इत्यादि दोष सवही प्रेमभावके न होनेसे उत्पन्न होजातेहैं। जिसके ऊपर प्रेम होताहै, उसका भ्रम या अपराध तो दूरकी वात है, वह यथार्थ दोषी होनेपर भी क्षमा पालताहै। इस क्षमा को पक्षपात मूलक नहीं कहा जासकता, दोषीको भला समझोही, दोषका इतिहास समझमें आजाताहै और इस वातका खोजकरनेकी इच्छा होतीहै कि दोषीके हृदयमें और घटनाओंमें कैसा सम्बन्ध है ? "इस प्रकारकी अवस्थामें, ऐ-

सा अपराध होजाना सम्भव है” यह बात स्वयंही मनमें उद-य होतीहै। यह विचार आतेही क्षमा करना सहज बात है। केवल क्षमाही नहीं, वरन, दया, विनय, सहनशीलता, आत्म-त्यागकाभी तो जन्म प्रेमसे ही है, नहीं तो इस संसारमें कौन किसका होता, ? सबही स्वार्थपरताके वशसे अन्धे होते, हिं-सा, द्वेष और अहंकारके फलसे केवल विवादही होता वैरही वैर दिखाई पड़ता, इसीसे विनय है कि सबही यदि सबको चाहते, सभीको विश्वमाताकी सन्तान समझते तो इन शो-चनीय घटनाओंके बदलमें विश्वजनीन सद्भाव दिखाई देता और यह मानवराज देवराज होजाता। हम तुमने इस बात को समझलिया है किन्तु सहस्रों वर्ष पहले जब सिसिरोकी वाग्मिता, कोमटका दर्शन, मिलकी युक्ति, भविष्यत्के अन्ध-कारमें लीन थी, उनके जातिभेदका आस्तित्व जिस समय सभ्यजातिवाले नहीं जानतेथे तब भारतवासी महात्माओंने इन तत्वोंको भली भाँतिसे समझ लियाथा और इसही कार-ण सर्वसाधारणकी कार्यकारिणी वृत्तियोंको प्रस्फुटित कर-ने तथा विश्वजनीन सद्भावका अभ्यास करानेकेलियेही भ्रातृ-द्वितीया का प्रचार कियाथा, इसीसे कभी कभी आशा होतीहै कि भ्रातृद्वितीयाका भली भाँतिसे प्रचार होनेपर भारतका लुप्तहुआ सद्भाव पुनर्वार प्रकाशमान होगा। इस भ्रातृद्वितीया का उत्तमतापूर्वक अनुष्ठान होनेपर, परस्पर सबीही मनुष्य भाई, बहनके सम्बन्धतामें, दृढरीतिसे बँधजाँयगे। उस काल, प्रेमकी साधना करनेवाले हिन्दू महर्षियोंका महामन्त्र और भ्रातृद्वितीयाका जन्म, कदापि निष्फल न होगा।

पहलेही कहा जाचुकाहै कि सद्भावकी परिणत्यवस्थाको

प्रेम कहतेहैं। जैसे कली और फूलहै, वैसेही सद्भाव और प्रेम है। सद्भावसे पराया अपना होताहै, प्रेमसे पीछे जो कुछ है, वह अपनाहै। सद्भावका कथन है "इस संसारके समस्त स्त्री पुरुष एक माता की सन्तान है"। प्रेमका वचन है "यह जितने मनुष्य देखे जातेहैं सो तुम्हीं हो"। "वसुधैव कुटम्बकम्" यह तो हुई सद्भावकी बात और "आत्मवत्सर्वभूतेषु" यह हुआ प्रेमका उपदेश, हृदयके छोटेसे परदेको भी प्रेम नहीं सहसकता और प्राणोंका थोड़ा अंतरभी उससे नहीं देखाजाता और सद्भाव सबके मुखपर मुसकान तथा हृदयमें सुख देखना चाहताहै। प्रेमिक स्वयं संन्यासी तथा भिखारी होकरभी दूसरेका सुख बढ़ानेकी इच्छा करताहै। प्रेमिक बुद्ध व प्रेमिक चैतन्यने किसकेलिये संसार छोड़दियाथा? प्रेममयी मीराबाई और करमेतीबाई किसकेलिये भिखारिन बनीथीं? केवल प्रेमकेही लिये! प्रेमिक विश्वेश्वरको, इस अनन्त विश्वके चक्रवर्ती महाराजको, अपने हृदयमें छिपारक्खाहै। प्रेमिक पंचभूत समष्टि भी नहींहै और इन्द्रियोंके एकादश इन्द्रियोका अधिकारीभी नहींहै। प्रेमने मन वचन कायसे प्रेमिकको ईश्वरके चरण कमलमें बलिहार कियाहै। प्रेमिक वही ईश्वरहै। प्रेमके साथ धर्मका मिलन अवश्य भावीहै धार्मिक कहनेमें और प्रेमिक कहनेसे धार्मिकका बोध होताहै। इस बातको तुमहीं समझते थे। हिन्दू तुम्हीं तो कहे गये हो किः—

" सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः। "

"अर्थात् ईश्वरमें मिलाहुआ युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शी होकर

अपनेको सर्व भूतों में और सर्व भूतोंको अपनेमें देखताहै" यहीं पर प्रेमकी सीमा होगई; ऐसी स्वर्गीय बात जिस जातिने कही यह जाति मनुष्य है या देवता पाठक पाठिकागण स्वयं इस बातका विचार करेंगे।

जो स्त्री यथार्थमें पतिव्रता है तथा जो पतिको अत्यन्त प्यार करतीहैं वह सौतकी संतानको "दूसरेकी संतान" नहीं समझती। स्वामीकी संतान और स्वामीका धन, विचारकर, उसको अपनीही संतान जान, स्नेह करतीहैं, वैसेही यथार्थ धार्मिक किसीभी मनुष्यको पापी अथवा किसी संप्रदायको भी घृणित नहीं समझता; वरन सभी मनुष्योंको ईश्वरका निर्मित जान कर उन्हें प्रीतिपूर्ण दृष्टिसे देखताहै। शत्रुता या विद्वेषका शब्दभी प्रेमिकको ज्ञात नहीं होता। भक्तशिरोमणि प्रह्लादजीका वृत्तान्त बहुतोंको ज्ञात है। प्रह्लादजीको भगवान का भक्त देखकर हिरण्यकश्यपने उनके ऊपर बड़े २ अत्याचार कियेथे; परन्तु ईश्वरकी कृपाकटाक्षसे प्रह्लादजीका बाल बाँका न हुआ। हरिभक्त प्रह्लाद पितृरूपधारी असुरकी सहस्रों चेष्टासे भी न मरे। क्यों नहीं मरे? जो हमारी तुम्हारी समान अभक्त अकृतज्ञ मनुष्योंकी स्वयंही सर्वदा रक्षा करतेहैं, वही महाराज अपने अनुरागी भक्त प्रह्लादकी रक्षाके निमित्त प्रस्तुत थे, इसी कारणसे हरिभक्त प्रह्लादकी मृत्यु न हुई। प्रह्लादको जीवित देखकर हिरण्यकश्यपके क्रोधका ठिकाना न रहा और उसने तत्काल पुरोहितोंको बुलाकर आज्ञा दी कि प्रह्लादको अभिचार क्रियासे मार डालो। पुरोहितगण अनुष्ठान करके मंत्र पढ़नेलगे, वह पढ़ेहुए मंत्र प्रज्वलित अग्निरूप होकर प्रह्लादके बदले दुष्ट पुरोहितोंको-

ही भस्म करने के कारणहुए फिर प्रह्लादजीको, पर्वतके शिखरपर लेजाकर कहा कि " अरे ! कुँवर ! तू अबभी हरिनाम लेना छोडदे । यदि न छोडेगा तो हम अभी ऊँचे शिखरपरसे तुझे गिरादेंगे, जिससे तेरा प्राण निकल जायगा" इसपर प्रह्लादजीने उत्तर दिया:—

" गले तोंक पहरावो पाँववेड़ी ले भरावो गाढ़े बंधन बंधावो और खिचावो काँची खालसों । विष ले पिलावो तापे मूठ हू चलावो माँझी धारमें वहावो बाँध पत्थर कमालसों । विच्छू ले विछावो तामैं मोहि ले सुवावो फेर आगहू लगावो बाँध कापर दूशालसों । गिरिसे गिरावो कालीनागसे डसावो हाहा प्रीति न छुड़ावो गिरधारी नंदलालसों ।"

भक्तशिरोमणि प्रह्लादजी हिंसापरायण मनुष्य नहींथे कि वह शत्रुओंकी विपत्तिमें आनंद पाते।प्रह्लादजी दैत्यसे देवता हुएथे। जगदीश्वरके चरणकमलोंमे, आत्मसमर्पण करके, प्रह्लादजी " अपनेको सर्व प्राणियोंमें और सर्व प्राणियोंमें अपनेको" देखतेथे; इसी कारण इस शोचनीय दृश्यको देखकर उनका हृदय फटगया और वह कातर होकर अपने परमप्यारे नारायणजीको पुकारने लगे ।

"सर्वव्यापिन् ! जगद्रूप ! जगत्स्रष्टः ! जनार्दन !
पाहि विप्रानिमानस्माद्दुःसहान्मंत्रपावकात् ॥
यथा सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी जगद्गुरुः ।
विष्णुरेव तथा सर्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥
यथासर्वगतं विष्णुं मन्यमानो न पावकम् ।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥

ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः ।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि ॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित् ।
तथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः ।"

कैसी सुन्दर बात है, जिसने प्रह्लादजीको मारडालनेंका विचार कियाथा, प्रह्लादजीनें उसको भी अपना शत्रु नहीं समझा। प्रह्लादजीके जीवन नष्ट करनेंका जिन पुरोहितोंने बीड़ा उठायाथा' उन्हींके जीवनकी रक्षाके निमित्त प्रह्लादजीने इतनी दीनता दिखाई। प्रह्लादजी प्रेमिकथे इसी कारण उन्होंनें ऐसा किया। प्रेममें लीन होनेंसे मनुष्यका मनुष्यत्व जातारहता-है और वह देवता होजाताहै। परन्तु प्रथम सद्भावकी आवश्यकता है। जैसे कलीके न होनेसे फूल नहीं खिलता, वैसेही सद्भावके न होने से हिंसा, द्वेष, विवाद इत्यादि होंगेही। सद्भावकी साधनामें विना सिद्धि पाये प्रेमसाधक का पद नहीं मिलता। प्रेममें सर्वसाधारणका अधिकार नहीं है; परन्तु सद्भावमेंही सर्वसाधारणका अधिकार है। जिस समय सद्भाव के अनुशीलनमें साधारणपन लोप होकर विशेषत्व प्राप्त होताहै तबही कोई प्रेमका साधक होसकताहै। साधारणकी धारणामें प्रेम नहीं आता। महाप्राण दूरदर्शी हमारे ऋषि मुनियोंने, इसी कारणसे, साधककी सरल रीतियोंका प्रचार कियाहै। इस संसारमें प्रह्लाद, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदिसे महात्मा कभी ही जन्म लेतेहैं, किन्तु हमारी तुम्हारी नांई निकम्मे मनुष्य नित्यही जन्म लेतेहैं। साधारण स्त्री पुरुष जिससे "हृदय" को प्राप्त करसकें और क्षुद्र संकीर्ण हृदयमें जिसके द्वारा "समस्त

जगत्को एक परिवार" और एकही विश्वमाताका निर्मित सं-
तान समझे" इसी अभिप्रायसे प्राचीन ऋषिगण भ्रातृद्वितीया
का प्रचार करगयेहैं।

अब भी क्या नई रोशनीके भाई बहन, भ्रातृद्वितीयाके
प्रचार करनेवाले ऋषियोंको "कुसंस्कारका चलानेवाला
कहसकतेहैं? अब भी क्या भइयादोयजके दिन भ्रातृभाव, भगि-
नीभाव, और निष्काम स्नेहका अनुशीलन किया जासकता
हैं? अब भी क्या भ्रातृद्वितीयाको "कुसंस्कार" समझकर भाई
बहन भइयादोयजके दिन एक दूसरेको पराया समझ सकतेहैं?
प्यारे भाई और बहनो! ऐसी अनमोल निधिको बेपरवाहीसे
खो दोगे तो पीछे हाथ मल मलकर पछताओगे! और मनुष्य-
पन तुमसे कोसो दूर भागेगा।

मैंने बालकपनमें किसान और उसके पुत्रोंकी एक कहानी
पढीथी, उसमें यह वर्णन था कि" खेती करनेसे रत्नकी प्राप्ति
होगी। पिताने, यह लोभ दिखाकर पुत्रोसे खेती कराई। खे-
ती करनेसे किसानके पुत्रोंको यद्यपि अमल रत्नतो न मिले,
तथापि परिश्रमके द्वारा पाये हुए धनसे वह वैसेही सुखी हुए
जैसे किसीने हीरा पालिया और जीविका निर्वाह करनेवाली
खेतीविद्याको सीखगये। महर्षियोंकी चलाई हुई अनेक विधि-
भी हमारे लिये उसीही भाँति हैं जैसे किसानके बेटोंको र-
त्नकी प्राप्ति।

भइयादोयजमें भी हमको वही निधि दिखाई देतीहै। भ्रातृ-
द्वितीयाका सिद्धान्त यहीहै कि बहन भाईमें सद्भाव और स्नेह

थहै। सहोदर सहोदराका सद्भाव अनुशीलन होकर पारिवारिक भ्रातृभगिनीभाव, फिर जातिगत भाई वहन भाव, और इसके परिणाममें सर्वजनीन भ्रातृभगिनीभाव उत्पन्न हो, इन भावोंकी शिक्षा देनाही भइयादोयजका अभिप्राय है।

जैसे नक्शेको देखनेसे पृथ्वीका आकार समझा जाताहै, और अक्सी तस्वीरको देखनेसे मनुष्यकी सूरत जानीजातीहै, वैसेही इस भइयादोयजसे महर्षियोंके विश्वजनीन सद्भावका बोध होताहै। इस भइयादोयजके दिनही मानों हम भाई वहनके मोलको जानतेहैं और समझतेहैं कि सबही सबकी भलाई करनेकेलिये परिश्रम करनेको आयेहैं। समस्त जाति और समस्त संप्रदायोंके मनुष्योंको उचित है, कि भइयादोयजको ग्रहण करें। यह त्योंहार विश्वव्यापी प्रेमका संकेत है।

यम यमुनाके उपाख्यानसे वहुतसे लोग इस भइयादोयजको कुसंस्कार पूर्ण समझते और इसको त्याग करना चाहते हैं, परन्तु ऐसे लोग नहीं समझते कि इस उपाख्यानमें कैसी सहृदयता भरी हुईहै। महर्षिगण निष्काम प्रेमको अत्युत्तम समझते और उसके साधके थे। उन्होंने जिस रीति और जिस विधिमें निष्काम स्नेह और हितको देखा, उसहीकी पूजा की। उन्होंने देखलियाथा कि भगिनीका हृदय निःस्वार्थ प्रेमका धाम है। वहनही है, जो अपने आपेको भूलकर भाईको प्यार करसकतीहै। इसी कारणसे, भगिनीका गौरव वढ़ानेकेलिये उन्होंने यम व यमुनाके सच्चे उपाख्यानको इस त्योंहारमें मिलादिया। यमुना यमकी वहन है, जि-

सके वहन है वही भाई वहनके हृदयकी ममताको समझ सकताहै, यही कारण है, जब निःस्वार्थ बहन मंगलकी चाहनासे एक वर्ष पीछे भ्रातृस्नेहसे पूर्ण हो, भ्राताके माथेपर टीका लगातीहैं; तब उस निठुर कठोर सर्व संहारकारी यमके हाथसे, अत्यन्त कठोर यमदंड नीचे गिरपड़ताहै और उसका हाथ कॉपताहै। जिसके बहन है, वह ऐसा कार्य नहीं करसकता जिससे भगिनीके हृदयमें पीड़ा हो। जिसके वहिनें होंगी वह किसीको, वहनके प्राणसमान भइयाको किसी भाँति नहीं छीन सकता; उपरोक्त बातको भली भॉतिसे समझानेकेलियेही भइयादोयजमें यम और यमीका उपाख्यान लिखा गयाहै, या सन्निवेशित कियाहै। प्यारे भाई और वहनों! वताओ तो ऐसी कौनसी जाति है जो अपनी वहनका इतना गौरव करतीहै।

प्राचीन समयमें वहनका वड़ा गौरव था। एक समयमें एकही वार नहीं, वरन, अनेक समयमें, अनेक वार भारतीय भगिनी कुलका गौरव हुआहै। जिससमय पणिगणने इन्द्रकी दूती सरमाके साथ भाई वहनका सम्बन्ध जोड़ाथा, तव भारतीय भगिनीका महान्गौरव हुआथा। जिस दिन उड़ीसा देशके श्रीजगन्नाथ मंदिरमें भाई वहनकी पूजा प्रतिष्ठित हुईथी, उस दिन भारतकी वहनोंके लिये वड़े भारी गौरवका दिन हुआथा और उस समयभी भारत भगिनियोंका वड़ा गौरव था। जव ब्रह्मर्षि और महर्षियोंने " स्नेह च माता च भगिनी च यत्र " कहकर पुकारा था। थोड़ाही समय हुआ, जब राजपूतानेमें राखी वॉधनेकी रीति विशेषतः प्रचलित थी. जब हिन्दू नारीकी दी हुई राखीको आदरके साथ लेकर

मुसलमानगणभी उनके धर्मभ्राता होते और सगे भाईकी नाईं अपनी धर्म वहनके धर्म, सन्मान, और गौरवकी रक्षा करनेकेलिये, अपने प्राण तक दे डालतेथे, उस कालभी भारतकी वहनोंका गौरव आकाश तक पहुँचा हुआथा। सबसे पहले जिस दिन वहनोंके सन्मानकी रक्षा करनेकेलिये महात्मा ऋषिमुनिगणोंने "भइयादोयज" का त्योंहार नियत करके भाई वहनको परस्पर एक दूसेरकी पूजा करनेकी आज्ञा दी, उस दिन भारतकी इन वहनोंका गौरव रवि सहस्रकिरणोंके साथ मध्याह्न गगनमें विराजमान होरहाथा। यदि निष्काम स्नेहके अनुशीलनको ही भगिनीका भगिनीत्व समझाजाय तो, यह भइयादोयज उसी निष्काम स्नेहकी सिखानेवाली है।

इस भारतवर्षसे आजतक भगिनीका भगिनीपन लोप नहीं हुआहै। आज तकतो भारतकी वहनोंमें भगिनीका हृदय विराजमान है! क्या देखना चाहतेहो? अच्छा! हिन्दूके घरमें देखो! भ्राताके पास खाने पीनेका सहारा नहीं, न रहनेकेलिये घरमें स्थान है! भाई साहव कृपाकी दृष्टिसे भी नहीं देखते, परन्तु इस परभी भगिनीका स्नेह अटल भावसे विराजमान है। लो दूसरा देखो! भइयाने वहनका तिरस्कार करके अपमान किया, हृदयको जलानेवाली वातेंभी अनेक कहीं, परन्तु वहनके जीपर मैलका नाम तक कभी नहीं। देखना चाहतेहो तो, इधरको भी ध्यान दो कि भाई तो लखपती है और वहन घर घरसे टुकड़े मांगतीहै, इस अवस्थामें भी भइयाके साथ उसका वही स्वर्गीय प्रेम है। भगिनीजातिकेलिये दुःखदाई होने परभी यह वड़े भाग्यकी वात है। माताका स्ने-

है, भार्याका प्रेम और कन्याकी भक्ति स्वर्गीय पदार्थ हैं; परन्तु इन पदार्थोंमें थोड़ी बहुत अदला बदलीभी है, तथापि भगिनीके स्नेहका दान है परन्तु प्रतिदान नहीं। जिसने इस संसारमें आकर स्नेहका वितरण किया, उसीकेलिये स्वर्गमेभी स्नेह संचित रहताहै। चाहनेसे जितना सुख मिलताहै उतना चाहे जानेसे नहीं प्राप्तहोता। चाहनेवालेकेही हृदयमें स्वर्ग विराजमान है, दूसरा स्नेहका पानेवाला मनुष्यका मनुष्यही रहताहै। हिन्दू नारीके हृदयमे स्नेहका न रहना बड़ी कलंककी बात है। आज मैं इस बातका प्रतिपादन नहीं करती, वरन, नारीजातिको वहनका स्वार्थहीन स्नेह सिखानेके लियेही भइयादोयजके त्योहारका प्रचार हुआहै। इसीसे कहाजाताहै कि भगिनी जीवनमे [दुःखकी बात होनेपर भी] बडा सौभाग्य है और इस बातको प्राचीन महात्माओंने भी मानाहै।

प्राचीन महात्माओंने भगिनीजातिको स्नेहके आशीर्वाद में भइयादोयजका दान दियाहै। वहन! यदि वर्षभरके पीछे प्यारे भइयाको देखना चाहती हो, यदि अपने हाथसे उसकी सेवा शुश्रुपा करके सुखी होना चाहती हो, तो भइयादोयजको ग्रहण करो। जो भाई वहनके जीवनका मोल जानना चाहतीहो, और भ्रातृसम्पर्कीय मनुष्योंको सगे भाइयोंकी नाईं समझना चाहतीहो, तो भइयादोयजको ग्रहण करो। यदि सामाजिक भ्रातृभगिनीभावमें वँधा चाहतीहो, यदि केवल स्नेह करकेही सुखी होना चाहती हो, तो भइयादोयजको ग्रहण करो। यदि विश्वमाताके पुत्र और उसकी कन्याओंको भाई वहन समझकर स्नेहकी आंखोंसे देखनाचाहती और नि-

ष्काम सद्भाव तथा स्नेहका अनुशीलन करना चाहतीहो तो सबसे पहले भइयादोयजका अभ्यास करो। प्रेमिक ऋषि, मुनि और महत्माओंके पवित्र संकेतानुसार चरण धरो तो सहजसेही उस स्थानमें पहुँच जाओगी, जहाँ तुम जाना चाहतीहो। तुम्हारे वहां पहुँच जानेसे महात्माओंका स्नेहाशीर्वाद सफल होजायगा।

भइयादोयजके दिन बहनोंको संपूर्ण जगत भ्रातृमय ही दीखताहै। भइयादोयजके भ्राताओंमें कोईभी पराया नहीं वरन सबही सहोदर होतेहैं। भाई जुदे जुदे होजातेहैं, भाई भाई परस्पर बहस कियाकरतेहैं, परस्पर गालीगुफ्तारी करतेहैं, परन्तु वहनके साथ इन बातोंका कोई सम्बन्ध नहीं, वहन तो सबही भाइयोंका मंगल चाहा करतीहै। भगिनीके गोत्रका विचार नहीं कियाजाता, जाति नहीं देखीजाती, केवल अनुग्रहके साथ स्नेहपूर्वक रोलीका तिलक माथेपर कढ़वाना होताहै। केवल विश्वजननीका स्नेहामृत और आत्माको पुष्टिका देनेवाला खाद्य ग्रहण करना होताहै, ऐसा न हो तो भाईका अमंगल होताहै। भइयादोयजके दिन परायेको अपना करलियाजाताहै। हिन्दू धर्म बारम्बार पुकार कर कहताहै कि "गैरको अपना बनाना कोई हमसे सीखे" इसी कारण, भइयादोयजके दिन वहनको तयेरे, चचेरे और मौसेरे इत्यादि भाई एकहीसे होतेहैं और वह सबको अपना सहोदरही जानकर टीकालगातीहै।

भइयादोयजके दिन समस्तजातिके भाई किसीभी जातिकी वहिनसे टीका ले सकतेहैं। भगिनीके हृदयके स्नेहको ग्रहणकरनेवाला मनुष्यही भइयादोयजका टीका लेसकताहै। जो भइया होना जानताहै और भाईके कर्तव्यको पहचानताहै, वही

भइयादोयजके दिन वहनसे टीका करासकताहै। जो वहनका भाई है, जिसके सगी वहन है, जिसने एक दिनके लियेभी सहोदरा वहनका मुख देखाहै, वह उसी भायपके द्वारा प्रणोदित होकर समस्त भगिनियोंसे टीका लगवा सकताहै। जिसके बहन नहीं होती वहभी इस भइयादोयजके दिन टीका लगवाकर बहनवाला होजाताहै। जो (विश्वजननीका) मात्रभक्तपुत्रहै, जो मन बचन कायसे भइयाका होगयाहै, वह चाहै जिस देशका मनुष्यहो और चाहै जिस जातिमें उसका जन्महुआहो, वह वरावर भारतवासिनी वहनसे भाईचारेका टीका लगवा सकताहै। हिन्दू, आर्य, बौद्ध, जैन इत्यादि जातिके मनुष्य, श्रेणीबद्धभावसे खडेहोकर, भइयादोयजका टीका लगवा सकतेहैं। हिन्दू लोगोंका गार्हस्थाश्रम अपने लिये नहीं, वरन समस्त जगत्के लियेहै। हिन्दुओंकी भइयादोयज केवल हिन्दुओंके लिये नहीं, वरन सम्पूर्ण सम्प्रदायों के लिये है। यदि समस्त सम्प्रदायोंमें विधिपूर्वक भइयादोयजका अनुष्ठान होतो उसकेही द्वारा सम्पूर्ण संसारमें सद्भावका प्रचार होसकताहै।

महाप्राण सनातन धर्मावलंबी हिन्दुओंकी यही भइयादोयज है। भइयादोयज "विश्वजनीन प्रेमका संकेत बतातीहै" इस सम्बन्ध में, अपनी क्षुद्र शक्तिके अनुसार, जो कुछ अच्छा और उचित समझा, वहीं सम्पूर्ण भाई और वहनोंको भेट किया। यदि इसमें कुछ भ्रम, अन्याय या प्रमाद रह गयाहो, तो उसको प्राचीन महर्षियोंकी भूल न समझ प्रत्युत मेरी भूल समझना चाहिये।

जो महाशय मेरे गुरुजन तुल्य हैं और जो महात्मा मुझे अपनी कन्यावत् मानतेहैं, उन्हें समझ लेना उचित है कि मुझ-

सी अयोग्य और अबुद्धि अवला इस गंभीर गहन आशय पर लिखते हुए पग पग पर धोखा खायगी, ऐसा विचार कर, वे समस्त विद्वान् मुझको क्षमा करेंगे इसके अतिरिक्त जो मेरे भाई वहन हैं, वह तो, भइयादोयजके नातेसे, क्षमा करहीदेंगे। तथापि यह सबहीको जान लेना उचित है कि मैंने इस निबंधमें जो कुछ भी लिखा है, वह केवल सत्य और कर्तव्यकीउत्तेजनासे, विद्वेष या उपदेश देनेके आशयसे नहीं। भइयादोयजके सम्पूर्ण भाई वहन मुझको अपनी छोटी वहन समझें।

मइया विश्वजननि! एक वार अपनी चरणरज देकर अब इस भइयादोयजको सफल करो। भइयादोयजका जो कुछ उद्देश्यहै वह विश्वव्यापी सद्भाव तुम्हीं सिखा दो! मैं सदा जागती रहकर यह स्वप्न देखा करतीहूं कि तुमसे समस्त संसार पूर्ण होगया, मट्टीका बनाहुआ जगत् प्रेमका जगत् बन गया। तुम्हारे सम्पूर्ण लड़का लड़की वैमनस्य, राग, द्वेष, लोभ, मोह आदिको भूलकर सवही भाई वन गये और समस्त नारीही भगिनी होगई हैं। मैं नित्य यही स्वप्न देखती हूं कि हम समस्त तुम्हारे प्रेमरूपी समुद्रमें डूब गयेहैं, तुम्हारे पुत्रगण सत्य, ज्ञान, न्याय और धर्मके आदर्श बनकर तुम्हारी पुत्रियों के धर्मज्ञान, तथा पवित्रता और प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेमें, सहायक हुएहैं। तुम्हारी कन्यागण! तुह्मारी धर्मपरायणा विद्यावती सती, और लक्ष्मीरूपिणी पुत्रियाँ-तुह्मारे पुत्रोंके-शरीर, मन और आत्माका मंगल मनानेके अभिप्रायसे उनकी परिचर्या करतीहैं। सवही यथार्थ भाई वहन होकर, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े इत्यादिके साथ भी ममताका व्यवहार करतीहैं। तुह्मारे जगत्का मंगल होनेसे सब लोग अपना मंगल समझ-

तेहैं तुम्हारे प्रेम समुद्रमें हम सबनें अपने आपको डुबादिया मइया ! मेरे इन नित्यके स्वप्नोंको कब सफल करोगी! यद्यपि तुम्हारे जगतके मध्यमें अणु या परमाणुके समान हूं, तथापि तुम्हारे निकट मैंभी स्नेह और आदरकी सामग्री हूं। तुम मेरेलिये भी परिश्रम कर रहीहो, अपनी स्नेह भरी कोर मेरे लियेभी तुमने पसार दीहै। मइया! इसही कारणसे तुममें हमारा अधिकार है। इस अधिकारके नातेसे ही मइया! मैं तुमसे भीख मॉगतीहूं। तुम्हारे ध्रुव, प्रह्लाद, सुदामा, चैतन्य, बुद्ध, मसीह, नानक आदि जिस प्रेमराशिका पानकर धन्य हुए और तुम्हारी मीरावाई, करमैतींवाई इत्यादि देवियॉ जिस प्रेमामृतको प्राप्त करके धन्य हुईथीं, उसी प्रेमामृतकी एक बूंद देकर इस पतितजातिका उद्धार करो ! अपने प्रेमरूपी समुद्रमें इस संसारको डुबादो !! मइया ! ब्रह्मर्षि और ऋषि मुनियोंकी चलाई हुई भइयादोयजके सिद्धान्तको अब तुमहीं सम्पूर्ण रूपसे सफल करो। अपनी इस भइयादोयजको मैं तुम्हारे चरणोंमें समर्पण करतीहूं, यह पूरीहो या अधूरीहो, तुच्छ-हो या जो कुछ भी हो, तुह्मारे आशीर्वादसे, तुह्मारी मंगलमयी इच्छाका विरोध न करे। तुह्मारी दीन सन्तान, इस समय केवल यही प्रार्थना करतीहै।

"प्रतीच्छ हे स्वस्य धनं स्वयं त्वं,

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोपि नमो नमस्ते"

सुभद्रा देवी।

मातृभूमि की पूजा

भगवानके अनन्त ऐश्वर्य्यको, हमलोग युग युगान्तरसे भिन्न भिन्न भाव और भिन्न भिन्न रूपमें, पूजा करतेआतेहैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें उन्हींकी सृष्टि, स्थिति और संहारिणी शक्तिकी हम लोग पूजा करतेहैं। वाग्देवी उन्हींके ऐश्वर्य्य की अधिष्ठात्री मानी जाकर हमसे पूजा पातीहै। सूर्य शशि और अग्निमें, उसहीकी ज्योतिका दर्शनकर, गङ्गा, जमना और गोदावरीमें, उनकी करुणाका प्रत्यक्षकर हमलोग उनकी भी पूजा करतेहैं। वटवृक्षमें, तुलसी कुंजमें, पत्थरमें, मिट्टीमें, घटमें और पटमें, उसही को अधिष्ठित मानकर उनकी आराधना करतेहैं। किन्तु मातृभूमिके रूपमें तो, कोई कभी उनकी अराधना नहीं करते! भारतसन्तान कितने भावोंसे उनकी पूजा करगयेहैं उनकी संख्या नहीं है। नन्द यशोदाने पुत्रभावसे, देवी रुक्मिणी ने पतिभावसे, अर्ज्जुन ने सखाभावसे, रामप्रसादने मातृभावसे, गोस्वामी तुलसीदास ने राजाभावसे, शङ्कराचार्यने आत्मभावसे और चैतन्य देवने प्राणेश्वर प्राणेमभावसे, उनकी आराधना की। उनके उद्देश्यसे ही अभ्रभेदी हिमालय और क्षुद्रशैल गोवर्द्धन, महाकाय वटवृक्ष और क्षीणकाय तुलसी, इस देश में पूजित होरही है; किन्तु, क्या किसी भारत सन्तानने कभी मातृभूमि के रूपमें भी उनकी पूजा कीथी? जो प्रत्येक परमाणुमें विद्यमान है, वह हमारी मातृभूमिमें भी व्याप्त है; तथापि हमलोग कभी उनको उक्तभावसे पूजा नहींकरते।

सामाजिक अवस्थाके अनुसार, एवं देश, काल, भेदसे हिन्दू धर्ममें नए नए देव. देविओंकी पूजा प्रचलित होगईहै। जिस देवता का जो नाम हो, वा जिस पूजाकी जो पद्धति हो, सव, वह एक और अद्वितीय महेश्वर के उद्देशमें ही अनुष्ठित होरहाहै। तथापि शास्त्रमें विशेष देवता की पूजासे विशेष फल लाभ होनेकी वात अवश्यही, कही गईहै। वर्तमान युगमें सर्व मङ्गलमयी, सवार्थसाधिका, सर्वैश्वर्यरूपिणी, जननी जन्मभूमिकी पूजाकी आवश्यकता हुईहै। मातृगोदमें खेलनेके साथही, जिसके फल, जल, से हमलोगोका शरीर पुष्ट हुआहै जननीकी भांति जो हमलोगों को अङ्कमें धारन किये हुएहै, अन्तमें जिसकी गोदमें हमलोगों को चिर-विश्राम करना होगा, करोडों देवी, देवताओंके उपासक होकर भी, हमलोग उस अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, जन्मभूमिकी पूजा करनम उदासीन होरहेहै, यह कार्य कदापि हमलोगों के धर्म भावका परिचायक नहीं होसकता। अव यह शुभ अवसर आगयाहैं, शान्त और समाहित चित्तसे, हमलोग देह और मनको पवित्रकर, एकवार, एक साथ, जननी जन्मभूमिकी पूजामें प्रवृत हों।

भक्तवृन्द अपनी रुचिके अनुसार निज आराध्य देवके रूपकी कल्पना कर, उसका ध्यान करतेहैं। आइए! हमलोग भी एक वार जननी भारतभूमिके रूपका ध्यान करे। हिमाचल उनके शिरका मुकुट है, जान्हवी उनका कण्ठहार है, घनश्याम तरुराजि उनके विचित्र दुकूल हैं, मृगमद, मलयजसे उनका वर वपु सुगन्धित है, महासमुद्र उनके अनुपम चरणयुगलको धोकर और लक्ष राग (माहवर) से रञ्जित कर अभिराम कलकल नादसे उनकी वन्दना कररहा है। नव

विकाशित तामरस उनके श्रीकण्ठकी शोभावर्द्धन कररहाहै, एवं नवोदित भानु किरणसे उनका सुचारु मुखमण्डल उद्भासित होरहाहै 'ऐसी भुवनमनमोहिनी' देवी जिनकी जननी है, क्या वे लोग सचमुचही चिरकाललों माताको विस्मृत होकर रहेंगे? उसकी आराधना, उपासना और वन्दनामें जो सुख है, जगत के और किसी काममे वह सुख कदापि प्राप्त नहीं होसकता। किस महामंत्रसे उनकी पूजा करनी होगी, वा उनकी पूजा में कौनसी वस्तुओंका प्रयोजन है? जननीके सुसन्तान उसका विचारकरे, संक्षपमें यह कहनाही बहुत होगा कि सुयोग्य सन्तान निज माताको जो कहकर सम्बोधन करतेहैं, वहही उनकी पूजाका मंत्र होगा और सुयोग्य सन्तान जिस प्रकार माता को सुखी, वा उसका मुख उज्ज्वल करनेके हेतु, जो करतेहैं, वह ही उनकी पूजाका एकमात्र उपचार होगा। हमलोगों के पास जो कुछ है, विद्या, बुद्धि, धन, मान, वाक्यादि सबही उनकी पूजाके उपकरण रूपमें अर्पित हैं। हम लोगोंके घरघरमें, उनकी स्नेहमई प्रतिमा, विराजमान हो। हमलोगोंमें जो दरिद्री है, उनको भी मातृपूजाके लिए चिन्तायुक्त न होना होगा। फारसके एक सम्राट, एक बार, घूमने निकलेथे। सहसा, एक किसान उनके सन्मुख आया। खाली हाथोंसे राजदर्शन को जाना ठीक न समझ वह राजाको भेट देनेके लिए एक अञ्जलि जल ले, सम्राटके समीप जा उपस्थित हुआ। प्रबल प्रतापी ऐश्वर्य के अधीश्वर सम्राटने सरलचित किसानकी अकपट राजभक्तिको समझके, उस तुच्छ जलाञ्जलिको आदरसे ग्रहण किया। धनहीन, बलहीन, होने परभी और कुछ नहीं तो उक्तरूप भक्तिपूत

जलाञ्जलि जननी जन्म भूमिको देनेकी शक्ति अभी हमलोगों में अवश्यही हैं। मातःस्मरणीया महारानी अहिल्याबाई जब तीर्थाटनको जातीथीं तब मार्गके दोनों ओर, मैदानमे, सरोवरके तटमें वृक्ष बीजों का रोपण करतीजातीथी। वह कहतीथी कि यह बीज जब वृक्षरूप धारण करेंगे, तब कितनेही पक्षि इस पर अपना आश्रय बनायेंगे, कितनेही पथिक इसकी छाया में विश्राम लाभ करेंगे, कितनेही क्षुधार्त मनुष्य इसके फलसे तृप्त होंगे, इसही लिए मेरा परिश्रम निष्फल न होगा, यदि प्रत्येक व्यक्ति हमलोगोंमें राज्ञी अहिल्याबाईके उक्त वाक्यको स्मरणरक्खे, तो जननी जन्मभूमिकी पूजा सहजमें सम्पन्न होसकतीहै। हमारे कविगण उसके यशोगीत का गान करें, चित्रकार उसका चित्र बनावें शिल्पकार और व्यवसायीगण उसके सुख और शोभाको बढावें, विद्वान, मूर्ख, धनी, दीनादि सवही निज निज सामर्थ्यानुसार जननी जन्मभूमिकी पूजा में प्रवृत्त हों। जननी जन्मभूमिका कार्य जानकर जो एक क्षुधार्तको अन्नदान करतेहैं, एक व्याधिग्रस्तको व्याधिमुक्त करतेहैं, एक मूर्खको विद्यादान करतेहैं, जो एक मुद्राद्वारा स्वदेशका उपकार करतेहैं, वह ही महानुभाव जननी देवीकी पूजा कररहेहैं। इस पूजामें जातिभेद नहीं है, धर्मभेद नहीं है, सवही कोई इस महापूजाके अधिकारी होसकतेहैं पूरब पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण, सर्वत्रही जननीकी मूर्ति विराजित है। भक्तगण जब चाहैं तब माताका दर्शन और पूजा कर जीवन सफल कर सकतेहैं।

प्रियपाठक ! आप चाहें साकारवादी हों अथवा निराकारवादी हों यदि आपने कभी अपने इष्टदेवता, माता,

पिता को गुरुरूपमें ध्यान कियाहो तो एक बार उनको जननी जन्मभूमिके रूपमें भी ध्यान कीजिए। भक्त भगवानको घट, पट में अन्दर, बाहर, सर्वत्र विराजित देख कृतार्थ होतेहैं। आपभी साधुजनसेवित, बहुपुण्यमयी भारतभूमिमें अपने इष्टदेवताको अधिष्ठित देखके धन्यहोइए। भगवान शङ्कराचार्यका कथन है कि "परमब्रह्मका दर्शन प्राप्तकरनेसे संपूर्ण संसार नन्दनवन, सकल वृक्ष कल्पवृक्ष, सकल वारिही गङ्गा–वारि, तुल्य जानपडेंगे। जननी जन्मभूमिको निज आराध्यदेवताके रूपमें देखनेसे, स्वदेश नन्दनवन और प्रत्येक स्वदेशवासी देव देवी, परिणत होगें। हाय ! अब वह दिन कब आवेगा, जिस दिन भारतवासी भगवानको मातृभूमिके रूपमें और मातृभूमिको भगवतमूर्तिमें दर्शन करेंगें। भगवानके नाम पर आत्मसमर्पण करना इस देशके इतिहासमें दुर्ल्लभ नहीं हैं। किन्तु उनकी प्रत्यक्षभूत मूर्ति मातृभूमिके नाम पर आत्मसमर्पण करना, हमलोग बहुत दिनोंसे भूल गयेहै। कौन उसको पुनरुज्जिवित करेगा। भारतके जिन साधु, सन्तानोंने भगवानके एक एक ऐश्वर्यको देवरूपमें पूजा करने की शिक्षा दीथी, वे लोग आज कहां हैं? क्या ऐसा कोई नहीं है जो इस देशमें मातृभूमिकी पूजा प्रचालित करसके? शास्त्रमें कहा है कि भगवान भक्तोंकी आराधना से प्रीत होकर अपनी एक एक विशेष मूर्तिको प्रगटित कियाकरतेहैं। क्या इस देशमें ऐसा कोई महापुरुष नहीं है जो निज तपोवलसे भगवानको अवतारित करसके? भगवान भारतवासी ज्ञान में हो वा अज्ञानमें हो, युग युगसे तुम्हारीही बहुविध शक्तिओंकी पूजा करते आरहेहैं। उसही पूर्व पुण्य वलसे तुम अवतीर्ण होजाओ

तुमको मातृभूमिके स्वरूपमें एवं मातृभूमिको तुम्हारे स्वरूप में पूजितकर हम लोग कृतार्थ हों * ।

एक प्रवासिनी बङ्गमहिला ।

* 'प्रवासी' नामक मासिक बंगलापत्रके श्रीयोगन्द्रनाथ बसुमहाशय के लेखका मर्मानुवाद ।

श्री भ्रमरगीतम् ।

१

मधुप ! कितवबन्धो ! मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुच-विलुलित-माला-कुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहति मधुपतिस्तन् मानिनीनाम्प्रसादं
इह सदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

१

मधुप ! कितवबन्धू ! छू, न, पा, सौतिनीके
कुच लटकत माला केसरी मूंछ से मो ।
बहत मधुपती वा मानिनीके प्रसादै
यह सभहि विगोयो दूत जाको तु ऐसो ॥

२

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वे।
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।
परिचरति कथं तत् पादपद्मन्तु पद्मा ?
ह्यपिवत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥

२

तुक अधर सुधा कों मोहिनी कों पिवाय

सुमन सरिस त्योंही छांडहीं तो समान ।
परिचरतजु कैसे पादपद्मै सुपद्मा ?
अहह ! मन हरो है उत्तमश्लोकवाणी ।

२

क्वमिह बहु षडङ्घ्रे ! गायसि त्वं यदूना
मधिपति मगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ?
विजय सखसखीनां गीयतान्तत् प्रसङ्गः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ।

२

इत कित बहु भौंरा ! गावतो तू यदू के
अधिपहि घरहीनों सामने तू पुराने ?
विजय सख सखीसों गाइयो तो प्रसङ्गै
कुच रुज मिटआयो चाहतीं चाह पूरें ॥

४

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः ?
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भेण याः स्युः ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का ?
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्द : ।

४

दिवि भुव,र पताले को तिया तो न पावै ?

कपट रुचिर हासे भ्रू विलासे सुहावै।
चरण रज उपासे जासु लक्ष्मी हमी का?
अहह कृपण काजें उत्तम श्लोकशब्द।

५

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारो
रविनय विदुषस्मे ऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका:
व्यसृजदकृत चेता: किन्नु संधेयमस्मिन्?

५

तज सिर पर पांवे जानती चाटुकारै
अनुनय बहु जाने कृष्ण सन्देश लायो।
जिन हित तज दीनेऽपत्त्यपत्त्यन्यलोकै
तिन हम विसरी हैं वे मनी कीजिये का?

६

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजित: कामयानाम्।
बलिमपिबलिमत्वा ऽवेष्टयद् ध्वांतवद्य
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्तज स्तत्कथार्थ:।

६

बधिक समवधो है वालिकों लालची ने
तियहि करि कुरूपा स्त्री वशी चाहती कों।
बलिकिहु वलि खाके बांधदो काक जैसे
रहु असित मिताई, पै कथा नाहिं छूटै ।

७

यदनुचरित-लीला कर्ण-पीयूष-विप्रुट्
सकृददन-विधूत-द्वन्द्व-धर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीन मुत्सृज्य दीनाः
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्य्याञ्चरन्ति ।

७

जिहि सुचरित लीला कर्ण पीयूष विन्दु
तनक चखि गये हैं द्वन्द्व के धर्म नाशे ।
झपटि घर कुटुम्बै दीन को छांडि दीन
बहुत इह विरागी भिक्षुचर्य्या चरें हैं ॥

८

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ।
दहृशु रसकृदेतत्तन्नख-स्पर्श-तीव्र-

स्मर रुज उपमन्त्रिन् ! भण्यता मन्यथार्त्ता ॥

८

सच सम कपटी की बात श्रद्धा करी है
बधिक सुर न जानें कृष्ण कान्ता मृगी ज्यों।
लखि बहु नख लागे तीव्र कन्दर्पपीडा
अहह ! जु उपमंत्री ! कीजिये और बातें ॥

६

प्रिय सख ! पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं ?
वरय, किमनुरुन्धे ? माननीयोऽसि मेऽङ्ग !
नयसि कथ मिहास्मान् दुस्त्यज द्वन्द्वपार्श्वं ?
सतत मुरसि सौम्य ! श्री र्वधूस्ताकमास्ते।

६

प्रिय सख ! फिर आयो मीत ने का' पठायो ?
चहहु कहा' कहै तू ? मानती' है हमारो।
किमि हमहि पठै है पास ना और छोडे
सतत उर सुहाये श्रीवधू पास हैगी ॥

१०

अपि वत मधुपुर्य्यां मार्य्य पुत्रस्स आस्ते ?
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ?

कश्चिदपि ! स कथा नः किङ्करीणाङ् गृणीते ?
भुज मगुरुसुगन्धम्मूर्द्ध्न्यधास्यत् कदा नु ?

१०

कहूं अब मथुरामें नंदको पूत है गो ?
सुमरत पितु गेहै गोपबन्धू सुहाये ?
कबहू हम हू दासी बात कों भी करै है ?
भुज अगुरु सुगन्धी धारि है सीस को लों ?

श्रीराधाचरण गोस्वामी
श्री वृन्दावन।
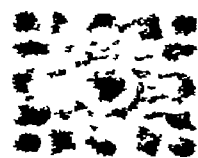
अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

धर्म के शत्रु–किसी धर्म के विरुद्ध जो मनुष्य हो सकते हैं वे साधारण रीति से दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं । एक तो वे जिन्हें किसी दूसरे धर्म का हठ हो, जिन्हें यह दृढ़ भ्रम हो कि वास्तव सत्य का अधिकार उन्हीं को है, और सब मनुष्य अज्ञान में लिपटे हैं, इससे दण्डनीय हैं । उन मनुष्यों का ज़माना तीन सौ वर्ष हुए योरोप में और भारतवर्ष में भी बीत चुका । आज कल जो लोग धार्मिक स्वतन्त्रता को दबाने में अग्रणी हैं, वे वही हैं जिनके लिए जगत् सन्देहमय है, जिनके कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं हैं अर्थात् जड़वादी और निरीश्वरवादी वैज्ञानिक और चार्वाक । इन्हें पहले अपनी नास्तिकता में एक प्रकार की आस्तिकता थी अर्थात् जैसे धर्मवादियों को अपने धर्म का हठ था, वैसे इन्हें भी धर्म के ठगविद्या होने में विश्वास था, अपनी समझ को वे समझ समझते थे, और अपने पैरों को वास्तव सत्य पर टिका हुआ मानते थे । अब जैसे धर्म की हठात्मकता टूट गई है वैसे चार्वाकों की दृढ़ता भी टुकड़े टुकड़े हो गई है । प्रकृतिवादी ईश्वर को कल्पना कहते थे, किन्तु उनके जड़विज्ञान की प्रकृति भी अब पर्दे में छिपती जाती है । दार्शनिक और वैज्ञानिक सन्देह का, अज्ञानवाद का, पूरा आचार्य; परलोक में ही नहीं, किन्तु जड़विज्ञान के राज्य में भी व्यापक अनभिज्ञता वाद का पोप, इङ्गलैण्ड के मन्त्री और दार्शनिक मिस्टर बालफोर को समझना चाहिए । बृटिश एसोसिएसन के

सभापति बन कर (जिसके सभापति ने गतवर्ष विज्ञान और विश्वविद्यालयों के बढ़ाने का प्रबल पक्ष किया था) उनने कहा है कि हमारा जानना यही है कि हम कुछ नहीं जान सकते। "मनुष्य जातिका उन पदार्थों का ज्ञान जो उसके चारों ओर हैं अधूरा ही नहीं किन्तु बिलकुल ग़लत है। यह कहना आश्चर्य दायक होगा कि कोई पांच वर्ष पहले तक मनुष्य जाति, बिना अपवाद के, भूल, अज्ञान और भ्रम में जीती और मरती रही है, और वे भ्रम दूर के या अनजान पदार्थोंके विषय में नहीं थे, परमेश्वर की या दैव की कल्पना में नहीं थे, किन्तु उन सीधी सादी बातों में भ्रम है जिनमें साधारण बुद्धि रोज़ रोज़ निश्चिन्त, सन्तुष्ट, और अनजान बन कर घूमती है" सत्य है। इसी से तो बालफोर मिनिस्ट्री के कोई सिद्धान्त नहीं होने पाते क्योंकि उसका अध्यक्ष "सन्देह की दार्शनिकता" का दार्शनिक है!

_

शिक्षा का सुधार कैसे होगा? जैसे भारतवर्ष के सब प्रतिनिधियों के विरोध पर यूनिवर्सिटी एक्ट चल गया है, वैसे वेल्सके विरोध पर भी वहां की शिक्षा उस देश से अनभिज्ञ थोड़े से पादरी और लार्डों के आधीन करने वाला एजुकेशन एक्ट हो गया है। वेल्स के निवासी इस पर क्या करना चाहते हैं इसका आभास मिस्टर लीयड़ जार्ज एम॰ पी॰ ने विलियम स्टेड़को एक भाषण में यों दिया है—"सरकार इस बिल से जगत् को और हम को सूचित करती है कि हम शिक्षा के प्रबन्ध के काममें विश्वास के पात्र नहीं हैं। तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है कि देशके मनुष्य शिक्षाके प्रत्येक कामसे

अपने को अयोग्य समझकर पृथक् हो जावें ? यों अपनी अयोग्यता के विषयमें सरकारी आज्ञा का राजभक्तिपूर्वक पालन करते हुए सारा बोझ हम अफसरों और सरकारी मनुष्यों पर डाल देंगे । किन्तु उनके पास प्रत्येक काम को राई रत्ती करने के लिए न मनुष्य हैं न धन है । उनने समझा था कि हम उनकी रागों के लिए रुपया देते जांयगे, और कुछ लोग जैसा हमारे रुपए को लुटाएंगे, और भला बुरा जैसा हमें पढाएंगे, वैसा हम सह लेंगे । किन्तु यह एक् हमारे यहां चलेगा नहीं । तीन महीने में सब अध्यापक, स्कूल, और कमेटियां तोड़ दीं जांयगी और प्रत्येक गिरजाघरमें एक स्कूल खोलकर पढ़ाई का काम जारी रक्खा जायगा । इस से यदि बालक पढने वालोंको किसी पढाईमें कमी भी होगी तोभी न्याय, स्वतन्त्रता, और जातीयता के साथ शिक्षा पाने से वे लाभ ही उठाएंगे" । यह प्रक्रिया ध्यान देने योग्य है ।

* *

रङ्ग की तुरङ्गी—नए नए रूप दिखाती जाती है । ट्रान्सवाल गवर्नमेन्ट में भारतवासियोंको दुःख मिलता है इस लिए बुड्ढे क्रूगर के विरुद्ध युद्ध किया गया था, किन्तु क्रूगरके उत्तराधिकारियों ने, स्टेड साहबके शब्दों में "वहां, भारतवासियों को बिछुओं से मारना आरम्भ किया है जहां क्रूगर कोड़े मारता था" । मिस्टर लिटनटन और भावनगरी की दीन और दबी प्रार्थना पर केप गवर्मेन्ट ने अच्छा अंगूठा दिखाया है । उधर अमेरिका फिलीपाइन टापुओं के निवासियों को पूरी स्वाधीनता देकर इस वर्ष में वह बात कर दिखाएगी जो इङ्गलेण्डने दो सौ में नहीं की, ऐसा प्रवाद उड़ा था, किन्तु इस रमणीय चित्रका एक दूसरा पृष्ठ

भी है । कुछ अमेरिकावासी पत्र कह रहे हैं कि फिलीपाइन को कुछ भी अधिकार देना स्वाधीनता के सिद्धान्तोंके विरुद्ध है । उधर एक नवजलधरश्याम काले हबशीने अमेरिका के एक पत्र में "अमेरिका के श्यामों का भविष्य" नामक लेख में बड़ी दूरकी तुरही बजाई है । वह कहता है कि श्वेतोंकी सब से बड़ी भूल अमेरिका में हमें स्वतन्त्रता का देना ही हुआ हम बीस वर्षकी स्वतन्त्रता के उपयोगसे उनसे अच्छे होगए हैं । योग्यता में और वंशपरम्परा में हम उनसे सदा अच्छे हैं और धर्म विचार भी हमारे उनके विचारों से बढ़े हुए हैं । वे घटते जाते हैं और हम बढ़ते जाते हैं । एक दिन अमेरिका हमारा हो जायगा । लायोयाग की लड़ाई से भीषण संग्राम संसार के इतिहास में कभी नहीं हुआ, और कई पौराणिक संग्राम भी इसकी भीषणता से दब गए । तोभी योरोप और विशेषतः इङ्गलैण्ड के मतामत ने जापान के विजय को तुच्छ ठहराना चाहा है । सत्रह दिन तक तीन मीलके चक्रव्यूह में लगातार लड़कर यदि वे कुरुपेटकिन को कैद न कर सके, तो तीन दिन भोजन न करने से उनकी योग्यता पर यह कलङ्क लगाना चाहिए कि वे सेन्टपीटर्सबर्ग तक जाकर जारपुत्र को ही न कैद कर लाए । इस युद्ध को पाश्चात्य मतने बहुत लघु बना दिया है । किन्तु आष्ट्रेलिया ने जापानी विद्यार्थी और व्यापारियोंके लिए अपना द्वार खोल दिया है । इधर "एशिया के सीमोल्लङ्घन" पर एशिया वासी मग्नमना हो रहे हैं । कहीं इस रङ्ग का भङ्ग न हो जाय ।

मुहावरा ।

मुहावरा शब्द अरबी है । अंगरेज़ी में इस को Idiom कहते हैं । बामुहावरा Idiomatic । बेमुहावरा unidiomatic । अंगरेज़ी में Idiom दो प्रकार का होता है; Grammatical Idiom और Phraseological Idiom । हिन्दी में भी मुहावरा दो प्रकार का है; (१) भाषा सम्बन्धी नियम और (२) योग रूढ़ि पद ।

(१) भाषा सम्बन्धी नियम प्रत्येक भाषा का स्वतंत्र होता है; जैसे, अंगरेज़ी में shall come वा will come अर्थात् " गा आवे " और हिन्दी में "आवेगा" होता है । अंगरेज़ी में कर्ता के बाद क्रिया तब कर्म आता है । हिन्दी में कर्ता के बाद कर्म तब क्रिया आती है । अंगरेज़ी में क्रिया और विशेषण में लिङ्ग, नहीं होता परन्तु हिन्दी में होता है ।

(२) योग रूढ़ि पद अर्थात् दो वा अधिक शब्दों का विशेष अर्थ सूचक पद । अंगरेज़ी में Phraseological Idioms व्याकरण के नियमों के बहिर्गत होते हैं परन्तु हिन्दी में नहीं । दृष्टान्त के लिए— "लगना" शब्द का अर्थ ।

(१) स्पर्श करना निकट मिलजाना To touch; come in con tact with. "लग लग कहूं तो ना लगे, मत लग कहूं लग जाय । (होंठ)

(२) मारना निशाना मारना To strike; hit.

(१) गेंद लग गई ।

(२) लग गई जूती, उड़ गई खे, फूल पान सी हो गई देह ।

(३) आग लगे तो बूझे जल से, जल में लगे तो बुझे कहो कैसे ?

(३) To stick or adhere to चिपक जाना

(४) To be attached, joined, united. शामिल होना, संयुक्त होना

(५) To be appended to, filed with. जोड़ दिया जाना

(६) To be fixed, planted, set क़ायम होना,

(७) To be plastered, applied प्लास्टर होना, ऊपर लगाना

(८) To fit with, suit. (फबना)

(९) To be arranged. put in order. क्रम से जमाना, तरतीब वार रखना जैसे असबाब लग गया।

(१०) To be related to, have relation with. सम्बन्ध रखना वह तुम्हारा कौन लगता है ?

(११) To give one's mind to; pay attention. ध्यान देना दिल लगाना।

(१२) To be attached to; fall in love with प्रीति हो जाना।

(१) आठ पकाऊं सोलह खाए, ले टिकया दर्जन को।
जाए, दर्जन के यार, नयना लग गये दर्जन सू।
(२) जी कहीं लगता नहीं, जब दिल कहीं लग जाय है।

(१३) To be entangled with, to form aliaison. वर्जित प्रेम रखना, लौंडी से लगा हुआ है।

(१४) To feel, perceie मालूम करना, सर्दी लगती है।

(१५) To be burnt, scorched जल जाना खिचड़ी लग गई।

(१६) To taste; relish स्वाद देना, यह अनार खट्टा लगता है।

(१७) To be galled, chaffed, sore. ददोड़ा हो जाना, जखम होना, कमर लग गई।

(१८) To affect produce an affect. प्रभाव डालना, नतीजा निकालना भाग लगाना।

(१९) To have sexual intercourse with. विषय करना।

(२०) To be employed, engaged. काम में प्रवृत्त होना, अपने काम सिर लगो ।

(२१) To be operative; to have effect; to influence. प्रयोजक अथवा फलदायक होना, दवा या बात लग गई ।

(२२) To move; melt, touch प्रभाव डालना, छूना (१) दिल में लगी । (२) लगी में और लगती है ।

(२३) To be set (on fire) अग्नि लगना, लगे पर पानी कहां ?

(२४) To be cut, wounded कट जाना या ज़खमी होना चाक़ू लग गया ।

(२५) To burn; smart जलन पैदा करना व तेजी करना मर्हम लगती है ।

(२६) To visit, haunt आना जाना । यहां शेर लगता है ।

(२७) To reach; come up to पहुचना लंगर डालना ।

(२८) To be moved or at anchor जहाज़ लगना ।

(२९) To be posted (a letter) चिट्ठी डालनी ।

(३०) To lie in ambush; to waylay. छुप के किसी की घातमें रहना, घात में लगा हुआ है ।

(३१) To hunt down रगेदना । बरस बरस दिन दुख लग रहा था ।

(३२) To attack, injure; harm. आक्रमण करना, हानि पहुचाना, घुन लग गया है ।

(३३) To be bent upon, resolved. किसी बात का दिल से चाहना, इन्हें ता घर जाने की लग रही है ।

(३४) To take root, to be rooted, fixed. जड़ पकड़ना, पोदा लग गया ।

(३५) To shoot, sprout, germinate फूट निकलना, फल फूल लगना ।

(३६) To seem, appear दिखलाई देना, तुम्हारा भाई सा लगता है ।

(३७) To be imposed, lired कर वसूल किया जाना, सब पर टिकस लगेगा ।

(३८) To cost; to be spent कुछ व्यय होना ।

(१) राम कहे कुछ न लगे, दुख दरिद्र भग जाय ।

(२) नये यार चिंदनी ले दे, नये यार चिंदनी ले दे !
पांच रुपैया तो दिये बालम ने, और लगे सो तू दे ले

(३९) To be staked दांव पे लगना ।

(४०) To be valued, to fetch a price. किसी कीमत का होना, क्या दाम लगाए? तुम क्या लगाते हो, मैं तो तीन से ज्यादा न लगाऊंगा ।

(४१) To be invested, laid out at interest, बिक्री होना ब्याजपर लगी है ।

(४२) To be sold, disposed of. सौ जिल्दें सर्कार में लग गई ।

(४३) To be shut, closed बन्द होना किवाड़ या आंख लग गई ।

(४४) To be displayed, exposed, on view. चौड़े खुला हुआ होना बाज़ार लग रहा है ।

(४५) to commence, शुरू होना ।

(१) वह कुछ कहने लगा मैं चल दिया ।

(२) लगा सो भगा ।

(३) सातवां महीना लगा, सो बालक डोले पेट,
भजो जिठानी ! कहो तो रहूं पलंग पर लेट,

रहूं पलंग पर लेट, काम न मुझ से होता, मेरे दिल
को झाड़ लगा है, यह बैरी ना होता?

(४६) To be trained, accustomed, or used to. नित्य प्रति कार्य में आया हुआ। यह रास्ता तो पांव लगा हुआ है।

(४७) To be used, made use of, to come into use. स्वार्थ लगना। काम मे आना।

(४८) To shrink, To be shrivelled, sunk, To draw in, go down सुकड़ जाना। मारे भूख के पेट लग गया।

(४९) To be spoilt to rot (fruit) लगा हुआ फल। खराब होना गलजाना।

(५०) To be accused falsely. मिथ्या दूषित होना काम करे नथ वाली, और लागे चोर कुटी के।

(५१) To grow familiar or intimate विशेष जानकार होना
कल लगे चले जो हम दम हम यार से ज्यादा
दुश्नाम देके झिड़का है मार से ज्यादा।

अयोध्याप्रसदा खत्री
मुजफ्फ़र पुर।

(आरा-प्रणेतृ समालोचक-सभासे स्वीकृत)

डाकू उपन्यास।

(१)

यह उपन्यास बाबू हरिकृष्ण (जौहर) का बनाया है और डेढ़ आने में नवीन पुस्तकालय के अध्यक्ष बाबू विशेश्वर सर्मा (काशी) इसे बेचते हैं। इसमें डाकुओं के उपद्रव तथा उन्हें समूल नष्ट करने वाले दारोगाजी के विचार का वर्णन है। अठ्ठारह पत्रे की यह पुस्तक है।

(२)

अर्बी फारसी के कठिन शब्दों के प्रयोग होने से इस पुस्तक का प्रसाद गुण नष्ट हो गया है किन्तु थोड़ा बहुत माधुर्य्य अवश्य है। इसके पढने से पाठकों को लाभ नहीं तो हानि भी नहीं होगी प्रायः आधुनिक हिन्दी के उपन्या सों से हानि की सम्भावना अधिक होती है अतएव इतनी बात लिखनी पड़ी।

(३)

और उपन्यासों के ऐसा इसमें असम्भव बातों का भी वर्णन हुआ है। जैसे दारोगा का नकली दाढ़ी लगाकर बुढ्ढा बनना और आयशः के भाईयों को धोखा देना। रात तो रात दिन को भी दारोगाजी नहीं पहचाने गये। और दाढ़ी फेकतेही दारोगा जी को दोनो भाइयों ने पहचान लिया। ऐसा धोखा देनेवाले विहार में तो नहीं दिखाई देते हैं।

एक डाकू का किसी अनजान व्यक्ति (बूढ़े) को रात के समय अपने घरमे आश्रय देना प्रकृति विरुद्ध सा ज्ञात होता है।

कोठरी में रहीम ने बूढ़े को किस अभिप्राय से कैद किया? यह बात छिपी रह गयी। इसको खोलना ग्रन्थकार को सर्व्वथा उचित था।

इस पुस्तक के नायक दारोगा है और नायिका आयशः है। नायक का तो वर्णन है किन्तु नायिका का पूर्ण रूपसे वर्णन नहीं किया गया है। वस्तुतः उसके डाकुओं के हाथ पकड़ने का दृश्य एक पृथक् परिच्छेद में वर्णन होना चाहता था। परिच्छेद विभाग इस पुस्तक का सन्तोष जनक नहीं है।

दारोगा ने आशयः के भाइयों पर जो कुछ एहसान किया उसे ग्रन्थकार ने इस वाक्य से धूल में मिलादिया (पृ० १७)

"अच्छा तो मैं साफ़ २ कहे देता हूँ और वह यह कि मै आपकी बहिन पर हज़ार जान से आशिक होगया हूँ इत्यादि' समार में कोई ऐसी जाति या समाज नहीं है जो ऐसी असभ्य बातें सहन कर सके अथवा बोल उठे। रण्डियों के घर में भी ऐसी बात एक भद्र पुरुष बोलने का साहस नहीं करता है।

डाकू उपन्यास नाम भी भद्दा सा मालूम होता है। प्रायः प्रधान घटना या पात्र के नामानुसार ग्रन्थका नाम रोचक होता है। इस का नाम यदि दारोगा होता तो उत्तम था।

टाइटिल पेज की अशुद्धियों की ओर ध्यान नहीं देता हूं। सम्भव है कि प्रकाशक ही ने उसकी सृष्टि की हो। अंग्रेजी चिन्हों का व्यवहार किस उत्तमता से हुआ इसका नमूना यह हैं—

डाकू।

(एक चित्त को लूटलेने वाला अद्भुत)

॥ उपन्यास ॥

वाक्य विभाग की तो ऐसी अशुद्धिया है कि पात्र का परि-ज्ञान भी कठिनता से होता है। पृष्ठ ७ पंक्ति ५ और ६। इसमें कहां से

कहां तक एक व्यक्ति की वाक्य धारा है ? यदि रहना के आगे विश्राम दे दिया जाता तो भ्रम नहीं होता । पृ० १७ इसमें बड़े भाई का वाक्य और दारोगा का वाक्य दूधपानी के ऐसा सम्मिलित हो गया है ।

"बुड्ढे की मुस्कुराहट ने उसको शर्म भी उभाड़ दी जिससे उसका चेहरा सुर्ख हो गया" (१४ वां पृष्ट) शर्म्म उभाड़नी कैसी ? और बुड्ढों के हसने पर रमणियों का लज्जित होना कैसा ? यदि प्रसंग वश इसकी कल्पना भी करली जाय तो शर्म्म से चेहरा सुर्ख होना तो नितान्त असंभव और कविसमय विरुद्ध है । क्रोध से काला और लाल होते सुना और देखा गया है । लज्जा में सकुचना पसीने में डूबना आदि होता है । यथाः—

गुस्से से मर्दुए का अजब हाल हो गया
गिर्गिट की तरह काला कभी लाल हो गया (जान साहब)
देखतेही अरक अरक हो जाय । आगे उस गुल के हो गुलाब ख़िजिल ॥
(गोया)

यदि लज्जा में लाल होने का प्रमाण ग्रन्थकार को मिलेतो प्रकट करें । मुझे यह असभव प्रतीत होता है ।

"तलवारें गले में लटकाये" (१ ला पृष्ठ) संसार भर के मनुष्य यह बात जानते हैं कि तलवार बगल मे लटकायी जाती है । गले में लटकाना कैसा ? यदि ग्रन्थकार का परतले से अभिप्राय है तो स्पष्ट कर देना था कि कोई इसमेंख्याति विरुद्धता दोष न लगाये । इनके अतिरिक्त पुस्तक में निम्न लिखित दोष भी हैः—

अशुद्ध	शुद्ध
इसका चर्चा नही होती हो	इसका चरचा नहीं होता हो
बरघराती समय	बराती समय
छाती उठाये	सीनाताने

चुहुल पुहुल	चहल पहल
आती वक्त	आते वक्त
बड़ी जोर	बड़े जोर
टांग दिया है	लटका दिया है
मरा खोर	शरा खोर
बड़ा दूर	बहुत दूर
जमा मर्द	जवां मर्द
भागते का राह	भागने की राह
ठाड़े मार २	ढाढ़े मार २
उभाड़ दो	उभार दो

"हालातों" हाल का बहुवचन हालत है यह हालातों कैसा?

जनाब यह तो नहीं हो सक्ती—जनाब यह तो नहीं हो सक्ता

मोहसब	मोहसिन

निम्न लिखित वाक्य में नें विभक्ति का प्रयोग खण्डान्वय से दूषित है।

उधर उस नौ जवान ने अपने दिल मे कहा याकिस्मत और शाही आदाव बजा लाकर दरबार से निकल गया। इस पुस्तक भर में अरबी फारसी के शब्द ऐसे चमकते हैं जैसे आकाश में तारे जैसे खानदान, रौनक, शाही आदाब, फरागत, मुसतहक़, आदि—

दृष्य, दुसरा और साक्षात् आदि शब्दों में लिखावट की भूल भी दिखायी पड़ती है।

पुस्तक भर में किसी चित्ताकर्षक घटना का उल्लेख नहीं है।

(४)

इस पुस्तक के प्रचार से हिन्दी भाषा की कोई भारी हानि नहीं है। यदि दूसरे संस्करण में इस का संशोधन करके आकार बढ़ा दिया जाय तो यह उत्तम और श्रेष्ठ श्रेणी में गिनने योग्य हो जाय।

हरसुप्रसाद सिंह आरा

आत्मसाहाय्य

राष्ट्रीय और व्यक्तिगत।

'विना पुरुष कारेण दैवं न सिध्यति' यह एक सुपरीक्षित उक्ति है जिसमें संक्षेप में विशाल मानवीय अनुभव का समावेश किया गया है। व्यक्तिमात्र में सत्यागम का कारण केवल एक आत्मसहाय्य का उत्साह ही है और इसी प्रकार से कई व्यक्तियों में उत्पन्न होकर यह उत्साह राष्ट्रीय-शक्ति का मूल कारण हो जाता है। परसाहाय्य कार्य करने में प्रायः अशक्त बनाता है; किन्तु आत्मसाहाय्य सदा शक्ति की वृद्धि करता रहता है। किसी काम में मनुष्य को दूसरे की सहायता मिल जाने से स्वयं उस काम को करने का उत्साह कम हो जाता है तथा पूरा करने की इच्छा भी आरम्भ के समान नहीं रहती। जब मनुष्य को अधिक सहायता व आश्रय मिलने लगता है तब वह अधिक अशक्त हो जाता है। ऐसी दशा में परसाहाय्य से लाभ के पलटे हानि होती है।

हम जातीय व राष्ट्रीय सभा इत्यादि से अधिक सहायता पाने की आशा करते हैं; परन्तु प्रथम हमको विचार करना चाहिये कि, इन से हम को कितनी सहायता मिल सकती है? उत्तम से उत्तम सभा भी मनुष्य को उत्साह देनेकी सहायता नहीं दे सकी। वह केवल इतना कर सकती है कि, हम को स्वयं उद्योग व आत्मोन्नति करने में लगा दे। सदा से हम विश्वास करते आए हैं कि, हमारा सुख व भलाई केवल हमारे समाज पर निर्भर है, न कि, हमारे आचरणों पर, किन्तु यह हमारी भूल है। जानना चाहिये कि, सामा-

लिक नियम उत्साहक नहीं होते, बरन निरुत्साहक होते हैं, अतएव समाज से उत्साहक सहायता पाने की आशा करना व्यर्थ है। जो लोग राज्य अथवा राज्यनियमों से उत्साहिक सहायता पाना चाहते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। वर्तमान काल में राज्य का कर्तव्य केवल हमारे जानमाल और स्वतन्त्रता की रक्षा करना है। राज्य नियम हमारे मानसिक व शारीरिक परिश्रम का फल हम को खाते हैं; हमारे उनके चखने में कोई बाधा डाले उसको हटाते है; किन्तु वे निरुद्योगी को उद्योगी नहीं कर सकते, अविवेकी को विवेकी नहीं बना सकते और पापी को धर्मात्मा नहीं बना सकते। ऐसे सुधारों के लिए पौरुष, आत्मसाहाय्य व श्रेष्ठ आचरणों की आवश्यकता होती है। अतएव जो लोग अपनी जाति, समाज अथवा सरकार से सहायता चाहते हैं उन्हें स्वयं अपनी सहायता करके देखना चाहिये कि, उन्हें आत्मसाहाय्य से कितना लाभ होता है।

आत्मिक उद्योग, शक्ति, व सत्यता येही जातीय उन्नति के मुख्य साधन हैं और निरुद्योग स्वार्थ व अत्याचार, इन से जाति की अवनति होती है। व्यक्तिमात्र के दोषों से राष्ट्रीय दोषों की उत्पत्ति होती है और यद्यपि ऐसे दोष कुछ काल के लिये नियमों द्वारा रोक भी दिए जा सके हैं; किन्तु सम्भव है कि वे पुनः दूसरे किसी रूप में उत्पन्न हो जावें। उन्हें निर्मूल करने का उपाय केवल व्यक्तिगत आचरणों का सुधार है। यदि यह विचार सत्य है तो हमें जानना चाहिये कि, देश व जाति के नियमों को पलटने से उतना लाभ नहीं हो सकता जितना कि, अपने सहकारियों को आत्म उद्योग करने के लिये उत्साह देने से हो सकता है। कोई कोई अपनी दुर्दशा का अधिक भाग दूसरों पर मढ़ा करते हैं, पर यह निरी भूल है। सज्जन पुरुष बुरों के अधिकार में भी होकर सदा सुखी रहते हैं;

किन्तु दुर्जन पुरुष भलो से सहायता पाने व उनके अधिकार में बसने परभी अपनी दुर्जनता नहीं छोड़ते। वृक्ष अपने काटनेवाले पर भी छाया करता है और सर्प अपने पालनेवाले को भी काटने को तत्पर रहता है। फिर भला पराई सहायता से क्या लाभ? जान-स्टुआर्ट मिल का कथन है कि, 'जब तक मानुषीय पौरुष विद्यमान है तब तक राष्ट्रीय अत्याचार के बुरे परिणाम भी नहीं प्रगट होने पाते और राष्ट्रीय अत्याचार मानुषी पौरुष का नाश करता है। अत एव हमें सदा मानुषीय पौरुष की रक्षा करते रहना चाहिए। इस से सिद्ध होता है कि, कैसी भी दशा क्यों न हो, मनुष्य को सदा अपनी सहायता आप करते रहना चाहिए। आत्मसाहाय्य से उद्योग की रक्षा होती है और उद्योग से उद्देश्य की सिद्धि प्राप्त होती है।

संसार की इतनी उन्नति का कारण भी आत्मसाहाय्य है। जब हम यूरप के देशों की वर्तमान उन्नतदशा का विचार करते हैं, जब हम अमेरिका की उन्नति का कारण ढूंढते हैं और जब हम जापान की वर्तमान व प्राचीन दशा की तुलना करते हैं, तो हमें आश्चर्य सा होता है। किन्तु क्षणमात्र के विचार से यह आश्चर्य हटजाता है। इन देशों की वर्तमान उन्नति, परम्परा के मानुषी परिश्रम व विचार का फल है। धीर, और उत्साही परिश्रम के सर्वसाधारण में वास करने से देश की उन्नति होती है। कृषक, खनक, नई वस्तुओं की खोज लगानेवाले, शिल्पकार, चित्रकार, कवि, तत्त्ववेत्ता व राजनीतिज्ञ इत्यादियों के पृथक् २ उद्योगों व परिश्रमों से इन देशों की यह वर्तमान दशा हो गई है। वहां के निवासियों ने परिश्रम करके विज्ञान व कलाकौशल में अव्यवस्था से व्यवस्था उत्पन्न की है और इसी सुव्यवस्था द्वारा यूरप व अमेरिका की वर्तमान जातियें उन्नति के शिखर पर चढ गई हैं। इन जातियों के

पुरखाओं को स्वकार्य साधन में कई आपत्तियें आई थीं। उन्हें अपनी समाज व राज्य से कुछ भी सहायता नहीं मिली थी; किन्तु आत्मसाहाय्य से अपना कार्य सिद्ध कर उन्होंने देश का उपकार किया था। भाप के यंत्र का इतिहास जाननेवाले इसे अच्छी-तरह समझ सक्ते हैं। अत एव अपनी सहायता आप करना परमावश्यक है और यही सिद्धि का द्वार है।

- विलायतवालों के उद्यमी कार्यों में हम सदा स्वसाहाय्य का उत्साह देखते हैं यहां तक कि, मानो वह (स्वसाहाय्य) अंग्रेज़ जाति के स्वभाव का निर्दिष्ट लक्षण होगया है। और यही उनकी जातीय शक्ति का मुख्य कारण है। सदा से उन में कोई कोई ऐसे पुरुष होते चले आए हैं जो सर्वसाधारण से सदैव ऊंची दशा में रहते थे और जो जातीय आदर सत्कार के पूरे अधिकारी थे। ये पुरुष बिना पराई सहायता के सदैव देशोन्नति करते रहते थे। किन्तु इस देश की उन्नति का केवल मुख्य कारण येही नहीं है। इनके सिवाय अल्प-प्रसिद्धि-प्राप्त पुरुषों ने भी इस देश को बहुत कुछ लाभ पहुंचाया है। जानना चाहिये कि, यद्यपि विजय का पूरा यश सेनानायक को मिलता है, तथापि विजय प्राप्त करने के मुख्य साधन सेना के प्रत्येक सिपाही का साहस और धैर्य ही हैं। युद्ध के समय सैनिक गण पराई सहायता की आशा नहीं रखते वे स्वयं जी लड़ा के जानपर खेल जाते हैं। और जब हमारा जीवन भी सैनिक के संग्राम के समान है तो फिर हमें इस जीवन संग्राम में पराई सहायता की क्यों आशा रखना चहिये? हम कई बड़े बड़े आदमियों के जीवनचरित्र देखते हैं और उनमें आत्मसाहाय्य के उदाहरण पाते हैं; किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि, जिन पुरुषों के जीवनचरित्र नहीं हैं वे आत्मसाहाय्य नहीं करते थे।

हीन से हीन मनुष्य भी अपने उद्योग, धैर्य, सत्य आदि गुणों द्वारा अपने सहकारियो के सन्मुख आत्मसाहाय्य का एक उदाहरण बन जाता है, और देश की वर्तमान व भावी उन्नति की आशा जब ऐसेही पुरुषो पर निर्भर है तो हम को अपनी सहायता आप क्यो न करना चाहिये?

अब देखना चाहिये कि, आत्मसाहाय्य से हमें शिक्षा संबन्धी कितना लाभ पहुंचता है। नित्य के अनुभव से हमें जान पड़ता है कि एक मनुष्य के उद्योगशील कार्य का दूसरों के जीवन व कार्य पर सब से अधिक असर होता है। मनुष्य एक सरल किन्तु अनुकरणशील प्राणी है और दूसरो को देखकर कार्य करना उसके लिए स्वाभाविक है ऐसे समय में व्यक्तिगत उद्योग व साहाय्य लौकिक व व्यवहारिक शिक्षा के मुख्य कारण जान पडते हैं। तुलना करने से मालूम होता है कि, आत्मसाहाय्य के आगे पाठशालाओं और कालेजो की शिक्षा तुच्छ जंचती है। जो शिक्षा हमें घर में मिलती है, जो हम हाट, बाजार व दुकानों में पाते हैं, जो हमें व्यवहार के स्थानों से मिलती है और जो हम मित्रमंडली से पाते हैं वही सब से ऊंचे प्रकार की शिक्षा है। कार्य, आचरण, आत्मशिक्षा व समय इत्यादि बातें मनुष्य को जीवन का कर्तव्य पालन करने के योग्य बनाती हैं और इन्हीं सब के संग्रह को 'शीलर' ने (मनुष्योपयोगी) का नाम दिया। किन्तु यह शिक्षा न पाठशालाओं में और न पुस्तकों में मिलती है, वरन हम को अपने नित्य के अनुभव से प्राप्त करना पड़ती है। लार्ड बेकन ने ठीक कहा है कि, शिक्षा का प्रयोग करना नहीं आता, किन्तु यह बात हमें अवलोकन द्वारा प्राप्त किए हुए ज्ञान से आती है। और यह ज्ञान पराई शिक्षा से नहीं आसक्ता। सर्वसाधारण के अनुभव से यह बात सिद्ध है कि,

जितना लाभ हमें कार्य करने से होता है उतना पठन इत्यादि से नहीं होता। मनुष्य जाति के सुधार के लिये जितना लाभ जीवन, कार्य, और स्वभाव की उत्तमता से होता है उतना साहित्य के अभ्यास व जीवनचरित्र पढ़ने से नहीं होता। जब तक हम स्वयं कार्य न करें, तब तक किसी वस्तु से भी लाभ नहीं होगा। महापुरुषों के जीवनचरित्र भी इस विषय में शिक्षादायक व उपयोगी हैं। इन से दूसरों को सहायता व शिक्षा मिलती है इन में से कोई २ तो संसार के सारे पुराणों व धर्म पुस्तकों से भी अधिक उपयोगी हैं कारण, इन से हम को आत्मसाहाय्य व परोपकार के लिये उत्तम रीति से जीवन बिताने, ऊंचे विचार करने, और उत्साही कार्य करने की शिक्षा मिलती है। इन जीवन चरित्रों में हमें आत्मसाहाय्य, वीरोचित कार्य, दृढ़ परिश्रम और स्थिर आर्जव के उदाहरण मिलते हैं। हम को यह भी विदित होजाता है कि, मनुष्य बिना पराई सहायता के क्या क्या कार्य करने को समर्थ है। अतएव महापुरुषों के जीवन चरित्रों से हम को यह मुख्य शिक्षा लेना चाहिए कि, आत्मसाहाय्य के बिना मनुष्य इस संसार में कुछ भी नहीं कर सक्ता।

आत्मसाहाय्य से मनुष्य बडी बड़ी कठिनाइयों को दूर कर सक्ता है, कठिन से कठिन कार्य के साधन में समर्थ हो सक्ता है, और नीच से नीच पुरुष भी ऊंचे पदको पा सक्ता है। विज्ञान, साहित्य और कला कौशल के जाननेवाले, तत्ववेत्ता और बड़े बड़े पराक्रमी पुरुष सदा से ऐसाही करते आए हैं। इन में से कोई २ तो बड़े २ नृपति धनवान् और विद्वान् होगए हैं और कोई २ चाकर, ग़रीब और मूर्ख होगए हैं। क्या यह कम आश्चर्य की बात है? किन्तु विचार करने से इसका कारण आत्मसाहाय्य ही जान

पड़ता है । कभी कभी हीन से हीन पुरुष भी आत्मसाहाय्य के द्वारा ऊंचे से ऊंचे पद को पहुंच गए हैं । ऐसे पुरुषों को जीवनयात्रा में कई आपत्तियें आती थी; किन्तु अपने गुणों द्वारा वे इन आपत्तियों से अपने को लाभ पहुंचाते थे, क्योंकि, इन से उनके परिश्रम व धैर्य इत्यादि की वृद्धि हो जाती थी । इतिहास में ऐसी घटनाओं के इतने उदाहरण मिलते हैं कि, जिससे कहने का साहस होता है कि, संकल्प व आत्मसाहाय्य द्वारा मनुष्य सब कुछ कर सकता है । 'जेरमीटेलर' के समान धर्मोपदेशक पहिले एक नाई था । सूत कातने का यन्त्र व रुई के कारखाने निकालनेवाले 'सररिचर्ड आर्क-राइट', 'लार्डटेंडर रन' व चित्रकारों में अद्वितीय 'टर्नर' ये सब प्रथम नाई का काम करते थे । यह नहीं जान पड़ता कि, 'शेक्स-पियर' प्रथम क्या था; किन्तु यह सिद्ध है कि, वह भी प्रथम हीन ही था । उसका पिता कसाई का काम करता था । आज दिन उसका यश संसार भर में व्याप्त है । प्रायः सब भाषाओं में उसके नाटकों का अनुवाद हो चुका है । इतनी कीर्ति का कारण केवल उसका आत्मसाहाय्य ही था। भारत के इतिहास में तो ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे । कविकुल तिलक कालिदास पहिले एक सामान्य पुरुष थे । पाण्डवों ने आत्मसाहाय्य ही के द्वारा कौरवों पर विजय प्राप्त की थी । आत्मसाहाय्य से महाराजा पोरसने सिकंदर से युद्ध किया था । आत्मसाहाय्य के द्वारा चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस की बेटी ब्याही थी । इसी से महाराजा पृथ्वीराज ने कई बार महम्मदगोरी को हराया था । आत्मसाहाय्य से ही महमूद गजनी का राजा हुआ था । संकल्प करके व अपनी सहायता आप करके ही महा-राणा प्रतापने अपने गौरव की रक्षा की थी । इसी के सहारे शिवा-जी ने मुग़लों का मानमर्दन किया था । महाराणी अहिल्याबाई,

दुर्गाबाई व लक्ष्मीबाई इसी के उदाहरण हैं। इन के जीवनचरित्र देखने से विदित होता है कि, यदि किसी ने कोई महत्कार्य किया है तो, वह आत्मसाहाय्य के ही सहारे से किया है। अतएव हम को अपनी सहायता आप करना चाहिये। इतने से कोई यह न समझे कि, परसाहाय्य की आशा के भरोसे काम न करनेवालों को दूसरों को सहायता भी न देना चाहिये। यदि ऐसा हो तो मनुष्य कुछ भी काम नहीं कर सक्ता। सारांश प्रथम हमको आत्मसाहाय्य करना चाहिये। ऐसा करने से दूसरे हमें आप सहायता देने लगेंगे।

भाई भारतवासियो! आज हम सब भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाते हैं। हब सब 'उन्नति उन्नति' चिल्लाते हैं। स्वयं उद्योग न कर हम सरकार को दोष देते हैं। अपने दोष दूसरों पर मढ़ते हैं। स्वयं परिश्रम न कर दूसरों से सहायता मांगते हैं। कहो! ऐसी दशा में हमारी उन्नति कैसे हो? आओ! हम सब भारतवासी आत्मसाहाय्य कर देश का सुधार करें। हम में से प्रत्येक व्यक्ति परसाहाय्य की आशा न कर देशोन्नति का प्रयत्न करें और फिर देखते हैं कि हमारा देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है या नहीं। कोरी बातें बनाने और दूसरों से सहायता मांगने से कुछ नहीं होता। स्वार्थ त्याग कर और अपनी सहायता आप करके जब तक हम सब भारत के लिए परिश्रम न करेंगे और जब तक पराई सहायता की आशा न छोड़ेंगे तब तक इस देश की कभी दशा नहीं पलटेगी॥

माणिक्यचन्द्र जैन।

प्रयाग।

॥ श्री ॥

युद्धनिन्दा ।

अरे तू अधम काल के मित्र ! जगत के शत्रु ! नीच संग्राम ।
अरे धिक्कार तोहि सौबार ! अमंगल ! दुःखद ! पातक ! धाम ॥
सघन-सुख-पङ्कज-पुञ्ज-तुषार देश-उन्नति-तरू-कठिन-कुठार ।
शान्ति वन दहन प्रचण्ड कृषानु ! भयानक हिंसा वंश अगार ॥
देश सम्पति कृषी पै हाय ! परै तू टूटि गाज के रूप ।
लोक द्रोही धिक् ! धिक् ! धिक् ! तोहि युद्ध ! रे व्याधि देश के भूप ॥
नीच नृप के अघके परिणाम ! देश दुष्कर्म विपाक स्वरूप ।
प्रजामुद कुसुमाकर को ग्रीष्म ! अरे दारुण सन्ताप अनूप ॥
सहस्रन घायल डारे वीर कराहैं किलपि २ वसहीन ।
सहस्रन मुच्छित भरहिं उसास जियन को घटिका है द्वै वा तीन ॥
सहस्रन जूझि गये वलवान सिपाही समर धीर सरदार ।
सहस्रन गज तुरंग भे नष्ट झेलिकै वानन की बौछार ॥
सहस्रन धामन में कुहराम मच्यो है सकरुन हाहाकार ।
चहूंदिसि शोकावलि सरसात सहस्रन उजरि गए घरवार ॥
सहस्रन बालक भोरे दिन भये असहाय हाय विन बाप ।
विलख लखि लखि कै तिनको आज हिये में होत महा सन्ताप ॥
सहस्रन दुर्वल वूढे लोग निपुत्री भये रहे सिर फोरि ।
कहैं करि रोदन "बेटा ! हाय ! कहां तुम गये कमर को तोरि" ?
सहस्रन बन्धु दुहाई देत " हाय ! हरि हिये दया है नाहिं ।
हमारो उठिगो बन्धु जवान, हमारी टूटि गई हा ! बाहिं " ॥
सहस्रन नारी यही सप्ताह भई विधवा, है शोक महान ।
बरनि को सकै अहो दुख घोर ? अहैं सो करुना मूरतिमान ॥
मृतक सो परी महीतल माहिं दया के योग्य भरी सन्ताप ।

कबहुं जो होवै मुरछा दूर करै तो अतिशय घोर बिलाप:—
"कहां तुम गये प्रान आधार ! जगत जीवन के शोभा रूप ? ।
गये कित स्वामी ! सुख के धाम ! बोरि दासी को दुख के कूप ? ॥
हाय ! कहं गये हमारे छत्र ! छांडि औचकहिं हमारो साथ ? ।
हाय ! सुर नगर बसायो जाय; निठुर ह्वै, करि हम दुखिन अनाथ- ॥
हमारे चूड़ामनि सिरमौर ! हमारे, पति, सम्पित्ति, सोहाग ! ।
गये पिय ! कित शृंगार नसाय ? अरे निर्दई दई ! हा भाग ! ॥
करो हे पीतम ! सो दिन याद जबै तुम गह्यो हमारो हाथ ! ।
कह्यो करि साखी देवहि आप 'जनम लौ दे हैं तुम्हारो साथ ! ॥
प्रानप्यारे क्यों मुख को मोरि गये तजि भला प्रतिज्ञा तोरि ? ।
चले इत आवो हाय बहोरि, किनै ह्वै चरन परस कर जोरि, ॥
पिया ! शय्यापर सोवनहार ! आज तुम परे कठिन रनखेत ।
कन्त ! अंगराग लगावनहार धूरि तनभरी भूरि केहि हेत ? ॥
प्रानवल्लभ ! नित रहे दयाल, सही नहीं कबहूं हमारी पीर, ।
आज लखि हमैं हाय ! बिलखात न पोछत काहे नैनन नीर ? ॥
कबहुं नहीं कियो कन्त ! आलस्य जगत हे नेकहिं खटका पाय, ।
निपट बेखटके सोवत नाथ ! आजकी कैसी निशा हाय ? ॥
कबहु जो जातहु ते परदेस आप, वा, खेलन काज सिकार ।
होत हो दारुन हमै कलेस रैन दिन प्रानन सालन हार ॥
रहतिही यद्यपि पूरी आस कछुक दिन बीते ऐहैं कन्त ।
तद्द अनुरागी चित को हाय वेदना होतहि हुती अनन्त ॥
हाय ! सोई पीतम प्रेम निधान आज तुम गये नहीं परदेस, ।
गये तुम सुर पुर हमै बिहाय सदा को, हाय अपार कलेस ॥
नाथ ! जो बहुरिन आवो पास करौ तो एतोही उपकार ।
बुलावो हमकोही निज पास, होय काहू बिधि बेड़ापार ॥
नाथ ! तुम बिना निपट अंधियार भयो सूनो दुःख प्रद संसार ।
होत प्रानन छिन २ दुःखदाय अधम माटी को कारागार" ॥
कहां लौं बरनो जाय प्रलाप दुखारी बिधवागन को हाय ।

विसूरत ही तिनको सन्ताप सहजही हिरदे फाटो जाय ॥
अरे ! संग्राम ! घृणा के धाम ! धर्म द्रोही, अपकारी क्रूर ।
रुधिर के प्यासे ! अरे पिसाच ! उपद्रव करन ! धूर्त भरपूर ॥
जगत में तूहीं वार अनेक प्रगट ह्वै किये घने उतपात ।
भरे इतिहासन में वृत्तान्त तिहारे दुर्गुण के विख्यात ॥
सुरासुर समर महान प्रचण्ड भये भय करण अनेकन वार ।
भई तिनमें हिंसा विकराल, अपरिमित सृष्टी भई संहार ॥
पर्शुधर क्षत्रियगण के युद्ध नष्ट कर दीन्हे अगणित वंस ।
बली वर भूपति संख्यातीत प्रतापिन लहयो सहज विध्वंस ॥
राम रावण संग्राम प्रसिद्ध उपस्थित भयो भयानक घोर ।
अपरिमित वलधर कला प्रवीण मरे योद्धा विक्रान्त अथोर ॥
लड़े त्यों जरासिन्धु यदुवंश, भयो हरि वामा सुर संग्राम. ।
भयङ्कर भयो महा विकराल महा भारतरण हिंसाधाम ॥
रूम यूनान मिश्र वा रोम स्पेन जर्मनि वा इंग्लिस्तान ।
अस्ट्रिया फ्रान्स देश वा होय अफरिका अमेरिका जापान ॥
सवन को जेतो है इतिहास होय सो नवीन वा प्राचीन ।
ठौरही ठौर भरी ते ही मांहि युद्ध की कथा महा दुख लीन ॥
अरे तू जगत उजारन हार ! अकथ दुख करन ! अपावन ! भीम ? ।
कहां लौं बरनू हे खलराज ! तिहारे निन्दित कर्मअसीम ? ॥*

राय देवी प्रसाद (पूर्ण)
कानपुर ।

* चन्द्रकला भानुकुमार नाटक में मुद्रित ।

हिन्दी हस्त लिखित पुस्तकों की सन् १९०० ई० की रिपोर्ट का प्रस्तावना अंश।*

सन् १८६८ ई० में लाहोर के चीफ पण्डित राधाकृष्ण के प्रस्ताव पर भारत गवर्न्मेंण्ट ने भारतवर्ष के सब प्रान्तों में हाथ की लिखी हुई संस्कृत पुस्तकों की खोज करनी निश्चित की। इन खोजों से भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास और साहित्य का जैसा पता लगा है उससे भूतपूर्व चीफ पण्डित राधाकृष्ण के प्रस्ताव की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता तथा भारत गवर्न्मेंण्ट का इस कार्य को उदारता पूर्वक उठाने में न्याय स्पष्ट प्रगट होता है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा जिस वर्ष स्थापित हुई उसी वर्ष इसके संस्थापकों के मन में इस कार्य की गुरुता बैठ गई थी। सभा को दृढ़ विश्वास था कि भारतवर्ष और कम से कम उसके उत्तरी भाग के, इतिहास और साहित्य की बहुत सी अमूल्य बातें हिन्दी की हस्तलिखित पुस्तकों में छिपी हुई हैं। जिनके पास पुस्तकें हैं उनकी विशेष रक्षा के कारण वा उनका आनन्द सर्व साधारण को चखाने के लिये उनके पास द्रव्य न होने के कारण ये अभी तक अन्धकार ही में पड़ी हैं। सारांश यह कि जिन कारणों से ये हस्त लिखित पुस्तकें अन्धकार में पड़ी थीं उनके दूर करने में जो आपत्तियां होती उन्हें सभा भलीभांति जानती थी और उसे यह भी मालूम था कि यह काम बिना सन्तोष और बुद्धिमानी के नहीं हो सकता। इसलिये सभा ने यह विचार किया कि राजपुताना, बुन्देलखण्ड, पश्चिमोत्तर प्रदेश, अवध और पञ्जाब में जो हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकें मिलें उनकी सूची बनाने का यदि उद्योग किया जाय तो इससे इस काम को विस्तृत रूप से गवर्न्मेंण्ट

---

* यह लेख हमारे पास बहुत काल से रक्खा हुआ था (सभा॰ सं॰)

शताब्दियो में लिखी गई थीं। इनमें कुछ अट्ठारहवीं शताब्दी की भी लिखी हैं और एक (नं० ६३) सोलहवीं शताब्दी की लिखी है। इनके अक्षर देवनागरी हैं परन्तु कुछ पुस्तकें कैथी मिश्रित देवनागरी या मारवाड़ी मिश्रित देवनागरी में भी हैं।

बारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक हिन्दी साहित्य बाल अवस्था में था। इन शताब्दियों में राजपुताने के भाटों ने मूल्यवान इतिहास के ग्रन्थ लिखे जिन से हिन्दी साहित्य में इतिहास के अभाव का जो दोष लगाया जाता है वह पूरी तरह पर मिट जाता है।

भाटों के ये इतिहास ऐसी भाषा में लिखे हैं जो कि उत्तर काल की प्राकृत और आदि हिन्दी के मेल से बनी है। इस समय के पीछे हिन्दी साहित्य का सब से अच्छा काल आरम्भ होता है इस समय में (१६ वीं और १७ वीं शताब्दियों में) हिन्दी के सब से बड़े बड़े ग्रन्थकार हुए। अट्ठारहवीं शताब्दी के आदि से लेकर आज तक भारत वर्ष में केवल भाष्यकार और मध्यम श्रेणी के कवि हुए जो कि पहली दोनों शताब्दियों के बड़े बड़े यशस्वी ग्रन्थकारों की कुछ न कुछ नकल करने वाले ही हुए।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी का आरम्भ काल आज कल के हिन्दी गद्य की उत्पत्ति के लिये प्रसिद्ध है। अतएव हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज की सीमा उन्हीं पुस्तकों में होनी चाहिए जो हिन्दी साहित्य के प्रारम्भकाल और उन्नतकाल की बनी हुई हैं और इस खोज का जो कुछ परिमाण अब तक हुआ है उस से मुझे आशा होती है कि यदि इस खोज का काम भली भांति किया गया तो उस में जो कुछ परिश्रम किया जायगा और धन लगाया जायगा वह अन्त में उचित ही सिद्ध होगा।

इस रिपोर्ट में जिन पुस्तकों की नोटिस की गई है उन में प्रत्येक नोटिस में अंग्रेज़ी में एक नोट भी दिया है । इस लिये यहां पर उनके पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं है । परन्तु यहां पर उन में से कुछ मुख्य मुख्य ग्रन्थों के विषय में कई बातें लिखना अनुचित न होगा ।

नम्बर १ इस में तुलसीदास की प्रसिद्ध राम चरित मानस की प्रति है । तुलसीदास ने इस महाकाव्य को सन् १५७४ में लिखना प्रारम्भ किया और सन् १६२३ में उनकी मृत्यु हुई । यह प्रति सन् १६४७ की लिखी हुई है । कहा जाता है कि गुसाई तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध राम चरित मानस की, जो रामायण के नाम से भी प्रसिद्ध है दो प्रतियां लिखीं । एक तो वे मलिहाबाद कुछ भाटों के यहां रख आए जहां कि वे कुछ दिनों तक रहे थे और दूसरी बांदा ज़िले के राजापुर में ले गए । कहा जाता है कि राजापुर वाली प्रति एक बेर चोरी हो गई थी परन्तु जब चोर का पीछा किया गया तो उसने सब ग्रन्थ जमुना नदी में फेंक दिया और वहां से केवल एक काण्ड (अयोध्या काण्ड) निकाला जा सका । इस प्रति पर पानी के जो चिन्ह हैं वे इस कथन की सत्यता की पुष्टि करते हैं । मलिहाबाद की प्रति जो कि ग्रन्थकर्ता के हाथ की लिखी हुई कही जाती है पण्डित जनार्दन नामी एक मनुष्य के पास है । इसका पता मिलने पर मैं इस प्रसिद्ध पुस्तक को देखने के लिये लखनऊ गया और वहां इस पुस्तक के स्वामी से प्रार्थना की कि वे मुझे अपनी प्रति को मेरी रामायण से मिलाने दें । उन्होंने मुझे इस पुस्तक को दिखला तो दिया परन्तु सारी पुस्तक को मिलान करने की आज्ञा तो दूर रही उन्होंने मुझे कुछ टिप्पणी तक भी नहीं लिखने दी । अभी तक

में इन्हें समझा बुझा कर अपना काम निकालने में कृतकार्य नहीं हुआ । यह बात तो सबको मालूम है कि रामायण के वास्तविक पाठ में बहुत ही सन्देह और मतभेद है । इस पुस्तक की जितनी प्रतियां मिलती हैं वे सब एक दूसरे से भेद रखती हैं । खड्गविलास प्रेस का संस्करण सबसे प्रमाणिक समझा जाता है, परन्तु जब मैंने उसे नोटिस नम्बर १ की प्रति से मिलाया तो मुझे अनेक स्थानों में भेद पाकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ । यह प्रति काशीराज के राज्य पुस्तकालय में है और तुलसीदास जी की मृत्यु के २४ वर्ष पीछे एक ऐसे मनुष्य की लिखी कही जाती है जो तुलसीदास के निवास और मृत्यु के स्थान में रहता था । अतएव इस पुस्तक की प्रति लिपि खड्गविलास प्रेस के स्वामी के हाथ लगने में, जैसा कि वे अपने संस्करण के आदि में कहते हैं, मुझे सन्देह है । अस्तु, इससे जान पड़ेगा कि मलिहाबाद और राजापुर की प्रतियों का पाठ मिलान करना बहुत ही आवश्यक है, जिससे अगली किसी रिपोर्ट में इसके विषय में लाभदायक विवरण दिया जा सके तथा तुलसीदास की रामायण के एक सचमुच प्रामाणिक संस्करण निकालने का यत्न किया जा सके जिसमें सदैव के लिये इस प्रसिद्ध पुस्तक का पाठ स्थिर होजाय, जिसे राजा से लेकर रङ्क तक हिन्दू जाति के ऊंच, नीच, गरीब, अमीर, बालक, वृद्ध सबही पढ़ते सुनते और समान भाव से समझते हैं और जिसका बहुत बड़ा प्रभाव हिन्दुओं के जीवन और उन कवियों के मन पर पड़ा है जो इस महान ग्रन्थ के बनने के समय से इसका अनुसरण करते आए हैं ।

नम्बर ४ और ५४ हिन्दी काव्य में यह एक बड़ी विशेषता कही जाती है कि उसके अधिकांश ग्रन्थ राम वा कृष्ण की स्तुती वा प्रशंसा में बनाए गए हैं । इसलिये मलिकमोहम्मद जायसी ने एक

कल्पित कथा लिखकर हिन्दी साहित्य में एक नई बात की। परन्तु आगे चलकर देखा जायगा कि उसके पहले भी कई हिन्दी के कवि हुए हैं जिन्होंने उसीकी नाईं काव्य में कल्पित कथाएं रची हैं। हां, इस मुसल्मान जाति के हिन्दी कवि के विषय में यहां पर इतना कह देना चाहिए कि उसका हृदय बहुत ही बड़ा और सच्चे कवि का था और उसने अपने अद्भुत काव्य पद्मावती में ऐसे ऐतिहासिक दृश्यों का वर्णन किया है जिसका हिन्दुओं के स्वदेशानुरागी चित्त पर अवश्य ही बड़ा प्रभाव हो। उसने पद्मावती सन् १५४० में लिखी। इसके ३७ वर्ष पहिले कुतुबन ने मृगावती जो अब तक अन्धकार में छिपी थी, बनाई थी। कुतुबन, शेरशाहसूर के पिता हुसैनशाह* का आश्रित था और मलिकमोहम्मद को स्वयम् शेरशाह ने आश्रय दिया था। ये दोनों एकही गुरु अर्थात् शेखबुरहान के चेले थे और दोनोंही ने सफलता के साथ हिन्दी कविता लिखी और ये कल्पित कथा रचनेवाले हिन्दी कवियों में अपना नाम चिरस्थायी छोड़ गए। कुतुबन की रचना, अन्य रचनाओं की नाईं असम्भव बातों से भरी है, जो विशेषता कि हिन्दुओं की रचनाओं में पाई जाती हैं। उसके नायक, नायिका तथा अन्यपात्र मनुष्य हैं परन्तु वे अमानुषी वायु मण्डल से घिरे हुए हैं। परन्तु मलिक मोहम्मद की कथा कुतुबन की कथा से निस्सन्देह बहुत उत्तम है। उसने अपनी कथा को एक ऐतिहासिक घटना पर बनाया है जो कि स्वयम् हिन्दुओं के स्वदेशानुराग और करुणारस का उद्गार करती

* यह हुसैनशाह अन्त में जौनपुर का बादशाह हुआ। सन् १४७९ में बहलोल लोदी ने इस राज्य को अपने राज्य में मिला लिया और हुसैनशाह १४९४ तक बिहार में राज्य करता रहा। इस साल सिकंदर लोदी ने उसे लड़ाई में हराया और हुसैनशाह बङ्गाल को भाग गया, जहां कुछ वर्ष पीछे वह मर गया।

है । मलिक मोहम्मद ने अपने पाठकों के सामने भक्ति, प्रीति, दया और आत्मसमर्पण के बहुत ही अच्छे आदर्श रक्खे हैं और उसने अपने काव्य को आत्मा और शरीर की लड़ाई के रूपक में वर्णन करके उसे और भी मनोहर कर दिया है । मलिक मोहम्मद अपनी कथा के विषय को चुनने में निस्सन्देह भाग्यवान था क्योंकि उसने कुतुबन के अनुभव से तथा मृगावती की जो दशा हुई उससे अवश्य ही लाभ उठाया होगा । यह आश्चर्य की बात है कि मलिक मोहम्मद का काव्य इतने दिनों तक भारतवासियों को स्मरण रहा और कुतुबन का काव्य एक दम ही भूल गया । यह स्पष्ट है कि मलिक मोहम्मद मृगावती की कथा को बहुत ही अच्छी तरह से जानता था क्योंकि वह अपने काव्य में कहता है " राजकुंवर कंचनपुर गयऊ । मिरगावती कहं योगी भयऊ । " * परन्तु यह उसके मन को नहीं भाई । अब तक मलिक मोहम्मद जायसी हिन्दी भाषा में कल्पित काव्य का एक मात्र कवि बिना किसी प्रतिद्वन्दी के समझा जाता था । परन्तु इस खोज से पद्मावती के ऐसे तीन अन्य काव्यों का पता लगा है अर्थात् (१) लक्ष्मण सेन पद्मावती की कथा (२) ढोलामारू की कथा और (३) मृगावती । लक्ष्मण सेन पद्मावती की कथा सन् १४५९ में और ढोलामारू की कथा १४५० में बनाई गई थी । कोई आश्चर्य नहीं कि इस खोज से भविष्यत में बहुतेरे ऐसे कल्पित कथाओं के काव्यों का पता लगे जिस से कि विद्वानों को हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक बिलकुल ही नया "काल" जोड़ना पड़े । इस रिपोर्ट में पद्मावती की जिस प्रति से नोटिस की गई है वह उन सब प्रतियों से प्राचीन है जिन्हें डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन और महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने बङ्गाल एशियाटिक सोसाय-

* पण्डित राम जसन सम्पादित पदमावत च० प्र० प्रेस काशी १८८४ ई० पृ० ८१ ।

टी की वाइब्लोथिका इण्डिका में इस काव्य को निकालने के लिये सहयत्न किया है।

नं० ५३, ६२ और ६३ इस वर्ष में चन्द बरदाई के महाकाव्य की तीन प्रतियों की नोटिस की गई। वे क्रम से सन् १८२१, १८०२ और १५८० की लिखी हुई हैं चन्द जगात गोत्र का एक भाट था और उसका जन्म लाहोर में हुआ था †। वह बड़ा भारी विद्वान था और इस बड़े ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो के लिखने में तो मानों उसने यह दिखलाया है कि किसी प्रसिद्ध राजा और स्वामी का इति॰हास लिखने में उसकी बुद्धि कहां तक दौड़ सकती थी। चन्द के १० बेटे थे और उनमें से सबसे बड़ा जल्ह समरसिंह को दहेज में दिया गया था। इसी बेटे को चन्द ने अपना यह बड़ा ग्रन्थ सौंपा था जोकि सदा से विद्वानों के लिये एक आश्चर्य की वस्तु रही है और जिसके प्रकाशित करने का कई बार यत्न किया गया है, परन्तु कोई तो इस ग्रन्थ की प्राचीन और कठिन भाषा होने के कारण इसके सम्पादित करने में बड़ी कठिनाई पाकर और कोई उचित आश्रय न मिलने के कारण कृत कार्य नहीं हुए। क्या यह आशा करनी अनुचित होगी कि राजपुताने का कोई सुविज्ञ राजा कमसे कम इस पुस्तक का मूल पाठ प्रकाशित करके इसे उस अन्धकार से निकाल देगा जिस में कि यह अभी अनुचित रीति से पड़ा हुआ है? रासो की सत्यता के विषय में बड़ा ही मतभेद रहा है और किसी किसी ने तो यहां तक कहा कि वह इतिहास जानने वाले के लिये किसी काम का नहीं है, यद्यपि उसमें अभी तक ऐसी भयानक सम्मति के प्रमाण में कोई भी चिन्ह नहीं मिला। पहिले पहिल यह कलङ्कभूत पूर्व कविराज

† "चंद उपज्जि लहोरह" मेडिकल हॉल प्रेस काशी १८८८ ई० पृष्ठ ११७

श्यामलदास जी ने लगाया था और उनके पीछे बहुतोंने जान कर या अजाने उन का अनुकरण किया है । * कविराजा का यह कहना था कि रासो पृथ्वीराज के समय का लिखा हुआ नहीं है परन्तु उनके पीछे का लिखा हुआ है क्योंकि उसमें जो तिथि और वर्णन दिए हैं वे ठीक नहीं है । यहां पर इस बात का तनिक विचार कर लेना उचित होगा कि रासो में दी हुई तिथियों में तथा दूसरे इतिहासों में दी हुई उन्हीं घटनाओं की तिथियों मे कितना भेद है । पृथ्वीराज रासो यद्यपि उस समय का एक साधारण इतिहास है परन्तु उसमें विशेष कर पृथ्वीराज ही का इतिहास है । इन के राज्य में तीन बड़ी बड़ी घटनाएं हुईं, पहिली तो पृथीराज और कनौज के जैचन्द की लड़ाई, दूसरी पृथ्वीराज द्वारा कालिञ्जर के पर्मर्द्दिदेव की हार, और तीसरी मुसलमानो के साथ लड़ाई जिसमें पृथीराज की हार और मृत्यु हुई । यहा पर पहिले पृथ्वीराज, जैचन्द, पर्मर्द्दिदेव और शहाबुद्दीन का समय निर्णय कर लेना बहुत अच्छा होगा, क्योंकि ये चारो समकालीन थे, और इस कार्य के लिये शिलालेख निस्सन्देह सबसे ठीक और सच्चे होंगे । अब तक चार ऐसे शिलालेख मिले हैं जिनमें पृथ्वीराज का उल्लेख है । इना समय समत १२२४ से लेकर १२४४ तक है । (१)

कनौज के जयचन्द के सम्बन्ध में अब तक १२ शिलालेख मिल

---

* जर्नेल बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी भाग १ संख्या ५५ पृष्ठ ५-८५

(१) (क) १२२४ विक्रम ट्रानजेक्शन रोयल एशियाटिक सोसायटी भाग १ पृष्ट १५४

(ख) १२२६ विक्रम-जर्नेल बङ्गाल एशियाटिक सोसायटीभाग १ संख्या ५५ पृष्ट४६

(ग) १२३६ विक्रम-आर्कओलोजिकल सर्वे भाग ११ पृष्ठ १०३-१०५

(घ) १२४४ विक्रम " " " ६ पृष्ठ १५६

सके हैं । इन में से तो दो (१) में, जिनका समय संवत १२२४ और १२२५ है, वह युवराज लिखा गया है और शेष १० में (२) जिन का समय संवत १२२६ से १२४३ तक है, वह महाराजाधिराज कहा गया है ।

कालिञ्जर के परमर्दिदेव के, जिसे पृथ्वीराज ने हराया था, ६ शिलालेख मिले हैं । उन का समय संवत १२२३ से १२५८ तक है । इनमें से एक, जो संवत १२३९ का है जिस में अर्नोराज के पौत्र तथा सोमेश्वर के पुत्र चौहान पृथ्वीराज से कालिञ्जर के चन्देल्ल परमर्दिदेव की हार का उल्लेख है (३) ।

शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी का जो समय फ़ारसी के इतिहासों से निश्चित हुआ है वह बहुत ही ठीक है और उसके विषय में कोई मत भेद नहीं है । मेजर रेवर्टी अपने तबक़ाते नासरी के अनुवाद के ४५६ पृष्ठ के फुट नोट में लिखते हैं कि "जिन जिन ग्रन्थकारों का मैंने वर्णन किया है उन सब के अनुसार तथा अन्य कई ग्रन्थकारों के अनुसार भी जिन में स्वयम् हमारा ग्रन्थकार भी सम्मिलित है, राय पिथोरा की पहिली लड़ाई सन् ५८७ हिजरी (११९० ईस्वी) में हुई थी और उस की दूसरी लड़ाई जिस में राय पिथोरा की हार हुई और जिस में वह (मुसलमान ग्रन्थकारों के अनुसार) मारा गया, निस्सन्देह सन् ५८८ हिजरी (=११९१ ईस्वी—१२४८ विक्रमी) में हुई थी"

(१) एपिग्राफिआ इंडिका भाग ४ पृष्ठ ११८ और इंडियन एंटि क्वेरी भाग १५ पृष्ठ ७

(२) एपिग्राफिआ इंडिका भाग ४ पृष्ठ १२१, १२७ इंडियन एण्टि क्वेरी भाग १८ पृष्ठ १३०, भाग १५ पृष्ठ १२९ और १० श्री र-प्रोसीडिंग बंगाल एशियाटिक सोसायटी १८८० पृष्ठ ७७

(३) आर्कि ओलोजिकल र्वे भाग २१ पृष्ठ १७३, १७४ ।

पृथ्वीराज, जैचन्द्र और परमर्दिदेव के भिन्न भिन्न शिलालेखों के संवत एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। अतएव यह बिना किसी सन्देह के कहा जा सकता है कि पृथ्वीराज विक्रम संवत की तेरहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध समय में अर्थात् ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध समय में था और उस का अन्तिम युद्ध विक्रम संवत १२४८ (११९१ ईस्वी) में हुआ था।

इस के सिवाय सोमेश्वर और अर्नोराज के सम्बन्ध के जो शिलालेख मिले हैं वे भी ऊपर कहे हुए सवतों को प्रमाणित करते हैं और उन से इन संवतों की ऐतिहासिक सचाई में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

अब रासो की तिथियों की ओर ध्यान दीजिए। केवल चार भिन्न भिन्न तिथियां यह बात दिखलाने के लिये काफ़ी होंगी कि रासो की तिथिया दूसरे इतिहासों की तिथियो से किस प्रकार भिन्न हैं। चन्द पृथ्वीराज का जन्म सवत १११५ में, गोद जाना संवत ११२२ में, कन्नौज आगमन ११५१ में और शहाबुद्दीन के साथ अन्तिम युद्ध संवत ११५८ में वर्णन करता है। तबक़ाते नासरी के अनुसार शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज का द्वितीय युद्ध जिसमें पृथ्वीराज हार गया और क़ैद कर लिया गया, सन् ५८८ हिजरी में हुआ। अब यदि १२३८ में से ११५८ घटा लिया जाय तो ९० वर्ष का अन्तर स्पष्ट देख पड़ता है।

इस के सिवाय रासो में पृथ्वीराज की जो उमर दी है उस पर विचार करने से यह विदित होता है कि ये चारो घटनाए सवत १२०५, १२१२, १२४१ और १२४९ में हुई और न कि १११५, ११२२, ११५१ और ११५८ में जैसा कि रासो में लिखा है। नीचे लिखे कोष्ठक से इन तिथियों का अन्तर स्पष्ट प्रगट हो जायगा।

घटना	रासो का समय	पृथ्वी राज की आयु	दूसरे इतिहासों से समय	अन्तर
जन्म	१११५–१६	—	१२०५–०६	९०–९१
गोदजाना	११२२–२३	७	१२१२–१३	९०–९१
कन्नौज आगमन	११५१–५२	३६	१२४१–४२	९०–९१
अन्तिम युद्ध	११५८–५९	४३	१२४८–४९	९०–९१

अब यदि इन घटनाओं की तिथि में उस समय पृथ्वीराज की आयु के शेष वर्ष जोड़ दिए जायं तो सब तिथि १२४८ हो जाती है। अतएव ऊपर के कोष्टक से यह स्पष्ट प्रगट होता है कि चन्द ने अपने ग्रन्थ में ९०-९१ वर्ष की लगातार भूल की है। परन्तु किसी बात का एक सा होना भूल नहीं कहलाती। इसलिये इस ९० वर्ष के सम अन्तर के लिये कोई न कोई कारण अवश्य होगा।

इस रिपोर्ट के अन्त में १० प्लेट (१) दिए हुए हैं जिसमें से ९ पृथ्वीराज और उसके समकालीनों के राजत्वकाल से सम्बन्ध रखते हैं। इन परवानों और पत्रों से, जिनका समय (उन दोनों को छोड़ कर जो फिर से जारी किए गए है) संवत ११३९ से ११५७ तक है, नीचे लिखी बातें प्रगट होती है,

(१) हृषीकेश एक बड़ा वैद्य था जिसका मेवाड़ और दिल्ली के राज्यवंशों से घनिष्ठ सम्बन्ध था और जिसे पृथ्वीराज ने अपनी बहिन पृथाबाई के विवाह में चित्तौर के रावल समरसिंह को दहेज में

(१) मैं पण्डित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या का अत्यन्त अनुगृहीत हूं कि उन्होंने इन पर्वानों और पत्रों के फोटो लेलेने की मुझे आज्ञा दी कि जिन्हें उन्होंने हृषीकेश के वंशजों के पास उदयपुर में देखा था और जिनका फोटो उन्होंने अपने लिये ले लिया था। मैं उनका कृतज्ञ इसलिये भी हूं कि उन्होंने इनके पढ़ने और अनुवाद करने में मुझे सहायता दी। यदि उनकी सहायता न होती तो कदाचित इनको मैं उस तरह काम में न ला सकता जैसा कि मैंने इस रिपोर्ट में किया है।

दिया था। इन परवानों के अनुसार यह घटना ११३७ में हुई। महारानी पृथाबाई ने अपने पुत्र को जो अन्तिम पत्र लिखा है उसमें उसके साथ चितौर से जो चार वंश आए थे उनका उल्लेख करके अपने पुत्र को उनके साथ बहुत अच्छी तरह से बर्ताव करने के लिये लिखा है, क्योंकि वे राज्य के बड़े हितैषी पाए जायगे। रासा के "पृथा व्याह समयों" के नीचे उद्धृत भाग से इन चारों वंशों का हाल प्रगट होगा।

"श्रीपत साह सुजान देश धम्मह संग दिन्नो। अरु प्रोहित गुरुराम ताहि आग्या नृप किन्नो॥ रिषीकेश दिय ब्रह्म ताहि धनतर पद सोहे। चंद सुतन कवि जल्ह असुर सुर नर मन मोहे॥ कविचंद कह बरदाय वर फिर सुराज आग्या करिय। करि जोर कह्यो पीथल नृपति तब रावर सत भावर फिरिय॥ निगम बोध गोतम रिषि, थिर जेहि दिल्ली थान। दास भगवत्ती नाम दे पृथीराज चौहान॥ रिषी केस अरु रामरिषी बहु बिधि देकर दान। पृथा कुंअरि परनाई के संग चलाये जान॥"

ऊपर के उद्धृत भाग से यह स्पष्ट है कि पृथाबाई ने चितौर में अपने पुत्र को पत्र लिखने में जिन चार वंशों का वर्णन किया है वे येही हैं जो चन्द कहता है कि पृथाबाई के साथ चितौर के रावल समरसिंह को दहेज में दिए गए थे। श्रीपत साह, दैपुरा महाजन वंश का आदि पुरुष था, गुरुराम प्रोहित सनावढ़ ब्राह्मण वंश का ऋषीकेश, आचारज (दयमा) ब्राह्मण वंश का, और चन्द का सब से बड़ा पुत्र जल्ह, राणोरा रायवंश का ये चारो पुरुष पृथाबाई के साथ आए थे और उनके वंशजों का मेवाड़ दर्बार में अब तक बड़ा मान है।

(२) पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध जिसमें चित्तौर का रावल समरसी मारा गया था संवत ११५७ के माघ शुक्लपक्ष में हुआ था।

चन्द के रासो में इसका जो समय (११५८) दिया है उससे यह सं॰ मय मिलता है।

(३) पृथाबाई का विवाह समरसी से अवश्य हुआ था,—लोग इसके विरुद्ध चाहे कुछ ही क्यों न कहें। परवानों का जो प्रमाण यहां दिया गया है वह बहुत ही पुष्ट जान पड़ता है और इसके विरुद्ध जो कुछ अनुमान किया जाय उस सबको हलका बना देता है। परन्तु पृथाबाई के ब्याह के सम्बन्ध में एक बात ऐसी है जिस पर विचार करना चाहिए। यदि समरसी पृथ्वीराज का समकालीन था तो उसके पुत्र रतनसी ने अलाउद्दीन खिलजी को १३०२-१३०३ ईस्वी में कैसे हराया। राना कुम्भाकरन के राजत्वकाल के सादड़ी के जैन शिलालेख* में, जिसका समय संवत १४९६ है, बप्पा रावल से लेकर कुम्भकरन तक मारवाड़(१) की राज्य वंशावली दी है और उसमें लिखा है कि भुवनसिंह ने, जिसका नाम समरसिंह के पीछे है अलाउद्दीन को हराया। परन्तु तोहफ़ए राजस्थान में जो वंशावली दी है उसमें समर सिंह और भुवन सिंह के नामों के बीच में नौ राजाओं के नाम दिए हैं। ये ये हैं (१) समरसी (२) रतनसी (३) करनसी (४) राहुत(२) (५) नरपत (६) दिनकर (७) जसकरण (८) नागपाल (९) पूर्णपाल (१०) पृथ्वीपाल (११) भुवनसिंह। भुवनसिंह के पीछे भीमसिंह प्रथम जैसिंह प्रथम और लक्ष्मण सिंह का नाम दिया है। राहुप (राहुत) से लेकर लखन (लक्ष्मणसेन) तक ५० वर्ष के भीतर चितौर के राज्य सिंहासन पर ९ राजा बैठे और प्रत्येक लगभग बराबर ही समय तक राज्य करके एक दूसरे के पीछे सूर्य लोक को

* भावनगर इसक्रपशन पृष्ठ ११४ और प्राचीन लेख माला भाग २ पृष्ट १८।

(१) मेवाड़? (समा॰ सं॰)

(२) इस राजा तक ये लोग रावल कहलाते थे यह राना कहलाने लगा और अमरसिंह द्वितीय ने इस पद्धति को "महाराणा" में बदल दिया।

सिधारे । इन नौ राजाओं में से छः युद्ध में मारे गए । वे लोग अपने घर ही में नहीं मारे गये वरन् म्लेच्छों के अत्याचारों से पवित्र गया के उद्धार करने में इन्होंने अपने प्राण अर्पण किए । इसी कार्य में ये राजा लगातार बलि चढ़ते गए और उनकी ऐसी दृढ़ भक्ति ने यदि ईश्वर में भक्ति अथवा विश्वास नहीं तो भय अवश्य उत्पन्न किया और मुसलमान लोगों ने उन अत्याचारों को छोड़ दिया जिनकी निवृत्ति पृथ्वीपाल ने अपने रक्त से की । यह अत्याचार-अलाउद्दीन के राज तक बन्द रहा (१) । इससे भुवनसिंह का समय १२८० ईस्वी निश्चित होता है और लक्ष्मणसिंह का इसके कुछ वर्ष पीछे । अतएव यह जान पड़ेगा कि वह रत्नसिंह नहीं था जिसकी प्रसिद्ध रानी पद्मिनी के लिये अलाउद्दीन ने चितौर को उजाड़ दिया था, वरन् बहुत सम्भव है कि वह लक्ष्मणसिंह की रानी थी, जिसका नाम इस सम्बन्ध में मारवाड़ की लोक कथाओं में भी आता है । कविराजा श्यामलदास ने अपने मत के प्रमाण में जिन शिलालेखों का वर्णन किया है उनका पूरा खण्डन पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने अपने रासो की रक्षा में किया है । मैं इन शिलालेखों का प्रमाण तब तक नहीं मानूंगा जब तक कि उनकी प्रति लिपि न देखी जाय और वे किसी योग्य विद्वान द्वारा उचित रीति से सम्पादित न किए जायं, क्योंकि यह कहा गया है कि "किसी मिथ्या दोष लगाने वाले ने इन शिलालेखों में २ के स्थान पर ३ बना दिया है ।"

(५) प्रेटों की मोहर के अनुसार पृथीराज ११२२ में दिल्ली की राजगद्दी पर बैठा । यह समय रासो में दिए हुए चन्द के समय से मिलता है । रासो के "दिल्ली दान सम्यो" से नीचे लिखा भाग उद्धृत किया जाता है ।

---

(१) राजस्थान-अध्याय ५

"एकादस संवतः अट्ठ अग्ग हत तीस भने। प्रथ सुरित तहाँ हेम सुद्ध मर्गासर सुमास गने। सेत पंक्ख पंचमीय सक्ल गुर पूरन। सुद्धि मृगासिर सम इन्द्र जोग सद्धहि सिध चूरन। पहु अनगपाल अप्पिय पहुनि। पुत्तिय पुत्त पवित्त मन। कंझो सुमोह सुख तन व-हनि पत्तो वद्री सज्जे सरन।"

ऊपर के उद्धृत भाग के अनुसार अनंगपाल ने अपने नाती (पृ-थ्वीराज) को मार्ग शीर्ष सुदी ५ सवत ११३०-८ (=११२२) में पवित्र मन से गोद लिया। अतएव सम्भव है कि पृथ्वीराज संवत ११२२ की वैशाख सुदी ३ को राजगद्दी पर बैठा हो क्योंकि भाट लोग प्रायः अपना नव संवत विजय दशमी से मानते हैं।

परवानों और पत्रों की सत्यता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनमें से एक दूसरे की पुष्टि करता है। इनमें कुछ फारसी के जो शब्द आए हैं वे थोड़ी देर के लिये सन्देह उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु जब हम यह विचारते हैं तो यह सन्देह बि-लकुल दूर हो जाता है कि पृथाबाई दिल्ली से आई थी और दिल्ली में कुछ मुसलमान सेना भी थी और वहां लाहौर के मुसलमान शा-सकों के राजदूत बराबर ही आया जाया करते थे क्योंकि इन दोनो राज्यों की सीमा एक दूसरे से मिली हुई थी। * अतएव दिल्ली नि-वासियों की भाषा में फारसी के कुछ शब्दों का मिलना क्या कोई आश्चर्य की बात है?

जो कुछ ऊपर कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि चन्द ने रासो में जिन जिन घटनाओं का समय दिया है वह मिथ्या नहीं है वरन् उस संवत के हिसाब से बहुत ही ठीक है जो उस समय

* यह कह देना यहां उचित होगा कि पृथ्वीराज के दिल्ली की गद्दी पर बैठने के १०० वर्ष पहिले से पंजाब में मुसलमान राज्य स्थापित हो चुका था।

राज्य के पत्रों में प्रचलित था और जो विक्रमी संमत से ९०-९१ वर्ष पीछे था। पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या इस महाकाव्य के प्रथम समय के ३५६ वें रूपक से इस नये संवत का पता लगाते हैं जिसमें चन्द कहता है कि जैसे युधिष्ठिर के ११०० वर्ष पीछे विक्रम का संवत प्रचलित हुआ उसी प्रकार विक्रम के ११०० वर्ष पीछे मैं पृथ्वीराज का संवत प्रचलित करता हूं। (१)" यह पृथ्वीराज का संवत क्या है सो ३५५ वें रूपक (२) से प्रगट होता है जिसमें चन्द पृथ्वीराज का जन्म इस नये अनन्द विक्रम संवत के ११९५ वें वर्ष में स्थिर करता है। (३) अब तक 'अनन्द' का अर्थ 'शुभकर' समझा जाता था। परन्तु पण्डित जी ने दिखलाया है कि वास्तव में उसका अर्थ 'नन्द-रहित' अर्थात् नौ रहित है, क्योंकि नन्द का एक अर्थ नौ है। इसलिये वे कहते हैं कि अनन्द का अर्थ नौ कम एक सौ अर्थात् ९१ वा ९० है, जिस संख्या के प्रचलित विक्रमी संवत में से घटाने से चन्द का समय एक मिलता है। पण्डित जी 'अनन्द' शब्द का एक दूसरा अर्थ भी देते हैं। प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त नीच जाति के मौर्यवंश का संस्थापक था। वह स्वयम् महानन्द का पुत्र था और वह तथा उसके वंशज 'नन्द वंशिन्' अर्थात् नन्द वंश के कहे जाते थे। पण्डित जी का अनुमान है कि मेवाड़ के उच्चकुल के राजपूतों ने जितने समय तक वे एक नीच जाति के आधीन थे उतने समय को न मान कर इस

(१) एकादस सै पंचदह। विक्रम जिम ध्रम सुत्त।
त्रतिय साक प्रथिराज कौ। लिष्यौ विप्र गुन गुप्त॥

(२) एकादस से पंचदह। विक्रम साक अनंद।
तिहि रिपुजय पुर हरन कौ। भय प्रथिराज नरिंद॥

(३) यह प्रसिद्ध बात है कि मेवार में अब तक लोग इस दन्त कथा को कहते हैं कि प्राचीन काल में दो विक्रम संवतों का प्रचार था। टाड हारावती के वर्णन में इसका उल्लेख करता है और दोनों संवतों में १०० वर्ष का और न कि ९० वर्ष का अनन्तर बताता है। (हारावती=हाड़ौती? समा० सं०)

अनन्द विक्रम संवत को चलाया। अथवा यों कहिए कि यह संवत, साधारण (वा सनन्द) विक्रम संवत में से नन्दवंश के राजत्व काल का समय निकाल देने से बना है।

अब यह बात ऊपर बहुतही स्पष्ट कर दी गई है कि चन्द की तिथियां कल्पित नहीं हैं, और न उसके महाकाव्य में दी हुई घटनाएं ही मिथ्या हैं वरन् वे सब सत्य हैं। यह भी साबित किया जा चुका है कि ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी के लगभग राजपुताने में दो संवत प्रचलित थे, एक तो सनन्द विक्रम संवत जो ईस्वी सन् के ५७ वर्ष पहिले चलाया गया था और दूसरा अनन्द विक्रम संवत जो सनन्द विक्रम संमत में से ९० वा ९१ वर्ष घटा कर गिना जाता था (१)। अतः यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के राजकवि तथा प्रधान मंत्री चन्द बरदाई (२) का पृथ्वीराज रासो वैसा ही सत्य और प्रमाणिक है जैसा कि भारतवर्ष का उस समय का कोई अन्य ग्रंथ और इसके कल्पित और संदिग्ध प्रमाणित करने के लिये जो उद्योग किए जायं वे व्यर्थ, बिना प्रमाण के तथा कुचेष्टित समझे जाने चाहिएं। यह सच है कि यह महाकाव्य सैकड़ों लेखकों और हज़ारों प्रशंसा करने वालों

---

(१) बाबू राधाकृष्णदास की सम्मति है कि कन्नौज के जैचन्द और दिल्ली के पृथ्वीराज में बहुत विरोध था और जैचन्द उज्जैन के विक्रम के वंश में था जिसने यह संवत चलाया। इस कारण से यह सम्भव है कि पृथ्वीराज ने इसे अपने गौरव और मान के प्रतिकूल समझा हो कि वह उस विक्रम संवत को काम में लावे और इसलिये उसने एक नया संवत चलाया हो जिसे उसने प्रचलित विक्रम संवत में से उतने वर्ष घटा कर मान लिया है जितने दिनों तक राठौरों का राज्य कन्नौज में रहा हो। चन्द्रदेव ने कन्नौज का राज्य लिया और उससे जैचन्द तक लगभग ९० वर्ष होते हैं। बाबू राधाकृष्ण दास की यह सम्मति संतोषदायक जान पड़ती है और इससे अनन्द विक्रम संवत की उत्पत्ति का कारण मिल जाता है।

(२) ऐसा कहा जाता है कि चन्द उसी दिन उत्पन्न हुआ था जिस दिन

के हाथों में पड़ा है और इसलिये यदि उसमें आज दिन कुछ मेल जोल और दूषित वाक्य पाए जाते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है परन्तु साथ ही इसके इनसे उसके मूल्य और सत्यता में कोई भेद नहीं पड़ता । अब, चन्द के रासो का एक यथार्थ और अविकल सस्करण निकाल कर हिन्दी साहित्य की एक बडी भारी सेवा करने का काम इस देश के पण्डितों के गुणदोष विचार पर निर्भर है ।

नम्बर ६०—अजमेर के वीसलदेव चौहान के समय के विषय में 'राजा वीसलदेव रासो' की नोटिस में कहा जा चुका है कि वीसलदेव और विग्रहराज एक ही मनुष्य नहीं थे और इसलिये उसका समय सन् ईस्वी की बारहवीं शताब्दी में नहीं हो सकता । दिल्ली में फ़ीरोज़शाह की लाट पर वाले शिलालेख के सिवाय विग्रहराज के सम्बन्ध में और भी दो शिलालेख हैं । इनमें से एक में तो सोमेश्वर देव का बनाया हुआ एक नाटक है जिसमें विग्रहराज का दिल्ली के राजा बसन्तपाल की कन्या के साथ विवाह करने का तथा मुसल्मानों के साथ युद्धों में उसके विजयी होने का वर्णन है । दूसरा शिलालेखभी एक नाटक है और यह स्वयम् विग्रहराज ही का बनाया हुआ है । इसका समय संवत् १२१० (११५३ ईस्वी है) । इन तीनों शिलालेखों से विग्रहराज का समय लगभग बारहवीं शताब्दी के बीच में प्रगट होता है ।

सोमेश्वर के राजत्वकाल के मेवाड वाले शिलालेख (१) में विग्रहराज का अर्नोराज के वंश में होना लिखा है और उसके बडे भाई का नाम सोमेश्वर तथा इस भाई के पुत्र का नाम पृथ्वीराज दिया है ।

पृथ्वीराज ने जन्म लिया और दोनों साथ ही मरे । यह बड़ा अद्भुत है कि चन्द अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में जहां प्राचीन कवियों की स्तुति करता है वहा अन्तिम नाम जयदेव (१२ वीं शताब्दी) का है जिससे इस ग्रन्थ की सत्यता और भी पुष्ट होती है ।

(१) जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी भाग १ संख्या ५५ पृष्ट ३१

इस शिलालेख में वीसल देव का नाम भी है और वह विग्रहराज के तीन पीढ़ी पहिले दिया है। इसके सिवाय पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि बीसलदेव जब गुजरात के राजा चालुक्य से युद्ध करने गया था तो राजा भोज का पुत्र उदयादित्य भी उसके साथ सम्मिलित हुआ। बीसलदेव रासो के अनुसार उदयादित्य बीसलदेव का साला था और पृथ्वीराज रासो में लिखा है कि बीसलदेव के एक परमार रानी थी, यद्यपि उसका नाम नहीं दिया है। (२)

चन्द ने वीसलदेव का समय संवत ८२१ दिया है जो कि सनन्द विक्रम संवत के अनुसार ९१२ होगा और यह कहा गया है कि उसने ६४ वर्ष राज्य किया अतएव उसकी मृत्यु का समय ९७६ (९१९ ईस्वी) होगा, जिस समय कि न तो धार के भोज परमार ही का और न उस के पुत्र उदयादित्य का जन्म हुआ था। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि लेखकों की चूक के कारण इस तिथि में भूल हुई है क्योंकि एक दूसरे स्थान पर चन्द बीसलदेव के, गुजरात के बलूक राव को पराजित करने का समय संवत ९८६ (१०२० ईस्वी) देता है। अतएव रासो में अवश्य ९२१ के स्थान पर भूल से ८२१ लिख गया है। यह तिथि (९-२१+९१+६४=१०७५ वा १०२० ईस्वी) भोज और उदयादित्य के समयों से मिलती है। (३)

लोक कथा में बीसलदेव का नाम मुसलमानों के साथ कई बेर सफलता के साथ लड़ने और अन्त में आर्यावर्त्त को वास्तव में आर्यावर्त्त

(२) ऊंच धाम विसराम किय, रंग साल चतुरंग।
प्रोढ़ा महल पवार सो, कहिय सुकथा प्रसंग॥

पृथ्वीराज रासो पृष्ठ ८३

(३) पण्डित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या का कथन है कि राजपुताने में जो वंशावलियां अब तक मिलती हैं उनमें बीसलदेव का समय ६३१ दिया है यदि यह सत्य है तो उसका समय १०२० माना जाना चाहिए।

(अर्थात् आर्यों का निवासस्थान) बनाने के लिये प्रसिद्ध है। इसका तात्पर्य कदाचित उस युद्ध से है जो महमूद गजनवी और राजपूतों की संयुक्त सेनाओं से लगातार कई बेर हुआ था और जिसमें ये लोग उसे यहां से कुछ काल के लिये निकाल देने में कृतकार्य थे। अतः यह जान पड़ेगा कि बीसलदेव १२ वी शताब्दी में नहीं ईस्वी की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध समय में हुआ। मेरा विचार है कि सेवालिक के शिलालेख में स्वयम् बीसलदेव का वर्णन नहीं है, वरन् उसका विग्रहराज के प्रतापी पुरुष की भांति वर्णन है। चौहानों के इतिहास में बीसलदेव का नाम स्वदेशहित के अनेक वीरोचित कार्य करने के लिये प्रसिद्ध है। अतएव विग्रहराज ने, जो कि दिल्ली लेने में कृतकार्य नहीं हुआ, अपने अपयश को मिटाकर अपनी कीर्त्ति बढ़ाने के विचार से ही अपने नाम के साथ साथ इस प्रतापी पुरुष का नाम खोदवाया होगा।

बीसलदेव के वृत्तान्त के साथ ही साथ मैं अपनी सन् १९०० की रिपोर्ट को भी समाप्त करता हूं और आशा करता हूं कि आगामी वर्षों में हिन्दी पुस्तकों की खोज में इस वर्ष से बहुत अधिक सफलता प्राप्त होगी। यदि यह खोज उचित रीति से आवश्यक सहायता और आश्रय के साथ की जायगी तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि इससे ऐसे फल निकलेंगे जिनसे पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध की गवर्मेण्ट का व्यय तथा काशी नागरीप्रचारिणी सभा का परिश्रम सुफल होगा।

अन्त में मैं अपने योग्य मित्रों मिस्टर जेम्स स्काट तथा बाबू तारकनाथ सन्याल को बहुत ही धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता कि जिन्होंने मुझे इस रिपोर्ट के तयार करने में कृपाकर सहायता दी है।

काशी
ता० १८ फ़र्वरी १९०१

श्यामसुन्दर दास।

सोलंकियों का प्राचीन इतिहास।

प्रथम भाग.

प्रकरण पहिला.

गुप्तों का महाराज्य नष्ट होने बाद हिन्दुस्तान में अनेक राजवंशों के स्वतंत्र राज्य स्थापन हुए, उनमें सोलंकियों(१) के समान प्रभावशाली और विस्तृत राज्य किसी वंशका नहीं रहा, इस समय तक राजपुताना, गुजरात, और दक्षिण में उनके समयके बने हुए मन्दिरादि जो पायेजाते हैं वे उनके समयके शिल्पकी उन्नति और समृद्धि के साक्षी रूप हैं· जिन्होंने आबू परके देलवाड़ा के मन्दिर देखे होंगे वे मुक्तकंठ से कहेंगे कि उनकी समानता करनेवाले मन्दिर हिन्दुस्तान में कहीं नहीं हैं। ऐसे ही "चौलुक्यन् आर्किटेक्चर," "आर्किटेक्चरल एंटिक्विटीज़ आफ़ नार्दर्न गुजरात" आदि

(१) संस्कृत के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, और पुस्तकों में इस वंशका नाम बहुधा चौलुक्य, चुलुक्य, अथवा चालुक्य लिखा मिलता है, और कहीं कहीं उसके चलुक्य, चलिक्य, या चल्क्य पाठ भी· मिलते हैं; परन्तु भाषामें सोलंकी या सोलंखी नाम प्रसिद्ध है, जो चौलुक्य शब्दका अपभ्रंश है.।

पुस्तकों के देखने से उनके समय के भारतीय शिल्प के महत्व का अनुमान होसकता है. इस वंशके राजाओं के समय में केवल शिल्पकी उन्नति हुई इतना ही नहीं किन्तु वे विद्यानुरागी, और विद्वानों का सत्कार कर विद्याकी वृद्धि करनेवाले हुए, जिससे अनेक विद्वानों ने उनकी कीर्ति चिरस्थाई रखने के वास्ते अनेक ग्रन्थों में उनका थोड़ा बहुत इतिहास लिखा है, जिनमें से प्रसिद्ध कश्मीरी पंडित बिल्हण कृत 'विक्रमांक देव चरित' प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र विरचित 'द्व्याश्रय महाकाव्य,' और 'कुमारपाल चरित (प्राकृत); मेरुतुङ्गप्रणीत 'प्रबन्धचिन्तामणि,' और विचार श्रेणी'; जिनप्रभसूरि रचित 'तीर्थ कल्प'; जिनमंडनोपाध्याय का 'कुमारपाल प्रबन्ध;' कृष्ण र्षीय जयसिंह सूरि प्रणीत 'कुमारपाल चरित'; सोमेश्वर प्रणीत 'कीर्ति कौमुदी'; अरिसिंह रचित 'सुकृत संकीर्तन'; राजशेखर रचित 'चतुर्विंशति प्रबन्ध'; धर्मसागर कृत 'प्रवचन परीक्षा'; जिन हर्षमणि विरचित 'वस्तुपाल चरित'; चारित्र सुन्दर रचित 'कुमारपाल चरित्र'; अयं कोंडान् रचित 'कलिंगत्तुपरणी' (तामिल भाषा का); और कृष्ण भट्ट रचित 'रत्नमाला' (हिन्दी) आदि

पुस्तक उपलब्ध होचुके हैं इनके अतिरिक्त इस वंशके राजाओं के समयके बनेहुए अनेक प्राचीन संस्कृत पुस्तकों के प्रारंभ वा अन्त में भी उनका कुछ कुछ हाल लिखा मिलता है, और उनकी दानशीलता प्रगट करनेवाले १०० से अधिक दानपत्र, और ६०० के करीब शिलालेख मिले हैं, जो उनके इतिहासके लिये बड़े ही उपयोगी हैं. ऐसे ही चीनी और अरब यात्रियों के सफ़रनामों तथा फ़ारसीके ऐतिहासिक पुस्तकों में भी उनके समयका कुछ कुछ वृत्तान्त दिया हुआ है. इस सामग्री से यदि उन राजाओं के समयकी मुख्य मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं का ही संग्रह किया जावे तो एक बृहत् पुस्तक बन सकता है, और मुसल्मानों के पूर्व के उनके इतिहास की अपूर्णता मिट सकती है।

सोलङ्कियों की उत्पत्ति।

इस समय सोलंकी और बघेल (सोलंकियों की एक शाखा) अपने को अग्निवंशी बतलाते हैं, और वसिष्ठ ऋषि द्वारा अग्नि कुण्ड से अपने मूल पुरुष चालुक्य या चौलुक्य का आबू पर्वतपर उत्पन्न होना मानते हैं, परन्तु उन्हीं के पूर्वजों के अनेक प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र और ऐतिहासिक पुस्तकों में कहीं उनका अग्निवंशी होना नहीं लिखा, अतएव उनकी उत्पत्ति के विषयके जो जो प्रमाण उन्हीं के लेख आदि से मिले हैं, वे पाठकों के विचारार्थ नीचे उद्धृत किये जाते हैं:

सोलंकी राजा विक्रमादित्य छठे के समय के शिलालेख (विक्रम संवत् ११३३ और ११८३ के बीच के) में लिखा है, कि "चालुक्य (सोलंकी) वंश भगवान ब्रह्माके पुत्र अत्रि के नेत्रसे उत्पन्न होने वाले चन्द्रके वंशके अन्तर्गत है"[1] उक्त

---

[1] ॐ स्वस्ति समस्त जगत्प्रसूते र्भगवतो ब्रह्मणः पुत्रस्यात्रेर्नेत्रसमुत्पन्नस्य यामिनीकामिनीललामभूतस्य सोमस्यान्वये सत्यत्यागशौर्य्यादिगुणनिलयः केवल निजध्वजिनीजवज्ञपितप्रतिपक्षक्षितीशवंशः श्रीमानस्ति चलुक्यवंशः॥ यह शिलालेख बंबई हाते के धारवाड़ ज़िले के गडग गांव में वीरनारायण के मन्दिर में लगा है—(इंडियन एंटीक्वेरी जिल्द २१, पृष्ठ १६७, कर्नाट देश इन्स्क्रिप्शन्स, सर वाल्टर इलियट सग्रहीत, जिल्द १, पृष्ठ ३७०)

राजा के ही समय के एक दूसरे शिला लेखमें भी ऐसा(१)ही लिखा है।

सोलंकी राजा राजराज प्रथम (विष्णुवर्द्धन) के समय के (वि० संवत् १०७९ और ११२० के बीच के) ताम्रपत्र में लिखा है कि "भगवान् पुरुषोत्तम के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उनसे क्रमशः अत्रि, सोम, बुध, पुरूरवा आयु, नहुष, ययाति, पुरु, जन्मेजय, प्राचीश, सैन्ययाति हयपति, सार्वभौम, जयसेन, महाभौम, देशानक, क्रोधानन, देवकि, रिभुक, ऋतुक, मतिवर, कात्यायन, नील, दुष्यन्त, भरत, भूमन्य, सुहोत्र, हस्ति, विरोचन, अजामील, संवरण, सुधन्वा, परीक्षित, भीमसेन, प्रदीपन, शान्तनु, विचित्रवीर्य, पाण्डु, अर्जुन, अभिमन्यु, परीक्षित, जनमेजय, क्षेमुक, नरवाहन, शतानीक, और उदयन हुए, उदयन से लगाकर ५९ चक्रवर्त्ती राजा अयोध्यामें हुए फिर उस वंशका राजा विजयादित्य दक्षिण में गया जिसका वंशज राजराज(२) था" उक्त राजा के राज्य वर्ष ३२, अर्थात् शक संवत् ९७५=वि० संवत्

(१) कर्नाट देश इन्स्क्रिप्शन्स जि. १, पृ॰४१५॰

(२)ॐ श्री धाम्नः पुरुषोत्तमस्य महतो नारायणस्य प्रभोर्नाभीपंकरुहाद्बभूव जगतस्स्रष्टा स्वयंभूस्ततः जज्ञे मानससूनुरत्रिरिति यस्त-

११९० के ताम्र(२)पत्र में भी इसी तरह वंशावली दी है. ऐसेही सोलंकी राजा विमलादित्य (विष्णुवर्द्धन) के राज्य के आठवें वर्ष(३) (शक संवत् ९४१ =वि० संवत् १०७६) के, चोडगगं राजराज के १७वें वर्ष(४) (शक संवत्) १०२३=वि० संवत् ११५८)

स्मान्मुनेरत्रितस्सोमो वंशकरस्सुधांशुरुदितः श्रीकण्ठचूडामणिः। तस्मादासीत्सुधासूतेर्बुधो बुधनुतस्ततः जातः पुरूरवानाम चक्रवर्त्ती सविक्रमः ततो जनमेजयोश्वमेधत्रितय कास्यत्तो ततः प्राचीशः तस्मात्सैन्ययाति ततोहयपतिस्ततस्सार्वभौमः ततोजयसेनः ततोमहाभौमः तस्मादैशानकः। ततः क्रोधाननः। ततो देवकिः देवकेरिभुकः तस्माद्दत्तकः। ततो मतिवरस्सत्र यागयाजी हरस्वतीनदीनाथः ततः कात्यायनः कात्यायनान्नीलः ततो दुष्यन्तः तत आर्य्यो गंगा यमुनातीरे यद्वविच्छिन्नाविखाय यूपान्क्रमशः कृत्वा तथाश्वमेधनामनाम महाकर्म्म भरत इति योलभत। ततो भरताद्भूमन्युः तस्मात्सुहोत्रः ततो हस्ती ततो विरोचनः तस्मादजमीलः ततस्संवरणः तस्य च तपनसुतायास्तपत्याश्च सुधन्वा ततो परीक्षित्। ततो भीमसेनः। ततः प्रदीपनः तस्माच्छान्तनुः ततो विचित्रवीर्य्यः। ततः पाण्डुराजः आर्य्यापुत्रास्तस्य धर्म्मजभीम अर्ज्जुननकुलसहदेवाः पंचेन्द्रियवत् पंचभूः........ ततोर्ज्जुनादभिमन्युः ततः परीक्षित् ततो जनमेजयः ततः क्षेमुकः ततो नरवाहनः ततश्शतानीकः तस्मादुदयनः ततः परं तत्प्रभृतिष्वविच्छिन्नसंतानेष्वयोध्यासिंहासनासीनेषु एकोनषष्टिचक्रवर्तिषु तद्वंश्यो विजयादित्यो नाम राजा विजिगीषया दक्षिणापथं गत्वा..... (इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द १४, पृष्ठ ५०–५५).

(२) एपिग्राफ़िया इंडिका, जिल्द ४, पृष्ठ ३०३–९.

(३) ” ” ” ६, पृष्ठ ३५१.

(४) ” ” ” ६, पृष्ठ ३३६.

वीरचोड (विष्णुवर्द्धन) के २१ ([1]) वें और २३ ([2]) वें वर्ष (शक संवत् १०२१ और १०२३=वि० संवत ११५६ और ११५८) के, और राजा मल्लदेव के शक संवत् ११२४ [3]) वि० संवत् १२५९ के ताम्रपत्रों में भी ठीक उसी प्रकार वंशावली दी है, जैसी कि ऊपर राजराज के ताम्रपत्रसे उद्धृत की है.

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेव दूसरे के शक संवत् १०५६=वि० संवत् ११९१ के ताम्रपत्र में सोलंकियों का चन्द्रवंशी.([4]) मानव्य गोत्री और हारीति के वशंज होना लिखा है. मानव्य और हारीति कौन थे इस विषय में उक्त ताम्रपत्र में कुछ भी नहीं लिखा, परन्तु सोलंकी राजा जयसिंह दूसरे के समयके शक संवत् ९४७=वि० संवत् १०८२

---

(१) साउथ इंडियन इन्स्क्रिप्शन्स जिल्द १, पृष्ठ ५३

(२) एपिग्राफिया इंडिका जिल्द ५, पृष्ठ ७४.

(३) " " " ४, पृष्ठ २३१

(४) जयति जगति नित्यं सोमवंशो महीभृच्छिरसि निहितपादस्संश्रयः कीर्त्तिवल्ल्याः जलधिवलयितोर्वीचक्रवालालवालाद्द्रिपुनृपरुधिरोद्रेह-सिताद्दुद्गतायाः । स्वस्ति श्रीमतां सकलभुवनसंस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां हारीतिपुत्राणां कौशिकीवरप्रसादलब्धराज्यानां .... चालुक्यानां कुलमलं करिष्णोः......(इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द १४, पृष्ठ ५६).

के लेख[1] में उनका परिचय इस प्रकार दिया है, कि ब्रह्मासे स्वयंभुव मनु उत्पन्न हुआ. उसके पुत्र मानव्यके वंशज सब मानव्य गोत्री कहलाये. मानव्य का पुत्र हरित, उसका पंचशिखि हारिति हुआ, उसके पुत्र चालुक्य से जो वंश चला वह चालुक्य (सोलंकी) वंश कहलाया.

सोलंकी राजा राजराज के वंशज विजयादित्य[2] और पुरुषोत्तम[3] के दो शिलालेखों में भी सोलंकियों, का चन्द्रवंशी होना लिखा है, जो क्रमशः शक संवत् ११९८ और १२४०=वि० संवत् १३३० और १३०५ के हैं.

सोलंकी राजा राजराजके दानपत्रमें, जहां उसका राज्याभिषेक शक संवत् ९४४ (=वि० संवत्

---

(१) कर्नाटदेश इन्स्क्रिपशन्स जिल्द १, पृष्ठ ४८. सोलंकियों का मानव्य गोत्री और हारीति के वंशज होना दक्षिणके कई लेख और ताम्रपत्रों में लिखा मिलता है.

(२) स्वस्ति। श्रीमानभूत् पुरा कश्चित्सोमवंशे महायशाः चालुक्यविमलादित्यचक्रवर्त्तीनृपाग्रणीः। ......। तस्मादभूत् क्षितिपतिप्रणतांघ्रिपद्मः श्रीराजराजनृपतिः प्रविशालकीर्त्तिः। ... ..। तद्वंशे विजयादित्य इति ख्यातो नृपोभवत् ...(एपिग्राफिया इंडिका जिल्द ५, पृष्ठ ३२-३३).

(३) श्रीः सोमान्वये समभवद् भुवि राजराजदेवस्सतामभिमतो नृपचक्रवर्त्ती। तत्सूनुराप्तविजयो विजयार्क्कदेवनामा मनोज्ञचरितस्सुकृती कृमज्ञः॥ तद्भ्राता पुरुषोत्तमो गुणनिधिर्द्देवो दयावारिधिः · ·· (एपिग्रा० इंडि० जि० ५, पृ० ३९).

१०७९=ई० सन् १०२२) में होना लिखा है, वहां उसको 'सोमवंश तिलक' बतलाया है.[1]

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव के इतिहास संबन्धी 'कलिंगत्तु परणी' नामक तामिल भाषा के काव्य में उक्त राजा का चन्द्रवंशी होना लिखा है.[2]

सोलंकी राजा वीरचोड़के २१ वें वर्ष (वि० संवत् ११५६) के ताम्रपत्रमें उसके दादा राजराज को सोमकुल (चन्द्र वंश) भूषण लिखा है.[3]

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव दूसरे के सामन्त बुद्धराज के शक संवत् १०९३=वि० संवत् १२२८ के दानपत्र में कुलोत्तुंग चोड़देव के प्रसिद्ध पूर्वज कुब्ज विष्णु (कुब्ज विष्णु वर्द्धन) का चन्द्र[4]-वंशी होना लिखा है.

---

(१) यः सोमवंशतिलकः शकवत्सरेषु वेदांबुराशिनिधिवर्त्तिषु सिंहगेर्क्के। कृष्णाद्वितीय दिवसोत्तर भद्रिकायां वारे गुरोर्व्वणिजलग्नवरेभिषिक्तः। एपिग्राफिया इंडिका जि० ४, पृ० ३०१.

(२) इंडियन एंटिक्वेरी जि० १९, पृ० ३३८. यह पुस्तक उक्त राजा के समय का बना हुआ है.

(३) तत्तनयो नयशाली जयलक्ष्मीधाम राजराजनरेन्द्रश्चत्वारिंशतमब्दानेकं च पुनर्म्महीमपालयदखिलां।........ श्रीमत्सोमकुलैकभूषणमणिर्दानैक चिन्तामणिः। सा. इं. इन्स्क्रिप्शन्स जि० १ पृष्ठ ५४.

(४) ॐ अस्ति श्रीस्तनकुंकुमांकित विराजव्यूढवक्षस्थलो देवशीतमयूखवंशतिलकः श्री कुब्जविष्णुर्नृपः। ...। एपि० इं० जि० ६, पृ० ३५९.

प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र रचित द्व्याश्रय महाकाव्य(१) के नवमे सर्ग में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के दूत और चेदी के राजा कर्ण के वार्त्तालाप का विस्तार से वर्णन है, जिसमें भीम-देव का चन्द्रवंशी होना लिखा है. उक्त वर्णन का सारांश यह है कि-'दूतने राजा कर्ण से पूछा कि राजा भीम आपसे यह जानना चाहता है, कि आप हमारे मित्र हैं या शत्रु? इसके उत्तरमें कर्णने कहा कि कभी निर्मूल न होने वाला सोम (चन्द्र) वंश विजयी है. इसी वंश में जन्म लेकर पुरूरवाने पृथ्वी का पालन किया था, इन्द्र के अभावसे भयभीत बनेहुए स्वर्गका रक्षण करनेवाला मूर्त्तिमान क्षात्रधर्म रूप नहुष इसी वंश में उत्पन्न हुआ था, इसी वंश के राजा भरतने निरंतर संग्राम करने और अनीति के मार्ग पर चलनेवाले दैत्यों का संहार कर अतुल यश प्राप्त किया था, इसी वंशमें जन्म लेकर

(१) गुजरातके सोलंकी राजा कुमारपाल के समय वि० सं० १२१७=ई० सन् ११६० के आसपास यह पुस्तक बनाया गया था, जिसमें उक्त आचार्य के रचे हुए 'सिद्धहैम' नामक संस्कृत व्याकरण के सूत्रों के क्रमशः उदाहरण और गुजरातके सोलंकी राजा मूलराज से कुमारपाल तक का इतिहास दोनों आश्रय होने से ही उसका नाम 'द्व्याश्रय काव्य' रक्खा गया है. ।

धर्मराज युधिष्ठिर ने उद्धत शत्रुओं का संहार किया था, जनमेजय तथा अन्य अक्षय यशवाले तेजस्वी राजा इसी वंशमें हुए. और इन सब पूर्व के राजाओं की समानता करनेवाला भीमदेव इस समय विजयी है. सत्पुरुषों में परस्पर मैत्री होना स्वाभाविक है, अतएव हमारी मैत्री की वस्तुएं लेजाकर भीमदेव को भेट करना और मुझको उनका मित्र समझना."(१)

---

(१) तन्नृपापविलिल्हच्चं श्रीभीमोल्हचवानिति। त्वामाह किमरिर्मित्रं वासिमेल्हत्तिक्षाद्विधा ॥ ४० ॥ विस्तीर्णवानय नयानुत्तीर्णं लूनसंशयं। कर्णः कर्णावतीर्णोनु यशोलीन इदं वचः ॥ ४१ ॥ अलूनि सोमवंशश्रीक्षत-लीनिर्जयत्यसौ। अधोलीनवतां तापं लूनवान् पूर्त्तिपावनः ॥ ४२ ॥ पूर्णि-तमश्लैः पूर्त्तः पूर्त्तवान् क्ष्मां पुरूरवाः। यशोभिः पूर्णवानाशास्तच पूर्णेन्दुनिर्मलैः ॥ ४३ ॥ भय छिचेद्रशक्तेर्द्योर्निघुर्षच्छिन्नवानिह। मूर्तानु तेजसां राघिः वाचो धर्म्मानु मूर्त्तवान् ॥ ४४ ॥ रणप्रमत्तान् दुर्म्मत्तवतः सूनान यानिह। धदूनो दूनवान्दैत्याभरतः सूनवान्यशः ॥ ४५ ॥ अनिद्राणव्रतः शत्रूननिद्राणोत्र वृक्णवान्। वृक्णपापो ध्यातधर्म्मः ध्यातः पूतो युधिष्ठिरः ॥४६॥ पूनाश्वाद्धूनयज्ञाग्नैः समक्ताविद्रुताद्वको। पाम्बोदक्ताहुतेर्यस्मावभूत्पारीक्षितोऽत्रसः ॥ ४७ ॥ क्षीणद्धूतास्तथेहान्ये-प्यसिनग्रासतेजसः। अक्षाप्यक्षीणवतो नु यशोभिः चितिवज्जितैः ॥ ४८ ॥ अन्यून एभ्यः पूर्वेभ्यो भीमो जयति संप्रति। यत्र न चितकः कोपि क्षीणकः केवलं कलिः ॥ ४९ ॥ मैत्री हि सहजा सद्भिः सतामि-त्यावयोरिमां। अन्यथा ख्यापयक्षोस्तुचितायुः क्षीणसंततिः ॥ ५० ॥ . . । मेरुभित्ततया वित्त स्वर्णवित्तमुपायनं ॥ ५८ ॥ रातञ्जुहुधि भीमस्यमित्रं मां विद्धि शाधि च। जहि शंकामेधिसज्जो निश्चिनुव्रजराघुहि ॥५९॥ सर्ग ९.

जिन हर्षगणि रचित(१) वस्तुपाल चरित में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव को चन्द्रवंश की शोभा बढानेवाला(२) (चन्द्रवंशी) लिखा है.

कश्मीरी पंडित बिल्हणने अपने रचेहुए 'विक्रमांकदेव चरित'(३) नामक काव्यमें लिखा है कि-"एक समय जब कि ब्रह्मा सन्ध्यावंदन कररहे थे, इन्द्रने आकर पृथ्वीपर धर्मद्रोह बढने और देवताओं को यज्ञविभाग न मिलने की शिकायत कर उसके निवारण के लिये एक वीर पुरुष उत्पन्न करनेकी प्रार्थना की, जिसपर ब्रह्माने संध्याजल से भरेहुए अपने चुलुक (अंजली वा चुल्लू) की ओर ध्यानमय दृष्टि दी, जिससे उस चुलुक से त्रैलोक्य की रक्षा करनेकी सामर्थ्यवाला एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके वंशमें क्रमशः हारीत और मानव्य हुए. इन क्षत्रियों ने पहिले अयोध्या में राज्य किया जहांसे विजय करते हुए वे दक्षिण में गये."(४)

---

(१) वस्तुपाल चरित वि० संवत् १४९७ में बना था.

(२) सोमवंशमलंकर्तुं पुनर्भीम इवाभवत् । भूपतिस्त्यागिनां सीमा भीमो भीमपराक्रमः ॥ १९ ॥

(३) यह पुस्तक सोलंकी राजा विक्रमादित्य के समय वि० संवत् ११४२= ई० सन् १०८५ में बना था।

(४) सन्ध्यासमाधौ भगवान् स्थितोथ शक्रेण बद्धाञ्जलिना प्रणम्य।

इसी प्रकार (ब्रह्माके चुलुक से) उत्पन्न होना गुजरातके सोलंकी राजा कुमारपालके समय के वि० संवत् १२०८ के बड़नगर[१] (गुजरात में) के तथा चित्तौड़[२] के क़िले के लेख में लिखा है।

विज्ञापितः शेखरपारिजातद्विरेफनादद्विगुणैर्वचोभिः ॥ ३९ ॥....॥
निवेदितश्चारजनेन नाथ तथा क्षितौ सम्प्रति विप्लवो मे ।
मन्ये यथा यज्ञविभागभोगः स्मर्तव्यतामेष्यति निर्जराणाम् ॥ ४४ ॥
धर्मद्रुहामत्र निवारणाय कार्यस्त्वया कश्चिदवार्यवीर्यः ।
रवेरिवाशुप्रसरेण यस्य वंशेन सुस्थाः ककुभः क्रियन्ते ॥ ४५ ॥
पुरंदरेण प्रतिपाद्यमानमेवं समाकर्ण्य वचो विरिञ्चिः ।
संध्यांबुपूर्णे चुलुके मुमोच ध्यानानुविद्धानि विलोचनानि ॥४६॥....॥
अथाविरासीत्सुभटस्त्रिलोकत्राणप्रवीणश्चुलुकाद्विधातुः ॥ ५५ ॥....॥
क्ष्माभृत्कुलानामुपरि प्रतिष्ठामवाप्य रत्नाकरभोगयोग्यः ॥
क्रमेण तस्मादुदियाय वंशः शौरेः पदाद्गाग इव प्रवाहः ॥ ५७ ॥
विपक्षवीराद्भुतकीर्तिहारी हारीत इत्यादि पुमान्स यत्र ।
मानव्यनामा च बभूव मानी मानव्ययं यः कृतवानरीणाम् ॥५८॥ ..॥
प्रसाध्य तं रावणमध्युवास यां मैथिलीशः कुलराजधानीम् ।
ते-क्षत्रियास्तामवदातकीर्तिं पुरीमयोध्यां विदधुर्निवासं ॥ ६३ ॥
जिगीषवः केपिविजित्य विश्व विलासदीक्षारसिकाः क्रमेण ।
चक्रुः पदं नागरखण्डचुम्बिपूगद्रुमायां दिशि दक्षिणस्यां ॥ ६४ ॥
(सर्ग प्रथम, विक्रमांक देव चरित)

(१) वेधाः संध्यानमस्यत्यपि निजचुलुके पुण्यगंगांबु पूर्णे । सद्योवीरं चलुक्याह्वयमसृजदिमं येन कीर्तिप्रवाहैः ......। (बड़ नगर का लेख-एपिग्रा० इंडि० जिल्द १, पृ० २९६)।

(२) संध्याम्भश्चुलुकेपि पङ्कजभुवा सृष्टश्चुलुक्याह्वयो वीरः कोप्य-भितः प्रतापदहनेनाक्रा......(चित्तौड़ का लेख) ।

लाट देशके सोलंकी राजा त्रिलोचनपाल के शक संवत् ९७२=वि० संवत् ११०७ के ताम्रपत्र में लिखा है कि "दैत्यों की तक़लीफ़ से उत्पन्न होने-वाले चिन्ता रूप मंदराचल से मथन करते हुए ब्रह्मा के चुलुक रूप समुद्र से एक पुरूष उत्पन्न हुआ, जो उन से प्रणाम कर बोला कि महाराज! मुझे क्या आज्ञा है? इसपर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे कहा कि चौलुक्य! कन्या कुब्ज (कन्नौज) के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा की पुत्री से विवाह कर, उससे सन्तान होगी, और इस प्रकार पृथ्वी पर चौलुक्य (सोलंकी) क्षत्रियों का विस्तृत वंश होगा [1]"

ऊपर जो प्रमाण उद्धृत किये गये हैं वे सोलं-कियों के ही शिलालेख, ताम्रपत्र, और ऐति-हासिक पुस्तकों से संग्रह किये गये हैं; उन में

(१) कदाचिद्दैत्यखेदार्त्तचिन्तामन्दरमन्थनात् । विरञ्चेश्चुलुकाम्भोधे राजरत्नं पुमानभूत् ॥ ४ ॥ देवकिंकरवाणीति नत्वा प्राह समेधसः । समादिष्टार्थसंसिद्धौ तुष्टः स्रष्टाब्रवीच्चतं ॥ ५ ॥ कन्याकुब्जे महाराज राष्ट्रकूटस्य कन्यकां लब्ध्वा सुखाय तस्यां त्वं चौलुक्याप्नुहि संततिम् ॥ ६ ॥ इत्यमत्र भवेत्तत्रसन्ततिर्विततता किल । चौलुक्यात्मथिता नद्यः स्रोतांसीव महीधरात् ॥ ७ ॥ (इण्डि० एण्टि जि० १२, पृ० २०१)

कहीं उनका अग्निवंशी होना नहीं लिखा, केवल 'पृथ्वीराजरासा' नामक राजस्थानी भाषा के काव्य में उनका अग्निवंशी होना लिखा है; परन्तु वह पुस्तक इतिहास के लिये सर्वथा निरुपयोगी है, और न वह सोलंकियों के इतिहास का पुस्तक है, अतएव उनका अग्निवंशी होना किसी प्रकार माननीय नहीं होसकता. उपर्युक्त प्रमाणों में से अधिकतर उनका चन्द्रवंशी होना प्रगट करते हैं; इनके सिवाय सोलंकियों के चन्द्रवंशी होने के और भी कई प्रमाण मिल सकते हैं, परन्तु हमने विस्तार भय से नहीं दिये, और उसी को हम प्रमाणिक समझते हैं. ब्रह्मा के चुलुक से उनके उत्पन्न होने की बात प्रगट करने वाले केवल ४ प्रमाण मिले हैं, जिनके विषय में यही अनुमान होता है, कि संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार 'चौलुक्य' शब्द 'चुलुक' शब्दसे बनता है, इसी पर से यदि निरंकुश कवियों ने ब्रह्मा के चुलुक (अंजली वा चुल्लु) से उनकी उत्पत्ति होने की कल्पना करली होतो आश्चर्य नहीं, क्योंकि बिल्हारी (जबलपुर जिले में) से मिले हुए हैहय (कलचुरि) वंशी राजा युवराजदेव दूसरे के समय के लेख के तय्यार करने वाले कविने 'चौलुक्य' शब्द की उत्पत्ति 'चुलुक'

शब्द से बतलाते हुए यह कल्पना की है[1] 'भरद्वाज के वीर्य से महाबली भारद्वाज (द्रोण) उत्पन्न हुआ उसने अपना अपमान करने वाले राजा द्रुपद को शाप देने के लिये अपने चुलुक में जल लिया, तो उसमें से साक्षात् विजय की मूर्ति रूप एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जिससे चौलुक्य (सोलंकी) वंश चला.[2]" इस प्रकार भिन्न भिन्न पुरुषों के चुलुक से उत्पन्न होने की कल्पना से यही कहा जा सकता है कि 'चुलुक' से 'चौलुक्य' शब्द बनता है इसपर लक्ष रख कर कितने एक कवियों ने अपनी कल्पना के मनमाने घोड़े दौड़ाये हैं। अतएव चौलुक्यों का चन्द्र-वंशी मानना ही ठीक जचता है, क्योंकि अधिक-तर प्रमाण वही प्रगट करते हैं ।

---

(१) उक्त लेखमें सवत् नहीं हैं, परन्तु युवराजदेव दूसरे का पौत्र गांगेयदेव वि॰ सवत् १०९४ में विद्यमान था, अतएव युवराजदेव दूसरा वि॰ संवत् १०५० के आसपास विद्यमान होना चाहिये।

(२) भरद्वाजो नाम च्युतकलुषदोषस्समभवद्य एकस्सर्वेशामुपशमधनानामधिपतिः। तदीयात्तेजस्तः क्षतकलशवासाद्यदभवत्स वै भारद्वाजस्त्रिभुवनचमत्कारिचरितः ॥ ..... ॥ क्षयात्तेपात्तेन द्रुपदविपदर्थाद्धुतधिया यदात्ते शापाम्भस्तरलितकराबद्धचुलुकम् । पुमानासीत्तस्मिन्विजय इव साक्षादनु च तं कुलं चौलुक्यानामननुगुणसीम प्रववृते ॥ (एपि॰ इण्डि॰ जिल्द १ पृ॰ २५७) ॥

उपरोक्त बिल्हारीका लेख हैहयवंशी राजाओंका है, परन्तु युवराज देव दूसरे के दादा केयूरवर्ष (युवराजदेव प्रथम) की राणी नोहला सोलंकी अवनिवर्माकी पुत्री थीं, अतएव उस प्रसङ्गसे उक्त लेखके तय्यार करने वालेने उसमें सोलंकियोंकी उत्पत्तिका हाल लिखा है.

अजीर्ण दूर होता है खट्टी डकार नहीं आने देती दांतों की तमाम बेमारियां दूर होती हैं पेचिश, छाती का दर्द या जलन, पेट की सब सिकायतें दूर होती हैं इसमें नशे की कोई चीज नहीं किसी तरह का नुकसान नहीं और बहुत स्वादिष्ट पान के बिना भी खा सक्ते हैं किस्तूरी सोने के वर्क और २ कीमती चीजें इसमें पड़ती हैं प्रतिदिन का सेवन बहुत बिमारियों को रोकता है बुखार, हैजा, प्लेग, सरदी, खासी, दम आदि में छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब को पान में एक गोली से चार गोली तक उमर के अनुसार आराम करती है इसकी कीमत सर्व साधारण के लाभ के लिए बहुत ही कम रखी है अर्थात् प्रत्येक बोतल का जिसमें २०० गोलियां हैं कीमत ।) डाक-व्यय एक से बारह बोतल तक ।-)

(५) Pain Balm यह दवा गठिया, लकवा, जोड़, कमर, सीना, कंधे, पेट, सिर, दांत, आदि का दरद या सरदी, खासी आदि को वा कान के दरद को बाहर ही लगाने से आराम करती है प्रत्येक शीशी १) वी. पी. व्यय ।-)

(६) The Perfumed Hair Oil यह तेल गंज, खाज आदि को दूर करता है मगज को ठंडक देता है बाल बढ़ते हैं मूछें डाढ़ी और पलकें बहुत बढ़ती है सिर और आंख की बेमारियां दूर होती हैं सुगन्धित है प्रत्येक शीशी ॥) वी पी. व्यय ।-) दो शीशी तक।

(७) Eye Drops—यह दवा मंद दृष्टि आखों से पानी का आना आखों का दरद मास का बढ़ना सूजना आदि आखों की अनेक बेमारियों को दूर करती है प्रत्येक शीशी ॥) VP व्यय ६ शीशी तक ।-)

(८) Ear Drops—यह दवा कान का दरद राध का बहना बहरापना आदि कान की सब बेमारियों को दूर करती है मूल्य प्रत्येक शीशी ॥) VP व्यय ।-)

(९) Ringworm Cure दाद और खाज वगैरहों के लिए इस दवा से और कोई उत्तम दवा नहीं है एक दफे लगाने से फिर होने का डर ही नहीं होता मूल्य प्रत्येक शीशी ।) वी. पी. व्यय ६ शीशी ।-)

(१०) The Mild Purgative Pills इन गोलियों से हलका जुलाब होता है दस्त साफ आता है दुःख बिलकुल नहीं होता अजीर्ण अजीर्ण, बुखार आदि सब रोग दूर होते हैं मूल्य प्रत्येक शीशी ॥) वी. पी. व्यय ६ शीशी तक ।~)

(११) Jvarasambari—यह दवा समस्त प्रकार के बुखारों के लिए, जैसे रोजीना इकातरेका मोताजरा सरदी का आदि बुखार सब दूर करती है प्रत्येक बक्स का मूल्य १) वी पी. व्यय ।~)

(१२) The Innocent Hair Killer. यह दवा पांचही मिनट में मन चाहे बदन के किसी हिस्से के बाल उड़ाने के लिये प्रभावशाली है प्रत्येक शीशी मूल्य ।) V.P व्यय ६ शीशी तक ।~)

(१३) The Aromatic Tooth Powder यह मंजन दांतोंकी सब बीमारियों के लिए लाभदायक है हाजमा भी दुरुस्त करती है मूल्य प्रत्येक शीशी ≥) वी॰ पीव्यय ५ तक ।~)

(१४) Specific for Involuntary Emissions and spermatorrhia. प्रमेहादि की अपूर्व औषधी ।

मूल्य प्रति शीशी ॥) वी॰ पी॰ व्यय ६ शीशी तक ।~)

(१५) Best muskor Kustoori काश्मीरसे आई हुई एकही तरह की और सबसे अच्छी मूल्य १) के ४=) फुटकर भी बिकती है वी॰ पी॰ व्यय अलग ।

(१६) Specific for scorpion sting इस दवाके थोड़ी बूंदें उस जगह लगादो जहां पर डंक लगाहो लगातेही शीघ्र आराम होगा हर घरमें यह दवा रहनी चाहिए मूल्य प्रत्येक शीशी ।) वी॰ पी॰ व्यय हिन्दुस्थान और बरमामें १से १२ शीशी तक ।~) सीलोनमें वी॰ पी॰ व्यय १ से १२ तकके ।≥)

नोट—ज्यो ख़रीदार एक दरजन शीशीयों से अधिक एक समय में लेगा उस को २॥) दरजन परसे दी जायगी वी॰ पी॰ व्यय ।~)

(१७ Healing Ointment. यह दवा हर किसम के पीप को दूर करती है बेमारी आदिकको जड़से खोती है जिससे फिर कभी उत्पन्न

को नहीं होती मूल्य ॥) हिन्दुस्थान और बरमा में वी॰ पी॰ व्यय तीन शीशी तक के ।-)

(१८) The magic voice Pill यह गोलियें आवाज को साफ और ताकतदेती है गवैये लेक्चरार पादरी आदि लोगों को बहुतही आराम देने वाली है गलेके खरखरे पन को दूर करती है–गाने वाले की आवाज को बहुतही साफ बना देती है, मूल्य १ शीशी ॥) वी॰ पी॰ १ से ६ तक ।-) हिन्दुस्थान और बरमा मे ।

(१९) Aromatic Toilet or Bathing Powder यह पाउडर न्हाने के वखत जरूर चहिये यह बड़ी खुशबूदार चीज है कीमती साबुनकी जगह में भी इसही को काम में लाना चाहिए सब लोग मर्द औरतें दोनोंही के वास्ते बहुत लाभदायक है मैलापन पसीनो की बदबू को दूर करती है बदन को साफ और चिकनाता है सुगंधित करता है हर आदमी को नहाते वख्त पास जरूरही रखना चाहिए मूल्य पर बाक्स ॥) वी॰पी॰ व्यय हिन्दुस्थान और बरमामें १ शीशी से ८ तक ≡)

(२०) Sanjiva Pills –गोलियां बुखार बदमिजाजी नींद का न आना दस्तका पतला होना सरदी, खासी सिर को दरद और २ सब बेमारियें को ज्यो बालको के होती है बहुत लाभदायक है साथ ही बड़े आदमियों को भी अत्यन्त लाभदायक है–मूल्य प्रति शीशी ।≈) वी. पी. व्यय हिन्दुस्तान और बरमा में १ से ६ शीशी तक ।-)

(२१) Superfine Gorojan Pills.–यह गोलिये सब प्रकार के बुखार रोजी ने, इकातरा, पसली, सीना, मगज आदि के दरद को बहुत ही लाभदायक है और बदमिजाजी नीद का न आना सरदी खासी सिरका दरद और २ बिमारियां ज्यो बालको के हो जाती है उनको बहुत ही लाभदायक है मूल्य प्रति शीशी ॥≈) डाक व्यय ।-)

(२२) Cure for skin Diseases इस दवा को ऊपर ही लगाने से शरीर में सब रोग याने खारिश खूटिया दाद फुनसी और मस्तक के गुजली खाज वगैरह बहुतही जल्द आराम होता है मूल्य ॥) वी. पी. व्यय २ बोतल के ५ आने

प्राप्तस्वीकार ।

बदलेमें

मित्रगोष्ठी पत्रिका (संस्कृत मासिक पत्र) संस्कृतरत्नाकर (संस्कृतमासिकपत्र) जैनग्रंथरत्नाकर (हिन्दी मासिक पुस्तक) विद्यार्थी जीवन (गुजराती मासिक पत्र) बुद्धिप्रकाश (गुजराती मासिक पत्र) डिटक्टिव (गुजराती मासिक पत्र) अलहीलाल (गुजराती मासिक पत्र) जैनहितेच्छुक (गुजराती मासिक पत्र) अंतःपुर (मासिक पत्र बङ्गाला) नवनूर (बंगला मासिक पत्र) इन्दुप्रकाश (अंगरेज़ी मराठी दैनिक) काशी पत्रिका (द्विमासिक अंगरेज़ी व संस्कृत पत्र) The Telegraph (English-daily) शेष फिर ।

पुस्तकें आदि ।

१	श्री वङ्कटेश्वर, प्रेस बम्बई	नैपालका इतिहास, आदर्शदम्पति, चीनिसकाव्यापारी, सुदामा नाटक, कामन्दकीय नीतिसार
२	भारत मित्र, प्रेस कलकत्ता	जीवनमृतरहस्य, नीतिवाटिका, रासपंचाध्यायी और भवरगीत, रानीभवानी, सज्जाद सम्बुल
३	लाला राधारमणदास वृन्दाबन	हिन्दी बङ्गला वर्णमाला
४	पं० बलदेवप्रसाद मिश्र मुरादाबाद	नैपाल का इतिहास
५	गोस्वामी श्री गोवर्धन लाल वृन्दाबन	शोकाश्रु, प्रेमशतक
६	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, मथुरा	अलङ्कारप्रकाश
७	भारतजीवन प्रेस, काशी	कुलीकहानीकथासरित्सागर नं० ३

८	पं० शिवनन्दनत्रिपाठी, बिहार	अन्योक्ति मुक्तावली प्रथमभाग
९	रायदेवीप्रसाद, कानपुर	चन्द्रकलाभानुकुमार, नाटक
१०	मेसर्स जैनवैद्य एण्डको, जयपुर	संस्कृत कविपञ्चक, व्यय
११	बाबू पंचमसिंह वर्म्मा, जमार	सन्तवचनामृतसार
१२	वैश्योपकारक, कलकत्ता	सीठने और मेंहदी निवेदन
१३	मिश्र गोविन्दनारायण, कलकत्ता	सारस्वत सर्वस

[शेष फिर]

इसे भी पढ़ो !

यह एकत्रित तीन नम्बर समालोचक के प्रेमियों के पास भेजे जाते हैं। अबके प्रेसके कारण और कुछ हमारे अस्वास्थ्य वा कार्य बाहुल्यताके कारण, ठीक समय पर पत्र न निकल सका इसका हमें भी दुःख है, पाठकों से प्रार्थना है कि जो महाशय इसके ग्राहक होना चाहें वे इस नम्बरके पातेही मूल्य भेजदें, अन्यथा यह नम्बर वा और नम्बर जो उनके पास हों, वापिस करदें—आगामी ३ नम्बर भी बहुत शीघ्र निकलने वाले हैं, वे सब के पास वी॰ पी॰ भेजे जायेंगे—जो महाशय इस सूचना को पढ़कर भी वी॰ पी॰ वापिस लौटायेंगे और न हमारे नम्बरोंहीको वापिस करेंगे—उनके नाम पत्रमें लाचार हमें छापना पड़ेगा—आशाहै इस सूचना को पढ़कर पाठक मूल्य भेजेंगे—वा वी॰ पी॰ भेजनेकी आज्ञादेंगे—

मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को, जयपुर।

इधर ध्यान दीजिए।

समालोचक पत्र हिन्दी की जो सेवा करता है, वह पाठकों से गुप्त नहीं है। किन्तु इस पर हिन्दी हितैषियों की कृपा नहीं है। अनेक ग्राहक पत्र बराबर लेते चले जाते हैं परन्तु मूल्य देना 'पाप' समझते हैं और वी॰ पी॰ जाने पर 'इनकार' करके हानि करते हैं। अतएव यह संख्या सर्व ग्राहकों के पास (जिनने मूल्य दिया है या नहीं दिया) भिजवाते हैं। आगामि संख्या केवल उनहीं के पास भिजवाई जायगी जिनका स्वीकार पत्र आजायगा अन्यथा पत्र अब किसी को न भेजा जायगा—मनेजर।

उपहार की बात!

समालोचक के स्वामी आगामी वर्ष से उपहार देने का विचार करते हैं। उपहार कोई साधारण रद्दी पुस्तकों का नहीं होगा किन्तु उत्तम सर्व-प्रशंसित ग्रन्थ उपहार में दिए जावेगें। कालान्तर में इस का विशेष वर्णन कर दिया जायगा। केवल ग्राहकही (अग्रिम मूल्य देनेवाले) उपहारके पात्र होंगे। उपहार का मूल्य बहुतही अल्प होगा। ग्राहकों को जल्दी करना चाहिए।

देखिये!!!

संस्कृत कविपञ्चक छपकर तयार होगया है जिनको लेना हो शीघ्रता करके मंगवा लेवें दाम ॥।) डाकव्यय -)॥

मिलने का पता—

मेसर्स जैनवैद्य एण्ड को,

जयपुर।

Registered No. J. II.
समालोचक
भाग ३.] जनवरी, फरवरी और मार्च १९०५ [संख्या ३०, ३१, ३२.
प्रोप्राइटर और प्रकाशक,
मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को,
जयपुर।
BENARES:
Printed at the Medical Hall Press,
1905.

विषय सूची।

पृष्ठ

विना मूल्य किसीको नहीं भेजा जाता

वार्षिक मूल्य १॥) ... ... यह संख्या ॥-)

समालोचक

३ भाग	जनवरी, फरवरी, और मार्च १९०५	संख्या ३०, ३१, ३२

प्रार्थना ।

अहो ! प्रभु नाहिन नेको भरोसो ।
जनम जनमको अघीपातकी विमुख सदाही तोसों ।
कबहु नाहिं शुद्धचित्त ह्वैकै तुव पदध्यान लगायो ।
विषय वासना में पचिपचिकै नाहक जनम गँवायो ॥
कबहू कठिन विरह की आतप नाहिन मोहि तपायो ।
नाहिन कबहु कमलपद सेयो तुव गुनगाथ न गायो ॥
नाहिन मुख कछु कहन सुनन को जो तुमसों कछु जांचो ।
राधाकृष्णदास निज जनपै करुना जिय कछु वांचो ॥

श्री राधाकृष्णदास
काशी ।

सुकवि सतसई के दोहों पर कुण्डलिया।

मङ्गलाचरण

दोहा। × बोलत मधुर गम्भीर धुनि करन मोर मनकाम।
बरसा[१]नेवारी–सहित कब लखिहो घनस्याम* ॥ १ ॥

कु० ॥ कब लखिहों घनस्याम सहित बरसानेवारी।
करन मोर मनकाम जगत जीवन सुखकारी ॥
"आनन्द" आनन्द करन तापहरि इत उत डोलत।
बरसावत रस सरस मधुर धुनि रहि रहि बोलत ॥

दोहा ॥ गुंजारी तू धन्य है बसत तेरे मुख स्याम।
यातें उर लाये रहत हरि तोकों बसुयाम ॥ २ ॥

कु० ॥ हरि तोको बसुयाम याहितें उरमें लीन्हो।
बसत तेरे मुख स्याम याहिको फल यह दीन्हो ॥
जगत स्याममय जीव सकल सुखके इक पुंजा।
आनन्द सुकवि बिलोकि कहत धनिधनि तू गुंजा ॥

दोहा ॥ अरी कौन तैं तप कियो मुरली तुअ बड़ भाग।
हरिहू चापत चरन है चूमत के अनुराग ॥ ३ ॥

कु० ॥ चूमत के अनुराग चरन छन छन धरि चापत।
मुरली तोरो भाग कछू सुख कही न आवत ॥

× इस दोहे में श्लेष है एक पक्ष में कृष्ण और दूसरे पक्ष में मेघ का अर्थ निकलता है जो स्पष्ट है। १ राधा। * कृष्ण।

करि अधरारसपान लेत गोपिन के मन हरि।
आनन्द सु कबितपस्या ऐसी कौन करी अरी॥
घूमत के अनुराग राग मीठे सुर गावत।
चरन चरन के परन करनको सुख सरसावत॥
आनन्द आनन्दलहै मुरलिया मधुर औन तैं।
हरिहू सेवत तोहि अरी तप करी कौन तें॥

दोहा॥ रचि जग प्रबिसे जगत मै भाषत बेद अनेक।
मोहियकातू नाहिं रच्यो प्रबिसत नहि छन एक॥ ४॥

कु० ॥ प्रबिसत नाहिं छन एक, याहितें पस्यो जनाई।
मोहियका तुम रच्यो नाहि याते दरसाई॥
सब भूतन मैं बसत बेद भाषत है जचि ज्रचिं।
"आनन्द"सुकबिबिचारिदियोकोहिहेतहमहिरचि॥

दोहा॥ हाय स्याम[1] मम होय अलि हीय नाहिं है स्याम[2]।
काम[3]हिमे माती रहत पूरत कोउ न काम॥ ५॥

कु० ॥ पूरत कोउ न काम काम सब काम बिगास्यो।
हीय महाहै स्याम याहितें स्याम बिसास्यो॥
करिहों कौन उपाय सकल जग जानि परत भ्रम।
आनन्दसुकबिबिचारिभजहुजियअजहुस्याममम॥

दोहा॥ रसना दसनासों घिरी बनी झूठ को ठाम।
रसना रसना जगतमै कसना भाषत स्याम॥ ६॥

कु० ॥ कसना भाषत स्याम झूठको बन्यो अखारो।
रसना रसना जगत बीच याको निरधारो॥
दसनाहू के बीच हाय चलि है कछु बसना।

१ मलिन। २ भगवान कृष्ण। ३ विषय।

"आनन्द" स्यामहि भजहु व्यर्थ पातकमें खसना ॥

दोहा ॥ सेर बन्यो इतउत फिरत पावन रति आनन्द ।
धस्यो न मनतें नेहहा नंद नन्दन ब्रजचन्द ॥ ७ ॥

कु० ॥ नंद नन्दन ब्रजचन्द चन्द्रकुल चन्द मुरारी ।
धस्यो न मनतें इहा याहि को दुख है भारी ॥
पावन रती अनन्द तहां धावत है नित प्रति ।
"आनन्द" नाहक फिरत मूढ़ तुम सेर बन्यो रत ॥

दोहा ॥ बहु दिखराई बक्तृता रसने तै करि गाज ।
छन एक बेठि उचारिलो नंद नन्दन ब्रजराज ॥ ८ ॥

कु० ॥ नंद नन्दन ब्रजराज छनक एक बेठि उचारो ।
और जिते भ्रमजाल जगत के ताहि बिसारो ॥
"आनन्द" गीत कवित्त लावनी सकल सुनाई ।
रसने तैं करि गाज बक्तृता बहु दिखराई ॥

दोहा ॥ अहै बाललीला भरी कोटि कोटि ही भाव ।
कछु कहन तेहि चहतहों मेरहु बाल सुभाव ॥ ९ ॥

कु० ॥ मेरहु बाल सुभाव बाललीला अति भावे ।
जहां कोटिहि कोटि भाव मनको ललचावै ॥
कहन चाहों ताहि प्रेम बिबस जो सदा सुखदहै ।
"आनन्द" जद्यपि मोहि कछुक विद्या बलनहै ॥

असम्पूर्ण

पंडित नरनाथ झा
पुर्नियां ।

अत्र तत्र सर्वत्र।

वंशाच्छेद्—अङ्गदेश के एक भूतपूर्व लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने, भारतवर्ष में मनुष्यसंख्या की अधिकता से घबरा कर कहा था "They breed and breed and breed" और कई नवशिक्षित सज्जन जन संख्या के विषय में मेल्थस के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए सन्तानोत्पत्ति के विरुद्ध हैं। विलायत मे इसके विरुद्ध भय हो रहा है कि उचित सन्तान नहीं उत्पन्न होती और जनसंख्या घट रही है। इसमें एक कारण तो है कि शिक्षित माता, पिता अपने एकान्त गृह को चीं पों से पूर्ण करना नहीं चाहते, एक या दो सन्तानों की भोग्य सम्पत्ति पर पन्द्रह, सोलह को बिठाना नहीं चाहते और इससे यह होता है कि योग्य और शिक्षित लोगों का, और विशेषतः शिक्षिता स्त्रियों का प्रजनन नष्ट हो गया है। अतएव कई वैज्ञानिक मनुष्य वंश को उसी तरह बढाना चाहते हैं जैसे घोड़ों की या बैलों की नस्ल सुधारी जाती है या जैसे पेड़ों को देख देख कर कलम लगाई जाती है। औषध या वैद्यों के उपदेश केवल मार्ग ही दिखला सकते हैं, और जीवन मनुष्यजाति को एक बड़े भारी अन्धकूप में ले जारहा है जिसमें से राजनियमों से वैद्यक शास्त्र उसे बचा सकता है। सब कहीं, वंशजरोग, वंशजमद्यपान, अन्धापन, बहरापन, कोढ प्रभृति बढते जाते हैं। सेना के योग्य मनुष्यों की संख्या घटती जाती है और नए उपनिवेशों में मंगते, पागल और पापी बढते जाते हैं। इसका कारण यही है कि जो अच्छी सन्तान उत्पन्न कर

सकते हैं वे नहीं करते, और अयोग्यों का जनकत्व घटता नहीं, किन्तु बढ़ताही है। पहले बालक रोगों से मरजाते थे, और जो बचते वे 'सत्तम' रहते थे; किन्तु डाक्टरी से बालरोगों से मौत तो घट गई किन्तु दूध के साथ औषध का विष लेकर बालक बड़े होने पर अयोग्य और चौथा सृष्टि को बढ़ाते हैं। सार्वदेशिक अधःपात का भूत सत्य है, हमारी घ्राणेन्द्रिय पशुओं से कम हो गई है, सभ्यता से दांत गलते जाते हैं, आंखें अनुपयुक्त होती जाती हैं, अस्थियां, स्त्रियों के स्तन, और विषयवासना घटती जाती है। परिणाम यह होगा कि हाथ गीले होते ही ज्वर आजाया करेगा, साधारण वायु हमारे श्वास के लिये भद्दी होगी, इसको छनी छनाई 'आक्सिजन' बांधते फिरना होगा, और बिना उसके मछली की तरह तड़पना होगा। आंख को रोज साफ करना होगा, मद्य और तम्बाकू से उत्तेजना न पाकर मनुष्य विषों से काम लेंगे, सहवास असभ्य समझा जाकर प्रजनन कृत्रिम उपायों से किया जाया करेगा। इस मार्ग पर चलते चलते हमारा जीवन वनस्पतियों का सा हो जायगा। इस भयंकर परिणाम का भयङ्कर उपाय डाक्टर चेपलने यह बताया है कि जो स्त्री बलिष्ठ सन्तान जनन के अयोग्य है, या जो दुर्बल सन्तान जनने वाले को ब्याही जा चुकी है, उसे बलात्कार से, सरकारी कायदे से, डाक्टरी उपाय से, गर्भाशय को काटकर वन्ध्या बना दिया जाय। इस दुर्बल श्रेणी में सभी रोगी, और असमर्थ आगए हैं। किन्तु केवल अयोग्यों को वन्ध्य करने से काम न चलेगा। इस निषेधात्मक क्रिया से वंश का लोप शीघ्र होगा, जब तक कि योग्यों को सन्तान उत्पन्न करने में बाधित न किया जाय। बुद्धि के

व्यायामों मे लगने से शक्तिहीन होकर, कितनेही प्रजनन नहीं करते और कितने देशों में यह स्वयंसिद्ध सिद्धान्त हो गया है कि कोई पत्नी बिना अपनी इच्छा के माता नहीं बनाई जा सकती, और पति भी नहीं चाहते कि कई पुत्रों के पिता बन कर उन्हें निर्धन या अशिक्षित छोड़ जायं, कठिनाई तो यह है कि इन सिद्धान्तों को प्रजनन के योग्य वंश मानते हैं, जिससे इङ्गलैण्ड में प्रति दिन पांच सौ जन्म कम होने लग गए हैं और कहीं कहीं बीस प्रति सैकड़ा जन्म घट गए हैं। पहले तो सिद्धान्त था कि सम्पत्ति बढ़ने से सन्तति बढ़ती है, किन्तु अब सम्पत्ति बढ़ने से सन्तति का नाश होता है, क्योंकि सन्तति होने से अपने लोभ और उत्साह को रोकना पड़ता है। नाड़ी विज्ञान के नियम से इन लोगों ने पत्नीत्व और मातृत्व को पृथक् कर लिया है और जनक होकर भी वे दाम्पत्य सुख से निवाह देते हैं। अर्थ शास्त्र का यह नियम तो वंशच्छेद करता ही है, किन्तु स्त्रियों की उन्नति और अपने अधिकारों का जानना भी इस घोर परिणाम का कारण है। वे परिवार को कम करना चाहती हैं, और वेदना को वारंवार नहीं सहना चाहतीं। वर्तमान युगपीढ़ा से घबड़ाता है और यदि पुरुष उस वेदना को जानते तो स्त्रियों की इस 'हड़ताल' को बुरा न कहते। किन्तु उस वेदना का अनुमान करके पुरुषों ने भी स्त्रियों के उस कार्य मे सम्मति देदी है। जिससे प्रेम और पशुवृत्ति का पूरण हो जाय, किन्तु मातृत्व न उठाना पड़े। यद्यपि यों इन दोनों कर्मों का पृथक करना बुरा है किन्तु सन्तान को पालसकने वाले, सम्पन्न, अपनी शक्ति भर सन्तान उत्पन्न करें और असमर्थ और दुर्बल

इस काम से रोके जायं तो यह न्याय है। नहीं तो पृथ्वी से अच्छे अच्छे वंश लोप हो रहे हैं और हो जायगे और दुर्बल लोग और दीन पृथ्वी को छालेंगे। अतएव अच्छे सामाजिकों का धर्म है कि जितनी सन्तति उत्पन्न कर सकें, करें किन्तु उन्हीं में इसका विरोध पाया जाता है। तो, बलात्कार से बन्ध्यात्व का नियम चलने पर कितना बड़ा अनिष्ट होगा। योग्य स्त्रियां भी यदि इस डाक्टरी उपाय का परिणाम बन्ध्यात्व जानेंगी तो वे क्या इसे पहिले न स्वीकार करेंगी? वे इस यातना से बचने को पीड़ा भी सहेंगी, किन्तु यह आपरेशन तो बिना पीड़ा के होगा। अतएव विचार है कि योग्य स्त्री को बन्ध्या करने वाले डाक्टर को दण्ड की व्यवस्था की जायगी। यदि डाक्टर को रुपया देकर मैं अपनी आंख निकलवालूं तो राजा क्या कह सकता है? कौन जूरी यह कह सकेगी कि बिना पीड़ा का आपरेशन करना, प्रार्थना पर, दण्डनीय है? और इस नियम से ब्रह्मचारियों को भी दण्ड मिलना चाहिए। यों अयोग्यों को बलात्कार से बन्ध्य किया जाय, और योग्य स्वयं बन्ध्य होते जांय, तो संसार में बचे मनुष्यों को पांव पसार कर सोने का स्थान खूब मिल जायगा। यों योग्यों का सन्तान उत्पन्न न करना भयङ्कर है, और ज्ञान के विस्तार से जब मूर्खों और नीचों में भी यह ज्ञान पहुंच गया कि जनक होने के बिना वासनाएं पूरी हो सकती हैं, तो अनर्थ हो जायगा और "असमों का प्रवेश" जगत पर छा जायगा यह सब तत्त्व Review of Reviews से लिए हैं।

श्वेतों की इस चिन्ता में हमें भी चिन्ता का कारण है कि पीत और और श्याम जातियां सन्तान उत्पन्न करने में धर्म समझती हैं

और वे अर्थ शास्त्र या स्त्रीस्वाधीनता के पक्ष में जन संख्या घटाती नहीं। तब भला उनका दिन रात बढ़ता बोझा कौन उठावेगा?। जब ग्वाले और गडरिये कम हो रहे हैं तो बढ़ती हुई रेवड़ को कौन सम्हालेगा? "मुनीनां च मतिभ्रमः"

कानपुरी राय–सरकार ने कुछ देशी ग्रेजुएटों को छात्रवृत्ति देकर विलायत में शिल्पशिक्षा के लिए भेजने का जो विचार किया था, कानपुर की अपर इण्डिया चेम्बर आफ कामर्स उसके विरुद्ध है। "वे छात्र उच्चपदों के पाने की आशा करेंगे, अपने प्रवास में उन्हें विषयों में पल्लवग्राहि पाण्डित्य मात्र होगा, और इससे वे यूरोपियन निपुणों के स्थान में काम नहीं दे सकते। सरकार से वे चुने गए हैं इस घमण्ड में वे हलका काम न करेंगे। हस्तशिल्प की शिक्षा भारतवर्ष की मिलों में ही अच्छी हो सकती है, किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य काम करना नहीं चाहते। कानपुर में शिल्पविद्यालय के स्थापन की भी जरूरत नहीं है क्योंकि यदि परिश्रम और नियम से चलना चाहें तो वे फेक्टरियों में ही सीख सकते हैं। अत एव प्राइमरी शिक्षा मात्र में कुछ शिल्प की ओर गति कराई जाय और शिक्षित लोगों को नीचे के काम कराने के लिए आसाम के कुली आईन की तरह बद्ध किया जाय क्योंकि कानपुर में काम करनेवाले नहीं मिलते"। क्या इस विचार में यह नहीं झलकता कि भारतवासी हलके कामों के करने के लिए ही हैं? किसी विषय का वर्णमाला वेत्ता भी यहां आकर एक्सपर्ट कहलावे और यहां वाले वहां वर्षों रहकर भी स्थूल तत्व तक न सीखें? यदि स्वामी सेवकों को सन्तुष्ट कर सकते हैं, तो ऐतिहासिक कष्टों के देनेवाले कुली आईन की क्या ज़रूरत है? भारतवासी बात बात में सरकार का मुंह

न तकें, शिल्पशिक्षा के लिए स्वयं उद्योग करके जापान, अमेरिका या इङ्गलेण्ड में स्वच्छन्द जावें।

श्वेतकृष्ण वर्णभेद का झगड़ा बढ़ता जाता है। आष्ट्रेलिया का बड़ा आग्रह है कि उस देश में श्याम पदार्पण न करने पावें। किन्तु उत्तरी आष्ट्रेलिया के उष्ण प्रान्तों में श्वेत काम नहीं कर सकते और शीतवातातपतम श्यामों को वहां काम नहीं करने देते, तो, वह भूमि वृथा पड़ी पड़ी "घास में कुत्ते" का स्मरण दिलाती है। सारा इङ्गलेण्ड और उसकी कलोनिया जापान के विजय से तुष्ट है, किन्तु आष्ट्रेलिया को भय है कि जापान के विजय से उसका व्यापार जायगा, और वहां पीलों का उपद्रव होगा, इससे वह रूस के पक्ष मे है। जिज्ञासा यह है कि यदि फ्रान्स या जर्मनी रूस की ओर हो तो इङ्गलेण्ड को अवश्य जापान का पक्ष लेना पड़ेगा, तो आष्ट्रेलिया क्या इङ्गलेण्ड से अपना सम्बन्ध तोड़ेगी! भारतवासी भी यह कबतक सहेंगे कि इङ्गलेण्ड एक ओर तो स्वतन्त्र कलोनियां बसा रहा है, और दूसरी ओर एक रंग के दूसरे पर प्रभुत्व के आधार पर साम्राज्य स्थापन करता है? निपुण अंग्रेज भी होशियार होतेही भारतवासियों को अधिकार देने की चिन्ता में हैं। भारतवर्ष तो अपनी रक्षा के व्यय के अतिरिक्त दूर दूर के युद्धों का व्यय देता है, किन्तु इङ्गलेण्ड के शान्त करदाता कब तक एक ऐसी कालोनी का व्यय भरेंगे जो उसके सिद्धान्तों को मानती ही नहीं किन्तु उसके ताज के प्रधान रत्नके वासियों को घृणा करती है? ट्रान्सवाल में भारतवासियों का सूचीप्रवेश भी नहीं है और इस 'श्वेतकृष्ण' के जाति भेद के परमार्थ का हम श्वेतकृष्ण कुछ नहीं जानते।

एकतन्त्र-समय की अनमेल घटनाओं में प्रधान, रूस में अब भी, इस स्वतन्त्रता के समय में, एक तन्त्र रहना है। एक तन्त्र प्रजा में या प्रधान वंश में जो कुछ अच्छे गुण होते हैं उन्हें खा जाता है, और उसका परिणाम पूर्णाधिकारों का फल पागलपन है। शासन के लिए सदा "चुना हुआ" मनुष्य चाहिए, किन्तु मनुष्यों के बदले का काम प्रकृति नहीं कर सकती और किसी वंश में जन्म लेने वाला ज्येष्ठ पुत्र सदाही प्रजा में सब से अच्छा हो, इसकी सम्भावना वृथा है। और जब पूरे सर्वाधिकार किसी वंश के अग्रज के मत्थे रख दिए जाते हैं, तो एक समय ऐसा आता है कि वह ईश्वरावतार स्वयं अयोग्य होकर अपने पास योग्य मनुष्यों को इकट्ठा करने की शक्ति और समझ नहीं रखता। अमेरिका में प्रेसिडेन्ट सदा अच्छे मिलेंगे, क्योंकि खेत से सभापति के आसन तक आने में योग्यता की परीक्षा होती है, इङ्गलेण्ड का नियत तन्त्र भी सदा चल सकता है क्योंकि राजा की अयोग्यता को प्रजा डांटती है, किन्तु एक तन्त्र भयानक है, अस्थायी है, नश्वर है, चाहे अयोग्य एकतन्त्र शासकों की मूर्खताओं से भी काम चलजाय, किन्तु सदा नहीं चल सकता, वर्तमान प्राच्यप्रतीच्य संग्राम में रूसके जार का कोई दोष नहीं है। न तो उसने परमेश्वर से प्रार्थना की थी कि हमें पृथ्वी के षष्ठांश का ईश्वर बना, और न उनमें सहायकों ने योग्यता के बीज बोए हैं। जिसे जन्म से सिखाया जाय कि तुम ईश्वर हो, सब से अधिकबुद्धि तुम्हारी है, तुम्हारी सलाह को कोई काट नहीं सकता, उसका विचार दुर्बल न हो और सिर न फिर जाय तो क्या हो? रूस के शासक पर दया आती है, वैसी ही जैसे छै महीने के बच्चे के हाथ में चक्कू देखकर। उन्हें अपनी

योग्यता का अभिमान है, वे अच्छे सलाहकार नहीं चुन सकते और सेनापतियों की झूठी रिपोर्टें और भ्रमात्मक धर्म से वे जापान और यहूदियों का वैर लेने में पड़े । वे दुर्बल रशिया से पराजित होने की लाञ्छना भोग सकते हैं, प्रजा उनके युद्ध की तरफ़ नहीं है और निराशता, 'दिशः शून्यता,' मन्त्रियों का अभाव उन्हें उदास और दयापात्र बना रहे हैं इस का कारण एक तन्त्र का नशा ही है । कभी कभी भारतवर्ष में भी एक तन्त्रता के नशे की मात्रा बढ़ जाती है, इसीसे वायसरायों की अवधि नियत है । लार्ड कर्जन महादेव की तरह इस विष को पीकर भी अमर है इसी लिए उन्हें यहां फिर आना शुभ हो ।

मान्यवर गोखले—ने कांग्रेस के लिए मद्रास में व्याख्यान देते ये शब्द कहे थे—

"महाशयो स्मरण रक्खो, कि जो हमारे विरुद्ध हैं और जिन के हाथ में शक्ति का ठेका है, उनके पीछे सरकार की सारी प्रबलता है, और देश के शासकों का नीतिधर्मबल तो उनके पीछे है ही । यह स्वीकार करना न्याय ही है कि वे चुने हुए मनुष्य हैं और मनुष्य मनुष्य की तुलना में वे हमसे अच्छे मनुष्य हैं, इनमें कर्तव्यका उच्चतर आदर्श है, देशभक्ति के उच्चतर भाव हैं, परस्पर भक्ति के उच्चतर ज्ञान हैं, नियमबद्ध काम की उच्चतर कल्पना है" ।

ये अपनी दुर्बलता के सूचक हैं । जब हम अपनी समानता सिद्ध करते हैं तो इतना क्लैव्य क्यों ? सुना है गायकवाड़ गोखले को भी अपने यहां रखना चाहते हैं । बड़ोदा प्रान्त के लाभ के लिए भारत इस हानि को नहीं सह सकता और पूनावासियों को गोखले को कभी न जाने देना चाहिए—

किसा गौतमी।

(बुद्धदेव का उपदेश)

श्रावस्तीत नाम देश में किसा गौतमी नाम एक सुन्दरी वास करती रहीं। उसके पति के धन की संख्या नहीं थी। विवाह करने के बाद, कई बरस बीतने पर, उसके एक पुत्र हुआ। पुत्र देखने में अत्यन्त सुन्दर था किन्तु बाल अवस्था में उस की मृत्यु होगयी। गौतमी, शोक से बे-धैर्य हुई, मरे बालक को गोदी में लेकर दरवाज़े दरवाज़े यों पूछती हुई बाहर निकली "कोई आदमी किसी औषध से इस बालक को जिला सकेगा या नहीं?"

सब कोई बोले कि इसकी कोई औषधी नहीं है। किन्तु उस को सब लोगों के कहने पर विश्वास नहीं हुआ। इसके बाद एक वृद्ध भिक्षुक गौतमी को बोला "तुम भगवान् बुद्धदेव के निकट जावो वह इसका औषध जानते हैं" बुद्धदेव धर्म का उपदेश करते रहे उस समय गौतमी उनके समीप जाके बोली "भगवान्, आप बहुत औषध जानते हैं। हमारा यह पुत्र मर गया। दयापूर्वक इसे किसी औषध से जिलाइए" बुद्धदेव ने उत्तर दिया 'हे गौतमी, तुम गांव में जावो जिसके घर में पूर्व में पिता, माता, भ्राता, भगिनी, पुत्र, कन्या, दास, दासी इत्यादि किसी का भी मृत्यु नहीं हुआ होय ऐसे किसी घर से एक मुष्टि भर सरसों के बीज ले आओ हम तुम्हारे औषध की व्यवस्था करेंगे"। बुद्धदेव के वचन सुनकर गौतमी अत्यन्त सन्तुष्ट होगई और सरसो लाने को उसने गांव में प्रवेश किया। वह इतने घर फिरी कि जिनकी संख्या नहीं कर सकते हैं तिसपर भी सरसों नहीं मिली। प्रत्येक घर में यही सुना किसी न किसी

के माता पिता प्रभृति की मृत्यु हुई है; जिस घर में एक आदमी नहीं मरा है, ऐसा घर कोई नहीं देखा। तब गोतमी के मन में वैराग्य हुआ। वैराग्य होने पर उसने बालक को श्मसान में जला दिया। निम्नलिखित प्रबन्ध पाठ किया—

न गामधम्मो नो निगमस्स धम्मो
न चापि यंम एक कूलस्स धम्मो।
सब्बलोकस्स सदेवकस्स एसेव धम्मो यदि अनिश्चताति॥

सकल वस्तु अनित्य हैं, ग्राम नगर वा वंश येहि अनित्य नहीं हैं किन्तु सम्पूर्ण वस्तु अनित्य हैं। यहां पर सकल देव और मनुष्यों का और विशेष धर्म नहीं है।

इसके बाद गोतमी बुद्धदेव के निकट गयी बुद्धदेव ने गोतमी को पूछा "—हे गोतमी, सरसों का बीज मिला?" तिस पर गोतमी ने उत्तर दिया। "हे भगवन् हमारा सरसों का काम होगया, अब सरसों की ज़रूरत नहीं है चित्त मेरा स्थिर हुआ"। तब गोतमी ने ऐसा कहा तब बुद्धदेव बोले—

तं पुत्तपसुसम्मत्तं व्यासत्त मनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चू आदाय गच्छति॥
न सन्ति पूता ताणाय न पिता नपि बन्धवा।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातिसु ताणता॥
एतमत्थवस ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो।
निब्बाणगमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये॥

जिस तरह प्रबल जल की धारा सोते हुए ग्राम को बहा के ले जाती है उस तरह पुत्रों और पशुओं में सक्त चित्त मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है। पुत्र भी रक्षा नहीं करते हैं और पिता भी रक्षा नहीं करते हैं बन्धु भी रक्षा नहीं करते हैं जो लोग मृत्यु के

ग्रस्त हैं वे बन्धु परिवारों से रक्षित नहीं हो सकते हैं। शील से परिशुद्ध पण्डित लोगों को इस तत्व को जानकर शीघ्र निर्वाण पथ को प्रकाशित करना चाहिए।

बुद्धदेव का उच्चारित प्रबन्ध सुन करके गोतमी को मन में तत्वज्ञान उत्पन्न हुआ उसने बुद्धदेव से सन्यास और सन्यास का उपयुक्त पथ ग्रहण करके संन्यासियो के सम्प्रदाय में प्रवेश किया उस समय गोतमी भी समझ गयी–

प्रेमतो जायती सोको, प्रेमतो जायती भयं।
प्रेमतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं? ॥

प्रेम होने से शोक होता है, प्रेम से भय का जन्म होता है, जो प्रेम से मुक्त हो गयी उसको शोक नहीं है तो भय किस तरह रह सकेगा?

श्रीसतीशचन्द्र विद्याभूषण एम० ए०
कलकत्ता।

हमारी आलमारी।

अमीर अबदुर्रहमानखां—हिंदी के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र श्रीवेंकटेश्वर समाचार के सुयोग्य संपादक पंडित लज्जाराम मेहता ने हिंदी में उक्तनाम की पुस्तक को लिख कर वास्तव में हिंदी के प्रेमियों पर बड़ाभारी उपकार किया है। उक्त पंडितजी ने अपने इस ग्रंथ का नाम अमीर अबदुर्रहमान का जीवन चरित्र रखा है। पर इस ग्रंथ के साथ काबुल राज्य का मानचित्र तथा तारीखों का ठीक २ क्रम यदि और भी लगादिया जाता तो हम इस ग्रंथ को काबुल का खासा इतिहास कहने में नेक भी नहीं हिचकते। इस अभाव के साथ भी यह ग्रंथ हमारे पठित समाज में आदर्णीय हो सकता है।

हिंदी में ईश्वर की कृपा से आजदिन काव्य, नाटक और उपन्यास एक से एक अच्छे विद्यमान हैं। पर जीवन चरित और ऐतिहासिक ग्रंथों का हिंदी में यदि अभावही मानलिया जाय तो स्यात् अत्युक्ति नहीं होगी। इस अभाव को किसी प्रकार दूर कर हमारे पंडित जी हिंदी के तथा हिंदी के प्रेमियों के निःसंदेह मानाई हुए हैं।

इतिहास के यथार्थ ज्ञान से मनुष्य को जो लाभ होते हैं उनका यहां उल्लेख करना असंभव है। पर तौभी हम इस विषय में यहा इतना लिखे बिना नहीं रह सकते कि किसी देश विशेष के विषय में यदि कोई ज्योतिषी और उसका यथार्थ इतिहास जानने वाला कुछ भविष्य कथन करे तो इतिहास का भविष्य कथन लोगों को अवश्य अनुभूत होगा। गणज्ञ का कथन स्यात्

अनुभूत हो या न भी हो। आधुनिक उन्नत देश के विद्वानों की इतिहास के विषय में ऐसी ही श्रद्धा है। और यह बात वास्तव में जान भी ऐसी ही पड़ती है।

मेहता लज्जारामजी की इस पुस्तक को पढ़ने से काबुल के विषय में सब जिज्ञासा परिपूर्ण हो जाती है। बाल्यावस्था में जो अब्दुर्रहमानखां अक्षरशत्रु थे उन्ही अब्दुर्रहमानखां ने काबुल का अमीर होने के पूर्व्व और पश्चात् भिन्न देशों के इतिहासों को अनुवाद द्वारा जानकर बीस वर्ष में काबुल की जो आशातीत उन्नति की सो यदि जानना हो तो एक मात्र इस ग्रंथ द्वारा ज्ञात हो सकती है। इस पुस्तक के पाठकों को यह बात स्पष्टतया ज्ञात हो सकती है कि इसके चरित्र नायक अब्दुर्रहमानखां भूतपूर्व्व तथा वर्तमान यवन एवं हिंदू राजा लोगों की अपेक्षा स्वकर्तव्य को कहीं बढ़ के जानते थे।

हम भरोसा करते हैं कि पंडित लज्जारामजी की इस पुस्तक को जो विवेकी विद्वान् पढ़ेंगे वह निःसंदेह बहुत प्रसन्न होंगे, और हमारे साथ उक्त पंडितजी से सानुरोध प्रार्थना करेंगे कि वह इस पुस्तक के सदृश अर्बस्थान, तुर्किस्थान, ईरान और जापान आदि के विषय में भी ऐसे उपयोगी ग्रन्थ लिखकर हिंदी के अभ्यास प्रेमियों को उपकृत करेंगे।

जिन ग्रंथमर्मज्ञ पाठकों को इस अवश्यमेव उपादेय ग्रंथ के अवलोकन की अनिवार्य्य इच्छा उत्पन्न हो वह लोग इस ग्रंथ को श्री वेंकटेश्वर छापाखाना बंबई से मंगाकर अपनी मनतुष्टि सुखेन कर सकते हैं।

(पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।)

नेपाल;-मुजफ्फरपुर के सुप्रसिद्ध वकील श्रीयुत पंडित नारा-

यण पांडे बी॰ ए॰ ने नेपाल नाम का यह लेख लिखा है और काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने इसको प्रकाशित किया है । इस लेख में इतिहास के ढंग पर पंडित जीने नेपाल के विषय में बहुत सी उपयोगी बातें लिखी हैं । इतिहास के प्रेमीपाठक को इस पुस्तक से बिलकुल निराश नहीं होना पड़ता । काशी नागरीप्रचारिणी सभा से यह पुस्तक हमको पहिले मिली थी तब भी हमने इसे पढ़ा था । और अब भी हमने इसे पढ़ा । अबके पढने का ब्योरा नीचे लिखा जाता है ।

काशी के पंडित श्री किशोरीलाल जी गोस्वामी ने "उपन्यास मासिक पुस्तक" कार्यालय की भाषा पुस्तकों के सूचीपत्र के सातवें पृष्ठ पर इस लेख का नाम "नैपाल का इतिहास" छाप दिया है । इसी सूचीपत्र को पढ़कर हमने इस लेख को उक्त गोस्वामी जी से वी॰ पी॰ द्वारा मंगाया और पढ़ा । ध्यान रहे कि न तो इस लेख के लेखक ने ही इस लेख को इतिहास लिखा है और न इसको प्रकाश करने वाली उक्त सभाने ही इसको "इतिहास" लिखा है । जान पड़ता है कि इसके विक्रेता महाशय ने अपने ओर से अपने सूचीपत्र में इस लेख के यथार्थ नाम के साथ "इतिहास" शब्द जोड़ दिया है । उक्त सूची में इस ग्रंथ का यथार्थ नाम ही यदि छापा गया होता तो शायद हमको यह ग्रंथ पुनः मंगाने का धोखा नहीं होता । अस्तु ।

हम अपने यहां के ग्रंथविक्रेता महाशयों से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने यहां के ग्रंथो का परिचय सूची में लिखती बार अपनी ओर से ग्रंथों की संज्ञाओं में ऐसी बातें नही जोड़ दिया करें कि जिनसे पाठकों को उन ग्रंथों के विषय में भ्रम हो । हमें आशा

है कि हिंदी के ग्रंथ विक्रेतागण हमारी इस प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे। *

(पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री)

केतकी पञ्चाङ्ग।

भारतवर्ष किसी समय सब विद्याओं का निधान था, और यहीं से विद्या, कला आदि का बीज देशान्तरों में गया, और उन उन देशों में विद्या, बुद्धि, देश, काल के अनुसार उसका विचित्र अङ्कुर उत्पन्न हुआ और वह पुष्पित, फलित होकर सब के उपकार में आने लगा। बहुत सी बातें भारतवर्ष से पुष्पित और फलित होकर चली गई जिनका अब यहाँ निशान और नाम देखने सुनने में नहीं आता। संसार नानाविध चमत्कारों का भण्डार है, इसमें अनेक उत्तम बातें उत्पन्न होती हैं और समय के प्रभाव से नष्ट होती हैं। अनेक देशोपकारकर्ता महापुरुष उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। हम कहां तक क्या क्या विचित्र लीला ईश्वर की कहैं, कई आशातीत, मनोतीत बातें न मालूम कितनी बेर इस परमात्मा के लीलाक्षेत्र में उत्पन्न हुई और होंगी। यों यदि परिवर्तनशील विश्व की बातें देखने में स्पष्ट आती हैं तो हर एक बातों में उलट, पलट हो तो किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं है। आचार, व्यवहार, रीति, नीति, विद्या और बुद्धि का परिवर्तन सदा से होता आया है, और उसी के अनुसार मनुष्यों के विचार भी उलटे सीधे होते आए हैं, और होंगे। जब भारतवर्ष में प्राचीन वैदिकयुग था,

* और भी अनेक ग्रंथ विक्रेता अपनी पुस्तकों के नाम बदल कर पाठकों को भ्रम में डालने के वास्ते विज्ञापन दिया करते हैं। उन्हें इस प्रकार बेइमानी करना नहीं चाहिए। अवसर मिलने पर हम उन लोगों का हाल लिखने का यत्न करेंगे। (स० सं०)

प्राचीन विद्या और बुद्धि थी उस समय के और वर्तमान समय के विद्या, बुद्धि से दिन रात बल्कि इससे भी अधिक अन्तर है जब हमारे देश का स्वतन्त्र्य था, स्वाराज्य था, प्लेगादि का आजकल के समान उपद्रव नहीं था, उस समय हमारे आदि पुरुष प्राचीन ऋषियों ने जगत के मङ्गलार्थ नानाविध धर्म, कर्म, विद्या, विज्ञान आदि समस्त संसार की प्रवृत्ति के लिए उत्पन्न किए और उनका प्रचार किया जो आज कई युग व्यतीत होने पर भी हम भारतीय सन्तानों को किसी प्रकार जीवित रक्खा है, और भविष्यत में भी उसी के भरोसे जीवित रहने की आशा है। अस्तु! वेन्टली और वेब्र साहब के मत से चाहे हमारे प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में जो ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी गूढ़ रहस्य भरे हैं वे सब मिथ्या और भ्रमपूर्ण हों और वह भी ग्रीकवालों से सीखे हों, पर भारतीय प्राचीन इतिहासवेत्ता इस मत्तप्रलाप को कभी नहीं मानेंगे। जो कुछ रहस्य की बातें हैं वे विचारशील देशी किंवा विदेशी विद्वानों से प्रायः छिपी नहीं है, तोभी यदि कोई आग्रहवश अन्यथा अर्थ का अनर्थ करे तो ईश्वरेच्छा और हमारा दौर्भाग्य ही समझना चाहिये। पूर्व लेखानुसार ज्योतिषशास्त्र का बीज जो भारतवर्ष से युरोप में गया है वह वहां जिस प्रकार पुष्पित और फलित हुआ है उस में चाहें उन लोगों की केवल बुद्धिमानी कारण या किसी की सहायता कारण हो, इसके आलोचन का यहां अवसर नहीं है, तोभी यह हम निःसन्देह स्वीकार करते हैं कि ज्योतिषविद्या के ज्ञान की उन लोगों ने आशातीत वृद्धि की है, और कर रहे हैं। और इस उन्नति से भारतवासियों के जो जो उपकार हुए हैं और भविष्यत में होंगे, उनके लिए भारतीय ज्योतिर्विद सदा उनके कृतज्ञ हैं और होंगे। हमारे यहां भी ऐसे बुद्धिमान पुरुष उत्पन्न

हुए हैं जो वैदिक ज्योतिष के रहस्यों को समझकर बड़े बड़े निबन्ध लिखडाले हैं जिनको आजकल के लोग पढ़कर अपने को विद्वान और कृतार्थ मानते हैं। इन ग्रन्थों से युरोपीय विद्वानों को जो सहायतायें मिली हैं, सो बहुत से निष्पक्षपाती युरोपियन पंण्डितगण स्वीकार करते हैं। अस्तु; वर्तमान समय में हमारे देश में रघुनाथाचार्य, बापूदेवशास्त्री सी०,आई०,ई०, केरो लक्ष्मण छत्रे, शङ्करबालकृष्ण दीक्षित आदि ऐसे विद्वान हुए और ज्योतिषविद्या का सुधार किया कि जिसके लिये वे सब हमारे श्रद्धास्पद हैं। ये सब महाशय पाश्चात्य और अपने देशी ज्योतिषविद्या के ज्ञाता और रहस्यों को भली भांति समझनेवाले थे। इन लोगों का प्रायः यह विचार था कि पाश्चात्य ज्योतिषविद्या का भारतवासियों में प्रचार हो और सब लोग नवीन बातें सीखकर उत्कर्ष संपादन करें। परन्तु काल की कुटिल गति से उक्त महाशयों के विचार मन में ही रह गये और इस लोक से चल बसे। केरो लक्ष्मण छत्रे ने एक मराठी में ग्रहसारिणी अंग्रेज़ी गणितानुसार बनाई जिसको एक प्रकार करणग्रन्थ कहना चाहिए। दीक्षित मात्र ने मराठी में दो तीन ग्रन्थ लिखे जिनके लिए हम उनको अन्तःकरण से स्तुति करते हैं। इस प्रकार दीक्षित को छोड़कर हम किसी का किया कुछ नहीं देखते। हां, पञ्चाङ्ग के विषय में आन्दोलन उक्त महाशयों ने किया, जिस आन्दोलन के फल पर आज कुछ कहने का विचार है। ग्रहण, उदयास्त आदि का गणित पञ्चाङ्गों में लिखा हुआ ठीक नहीं मिलता, इसलिए और भी गणित पञ्चाङ्ग के अशुद्ध होते होंगे। इस विचार से काशी में श्री बापूदेवशास्त्रीजी और दक्षिण पूना में केरो लक्ष्मण छत्रे ने पञ्चाङ्ग निकालना शुरू किया, और उस में अंग्रेज़ी गणितानुसार ग्रहण, उदयास्त आदि सब गणित होने लगा। पञ्चाङ्ग

निकलने पर काशी में उसको मानने न मानने का लोगों में झगड़ा फैला, आग्रह चला, सभाएं हुईं, और कई लीलाएं हुईं और व्यवस्थाएं भी दो हो पक्ष की प्रसिद्ध हुईं। अस्तु किसीने इस पञ्चाङ्ग को माना, किसी ने न माना यों दोनों पक्ष कायम रहा। और पञ्चाङ्ग चलता रहा जो अब भी शास्त्री जी के शिष्यों द्वारा उसी पथ पर चल रहा है। इधर लक्ष्मण छत्रे का भी पञ्चाङ्ग निकला और उस पर भी मानने, न मानने, का तुमुल संग्राम हुआ, आखिरको कुछ दिन चलकर वह बंद हो गया। अब फिर एक दक्षिणी महाशय द्वारा संपादित होता है। इसका नाम "पटवर्धनी पञ्चाङ्ग है" यह सायनगणना के अनुसार है। और पं० रघुनाथाचार्य मद्रासी ने कोई पञ्चाङ्ग निकाला था या नहीं निश्चय नहीं है, पर सुना है उन्होंने एक नवीन करणग्रन्थ पञ्चाङ्ग के लिए बनाया था, किन्तु उसके प्रकाश के पूर्वही उनका शरीर समाप्त होगया था। इन सब बातों के अनन्तर बहुत दिन कोई विशेष घटना नहीं हुई, पर इस आन्दोलन से हमारे यहां के पञ्चाङ्ग कर्ता ज्योतिषियों के हृदय में और उनके उद्योग से बहुतों के हृदय में स्थिर होगया कि ये सब अंग्रेज़ी गणितानुसार पञ्चाङ्ग हैं, इनको नहीं मानना चाहिये। पर इस विषय में कोई दृढ़ नहीं रहे।

इन दिनों में कुछ दिन हुए बम्बई प्रान्त निवासी मिस्टर वेंकटेश बापूजी केतकर ने उक्त लक्ष्मणछत्रे और लवेरियर, हानसेन आदि पाश्चात्य ज्योतिषियों के ग्रन्थ के आश्रय पर एक नवीन करण ग्रन्थ पञ्चाङ्ग बनाने के लिये बनाया है, उसका नाम केतकी है। यह ग्रन्थ प्रसिद्ध करणग्रन्थ ग्रहलाघव का श्राद्ध करके बना है। अर्थात् जो ग्रहलाघव के श्लोक हैं उनको तोड़कर, ग्रहों में, आज कल युरोपीय विद्वानों के द्वारा जो अन्तर सिद्ध हुए हैं, उनका संस्कार करके श्लोक बनाए हैं और गणित किया है। इसके सिवाय और

भी कई नवीन बातें इस में मिला दी हैं जिनका पहिले ग्रहलाघव में गन्धमात्र नहीं था । इसके सिवाय ज्योतिर्गणित नामक ग्रन्थ बनाया है । यह भी नानाविध सिद्धान्तादि विषयों से भूषित अद्वितीय निबन्ध है । इसके देखने से केतकर की विद्वत्ता और बहुदर्शिता का परिचय मिलता है । मिस्टर केतकर ने वे काम कर दिखाये, जो उक्त विद्वानों के हृदय में बहुत दिन तक संचार करके भी पूरे नहीं हुए थे । कोई नवीन बात होती है तो उसके आकार विकार को देखने के लिए सब की इच्छा होती है । और विशेष कौतूहलजनक वस्तु होने पर उसके वास्तविक स्वरूप के जानने की भी इच्छा उत्पन्न होती है । इसी नियम के अनुसार प्रथम केतकी के प्रकाशित होते ही सब लोगों के मुख से वाह वाह की ध्वनि निकली और आंखों में चकाचौंध लगगई, इसके प्रभाव से पराभूत से होगये और कुछ स्वरूप ज्ञान न हुआ । आखें खुलने पर लोगों में इसके वास्तविक स्वरूप को जानने की चेष्टा होने लगी और शङ्का समाधान चलने लगे । बम्बई के प्रसिद्ध मराठी पत्रों में वादविवाद के लेख शुरू हुए जो सालों से चलने पर भी अब तक नहीं बन्द हुए । मिस्टर काटकऋर आदि बंबई के प्रसिद्ध विद्वानों ने "इन्दुप्रकाश" "नेटिव ओपिनियन" पत्रों में केतकी और ज्योतिर्गणित की खूब रिभु की और कर रहे हैं । और कोल्हापुर के मिस्टर वाथोलकर आदि भी 'इन्दुप्रकाश' 'केसरी' आदि में अयनांश आदि का गणित दिखलाकर खण्डन कर रहे हैं । और किसी प्रसिद्ध नगर में सभा करने के लिए केतकीकर्ता तथा और सभ्यों से प्रार्थना करते हैं कि हमारे निकाले दोषों का उत्तर मिले और सर्व संमति हो जाने पर केतकी पञ्चाङ्ग माना जाय । ता० १८ फर्वरी १९०४ के इन्दुप्रकाश में मिस्टर केतकर ने चित्रा नक्षत्र से जो अयनांश स्थिर किए हैं, उसका

सविस्तर खण्डन किया है । और माननीय मिस्टर तिलक के मत के साथ अपना मत यों लिखा है "या वरून केतकी वरून के· लेलें पञ्चाङ्ग चुकीचें आहें असें रा· रा· केसरीकाराचें मत आहे, असें सिद्ध होत आहे" इस प्रकार दक्षिण में घोर आन्दोलन मच रहा है । किसी को केतकी पञ्चाङ्ग नहीं अभिमत है। वास्तव में केतकी में बहुत उलटी बातें हैं और उनमें अशुद्धियां रह गई है जिनका आज लिखने को अवकाश नहीं है । अयनांश की गणना बिलकुल अनृत है जैसा कि बाघोलकर ने दिखलाया है । और मिस्टर कटझकर ने जो आर्ष विरुद्ध गणित में दोष दिखलाये हैं वे भी सब विचारशील गणितज्ञों को स्वीकृत हैं । वास्तव में मिस्टर केतकर ने केतकी बनाने के समय में आर्षमर्यादा का कुछ भी नहीं पालन किया । केवल "गौराङ्गउवाच" की बातों पर दृढभक्ति रक्खी है । ठीक है, परन्तु जब पञ्चाङ्ग का गणित लिखा जाता है तो उसमें ऋषियों की रीति और लोगों की रीति के अपेक्षा अधिक मान्य है । इसके अतिरिक्त विषयों में जो हो उसमें विशेष विवाद नहीं है । विचार करने का स्थल है कि धर्म कर्म के व्यवस्थापक ऋषि हैं और धर्म, कर्म के ही समय समय पर करने के लिए पञ्चाङ्ग की भी रीति उन्हीं लोगों ने प्रचलित की है । इस प्रकार प्रायः हिन्दुमात्र जिन को ऋषियों के वाक्य पर श्रद्धा और विश्वास है जब जो जो कर्म करने को लिखे हैं पञ्चाङ्ग के अनुसार तब सारे कर्म सब करते हैं । यों समझना चाहिये कि जिस प्रकार ऋषि धर्मप्रवर्तक हैं वैसेही पञ्चाङ्ग के भी हैं । हम प्राचीन ज्योतिःशास्त्र के तरफ़ ध्यान देकर देखते हैं तो मालूम होता है कि ऋषियों ने अदृष्ट और दृष्ट के भेद से दो प्रकार का गणित स्वीकृत किया है । जो विषय जिस गणित से आकाश में प्रत्यक्ष नहीं देख पड़ता, परन्तु महर्षियों ने

व्रतोपवासादि में फल के लिये उपयोगी समझकर उस गणित से तिथि आदि का साधन किया वह सब अदृश्य है। इसलिए उसका नाम अदृष्टगणित है। और जिस गणना से सिद्ध किये ग्रह आकाश में प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं उसको दृष्टगणित कहते हैं; जैसे ग्रहण आदि। इसलिए महर्षियों ने जिस गणित से सिद्ध किये हुए दर्शादि में व्रतादि का अनुष्ठान किया उसी गणित से सिद्ध दर्शादि में समस्त धर्मानुयायियों को व्रतोपवास करना उचित है। यो धर्मसम्बन्धी गणित आर्षग्रन्थों से करना ऋषियों के संमत है। क्योंकि इससे हम लोगों को धर्मभागी होना है। इस प्रकार जब हम धर्म व्यवस्थापक नहीं है तो उसके निर्णयसम्बन्धी गणित में भी अन्यथा करने का हमको अधिकार नहीं है। इसीलिए सिद्धान्ततत्त्वविवेक में श्रीकमलाकर ने लिखा है—

'अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं यथार्कोद्युक्तितः कुरु।
गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥"

अर्थात् अदृष्टफल के लिए अर्क की उक्ति अर्थात् सूर्यसिद्धान्त से गणित करना चाहिए। और जो दृष्ट ग्रहणादि गणित हैं वे सब दृष्टग्रन्थानुसार अर्थात् जिससे दृग्गणितैक्य हो उसके अनुसार करना चाहिये। कालवश ग्रहों के चार में कुछ अन्तर अवश्य पड़ता है, इस अन्तर को हमारे यहां "बीज" कहते हैं। ब्रह्मगुप्तादि कतिपय विद्वानों ने अपने अपने समय में ग्रहों का वेधकरके बीज साधन किया है और अपने ग्रन्थों में लिखा है। बीजसंस्कार करने से आकाश में ग्रह ठीक ठीक प्रत्यक्ष दीखते हैं। इस संस्कार को ऋषियों ने दृष्टगणित में करने के लिए कहा है। इसी अभिप्राय से उक्त विद्वानों ने किये और दृष्टगणित को समय समय पर ठीक किया। तिथि आदि अदृष्टगणित में बीजसंस्कार ऋषियों के अभिमत नहीं है। इसके अनेक प्रमाण हैं जो विचारशील गणितज्ञों से

छिपे नहीं हैं। यह ऋषियों की व्यवस्था है। इस व्यवस्था से जब से धर्म की और पञ्चाङ्ग की प्रवृत्ति हुई उस समय से युगांत तक जो यहां पर से तिथ्यादि अदृष्टगणित होंगे उनमें अन्तर नहीं पड़ेगा, और इसी से धर्म के करने में समय का विप्लव नहीं होगा। यदि तिथ्यादि अदृष्टफलोपयोगी गणित भी बीज संस्कारकरके किए जाय तो किसी वैदिककर्म का समय ठीक नहीं निश्चित होता। और भी यदि हम इसी पथ पर चलें तो तिथि का बढ़ना और घटना ऐसा सिद्ध होता है कि उस तिथि का व्रत किस दिन किया जाय इसका हमारे धर्मशास्त्रों से निर्णय ही नहीं हो सकता क्योंकि ऐसी गणना से एकादशी और प्रदोष एकही दिन पड़ना सम्भव है। इस प्रकार बुद्धिमानमात्र को इस विषय में सन्देह न होगा कि अदृष्टगणित में ऋषियों ने अपनी इच्छानुसार व्यवस्था की है, उस विषय में कभी किसी काल में बीजसंस्कार की आवश्यकता नहीं स्वीकृत की, किन्तु दृष्टग्रहणादि के गणितमात्र में ही लोगों के चमत्कारार्थ बीजसंस्कार करने की आज्ञा दी है, क्योंकि ग्रहणादि प्रत्यक्ष आकाश में देखने से ही फलदायक होते हैं, और आजकल बिना संस्कार किए ग्रहों में ठीक ठीक दृग्गणितैक्य नहीं होता। भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि में प्रथम नक्षत्रानयन करके फिर अन्त में लिखते हैं 'यन्नक्षत्रानयन कृतं तत्स्थूलं लोकव्यवहारार्थमात्रं कृतम्, अथ पुलिश, वसिष्ठ, गर्गादिभिर्यद्विवाहयात्रादौ सम्यक् फल सिद्ध्यर्थं कथितं तत्प्रोच्यते" वास्तव में पुलिश आदि ऋषियों के अनुसार जो नक्षत्रानयन है वह स्थूल है और जिसके लिये भास्कराचार्य स्थूल लिखते हैं वह सूक्ष्म है इससे यही स्पष्ट होता है कि फल के लिए ऋषियों ने जिसको सूक्ष्म मान लिया वही सूक्ष्म है उसमें अपने मन से सूक्ष्म मानकर कार्य करना आर्षविरुद्ध है। मिस्टर केतकरने ज्योतिर्गणित में लिखा है कि "प्राचीन ग्रन्थों में ग्रहकक्षा का स्वरूप मिथ्या कल्पना किया है इसी से दृग्गणितैक्य कभी नहीं हुआ और यदि

हुआ तो काकतालीयन्याय से हुआ। यों प्राचीन ग्रहगणित प्रतीति शून्य है"। विचार का स्थल है कि जब प्राचीन ऋषिग्रन्थों में ग्रहों की कक्षा कल्पना आदि अशुद्ध हैं, तब हमको ऋषियों के वाक्य पर श्रद्धा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि ऋषियों को हम लोग त्रिकालदर्शी मानते हैं, सो केतकर के कथन से खण्डित होता है। इस दशा में ऋषियों का कहा वैदिकधर्म और पञ्चाङ्ग प्रपञ्च भी मिथ्या सिद्ध होता है, क्योंकि जब उनके गणित की जड़ ही नहीं शुद्ध है तो और बातें कैसे शुद्ध हो सकती हैं? अब पञ्चाङ्ग ही शुद्ध है इसमें क्या प्रमाण? और इसको क्यों मानना चाहिये। जब केतकर ऋषियों को त्रिकालज्ञ नहीं मानते, और उनकी मिथ्या कल्पना को प्रकट करते हैं, तो पञ्चाङ्ग बनाने और उसके मानने का दम्भ व्यर्थ क्यों फैलाते हैं? पञ्चाङ्ग परिपाटी को उठा देने का ही उद्योग उन की तरफ़ से होना चाहिए। जिस विषय में अन्तःकरण शुद्ध न हो उस विषय में प्रतारणार्थ हस्तक्षेप करना और स्वयं रिफार्मर बनकर सब बातों के नेता बनना क्या उचित है? और ऋषियों के वाक्यों पर से भोले भाले मनुष्यों की श्रद्धा का श्राद्ध करना क्या हिन्दुओं का धर्म है? मिस्टर केतकर केवल दृष्टगणित को मानते हैं और उसी विषय में सृष्ट्यादि से जितने हमारे यहां ऋषि, आचार्य आदि हुए हैं, उनको मूर्ख ठहराते हैं। फिर भी हम देखते हैं कि केतकर ठीक ठीक दृष्टगणित के पक्ष पर नहीं चलते हैं। उनके मत से सायन गणनाही है निरयण नहीं। पर निरयण से गणित करते हैं सायन से नहीं, जैसा लक्ष्मण छत्रे का पटवर्धनी पञ्चाङ्ग बनता है। और भी अनेक उलटी बातें स्वीकार करते हैं जिन का लिखना यहां कठिन है। जब केतकर एक बात पर दृढ़ नहीं हैं केवल लीला को पसंद करते हैं तो उनके मत को कौन मानेगा? और उनके ग्रन्थों के

कौन स्पर्श करेगा? अस्तु; हम देखते हैं कि जो केवल दृष्टगणित मानते हैं, उनको हृदय में विश्वास है कि इस पक्ष में कहीं विसंवाद नहीं है और ठीक ठीक धर्म का भी पालन होता है। क्योंकि वसिष्ठ का भी वाक्य है 'यस्मिन्काले यत्र पक्षे येन दृग्गणितैक्यकम्। तस्मिन्काले तत्र तेन कुर्यात् तिथ्यादि निर्णयम्॥' हम पूछते हैं कि वसिष्ठसिद्धान्त और वसिष्ठसंहिता में क्या यह अप्रामाणिक श्लोक किसी ने देखा है? और भी सूक्ष्म विचार से क्या यह ऋषिवाक्य हो सकता है? फिर किसी के गांठे हुए श्लोक को वसिष्ठ का मानना और कूदना कौन सी सभ्यता है? संवत् १९६१ में दृष्टगणितवादियों के गणित से ज्येष्ठ और आषाढ़ तथा श्रावण अधिमास सिद्ध होते हैं। मिस्टर केतकर के मत से ज्येष्ठ और श्रावण अधिमास हैं और काशी के चन्द्रदेवी पञ्चाङ्ग में आषाढ़ अधिमास है। दोनों दृष्टगणित के पञ्चाङ्ग हैं अब किस अधिमास को मानें? और किसका गणित शुद्ध मानें? मिस्टर केतकर के मत से आषाढ़ क्यों नहीं सिद्ध हुआ? अब यह प्रत्यक्ष दृग्गणितपक्ष में विवाद उपलब्ध है इसका क्या उपाय? जो दृष्टगणितवादी, ऋषियों को मूर्ख मानकर अन्धकूप में ढकेलते हैं और उनका अधिकार छीनकर स्वयं ऋषि बनते हैं, वे कृपाकरके बतलावें कि अधिमास का धर्मकृत्य कब करना चाहिए? और यह भी बतलावें कि उनके साफ़ सुथरे निष्कण्टक मार्ग में इतने कांटों का झमेला कहां से आ गिरा? और धर्म अपना काला मुख लेकर किस कन्दरा में घुस गया? त्राहि! त्राहि!! किमाश्चर्यमतः परम्!!! धन्य विद्या!!! धन्य बुद्धि!! हमारे वक्तव्य का मात्र शेष है, अन्त में वैदिकधर्मानुयायियों को और हमारे यहां वैदिक के टटपूंजिया शुष्कपञ्चाङ्ग कर्त्ताओं से भी यही कहना है कि वैदिक धर्म में यदि आपलोगों को श्रद्धा है, ऋषियों के वाक्यों पर विश्वास

है, तो पञ्चाङ्ग आर्षसिद्धान्तानुसार ही मानना और बनाना चाहिये दृष्टगणित मात्र अंग्रेज़ी गणित के अनुसार चाहे केतकी या और किसी से लोगों की प्रतीति के लिए और धर्म के लिए भी करना उचित है। यदि अदृष्ट–दृष्टगणित का विशेष वर्णन किसी को देखना हो तो महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी का 'पञ्चाङ्गोपपादन' देखलेवें और आर्षसूर्यसिद्धान्तानुसार जो द्विवेदी जी पञ्चाङ्ग बनाते हैं आग्रह छोड़ कर उसको धर्मव्यवहार में प्रामाणिक मानें। केतकी पञ्चाङ्ग ग्रन्थकर्ता मात्र चलाते हैं और कोई न उसको मानें न उसके अनुसार गणित करते हैं सुना है जयपुर के पञ्चाङ्गकर्ता ज्योतिषी इसके अनुसार पञ्चाङ्ग बनाना चाहते हैं * जहां आज तक सूर्यसिद्धान्तानुसार बनता है। जिनका बुद्धिवैभव पञ्चाङ्गसारणी मात्र में ही व्याप्त है उनसे हम भला बुरा कुछ नहीं कहना चाहते क्योंकि उनके मत से "सभी धान बाईस पसेरी" है। कहना इतना है कि जब कि केतकी को बड़े २ विद्वानों ने इस वाददशा में छोड़ रक्खा है, किसी प्रकार का निर्णय नहीं हुआ, तब पञ्चाङ्ग कर्ताओं के मन में कैसे अटल भक्ति उत्पन्न हुई? क्या उनलोगों ने लवेरियर, हानसेन के सिद्धान्तों का कभी स्वप्न देखा है जिससे हृदयकपाट खुल गया, या और कोई कारण है? कुछ भी हो, अन्त में इतना कहते हैं कि ऐसे ऐसे प्रसिद्ध स्थानों में अनुचित, अविचारित कार्यों का अधिक प्रचार होना दुःख की बात है। हमने आज बहुत संक्षेप से लोगों को सूचना दी है, आशा है किसी दूसरे लेख में केतकी, की त्रुटियां दिखलाइंगे, और केवल दृष्टगणिताभिमानियों के मत से जो जो बातें पञ्चाङ्गगणित में विरुद्ध उत्पन्न होती हैं उनका भी उल्लेख

* कई महामूर्तियों ने जन्म और वर्ष पत्री भी बना डाले हैं। उनको शायद विश्वास है कि नया ग्रन्थ है इससे गणित सूक्ष्म होगा और फल भी मिलेगा साथ ही यजमानों में कीर्ति फैलेगी।

करेंगे, जिससे सब को विदित हो जाय कि क्या क्या छिपे विरोध उत्पन्न हैं, और उसका कैसा परिणाम है । अभी जो बंबई में पञ्चाङ्ग सभा हुई है, उसमें भी किसी प्रकार भले बुरे का निर्णय नहीं हुआ है केवल विद्वानों को बुलाकर त्रास दिया है । पञ्चाङ्ग सभा के नेता किस मत के पक्षपाती हैं यह भी साफ़ नहीं मालुम हुआ । उनको उचित है अपने मन्तव्य शीघ्र प्रकाशित करें जिससे लोगों का भ्रम दूर हो । हम सभा से प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी कार्यवाही में ऋषियों के मार्ग का भी कुछ खयाल अवश्य रक्खें ।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

वेद में पृथिवी की गति ।

प्राचीन काल में भी भारत के वैदिक आचार्यों को "पृथ्वी चलती है" यह ज्ञात था, इस बात को पण्डित विधुशेखर शास्त्री ने आग्रहायण की "भारती" में सिद्ध किया है । शास्त्री महाशय के लेख की भूलें सुधार, उसका तात्पर्यानुवाद यहां देकर, हम इस विषय पर कुछ और भी लिखते हैं ।

वेद में पृथ्वी के इतने नाम हैं–गो, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा, क्षोणि, क्षिति, अवनि, रिप, गातु, और निर्ऋति । ऋग्वेद ही में ये शब्द कई दफा आए हैं । और भी पृथ्वी के कई नाम हैं, किन्तु इस विषय के अनुकूल या प्रतिकूल न होने से, उन पर विचार नहीं किया जाता । इन सब शब्दों की पर्य्यालोचना करने से जाना जाता है कि "पृथिवी की गति है" ऐसा मानने ही से ये सब शब्द पृथिवी के वाचक हैं ।

गो शब्द पृथिवी का नाम कैसे है ? इसके उत्तर में आचार्य यास्क कहते हैं–"गौरिति पृथिव्या नामधेयं भवति, यद्दूरं गता

(१) यस्माद् इयं दूरं अध्वानं प्रति गता भवति इति (टीकाकार दुर्गाचार्य)

भवति, यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति, गातेर्वौकारो नामकरणः" (निरुक्त २:२·१) 'गो' पृथिवी का नाम है क्योंकि (१) यह दूर जाती है; क्योंकि इसमें सब जीव जाते वा चलते हैं। गाम् वा गा धातु से नाम दिखाने को 'ओ' प्रत्यय किया गया। शाकटायन उणादि सूत्र में लिखते हैं 'गमेर्डोसु' यास्कप्रत प्रथम निर्वचन से (यह दूर पथ में गमन करती है इस से गो कहलाई) स्पष्ट सिद्ध है कि वैदिक आचार्यों को पृथिवी की गति है यह ज्ञान था॥ (२)

(२) कुछ लोग यास्क को निघण्टु और निरुक्त दोनों का कर्त्ता मानते हैं, और अधिक लोग उन्हें बहुत काल से प्रचलित "निघण्टु" का भाष्यकार मानते हैं। उनका बनाया भाष्य निरुक्त नाम से प्रचलित है। निघण्टु में किस वस्तु का क्या नाम है, किस धातु का क्या अर्थ है, यह दिखाने को शब्द पाठ मात्रही है। भगवान् यास्कने उस शब्दपाठ के कठिन कठिन शब्दों के धातु प्रत्यय बताकर, वेद में उन शब्दों के उस अर्थ में प्रयोग के प्रमाण दिखाकर विस्तार किया है। स्कन्दस्वामी दुर्गाचार्य प्रभृति ने यास्कीय भाष्य की व्याख्या की है। देवराज प्रभृति ने निघण्टु में लिखित सभी शब्दों का संक्षेप से विवरण किया है। यह सब यास्क से बहुत ही पीछे हुए हैं। व्याख्या करने बैठकर ये यास्कमत का तो उल्लंघन करही नहीं सकते थे, केवल उसे ले लने कीही चेष्टा करते थे। उनकी ऐसी चेष्टा से यास्क का सिद्धान्त कई जगह बिगड़ गया है। इस गो शब्द के निर्वचनमें ही इसका प्रमाण पाया जाता है। यास्काचार्य ने तो कहा है "दूर गमन करती है इससे पृथिवी गो कहलाई"। स्कन्दस्वामी इस बात को स्वीकार करना नहीं चाहते, इससे कहते हैं कि पृथिवी में वस्तुतः गति नहीं है, किन्तु जैसे आत्मा, आकाश प्रभृति दूर देश में भी पाए जाते हैं पृथिवी भी वैसे पाई जाती है, इससे ही आचार्य ने उसमें गति की कल्पना की है (दूरं गता भवति, आत्माकाशवद्दूरे उपलब्धेर्गतिक्रियाव्यवहारः)

देवराज ने स्कन्दस्वामी की हां में हां मिलाकर इस बात को और भी स्पष्ट किया है इस बात को दिखाने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इसी सम्बन्ध में उसने एक और बात कही है, उसका उल्लेख करना चाहिये। पृथिवी की गति का विचार करके (सम्भव है कि इससे उन्हें सन्तोष न हुआ हो) उनने लिखा है कि गा धातु से ओ प्रत्यय करने से गो पद होता है तो, किन्तु उस 'गा' धातु

'ग्मा' यह पद भी गम् धातु से बना है । 'गमति' अर्थात् 'गम्' धातु का अर्थ गति है, क्योंकि निरुक्त में लिखा है "जमति गमति....गति कर्माणः । (२.१४) अत एव गो पदकी जो व्युत्पत्ति है, ग्मा पद की भी वही है ।

का अर्थ गति नहीं है, स्तुति है । अत एव पृथिवी का स्तव होता है, अथवा पृथिवी पर बैठकर स्तव होता है, इससे पृथिवी गौ कहलाई । (गातेर्वा स्तुत्यर्थस्य गीयते स्तूयते असौ इति गायन्ति वा अस्यां स्थिता इति गौः) यह व्याख्या कहां तक ठीक है, पाठक विचारें । वेद में गाति वा गा धातु का अर्थ गति है । निघण्टु में यह बात स्पष्ट लिखी है "...चलति, अर्तति, गाति,.. द्वाविंशशते गति कर्माणः" (२.१४) उदाहरण भी देख लीजिए "निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् (ऋक् ७.३.९.) गा, वा, गाति, धातु का अर्थ स्तुति वेद में कहीं भी नहीं पाया जाता। "गायति" वा "गै" धातु का अर्थ अर्चना पाया जाता है (गायन्ति त्वागायत्रिणः ऋक् १.१.१.९१ निघण्टु ३.१४) गोपद के निर्वचन में यास्क ने "गाति" कहा है, "गायति" नहीं। और आचार्य यास्क यदि जुहोत्यादि गणीय स्तुत्यर्थक 'गा' धातु का (उदा–देवान्-जिगाति सुम्नयुः) उल्लेख करते तो उन का "अथापि पशुनामेह भवति एतस्मादेव" (इस धातु से इसही अर्थ में बना गो पद पशु का भी वाचक है) यह वाक्य कैसे सङ्गत होता ? पशुवाचक गो शब्द गत्यर्थक धातु से बना है, इस बात को तो कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता । वैदिक शब्दों के निर्वचन में यथा सम्भव वैदिक धात्वर्थ ही देना उचित है । देवराज ने बहुत जगह इस नियम का अनुसरण नहीं किया है । और कई शब्दों में भी यही गड़बड़ है, कौतूहली पाठक स्वयं इस बात को देखलेंगे ॥ "गाङ् गतौ" से भी "गो" बनाया जासकता है ।

स्कन्दस्वामि और देवराज की व्याख्या से समझा जा सकता है कि यास्क के समय में पृथिवी चलती है यह स्वीकृत होने पर भी इन दोनों के समय में इस बात पर बड़ी आपत्ति उठ खड़ी हुई थी । ऐसा होता ही आया है । आर्यभट ने पृथिवी का चलना सिद्ध कर दिया था, किन्तु पीछे के सिद्धान्तकारों ने यह बात न मानी । योरोप में भी कपर्निकस के समय तक खूब विवाद रहा । यहां तक कि वैज्ञानिकों को "पृथिवी चलती है" यह कहने के प्रायश्चित्त में अपनी आंखें देनी पड़ीं ॥

जो दूर गमन करे, वा जिसमें जीव विचरण करें, वही ग्मा (पृथिवी) हुई। आचार्य माधव ने भी कहा है—"ग्मा गच्छतेः गच्छन्तीहीयम्" ग्मा गम् धातु से बना है, क्योंकि यह पृथिवी गमनशीला है (३)

ज्मा पद जम वा जमति धातु से बना है वेद में "जमति" का अर्थ भी गमन है (निघण्टु ३·१४, निरुक्त ३·१६) व्युत्पत्ति पूर्ववत्। गत्यर्थक धातु होने ही से अर्थ निर्वचन प्रणाली "गो" पद की ऐसी समझलेनी चाहिए (४)।

क्ष्मा, क्षा, क्षमा, क्षोणि, क्षिति ये पद गत्यर्थक क्षि धातु से सिद्ध किए जा सकते हैं (५)

"अवनि" अवति वा अव् धातु से बना है। अव् धातु निघण्टु में गत्यर्थ धातुओं में पठित है। (६)

"रिप" गत्यर्थक रेपृट धातु से उत्पन्न है।

"गातु" गम् धातु से बना है।

निर्ऋति पद के दो अर्थ हैं, पृथिवी और कष्टप्राप्ति। आचार्य यास्क ने कहा है "निर्ऋतिः निरमनात् ऋच्छतेः कष्टप्राप्तिरितरा।" सब जीवों को आराम देती है इससे पृथिवी निर्ऋति (नि+रम्+क्तिन्)

---

(३) यह माधव सायण माधव से प्राचीन है, विवरण ग्रन्थकार विदभाष्यकर्त्ता माधव भट्ट और श्री वेङ्कटाचार्य पुत्र भाष्यटीकाकार माधव, इन दोनो में से कोई है।

(४) देवराज ने यहां जमू अदने, जनी प्रादुर्भावे इत्यादि और कई धातुओं से जमा पद सिद्ध करके धात्वनुसार अर्थ किया है।

(५) देवराज हिंसार्थक क्षि, क्षयार्थक क्षि और सहनार्थक क्षम प्रभृति धातुओं से इन पदों का साधन करके भी गत्यर्थक क्षि धातु का परित्याग न करसके।

(६) देवराज अव् धातु से अवनी बना है यह तो मानते हैं किन्तु धातुपाठ प्रभृति के आधार पर अव् धातु के गति, तृप्ति प्रभृति १८ अर्थ कल्पना करके तदनुसार ही अर्थ करते हैं।

कहा है। कष्टप्राप्तिवाचक निर्ऋति निर् पूर्वक ऋ धातु से बना है। आचार्य यास्क के निर्वचन से पाया जाता है कि निर्ऋति नि+ऋ" धातु से उत्पन्न है। निघण्टु में "ऋ" धातु गत्यर्थों में पठा है। अतएव पृथिवी के अन्यान्य नामों की तरह निर्ऋति पद की भी "नि+ऋ+क्तिन्" (कर्तृवाच्य वा अधिकरण वाच्य) व्युत्पत्ति करने में कोई असङ्गति नहीं कही जा सकती। (७)

इस विषय की आलोचना करने से प्रतीत होता है कि बहुत पहले भी पृथिवी की गति भारतीय आचार्यों को खूब विदित थी नहीं तो वे एक गति क्रिया से पृथिवी के इतने नाम न करते।

आचार्य यास्क के लेख से मालूम होता है कि उनके समय (८) में भी पृथिवी की गति के बारे में कोई विप्रतिपत्ति न थी। उनके पीछे सन्देह की उत्पत्ति हुई। इसी लिए उनके परवर्ती स्कन्दस्वामी को "यद् दूरं गता भवति" इस (यास्कके) वाक्यपर आस्थान रखकर नानारूप कष्ट कल्पना करनी पड़ीं। यास्कभाष्य के अन्यतम टीकाकार दुर्गा-

---

(७) मालुम होता है, स्कन्दस्वामी पृथिवी की गति मानने वालो के अत्यन्त विरुद्ध थे। इसीसे उनने यास्क के "निर्ऋति निरमनात्" इस वाक्य की व्याख्या करती बेर लिखा है कि "निरमनात् निश्चलत्त्वेन अवस्थानात् इत्यर्थः।" निरमन का "निश्चल रूप से ठहरना" यह अर्थ क्या कष्टकल्पित नहीं है? देवराज भी स्कन्दस्वामी की हां में हा मिलाते हुए कहते हैं "निर्निश्चलत्वम" इह न अवस्थानम्" (नि उपसर्ग पृथिवी के निश्चलत्व को बताता है चञ्चलत्व को नहीं)। यहां वैयाकरणों के अर्थ को लेकर देवराज कहते हैं निर् + ऋ + क्तिन्=निर्ऋति इसका अर्थ निश्चलवत अवतिष्ठते निश्चल की तरह ठहरी है। तो क्या इससे यह ध्वनि नहीं निकलती है कि पृथिवी निश्चल की तरह है तो किन्तु वास्तव में निश्चल नहीं है।

(८) यास्क पाणिनि से बहुत प्राचीन हैं। आचार्य गोल्डष्टुका का अनुसरण करते करते पण्डित सत्यव्रत सामश्रमि ने यास्क को ईसा से पूर्व १४ वी वा १५ वीं शताब्दी के अन्धकार में पाया है।

चार्य ने तो इस वाक्य का यथाश्रुत अर्थ ही किया है । स्कन्दस्वामी प्रभृति व्याख्याकारों ने यास्क के द्वितीय निर्वचन परही जोर देकर (यत्रास्या भूतानि गच्छन्ति) अन्यान्य नाम निर्वचनों का अर्थ किया है । (सायणाचार्य भी इसही अर्थ पर चले हैं) । उनने "अधात्मो अथवा दिवो वहतो" (ऋक् ८·१·१८) इसकी व्याख्या में पृथ्वी वाची ज्मा शब्द की व्युत्पत्ति "जमन्ति गच्छन्ति अस्याम् इति जमा" यों लिखी है । उन्हें "जमति गच्छतीतिजमा" कहने का साहस न हुआ । यास्क के बहुत पीछे होने पर भी आचार्य माधव ने स्पष्ट ही लिखा है कि पृथिवी चलती है (ग्मा गच्छते गच्छन्ती हीयम्) यह पहले दिखा चुके हैं । "गच्छतीति जगत्" यह जगत् की व्युत्पत्ति बहुत प्रसिद्ध जान पड़ती है ।

अर्वाचीन संस्कृत कोशो में पृथिवी के नामों में "अचला" और "स्थिरा" भी मिलते हैं । पृथिवी नहीं चलती है, स्थिर है यही मानकर ये नाम हुए हैं सही, किन्तु वैदिक अभिधान निघन्ट में इन दो शब्दों का गन्ध भी नहीं है । इन दोनों शब्दोंवाला कोई वैदिक वचन भी अब तक नहीं पाया गया । होता तो निघण्टु वा यास्कीय निरुक्त में कहीं तो मिलता । इससे ही बोध होता है कि वेद से बहुत काल पीछे, पृथिवी को स्थिर कहनेवालों ने, गो प्रभृति पृथिवी के गतिमत्व के प्रतिपादक नामो के बदले बिलकुल विपरीत ये दो नाम कल्पित कर लिए ।

गो ग्मा, ज्मा प्रभृति पृथिवी वाची शब्द जो ऊपर लिखे गए हैं वे सबही ऋग्वेद में पाए जाते हैं । (९) आधुनिक प्राच्य और प्रतीच्य दोनो तरहही के विद्वान् ऋग्वेद को पृथिवी में सब से प्राचीन

(९) मैक्समूलर के संस्कृत ऋग्वेद की शब्दसूची पढ़ने से जान पड़ेगा कि कौन कौन शब्द कितनी कितनी बार आया है ।

ग्रन्थ मानते हैं । हम ब्राह्मण पण्डितों के मत में तो वेद मात्रही अनादि है । पाठक विवेचना करके देखें, पुरा काल में भारतवर्ष के वैदिक आचार्यों को पृथिवी की गति का ज्ञान था वा नहीं ? ।

केवल यही नहीं, वेद में और भी कई प्रमाण पृथ्वी की गति के हैं—

श्रीचन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०
अजमेर ।

स्त्रीशिक्षा ।

पाठकगण !

इस समय भारतवर्ष में स्त्रीशिक्षा के विषय में बड़ी गड़बड़ मच रही है, कोई तो यह कहता है कि स्त्रियों को लिखाना पढ़ाना चाहिये और किसी का यह कहन है कि स्त्रियें लिखने पढ़ने से परवश हो जाँयगी, इस कारण उनको लिखाना पढ़ाना उचित नहीं । समाज में इस प्रकार के दो दल होरहे हैं, इनमें एक दल तो हमारे नवशिक्षितों का है जो यह चाहते हैं कि हमारी स्त्रियें पश्चिमी रीति नीति के अनुसार 'एम० ए' 'बी० ए' होकर हमारे साथ वन उपवनों में विहार करती हुई फिरें और परदा वा पींजरे की समान घरों में बंद रहना यह एक बहुत ही सुखनाशक और घृणित कार्य है और दूसरा दल स्त्रियों के पढ़ाने लिखाने का निषेध करता है ।

परन्तु मेरी सम्मति में धर्मशास्त्र के अनुसार तथा देश काल के अनुसार यह दोनों ही रीति ठीक नहीं है । न तो मैं पढ़े लिखे सभ्य पुरुषों के साथ अशिक्षित स्त्री का जोड़ा ही सुखदायक मान सकती हूं, और न मैं उनको ऐसी उच्चकक्षा की बनाने में ही कल्याण देखती हूं कि वह अपने स्वामी को बूंट का प्रसाद जब तब प्रदान किया करैं, और मिट्ठूराम बैठे २ सहा करैं । मैं स्त्रीशिक्षा की विरोधनी भी नहीं हूं । मैं उनके मुख से अश्लील गालियों के सुनने की भी पक्षपातिनी नहीं, और उनको निपट मूर्ख रखना भी मेरा अभीष्ट नहीं है । मैं अनेक देवी देवता के होते हुए उनसे भूत, प्रेत, मियां, मदार, पुजवाना नहीं चाहती और न गंडे तावीजों के

लिये बाबाजी के पास भेजना चाहती हूं और न मेरी यह इच्छा है कि वह वशीकरन के लिये स्याने अथवा मुल्लाओं पर फिरती फिरें। मेरी यह भी इच्छा नहीं है कि स्वामी के घर पर आते ही वह अपने गहने कपड़े का रोना ले बैठें, और न मैं यह चाहती हूं कि रबड़ी, मलाई, मिठाई चटनी से वह अपने स्वामी और श्वसुर का संचित धन चटनी कर जाँय। पर मैं इसको भी नहीं चाहती कि बूंट, कमीज, कुरता, साया इत्यादि पहन कर पुरुषों की समान जहाँ तहाँ घूमती हुई, अपने सास श्वसुर को मूर्खराज की पदवी प्रदान करती हुई, सनातन-सत्य रीति को एकसाथ तिलांजलि देती हुई, लजीले नेत्रों की लाज को कोसों दूर फेंकती हुई, स्वामी के प्रत्यक्ष वा परोक्ष में अन्य पुरुषों से प्रेमालाप करती हुई, बन्धु बांधव व कुटुम्बियों को झिझकारती हुई, बिना कुरसी के न बैठती हुई, देवी देवताओं का तिरस्कार करती हुई, सोडा वाटर की बोतल गटकती हुई, धर्म कर्म को खोती हुई, हमारे देश की कुल वधू इस प्रकार की सभ्य बनें। मेरी जो कुछ सम्मति है उसको मैं नीचे प्रकाश करती हूं॥

समाज में जो नियम स्वभाव से चल रहे हैं उनके विरुद्ध कोई शक्ति भी कार्य नहीं कर सकती, पार्वतीय नदियों का वेग कहीं सरलता से रोका जा सकता है? अभी थोड़े दिन पहले एक वह दिन था कि जहाँ स्त्रियों ने लिखना पढ़ना सीखा और चिट्ठी पत्री लिखने लगीं कि घर २ में उनके चवाव पड़ने लगे। प्रत्येक आदमी उनके ऊपर उंगली उठाने लगा और परस्पर में सम्मति करने लगे कि "अब स्त्रियें अवश्य ही हमारे वशीभूत न रहेंगी" जो कहीं स्त्री ने अपने स्वामी के परदेश जानें पर उसके पास को पत्र लिखा, तब तो सारे महल्ले भर में उस स्त्री का शोर पड़ गया, परन्तु आज-कल उस रीति का एक साथही परिवर्तन हो गया है। आज कल

जो स्त्री अपने हाथ से अपने स्वामी को पत्र नहीं लिख सकती वह अपने जीवन को वृथा मानती है । वास्तव में उसका जीवन वृथा है, फिर जो मनुष्य अपनी २ स्त्रीयों को घर पर छोड़कर नौकरी करने के लिये परदेश को चले गये हैं, वह भी अपनी २ स्त्रियों के हस्तलिखित पत्र पाने के लिये व्याकुल रहते हैं। सभी मनुष्यों की यह इच्छा रहती है कि हमारी स्त्री पढ़ी लिखी तथा सभी बातों में चतुर हो जिस से कि घर का काम काज बड़ी सुगमता से कर सके, इसी कारण स्थान २ पर लड़कियों के पढ़ने के लिये स्कूल बन गये हैं और बराबर बनते चले जाते हैं। इस समय महामाननीय हमारी गवर्मेन्ट भी स्त्रियों के पढ़ाने लिखाने में बड़ी सहायता कर रही है, परन्तु तो भी बहुत से पुराने ढंग के मनुष्य आज कल भी स्त्रीशिक्षा के विरोधी हैं, और फिर उनकी भी यही इच्छा रहती है कि हमारी कन्या का सम्बन्ध किसी अच्छे पढ़े लिखे के साथ हो जाय तो बहुत अच्छी बात है तब फिर वह उस वर को संतुष्ट करने के लिये अपनी कन्या को भी लिखना पढ़ना सिखाते हैं । इस बात को तो मैं प्रथम ही कह आई हूं कि समाज में जिन नियमों का चलना आरंभ हो गया है उनके विरुद्ध में किसी कार्य का करना बड़ी कठिनता की बात है । स्त्रियों का पढ़ाना लिखाना जब प्रचलित होगया है तब एक साथ उस स्रोते को बंद करने की चेष्टा करना मानो श्री गंगाजी को उनके उत्पत्ति स्थान गोमुखी में लोटा देने की समान है। इस कारण मेरी सम्मति यह नहीं है कि स्त्रियों को लिखने पढ़ने की शिक्षा न दी जाय वरन मेरी यह अभिलाषा है कि यदि स्त्रियों के कुल और उनकी मान मर्यादा की रक्षा करते हुए उनको लिखाया पढ़ाया जायगा तो वह प्राचीन रीति को पालन करने वाले मनुष्यों के नेत्रों के सन्मुख दूषित नहीं होंगी ।

इस विराट संसार में दो शक्तिए क्रिया कर रही हैं, एक तो स्त्री शक्ति और दूसरी पुरुषशक्ति है, स्त्रीशक्ति की जो क्रिया है उसको स्त्रीशक्ति में मिलाने से भगवान् की सृष्टि का नियम पालन होता है, और पुरुषशक्ति की जो क्रिया है यदि वह स्त्रीशक्ति के साथ मिलाई गई तो प्रकृति के विरुद्ध कार्य हो जायगा । नेत्रों का क्रिया दृष्टिशक्ति है, कर्णो की क्रिया श्रवणशक्ति है, यदि श्रवणशक्ति को नेत्रों की शक्ति में मिलाया जाय तो भी प्रकृति के विपरीत कार्य होगा, जिस कार्य के निमित्त जो सृष्टि हुई है वह उसी कार्य को करै यही प्रकृति का नियम है । स्त्रियों के स्त्रीत्व का उल्लंघन होकर यदि उनमें पुरुष का आविर्भाव होजाय तो बड़े आश्चर्य का विषय है । जिस शिक्षा से स्त्रियें पुरुष की समान हो जाँय, वह शिक्षा प्रकृति के विरुद्ध शिक्षा है । यह मुझे ठीक विश्वास है कि आजकल स्त्रियों को जिस रीति से शिक्षा दी जाती है इससे वह अवश्य ही पुरुष के समान भाववाली हो जाँयगी । हाँ, स्त्रियों को ऐसी शिक्षा अवश्य होनी चाहिये कि जिससे वह अपने घर का हिसाब किताब भली भांति कर सकें । जो स्त्रियें अपने अन्तःपुर में रहकर अपनी गोद में पुत्र को लेकर स्वयं उसका लालन पालन करती हैं, 'एम ए.' बी. ए., की शिक्षा के होने से उनके पक्ष में यह बात अत्यन्त ही असंभव हो जायगी । यद्यपि बड़े बड़े घरानों में नोकर, चाकर भी रहते हैं, परन्तु सर्व साधारण के लिये तो यह बात अत्यन्त ही कठिन है, फिर आजतक स्त्रियों के पढ़ने को भी कोई ऐसी पुस्तक नहीं छपी कि जिससे उनको उचित शिक्षा मिले, जिन पुस्तकों को पुरुष पढते हैं वही पुस्तकें स्त्रियों के पढने के लिये भी है, इन समस्त पुस्तकों को पढकर स्त्रियें भी पुरुष की समान उन्नति शील होने की इच्छा करती है! न कि वह महारानी द्रोपदी की

समान रंधनशाला की अधिष्ठात्री देवी होने की इच्छा करती हो? पाठकगण! विचार कीजिए यदि आप लोग महारानी द्रौपदी की समान अन्नपूर्णारूप में स्त्री की अभिलाषा करते हो तो महारानी सीता जी की समान सती और साध्वी रूप से स्त्रियो को शिक्षा दो, तो भारतवासियों के नेत्रों में यही स्त्रियों की आदर्श शिक्षा होगी, जिस शिक्षा से केवल स्त्रियें विलासिनी होजाँय, वह शिक्षा उचित शिक्षा नहीं है। भारतवासी ऐसी शिक्षा की अभिलाषा नहीं करते कि स्त्रीयें स्वतन्त्र होकर मनमानी जहाँ तहाँ निधड़क विचरण करती फिरें। मैं भी ऐसी स्त्री शिक्षा की पक्षपातिनी हूं कि जिससे समस्त भारतवर्ष की स्त्रियें महारायणी द्रौपदी की समान सुन्दर मूर्ति बनने की अभिलाषा करें।

विचित्रता ही प्रकृति सृष्टि की नींव है, प्रकृति का यह विचित्र नियम प्रत्येक घरों में विराजमान हो रहा है, जो शिक्षा के भेद से स्त्रियों की प्रकृति को लोपकर संसार में सर्वत्र पुरुषभाव का सोता बहाना चाहते हैं वही प्रकृति के इस वैचित्रता की जड़ में कुल्हाड़ी मारने के लिये आगे बढ़े हैं। प्रकृति के एक वृक्ष में स्त्री और पुरुष रूपी दो फूल खिले हैं, इन दोनो फूलों की स्वभाविक जैसी शोभा और मधुरता है, उसमें अदल बदल का करना किसी प्रकार भी उचित नहीं। स्त्री रूपी फूल को स्त्रीभाव से ही खिलनें दो, और पुरुष रूपी पुष्प को पुरुषभाव से खिलने दो, दोनों भावों को मिलाकर एक मत करो! स्त्री को पुरुष मत बनाओ! स्त्रीत्व में पुरुष का समावेश मत करो! दूध में नमक मत डालो! पूर्णमासी की चाँदनी में अमावास्या के घोर अन्धकार की छाया का समावेश मत करो! जो अपने प्राणो की सामग्री है, अंतःपुर के निभृत केन्द्र स्थान में जिसके प्रकाश की छटा छिटक रही है, शिक्षा के दोष से उसे

कठोर और कटु मत करो! जो तृप्ति और शान्ति का आधार है, जो मनुष्य के जीवन का एक मात्र अवलम्बन है, आज कल की शिक्षा के दोष से वह माया ममता से हीन होकर यदि कठिन शुष्कता का आधार हो जाय तो ऐसी स्त्रीशिक्षा का क्या प्रयोजन है - जो माया ममता का अमृतमय स्रोता है, शिक्षा के दोष से यदि वह मरुभूमि के समान हो गया तब ऐसी शिक्षा से प्रयोजन क्या है? पाठक गण! इसी कारण मैं उस स्त्रीशिक्षा की अभिलाषणी हूं कि जिस शिक्षा से स्त्रियें उन्नति के पद पर बिराजमान हो कर गृहलक्ष्मीस्वरूपा हो जाय।

मेरी यह इच्छा है कि उनको ऐसी शिक्षा दी जाय कि जिससे लिखने पढ़ने के साथही साथ धर्म का ज्ञान हो जाय, जिससे वह सद्गृहस्थनी बन जाँय। सास श्वसुर की मर्यादा तथा उनकी सेवा करना सीखें, अपने कुटम्बियो में प्रेम रक्खें, देवरानी जिठानी में बैर विरोध न होने दें, देवर जेठ के बालकों को अपने ही बालकों की समान जानें, जितना परमेश्वर ने दिया है उसी में सतोष मानें, पति को ही अपना परम पूजनीय परम उपास्य, सर्वस्व तथा परम गुरु परम देवता मानें, पति की आज्ञा से ही धर्म कर्म करे, बड़े बूढ़ों की उत्तम रीति को हाथ से न जानें दें, व्रत, दान, दया का सर्वदा सेवन करें, घर का खर्च हिसाब, किताब सब अपने आप कर सकें, जितने चादर देखें उतने पैर फैलावें, अपने बालकों का पालन पोषण शिक्षा और साधारण रोग होनें पर उनकी चिकित्सा भली भाँति कर सकें, विविध प्रकार के भोजन बनाने की दक्षता, सब प्रकार का काढना सीना पिरोना, गृहकार्य की कुशलता, वृद्धो का सन्मान, समानों से आलाप, छोटो को आसीस, पतिव्रत धर्म की पराकाष्ठा, धर्म को आगे करके सम्पूर्ण कार्य करना इत्यादि अनेक बाते सीख जाय ऐसी

शिक्षा स्त्रियों को देनी उचित है। आज कल के नई रोशनी वाले जनटिलमैन कहते हैं कि "स्त्रियों को भी विधाता नें पुरुषों की समान अधिकार दिया है। पुरुष की सृष्टि से सृष्टि का जो उद्देश्य सिद्ध होता है, तब स्त्री की सृष्टि से भी वही उद्देश्य सिद्ध होता है। पुरुषजाति जिस भांति सृष्टि का प्रधान अंग है, स्त्रीजाति भी उसी प्रकार सृष्टि का प्रधान अंश है, इस कारण दोनो में भेद का मानना अत्यन्त अन्याय की बात है। स्त्रीजाति में पुरुषजाति की अपेक्षा कोई अंश भी कम नहीं है इस कारण स्त्रियों को बिना पढ़ाये लिखाये मूर्ख बनाये अज्ञान के अंधकार में रख कर पुरुषों ने उन्हें दासी की समान अपने आधीन कर रक्खा है वह पुरुषों का केवल स्वार्थ साधन मात्र है। जिस भाँति पुरुष शिक्षा पाते हैं, उसी भाँति स्त्रियों को भी शिक्षा मिलनी उचित है" जो लोग इस भाँति पुरुषों के समान अधिकार का भागी बनाना चाहते हैं वह जरा ध्यान देकर विचारें तो सही, कि कहीं, 'एम ए' 'बी ए' तक की बिना शिक्षा के स्त्रियें मूर्ख रह जाती हैं? देखो महारानी सावित्री लिखने पढ़ने के बिना जाने ही अपने सतीत्व के तेज से अंधकार में दीपक की समान प्रकाशमान थीं। आज "बीए" और 'एम ए' की उपाधि धारण करनेवाली स्त्रियें देवी सावित्री के समान आचरण वाली एक भी न निकलेंगी। जब कि स्त्रियों को भी पुरुष के समान अधिकार हो जायगा, तब प्रकृति का भी नियम खण्डित हो जायगा, प्रकृति ने जो कुछ भी नियम कर दिया है तुम और हम उसका उल्लंघन क्यो करें? प्रकृति ने इस संसार रूपी नाट्य-शाला में जिसको जिस प्रकार के अभिनय का भार दिया है उसको उसी प्रकार का स्वरूप धारण करके प्रकृति का नियम पालन करना होगा। जो जिस साज से सजता हुआ आया है वह उसी साज के उपयुक्त कार्य करै, जो सीता बनकर आई है, उसको रामचंद्र का रूप

क्यों दिया जाय । जो द्रौपदी बनकर आई है उसको अर्जुन का रूप देना उचित नहीं। जहाँ जो भाव हो गया वहां वही आभूषणों की भाँति सुन्दर दृष्टि आता है। प्रकृति ने उसको उसी भाव से संसार में सजाया है; उस साज से उपयुक्त कार्य करने से संसार की शोभा है। यदि स्त्रियें शिक्षा के दोष से पुरुष का अभिनय करना चाहती हैं तो उनकी मान मर्यादा नष्ट हो जायगी। पुरुष यदि स्त्री का अभिनय करना चाहते हैं तो उनको पुरुषत्व दूर करना होगा। अभिनय को इस प्रकार से अदल बदल करना इस संसार रूपी नाट्य शाला में युक्ति संगत नहीं।

मैं यह बात नहीं कहती कि स्त्रियों को पढ़ाया लिखाया न जाय। और न मेरा यह अभिप्राय है कि स्त्रियें मूर्खा रह जाँय। इस बात को तो मैं पहले ही कह आई हूं, वरन मेरा यह कहना है कि गृहस्थ स्त्रियो के 'एम ए' 'बी ए', होने से क्या लाभ है। हां स्त्रियों को हितकारी शिक्षा वही दी जाय कि जिससे वह गृहस्थ धर्म, कुल धर्म, सनातन धर्म और पतिव्रत धर्म की ऊँची सीढ़ी पर पहुँच जाँय। भारतवर्ष की महिलाओ को ऐसी शिक्षा और ऐसी विद्या देनी चाहिये कि जिससे वह पति के सुख से सुख और पति के दुःख से दु:ख मानें। जैसा भगवती जानकी जी ने महाराज रामचन्द्रजी के वन जाने के समय में कहा था।

> "प्राण नाथ करुणा यतन, सुन्दर सुखद सुजान।
> तुम बिन रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान॥
> खगमृग परिजन नगर वन, बलकल विमल दुकूल।
> नाथ साथ सुर सदन सम, पर्णशाल सुख मूल॥"

बस जिस दिन ऐसा समय फिर आजाय कि स्त्रियें अपने स्वामी का स्वामीत्व और उनका सन्मान करना यथोचित जान जांय तब फिर इससे अधिक शिक्षा की क्या-आवश्यकता रहेगी? सब कुछ जानने

पर भी महासती अनुसूयाजी महारानी जानकी जी को क्या सिखा गई हैं।

"मात पिता भ्राता हित कारी। मित सुखप्रद सुन राज कुमारी॥
अमित दान भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव यमपुर दुख नाना॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥"

जिस शिक्षा से यह धर्म आजाय वही शिक्षा है जिस विद्या से उपरोक्त धर्म कर्म का ज्ञान हो वही विद्या स्त्रियों के लिये उचित है। और देखो। पतिव्रत के प्रभाव से ही आज तक भारतवर्ष में लाखों स्त्रियों की कीर्ति चन्द्रमा सूर्य के समान प्रकाशमान हो रही है। पतिव्रत का पालन करना ही स्त्रियों का परम धर्म है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इत्यादि जो कुछ भी हैं स्त्रियों के लिये वह पति ही है। पति की सेवा ही देवाराधना है। जिस स्त्री पर पति प्रसन्न हैं उस स्त्री पर मानो सम्पूर्ण देवता ही प्रसन्न हो गये। तपस्विनी अरुन्धती पति-व्रत के कारण ही सप्तऋषि मण्डल में महर्षि वशिष्ट जी के समीप वर्तमान है। अब तक विवाह के मध्य में उन श्रेष्ठ अरुन्धती का दर्शन कराया जाता है। पतिव्रता स्त्री का अलौकिक प्रभाव होता है। चन्द्रमा सूर्य की क्या बात सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के धारण करने में पतिव्रता समर्थ होती है। भारत में लिखा है कि एक महर्षि तप कर रहे थे उनके ऊपर चिड़िया ने बीट करदी। जैसे ही उन्हों ने क्रोध कर उसकी ओर को देखा कि वैसे ही वह जलकर भस्म हो गई। तब वह अपने मन में विचारने लगे कि हम सिद्ध हो गये ऐसा विचार कर तप से विरत हो विचरते हुए एक नगर में आये और किसी गृहस्थी के द्वार पर जाकर उससे कुछ याचना करी। ज्योंही वह स्त्री भिक्षा लेकर आई

कि वैसे ही उसके स्वामी ने उसको पुकारा, जिससे वह बीच में से ही लौट गई और स्वामी के कार्य से निवृत्त होकर पश्चात् वहां आई तब यह उससे पूछने लगे कि "हे अबले! तू किस कारण से लौट गई" उस स्त्री ने उत्तर दिया कि 'महाराज! स्वामी का कार्य करने चली गई थी" तब यह ऋषि क्रोध करके बोले "कि अतिथि का इतना निरादर किया" तब वह इनकी क्रोध भरी दृष्टि को देखकर बोली कि "महाराज मैं बन की चिड़िया नहीं हूं जो दर्शन मात्र से ही भस्म हो जाऊं"। महर्षि बड़े आश्चर्य में हुए और उससे पूछने लगे कि "तुमको यह ज्ञान कहा से प्राप्त हुआ"। इस पर उस स्त्री ने उत्तर दिया कि "यह सब पति के चरण कमल सेवन का ही प्रताप है। मैं स्वामी की सेवा ही परम धर्म जानती हू" इस प्रकार के वचन कह उस स्त्री ने उस ब्राह्मण को बहुत सा धर्म सिखाया। पतिव्रत धर्म के पालन से ही स्त्री सर्वोत्तम गुणों को प्राप्त होती है। अधिक क्या कहू पतिव्रत धर्म के ऐसे अनेक उपाख्यान हैं यदि उनके अनुसार पतिव्रत धर्म की यथार्थ शिक्षा दी जाय तो फिर भारतवर्ष जगमगा उठैगा।

आज दिन भारतवर्ष में बी. ए. एम॰ ए॰ की उपाधि से युक्त बहुत से मनुष्य हैं, परन्तु जिस धर्म की शिक्षा से त्रिलोकी चमत्कृत होती है, उस शिक्षा का इस समय अभाव है। इस अभाव को यदि भारत की महिलाएं पूर्ण कर सकें तो उनके चरणकमल की धूरि से यह पृथ्वी कृतकृत्य हो जायगी। आज वृद्ध भारत के वर्तमान समय में पुरुषों के बीच में वक्ता उत्पन्न हुए हैं, बड़े २ कवि उत्पन्न हुए हैं दार्शनिक उत्पन्न हुए हैं, बड़े २ विद्वान उत्पन्न हुए हैं परन्तु मुझे इतना भी संदेह है कि कोई धार्मिक भी उत्पन्न हुआ है या नहीं? जिनके चरित्रो की सुगंधि से दशों दिशाएँ सुगंधित हो जातीं! जिसकी भक्ति की छटा से अंधकार में छिपे हुए चंद्रमा की छटा प्रकाशित हो

जाती॥ जिसके विश्वास के तेज से समस्त मनुष्य चमत्कृत हो जावे॥॥ ऐसा मनुष्यों के बीच में वर्तमान समय में कोई मनुष्य उत्पन्न हुआ है या नहीं इतना ही संदेह है? धनवान उत्पन्न हुए हैं, मानी उत्पन्न हुए हैं, विज्ञानियों ने जन्म लिया है, आत्मश्लाघी उत्पन्न हुए हैं, परन्तु पाठकगण। मुझे इतना ही सन्देह है कि किसी धार्मिक ने भी जन्म लिया है वा नहीं,? पाखंडी उत्पन्न हुए हैं, विश्वासघाती, नास्तिक, इत्यादि सभी उत्पन्न हुए हैं, और वह चारो दिशाओं में सिंह के गर्जने के समान गर्ज रहे हैं परन्तु कोई यथार्थ में धार्मिक भी उत्पन्न हुआ है या नहीं मुझे इतना ही सन्देह है? स्त्रियों में ऐसी कोई स्त्री भी दृष्टि नहीं आती जो कि इस शून्य स्थान को पूर्ण कर सकें, परन्तु आज कल भी कहीं २ इसी भारतवर्ष में ऐसी स्त्रियें बहुत सी विद्यमान हैं कि जो नवरात्रियों में नौ दिन तक बराबर केवल नौ लौगो के आधार से ही व्रत धारण करती हैं। फिर अभी थोड़े दिन हुए कि एक स्त्री ने हमारे इधर २६ दिन तक बराबर एक लौंग रोज़ खाकर निर्जल व्रत किया था। अब भी इसी से जाना जाता है कि प्राचीन काल की स्त्रियो का रुधिर तुम्हारी नाड़ियों में बहन कर रहा है,। यदि तुम प्राचीन महिलाओं की समान पतिव्रत धर्म का पालन करोगी तो उसके प्रभाव से भारतवर्ष में धर्म-राज्य के अद्भुत तत्व का प्रकाश हो जायगा।

स्त्रियों में जो एक बड़ी भारी शक्ति है उसको वर्तमान समय के मनुष्य गण अपने आमोद का उपकरण मात्र विचारते हैं, जिस भक्ति और विश्वास के गुण से महात्मा प्रह्लाद जी ने खंभ के बीच में ही भगवान् की मूर्ति का दर्शन किया था, जिस भक्ति और विश्वास के प्रभाव से कुमार ध्रुव ने पांच वर्ष की अवस्था में ही भगवान् श्रीकृष्ण का घोर वन में जाकर दर्शन किया था, उसी भक्ति और

विश्वास की भस्म से ढका हुआ अग्नि का कण जिनके हृदय को पोषण कर रहा है, उन हिन्दू स्त्रियों को मनुष्य गण केवल विलास की सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। हे भारतवासिनी ललने! तुम अपनी उस विलासिनी मूर्ति को छोड़ दो, और साक्षात् भगवती की मूर्ति से विराजमान रहो! तुम्हारी गोद में पुत्र लिये हुए मूर्ति को देखने से ऐसा बोध होगा कि मानों साक्षात् गणेश जननी देवी पार्वती जी खड़ी हैं! इस कारण तुम अपनी सती मूर्ति को मत छोड़ो। तुम्हारे जिस सतीत्व के तेज से त्रिलोकी प्रकाशमान हो जाय उस सतीत्व के मणिमय सिंहासन पर ही विराजमान रहो! पुराणों में तुम्हारे सतीत्व के विषय में जो जो उपाख्यान सुने हैं, उनका विचार करते ही शरीर में रोमाञ्च हो जाता है, देखो। एक दिन महात्मा माण्डव्य ऋषि अपने आश्रम में ध्यानस्थ विराजमान थे, इसी समय में मार्ग के परिश्रम से थकित दुर्वासा ऋषि तृष्णा के मारे व्याकुल होकर उनके आश्रम के द्वार पर आये, और बारम्बार जल के निमित्त ऋषि को पुकारने लगे, मुनि तो ध्यान में मग्न बैठे थे उन्होंने इनकी पुकार को कुछ भी नहीं सुना, जब दुर्वासा जी ने देखा कि बार २ पुकारने पर ऋषि ने कुछ उत्तर न दिया तो वह मारे क्रोध के अधीर हो गये, और उनका शरीर थर २ कांपने लगा, उसी समय उन्हों ने माण्डव्य ऋषि को शाप दिया कि इस शाप से तुम प्रभात होते ही शूल रोग से पीड़ित होकर शरीर छोड़ दोगे। यह शाप की भयंकर वाणी माण्डव्य ऋषि की पतिव्रता पत्नी तक पहुंच गई, वह उसी समय दुर्वासा ऋषि से बोली, कि हे मुने! यदि मैं वास्तव में पतिव्रता हूं तो प्रभात ही न होगा, इस कारण तुम्हारा शाप भी वृथा जायगा।

ऐसी किस की सामर्थ्य थी जो कि पतिव्रता सती की वाणी

का उल्लघंन करता ? प्रभात नहीं हुआ, सूर्य भगवान् ने भी अपनी मर्यादा छोड़ दी, वह उदय न हुए। सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड अखंड अंधकार में डूब गया। सृष्टि को लोप होता हुआ देखकर देवगण ब्रह्मा जी के पास जाकर बोले, कि "हे देव ! भयंकर व्यापार उपस्थित है, एक ओर तो देवी सती का प्रण है, और दूसरी ओर महात्मा दुर्वासा जी का अखंड शाप है, इसका निस्तारा किस प्रकार होगा ?" ब्रह्मा जी बोले, "यह व्यापार तो बड़ा ही कठिन है, सती की वाणी भी निष्फल नहीं होगी। और ऋषि का शाप भी वृथा नहीं जायगा, ब्रह्मा जी इस प्रकार की घोर चिन्ता में कुछ काल तक मग्न रहे, फिर सम्पूर्ण देवताओं को एकत्रित कर परस्पर में सम्मति करके सती के पास जाकर बोले, "हे देवि ! देखो बहुत दिनो से अंधःकार होने के कारण अब सृष्टि लोप होने का उपाय कर रही है, इस कारण हे मातः ! आप अपने वचन को लौटा लीजिये"। तब देवी सती लाल २ नेत्र कर देवताओ के यह वचन सुन भगवान् ब्रह्मा जी से बोली, "यदि मैं यथार्थ में ही पतिव्रता हूं तो मेरा वचन किसी भांति मिथ्या नहीं हो सकता," तब तो ब्रह्मा जी भय भीत होकर बोले, "हे देवि ! मैं एक बात कहता हू, कि प्रभात भी हो जाय, और आपके स्वामी के शूल की पीड़ा भी हो, परन्तु मैं उनके जीवन की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता हूं, अर्थात् उनकी मृत्यु भी नहीं होगी, आपकी प्रतिज्ञा भी बनी रहेगी और ऋषि का शाप भी पूर्ण हो जायगा। इसके उत्तर में सती ने कहा "कि मेरे स्वामी को शूल के दर्द का अनुभव तक भी न हो," इस प्रतिज्ञा पर मैं अपना वचन फेरती हूं। सब देवताओं ने इस बात को मान लिया। प्रभात हो गया। जीव जन्तुओं ने प्रकाश पाकर मानों नवीन जन्म पाया। माण्डव्य मुनि का स्त्री के गुण से पुनर्जन्म हुआ, देखो, सती की कैसी

विचित्र सामर्थ्य थी कि सती के वचन के सन्मुख प्रकारान्तर में ऋषि का वचन व्यर्थ हो गया, सती की आज्ञा को भगवान् सूर्य देव ने भी माना, देवी सती की आज्ञा को देवताओं ने भी मस्तक नवा कर स्वीकार किया। सती के माहात्म्य को देखकर त्रिलोकी कांप गई, सती की आज्ञा को प्रकृति ने भी मस्तक झुका कर अंगीकार किया। हाय! न जाने इस समय वह सती स्त्रियों का तेज इस भारतवर्ष से कहां चला गया ? हे भारत वासिनी ललने! जरा विचार कर देखो कि पहले क्या था और आज कल क्या हो रहा है, इस सती के आदर्श को अपने सन्मुख रखकर कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ो। इस दीन दुःखी भारत में यदि कुछ गर्व है तो भारत महिलाओं को अपने सतीत्व का ही है, जिससे यह अमूल्य धन इस भारतवर्ष में सर्वदा के लिये गौरवान्वित रहै वही उपाय करती रहो। मेरी यही आन्तरिक अभिलाषा है।

सुभद्रा देवी
मुरादाबाद।

हिन्दी के अनुवादकर्ता*

समालोचक में एक बंगमहिला ने 'हिन्दी के ग्रन्थकार' नामक एक समयोपयोगी लेख लिखा है। हिन्दी पत्रों में आजकल उसकी अधिक चर्चा होरही है। इस लेख में बंगमहिला ने हिन्दी के कई लेखकों का नाम दिया है। जिन्हों ने बंगला से पुस्तकें अनुवादित की और मूल ग्रन्थकार का नाम नहीं दिया और अनुवादित पुस्तकों को स्वरचित बतलाया इस लेख के लिखने से बंगमहिला की यह इच्छा थी कि भविष्यत् में हिन्दी लेखक मूल ग्रन्थकार से अनुमति लिये बिना हिन्दी अनुवाद न करें और करें भी तो मूल ग्रन्थकार का नाम कृतज्ञता पूर्वक अवश्य देदिया करें। किन्तु खेद है इस लेख का उलटा ही परिणाम हुआ। कतिपय आत्माभिमानी हिन्दी लेखक इस लेख से बहुत चटके हैं। किन्तु हर्ष है कि चटकनेवाले वह ही महापुरुष हैं जिन्होने मूल ग्रन्थकार से अनुमति लिये बिना ही हिन्दी अनुवाद किया है और उन अनुवादों को स्वरचित प्रसिद्ध कर रक्खा है। ऐसे अनुवाद कर्ताओं की श्रेणी में 'प्रयाग समाचार' के वर्तमान सम्पादक और 'हिन्दी बंगवासी' के नवीन सम्पादक का नाम भी आता है; अतः 'प्रयाग समाचार' और 'हिन्दी बंगवासी' बंगमहिला के लेख को देखकर आपे से बाहर हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं। नवजात 'वैश्योपकारक' को न जाने क्या सूझी कि वह भी इन लोगों के पीछे पीछे अपनी मिश्र चाल से पड़ा है।

प्रयाग समाचार का लेख लम्बा होने पर भी गंभीर नहीं हैं। बंगमहिला ने जो यह लिखा कि "हर्ष है कि लाला बालमुकुन्द गुप्त

---

* यह लेख हमारे पास बहुत दिनो से पड़ाहुआ था हमारी इच्छा इसके प्रकाश करने की नहीं थी किन्तु लेखक के आग्रह से विवश होकर छापना पड़ा है (सं॰ स)॰

पंजाबी होकर बंगभाषा की आलोचना करते हैं" उससे गुप्त महोदय पर अपनी श्रद्धा प्रगट की है उसको भी लोगों ने कटाक्ष समझा है। इसी पत्र में एक लेख श्रीयुत 'विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह' के नाम से छपा है। इसमें बात का बतंगड बहुत बनाया गया है। लेखक ने सुप्रसिद्ध 'भारती' पत्रिका की सम्पादिका श्रीमती सरला देवी घोषाल को निष्प्रयोजन ही गाली दी है। सरस्वती पर कटाक्ष करते हुए 'सिंह' जी लिखते हैं। "सरस्वती" बङ्गनिवासी बङ्गालियों के उत्तम लेख छाप कर धन्य होती है, इनदिनों 'समालोचक' बङ्गमहिला का लेख छापकर बहादुर हुआ है। बङ्गमहिला ने समालोचक पर बड़ी रियायत की है, नहीं तो उसको लेख और बढ़ाना पडता, और कहना पडता कि "समालोचक में भी बहुत से लेख ऐसे निकले हैं जिनमें मूल लेखक का नाम नहीं दिया गया है" हम जहां तक जानते हैं कह सकते हैं कि समालोचक के वर्तमान स्वरूप में कोई लेख मूल ग्रन्थकार की अनुमति लिये बिना नहीं छपा है। हा, उस समय 'समालोचक' में कई ऐसे लेख अवश्य निकले थे जब कि आपके श्रद्धास्पद, क्षमताशाली, 'प्रयाग समाचार के वर्तमान सम्पादक,' उसका सम्पादन करते थे। कुछ हिन्दी लेखकों ने बंग भाषा से चोरी की है इस बात को झूठा सिद्ध करने के लिये लेखक ने 'भारत मित्र' की शरण लेकर यह विचित्र युक्ति लगाई है कि बङ्गाली ग्रन्थकारों ने भी अगरेजी से चोरी की है, हम कहते हैं कि यदि बङ्गाली ग्रन्थकारों ने चोरी की है, तो उन्हें चोरी करने दो। आप उनकी देखादेखी क्यों चोरी करते हैं? ऐसा कहने से कि बङ्गालियों ने भी चोरी की है यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि हिन्दी के लेखकों ने चोरी नहीं की है और उन्हें करनी चाहिए। हम कहते हैं कि यदि मनुष्य में कुछ भी उदारता और न्याय है।

और उसने मूल ग्रन्थकार की आज्ञा बिना ही अनुवाद किया है या मूल लेखक का नाम भूल से न दिया है तो वह अवश्य ही लज्जित होंगे और भविष्य में ऐसा करने का कभी साहस न करेंगे ।

एक सुलेखक महाशय ने भूल से निज अनुवादित पुस्तक में मूल ग्रन्थकार का नाम न देकर आन्तरिक पश्चात्ताप प्रगट किया है। इसी तरह एक सत्स्वभाव स्वर्गीय महात्मा को ऐसी भूल करने से हार्दिक दुःख हुआ था और बंगमहिला के कथन का समर्थन करके उन्होंने भविष्य में कभी ऐसा न करने की प्रतिज्ञा की थी इसमें सन्देह नहीं । संसार में उदारता भी बड़ी ही अमूल्य वस्तु है । जो उदार हृदय है, यदि उनसे एक समय भूल भी हो जाय तो वह उसे मालूम होने पर अवश्य सुधार लेंगे, किन्तु जिनको हठ और दुराग्रह है उनको ब्रह्मा भी समझाने में असमर्थ है ।

हिन्दी बङ्गवासी में 'हिन्दी में समालोचना' नामक लेख बड़ी ही उद्दण्डता से लिखा गया है । एक स्थान पर इसमें लिखा है ।

"समालोचकों को विशेष कारण वश, किसी की समालोचना में विशेष अवगुण प्रगट करने का भी प्रयोजन उपस्थित हो जाता है, किन्तु इस तरह की आलोचना के समय आलोचना करने वालों को शिष्टता और सामाजिक स्वार्थ का पूरा विचार रखना चाहिये" इस समय ठीक यह ही दशा हिन्दी बंगवासी के सम्पादक की हुई है और आलोचना के समय उनको 'शिष्टता और 'सामाजिक स्वार्थ' का तनिक भी विचार न रहा । दूसरे पेरा में सम्पादक जी ने लिखा है, "...... और अधिकांश समालोचकों की नालायकी की वजह से समालोचना का काम निहायत गन्दगी और बेतुकेपन से चल रहा है ।" इन शब्दों में कितनी शिष्टता भरी हुई है? और इनसे

क्या सम्पादकीय कर्तव्य पालन होता है ? इसे विज्ञ पाठक विचार कर कुछ देखें ।

उसी पैरा में लेखक ने गौरांग भक्ति का इस प्रकार परिचय दिया है, "हमे मालुम है कि योरोप में इस समय अगणित ऐसे विद्वान हैं, जोप्राचीन धुरन्धर पण्डितों के पुस्तकों की समालोचना बड़ी आसानी के साथ कर सकते हैं, किन्तु क्या २८ करोड़ भारतवासियों में एक भी ऐसा है जो लार्ड मेकाले, हरवर्ट स्पेन्सर प्रभृति दिग्गज पण्डितों के इनसाइक्लो (?) की आलोचना कर सके, या जो इनसाइक्लो पीडिया बृटानिका पढ़ कर उस के विषय में अपनी राय प्रगट कर सके। साहब लोगों की क्या प्रशंसा की जाय जो कि किसी भाषा के अक्षर मात्र जानने पर उस भाषा के पारदर्शी विद्वान कहलाने लगते हैं और बिचारे हिन्दुस्तानियों को यथार्थ में पारदर्शी होनेपर भी कोई नहीं पूछता। अंगरेजी भाषा में हिन्दुस्तानियों की लिखी हुई बीसों पुस्तकें ऐसी हैं जो कि अंगरेजी साहित्य में उत्तम समझी जाती हैं; किन्तु क्या आप भी किसी योरोपीय विद्वान की लिखी हुई संस्कृत, हिन्दी, बंगला, मराठी आदि इस देश की किसी भाषा में कोई ऐसी पुस्तक का पता बता सकते हैं, जो कि आदर की दृष्टि से देखी जाय। साहब लोगों की समालोचना कैसी होती है, इसकी कुछ बानगी आपको 'सुदर्शन' में प्रकाशित 'वेबर का भ्रम' से मिलेगी। हमारी समझ में २८ करोड भारतवासियो में एक नहीं, सैकड़ों, ऐसे हैं जो मेकाले, मिलटन, शैक्सपीयर आदि की रचनाओं पर स्वतन्त्र लेख लिख सकते हैं और इनसाइक्लोपीडिया बृटानिका की समालोचना कर सकते हैं [१] इस विषय में अधिक लिखकर इस लेख को हम विषयान्तर में नहीं लेजाना चाहते ।

---

१ एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका में कई लेख प्रसिद्ध भारतवासी के भी हैं। सौ वर्ष की अंगरेजी शिक्षा के लिए यह लज्जा की बात हो यदि भारतवर्ष में एक भी मनुष्य हर्बर्ट स्पेन्सर को न समझ सके।

(सम्पादक)

चौथे पैरा में लेखक ने समालोचक के सुयोग्य सम्पादकों पर बहुत ही अनुचित, अयोग्य और तीव्र शब्दों में कटाक्ष किया है "कोई कालेज में पढ़ता हुआ मुछाकड़ा लड़का ही अपने को हिन्दी भाषा का अकेला समालोचक समझ रहा है" जिन्हें विश्वविद्यालय की हवा नहीं छू गई है, वे योंही उस पुण्यभूमि के वासियों पर टक्करें मारना चाहते हैं इसका निदर्शन दो वैश्यों के पत्र दे चुके हैं। हम कालेज में पढ़ते हुए लड़के को जिसने कई भाषाओं में सुशिक्षा पाई हो उन महा पुरुषों (?) के मुकाबले में जो कि अर्द्धदग्ध हैं और योग्य शिक्षा न पाकर भी उर्दू के भरोसे अपने को सर्वज्ञ मान रहे हैं लाख गुना अधिक अच्छा समझते हैं। क्या सब योग्य सम्पादकों को दाढ़ी ही होती है? जो आपने समालोचक सम्पादकों को 'मुछा कड़ा' लिख कर मूंछों से घृणा की है। और फिर आप भी तो जहा तक मुझे स्मरण है, दाढ़ी से वैसे ही कोरे हैं जैसे 'बहुदिन लेडियां'

आगे चलकर लेखक कहते हैं कि "समालोचक लोग किसी एक परही कटाक्ष करते हैं-यह हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ चञ्चला 'समालोचनी' सभी हिन्दी उपन्यास लेखकों पर चढ़ने लगी है। एक पुस्तक रचयिता से इसने यहां तक पूछा है "जनाब! क्या आप अपनी जननी वा सहधर्म्मिणी से इसी भाषा में बात चीत करते हैं" क्या यह 'नितम्बवती' बङ्गालन यह नहीं समझती थी, कि उसके बाप और शौहर की बातों के बारे में भी कोई मनुष्य उससे कुछ पूछ सकता है"। 'समालोचनी' और 'नितम्बवती' शब्दों से लेखक के व्याकरण ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। हम उस दिन हिन्दी का बड़ा सौभाग्य समझेंगे जिस दिन अर्द्ध शिक्षित जनों के स्थान में उच्चश्रेणी के विद्वानों को हिन्दी के सम्पादकीय आसनों

पर आसीन देखेंगे । बङ्गमहिला ने जो यह प्रश्न किया है कि "जनाब । क्या आप अपनी जननी और सहधर्म्मिणी से इसी भाषा में बात चीत करते हैं" । उससे हम बिलकुल सहमत नहीं, क्योंकि साहित्य की भाषा और घर में कुटुम्बियों के साथ बोलने की भाषा का मिलान करना विडम्बना मात्र है । हम कभी नहीं विश्वास कर सकते कि 'कालिदास,' 'हरिश्चन्द्र,' 'शेक्सपीयर' आदि ने जिस भाषा का अपने ग्रन्थरत्नों में व्यवहार किया है उस ही भाषा में वह अपने कुटुम्बियो अथवा अपर जनों के साथ वार्तालाप करते हो । हा हम बंगमहिला से इस बात में सहमत हैं कि ऐसे लेखकों की भाषा में मुसलमानी शब्द बहुत आते हैं ऊपर ही 'पिता' 'शौहर' शब्द की जोड़ी की बहार देखिये । हमें खेद है कि 'भारतमित्र' के सुयोग्य सम्पादक भी यह लिखते हैं कि बंगमहिला के लेख में छछोरापन अधिक है । किन्तु यदि वह 'बङ्गवासी' के उक्त लेख को ध्यान पूर्व्वक पढते तो जो सम्मति कि उननें बङ्गमहिला के लेख पर दी है, वही सम्मति वे बङ्गवासी के लेख पर अवश्य देते ।

"श्रीवेंकटेश्वर समाचार' के सम्पादक महाशय ने बंगमहिला का लेख पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता प्रगट कर अपनी योग्यता का परिचय दिया है इस लेख से एक प्रकार 'मोहिनी' भी प्रसन्न हुई थी पर आगामी संख्या चलकर ही " खरबुजे के रंग को देखकर खरबुजा रंग पकड़ता है " इस लोकोक्ति को चरितार्थ किया है ।

आगे चल कर बंगवासी ने अपनी मार्म्मिकता का इस प्रकार परिचय दिया है:—

"अयोग्य मनुष्य ने अनधिकार चर्चा कर इस काम की (समालोचना की) बे इज्जती करडाली है, इससे उपकार की जगह अपकार ही हो रहा हैं" जब अयोग्य मनुष्यों ने अनधिकार चर्चा कर

इस काम की वे इज्जती करडाली है, उस समय आप जैसे सुयोग्य सम्पादक ने भी साधिकार चर्चा कर इस लेख से अपने पत्र का गैारव बढा कर हिन्दी का जो कुछ उपकार किया है उसे हिन्दी साहित्य समाज कभी न भूलेगा ।

वैश्योपकारक । यह नवजात पत्र बाबू शिवचन्द्र भरतिया (?) द्वारा सम्पादित होता है । भरतियाजी मराठी भाषा की सेवा कर प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं अब हिन्दी साहित्य की सेवा करने को सचद्ध हुए हैं । आशा होती है कि 'वैश्योपकारक' एक सुयोग्य विद्वान के हाथ मे होने से किसी समय हिन्दी भाषा की अच्छी सेवा करेगा, किन्तु जेष्ठ के अङ्क में ' समालोचना की आलोचना ' नामक जो लेख छपा है । वह प्रायः पक्षपात पूर्ण है । प्रथम सर्व सन्मानित मान्यवर ' मालवीय ' जी पर हाथ साफ किया है फिर बंगमहिला की खबर ली है । हम इस समय अप्रस्तुत विषय पर कुछ न लिखकर प्रस्तुत विषय पर विचार करेंगे ।

हम इस बात के समझने में सर्वथा असमर्थ हैं कि बंगमहिला ने अपने लेख में ऐसी कौनसी बात लिखी है जिससे 'कुलरमणी के रक्षण योग्य मर्य्यादा की रक्षा नहीं हुई' ? "क्या यही प्रश्न कि "जनाब ! क्या आप अपनी जननी और सहधर्म्मिणी से इसी भाषा में बातचीत करते हैं ?" यद्यपि इस प्रश्न के करने की तनिक भी आवश्यकता न थी, किन्तु इस प्रश्न में हम फिर भी कोई ऐसी बात नहीं देखते कि जिससे समझा जाय कि कुलरमणी के रक्षण योग्य मर्य्यादा की रक्षा नहीं हुई । यदि यह बात ठीक है कि बंगाली साहित्य सेवियों ने भी अंगरेज़ी से चोरी की है और मूल-ग्रन्थकार का नाम नहीं दिया और बंगभाषा में भी बहुत सी अश्लीलता पूर्ण पुस्तकें हैं, तो हमारी समझ में इस बात को स्वीकार

करने में बंगमहिला को कोई आपत्ति न होगी। यदि बंगमहिला अँगरेज़ी भाषा की भी जानकार होती, तो हम उनसे स्वयं बंगाली ग्रन्थकारों की चोरी दिखाने की प्रार्थना करते। इस समय हम उनसे सादर निवेदन करते हैं कि बंग-भाषा में जो अश्लीलता पूर्ण पुस्तकें हों चाहे वह बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की हो चाहे और किसी की, उनकी उचित आलोचना कर, अपने बंगाली भाइयों को भविष्य में ऐसी घृणित पुस्तकें न रचना करने की सम्मति देवें। यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि यदि बंगालियों ने घृणित कार्य्य किया है तो हिन्दीवाले भी उसका अनुकरण करें। 'तारा' और 'चपला' की 'भारत मित्र' 'श्रीवेंकटेश्वर' 'समालोचक' 'राजपुत" आदि चाहे जैसी कड़ी आलोचना करें तो कुछ नहीं किन्तु यदि बंगमहिला ने इतना लिख दिया 'कि इन पुस्तकों को देखकर हमारे देवताकूच कर गये' वह 'वैश्योपकारक' जी को सह्य नहीं। हम इस बात को मानते हैं कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कई एक कविताएं और बड़तल्ले की पुस्तकें अश्लील हैं किन्तु क्या इससे 'गोस्वामीजी' की 'तारा' और 'चपला' निर्दोष सिद्ध हो जायगी? या 'गोस्वामीजी' की पुस्तकें बड़तल्ले की ही पुस्तकों से तुलना करने योग्य है? कदापि नहीं।

'मालवीयजी' के तो आप इतने विरोधी कि यदि वह सरल हिन्दी को पसन्द करें तो आप उन्हें खिचड़ी भाषा का पक्षपाती समझें किन्तु 'जौहर' बाबू के इतने पक्षपाती कि यदि वह खिचड़ी हिन्दी भी लिखें तो उस समय यह युक्ति "पर उनसे (मुसलमानी शब्दों से) इस देश के लोगों का सम्बन्ध बिलकुल दूर भी नहीं हो सकता" इन्हीं सब बातों से हमने इस लेख को पक्षपात पूर्ण समझा है। हां 'प्रवासी' ने तो बाबू श्रीराधाकृष्णदास लिखित 'भारतेन्दु'

के चरित की आलोचना की है उसके विषय में जो कुछ 'वैश्योपकारक' का मत है उससे हम अक्षरशः सहमत हैं ।

अब हम इस लेख को यहीं समाप्त करते हैं कदाचित् हमें भी इस लेख के पीछे कुछ लोगों की गाली खानी पड़े । किन्तु हम श्रीभर्तृहरिजी का यह वाक्य ,,न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः' स्मरण कर निश्चन्त हैं । किमधिकम् ।

एक स्पष्टवक्ता ।

---

१ चार वर्ष पहिले भारतमित्र में एक बङ्गाली प्रवासी का वृत छपा था, जिसमें लिखा था कि पञ्जाबी स्त्रियां नग्न नहाती हैं। इस पर भारत मित्र ने कहा था कि स्नान करती स्त्रियों को देखने वाले को 'मालजादा' कहते हैं। बङ्ग-महिला को जो कुवाच्य कह चुके हैं उन्हें पञ्जाबी सम्पादक क्या कहेंगे ?—

एक साहित्य पाठक ।

२ वैश्योपकारक में समालोचक की आलोचना पढ़ कर हमें बड़ाही हर्ष हुआ यह तीर्थ यात्रा करने का फल है कि पुराने सखा का फिर स्वर सुनाई दिया। ऐसाही यदि समालोचक की सभी संख्याओं पर हमारे मित्र विवेचन लिखें तो हम बड़े प्रसन्न हों, किन्तु 'खेल भी शिक्षा को' वे फिर पढ़ें ।

(सम्पादक)

'विक्रमोर्वशी' की मूल-कथा।

प्राचीन आर्य गौरव के प्रधान कीर्त्तिस्तम्भ, कविकुलचूडामणि कालिदास की रचनाओं में 'विक्रमोर्वशी' नाटक का भी जगत् के नाटक साहित्य में अद्वितीय आसन है। दृश्य वा श्रव्य मधुरता में यह 'अभिज्ञान शाकुन्तल' वा 'उत्तररामचरित' से किसी प्रकार निकृष्ट भी क्यों न हो, तथापि और और अभिनेय रचनाएं इसके आगे सिर झुकाती हैं, इसमें सन्देह नहीं। प्रकृति की वर्णना में, भावों के समावेश, सम्पर्क, और संघर्ष के अङ्कन में, एक शब्द से ही कई प्रकार के भावों को जगाने में, रङ्गमञ्च पर दिखाई देने वाले अभिनय के साथ साथ सुनाई देनेवाले शब्दों से वास्तव प्रकृति और वास्तव मनुष्यस्वभाव का धोखा देने में, इस नाटक के विषय में यही कहना बस होगा कि जिस अमृतमय लेखिनी से यह निकला है, वह परिणत न होने पर भी, उसी कालिदास की लेखनी है, जिसका लिखा अभिज्ञान शाकुन्तल गत बीस शताब्दियों में जगत् के रङ्गमञ्च पर अधिकार किए रहा है। उस नाटक की मूलकथा क्या है और कहां से ली गई है, और महाकवि ने उसमें क्या क्या परिवर्तन कर के इस सुन्दरता की वस्तु के सदा के लिए सुखदायिनी बनाया है, इन बातों का दिग्दर्शन कराने के लिए ही इस निबन्ध को अवतारणा है।

कथा की मूलभित्ति के "स्रोत" या "सोता" (source) भी कहा करते हैं। हमारे प्राचीन इस विषय में इतनाही कह कर चुप हो जाते हैं कि 'कविरनुहरति छायाम्' और देखा जाय तो एक

प्रकार से भारतवर्ष के काव्य वा आख्यायिकाओं का सोता जानना उतना कठिन नहीं है। वैदिक वा पौराणिक उपाख्यान, दैविक, अर्धदैविक, मानुष, और मिश्र इतिहास, और समकालीन साहित्य, जो सदा अमर वेद पुराण और इतिहासों में निबद्ध हैं, किसी न किसी रूप में संस्कृत कवियों के मुख्य भोजन रहे हैं। कहीं कहीं कवियों ने प्राचीन नियमों की शृङ्खलाओं को तोड़ने का साहस किया है। एक तो धर्मप्रधान भारतवर्ष में देव चरित्र वा अवतार चरित्र के सामने नरकीटों के चरित्र की गिनती ही क्या थी, दूसरे उसमें अनर्गल कल्पना को उतना स्वच्छन्द अवकाश न मिलता। तथापि कुछ कवियों ने मनुष्य चरित्र को भी बड़ी योग्यता से निबाहा, और कुछ ने "भोज-प्रबन्ध" जैसे ग्रंथों में एक राजा के गले सब कवियों को, ऊंट के गले म्याऊं की तरह, बांधने की योग्यता दिखाई। यों मनुष्य चरित्र के कम वर्णित होने से और देव और देवकोटि प्रविष्ट मनुष्यों के चरित्र गिने हुए, स्थिर और ज्ञात ग्रंथों में होने से; मुद्रणकला के न होने से ग्रंथों में जीवनयोग्य और मरणयोग्य का भेद निश्चित होकर उन में जीवन संग्राम और सत्तमों का अवशेष न होने से, जिस समय संस्कृत पुस्तकें नष्ट होने लगीं उस समय संस्कृत रचना काल का भी शेष हो जाने से, प्रधान प्रधान दृश्य और श्रव्य काव्यों की मूलभित्ति जानना उतना कठिन नहीं है। किन्तु योरोप में, जहां सात आठसौ वर्ष से मुद्रायन्त्र ग्रन्थप्रकाश में सहायता करके ग्रन्थ लोप में भी सहायता करता रहा है, जहां प्रकाशित साहित्य रक्तबीज की तरह बढ़ता गया और नष्ट होता गया है, अनेक कवियो के अनेक काव्यों के अनेक सोतों का पता लगाना कठिन यों है कि देवचरित्र में मनुष्य चरित्र की संसृष्टि वहां की गई है, और जगत् के वृत्तान्त देव इतिहासों में प्रतिबिम्बित किए गए हैं। तथापि प्राचीन और नवीन

योरोपीयों ने इस काम को "पुराने महाकवियों की धज्जियां उड़ाना" न समझा, और और और विषयों की तरह इसमें खूब उन्नति की। महाकवि "शेक्सपीयर" के नाटकों में क्या क्या भाव और घटना कहां कहां से कैसे कैसे ली गई, मिल्टन की स्वर्गच्युति में किस किस ग्रन्थ का प्रतिबिम्ब है, इन पेचीली बातों को लेकर अंगरेजी में एक साहित्य का साहित्य उत्पन्न होगया है। अब तो अंगरेजों की कृपा से हम लोग भी अपने कवियों के विषय में लिखने पढ़ने और सुनने भी लगे है, तो भी अगरेज़ी न जानने वाले "गूंगे के गुड़" की तरह उस प्राचीन कविओं के प्रति कृतज्ञता का स्वाद नहीं लेसकते, जो शैक्शपीयर सोसाइटी प्रभृति के नाम और काम से प्रकट है।

प्राचीन और योग्य कवियों ने नई कहानी गढ़ने का यत्न नहीं किया। अपटु कवि ही नई कहानी में उलझाने का यत्न करके अपने और दोषों को छिपाने का यत्न करते हैं। जिस कहानी को आबाल वृद्ध जानते हों, जो हमारे घरबार का अङ्ग होगई हो, उसी को नया रङ्ग चढ़ाकर, नवभाव से पुजा देना महाकवियों की शक्ति है। जैसे एक हल जोतने वाले ने कोहनूर को पाकर अपने बैल के गले में बांध दिया था, और सुचतुर जौहरियों ने उसे ओप देकर राजा कर्ण के भेंटे, शाहजहान के मयूरसिंहान, पञ्जाब केसरी के नेत्र, और विक्टोरिया के ताज का भूषण बनाया वैसेही प्राचीन साहित्य में बिखड़े कङ्कर पत्थरों को जगत् के प्यारे रत्न बनाना महाकवियों का ही महत्व है। अब सब लोग जानते हैं कि अभिज्ञानशाकुन्तल की मूलभित्ति महाभारत और पद्मपुराण की एक एक आख्यायिका है। क्या उस आख्यायिका के भरोसे दुष्यन्त और शकुन्तला अमर हो जाते? और विचार से देखा जाय तो उस आख्यायिका में हाड मांस के अतिरिक्त जीवन कितना है? धीरोदात्त गुणान्वित नायक अपनी व्याहता

को भूल जाता है, और उससे अश्लील भाषण कर उसे व्यभिचारिणी ठहराना चाहता है। सौन्दर्य की और रस की प्रतिलिपि नायिका उसे स्वार्थी और कृतघ्न कहती है। "शकुन्तला" को जो कुछ 'शकुन्तला' बनाता है वह सब कालिदास का है। अरण्य में मिलन, एकान्त में पवित्र प्रणय, दुर्वासा का शाप, कण्व का कन्या का घर भेजना, दैवी कला से वियोगियों का मेल, जो कुछ "शाकुन्तल" की जान है वह कालिदास का है। अत एव शाकुन्तल कोहनूर के आगे हम उस निर्जीव आख्यान को कंकड़ और खसड़ा कूतें न तो क्या करें ? जगत्पावन रामचरित्र को **वाल्मीकि, कालिदास** और **भवभूति** ने गाया है। यों तो चाहे तुलसीदासजी की तरह ये भी कहें कि पावन कथा को कहकर हमने अपनी जिह्वा और लेखनी पवित्र की, किन्तु हमारी बुद्धि में रामचरित्र का भी सौभाग्य है कि वह इनके हाथ पड़ा। वाल्मीकि के मनुष्यदेव रामचन्द्र से कालिदास और भवभूति के मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र कितने उदात्तचरित्रवाले हैं यह तो वारान्तर में समालोच्य है, तथापि इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि जो रामचरित्र भवभूति की सुधावाहिनी लेखिनी से यह कहलाता है कि—

पाप्मभ्यश्च पुनातु वर्धयतु च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतां मातेव गङ्गेव च ।

उसी का "अद्वैतं सुखदुःखयोः" 'सुमानुष' आदर्श दाम्पत्य बौद्ध जातक ग्रन्थों के हाथ में पड़कर भ्राता-भगिनी के कलुषित विवाह में परिणत हो जाता है, और **वेवर, लासन, दत्त** प्रभृति के श्री करकमलों में पड़, अपना ऐतिहासिक रूप खोकर किसान और खेती के रूपक की कीर्त्ति पाता है॥ कुछ चिन्ता नहीं, हम एक प्राचीन कवि के श्लोक के अनुसार रामचरित्र को सम्बोधन कर के यही

कहेंगे कि-" हे रत्न ! वानर ने तुम्हें सूंघा, चूमा, चाटा, चाबा, और उदास मन से फेंक दिया तो इससे खेद न मानो । तुम्हारा कल्याण यही हुआ कि अन्तःसार के खोजी वानर महाराज ने तुम्हें पत्थर से चूर्ण न कर डाला ।"

एक बात और है । गङ्गोत्री में जो क्षुद्र जल की रेखा है, वह क्या पुण्यतोया भगवती भागीरथी का मूल कहलाने योग्य है ? बेलीफरिष्ट में जो भद्दा उपाख्यान है वह क्या जगन्मङ्गल "हेम-लेट" का पिता कहलावेगा ? "मूलकथा" का नाम सुनकर पाठक बड़ी आशाएं न बांधें । जो कुछ कालिदास का कालिदासत्व है, जो कुछ कालिदास को कालिदास और उसके नाटक को उसका नाटक बनाकर अनन्वयालङ्कार और 'अनामिका' नाम को सार्थक करता है, उस चीज़ को तुम कहीं न पाओगे । कहते हैं कि शेक्सपीयर ने हेमलेट की कथा अमुक जगह पाई, लीयर का वृत्तान्त फलाने ग्रन्थ में पाया, किन्तु वास्तव में विचारो तो यही कि उसने क्या पाया और क्या लिया ? हेमलेट का ज्ञानगर्भ पागलपन और लीयर का परिणामानुकूल पागलपन उसे कहां मिला था ? जिन क्षुद्र ग्रन्थों को इन मनुष्य जाति के चित्रों का 'सोता' कहा जाता है उन्हें पढ़कर फर्नेस ने कितना अच्छा लिखा है रात्रि को खद्योतों को, और दूसरे बीरबहूटियों को देखकर यही ध्यान होता है कि ये अमूल्य रत्न राजकुमारों के खिलौने हैं जिन्हें वे खेलते समय छोड़ गए हैं । किन्तु दिन में और पास जाकर वे ऐसे गर्हित और घृणा के पात्र कीड़े मालूम देते हैं कि दया के मारे पैर उन्हें कुचलना भी नहीं चाहता ।

जो हो विक्रमोर्वशी नाटक की आख्यायिका जहां जहां

(क्रमशः)

जैसी जैसी है, उसे ग्रह्य वैसी ही उद्धृत करके, इस "मूलभित्ति" पर कालिदास ने क्या कारचोबी की, यह दिखलाने का यत्न किया जायगा।

(क) वैदिक।

१. ऋग्वेद, दशम मण्डल, सूक्त ९५।

(अ) सायण भाष्यानुसार अनुवाद*।

* भगवान् वेदपुरुष के चरण कमलों का ध्यान और सहारा लेकर कठिन मन्त्रों पर कुछ लिखने का साहस किया जाता है। ॐ।

वेद भाष्यकर्त्ताओं में सदा से दो पक्ष चले आते हैं। ऐतिहासिक और नैरुक्त। ऐतिहासिक वेद में लिखे संज्ञा शब्दों को मनुष्यनाम या देवनाम मानते हैं और नैरुक्त उन्हें एक ही देवता के गुण विशेष से कल्पित रूपकमात्र मानते हैं। जैसे इन्द्र वृत्र के संग्राम को नैरुक्त लोग 'वर्षणकर्म' मात्र ही कहते हैं, इन्द्र और वृत्र का स्वतन्त्र नरजीवन वा देव जीवन नहीं मानते। पुराणों की कथाएं इसकी विरुद्ध ऐतिहासिक परिपाटी से बढ़ी है। आज कल भी योरोपीय भाष्यकार वर्षणकर्म, उषा और सूर्य, मृगशिर और रोहिणी प्रभृति कई दृश्य पदार्थों पर श्रुतियों को घटाते हैं। मीमांसा में वेद को जो अपौरुषेय और नित्य सिद्ध किया गया है उसमें एक यह भी युक्ति है। बबर प्रावाहणि किसी राजा का नाम नहीं है किन्तु बहने वाले वायु का। देखा चाहिए, वर्त्तमान सूक्त पर दोनों सम्प्रदायों के क्या क्या मत हैं।

(क) ऋग्वेद में एक जगह वर्णन है कि वासतीवर सत्र में बुलाए मित्रा-वरुणों का वीर्य उर्वशी को देखकर कलश में गिरा उससे वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई। "सत्रेह जाता विषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्। ७। ३३। १३" यह रूपक मात्र है। दिन रात्रि का उषा को देखते ही सूर्य को उत्पन्न करना अथवा बिजली के आते ही वायु से जल बरसाना, मात्र है। पौराणिकों के लिए कलशोद्भव मुनि और वसिष्ठ का जन्म है।

(ख) इस सूक्त में, मिलकर बिछुड़े हुए और फिर मिले दो प्रेमियों का संवाद पौराणिकों के लिए, और नैरुक्तों के लिए बिजली और वायु, की स्तुति है, अथवा उषा और सूर्य का संवाद है। निरुक्त में पुरूरवा की व्युत्पत्ति यों की है पुरु (भृश, बहुत) जो शब्द करे (रु)। मेघ जो कई तरह का शब्द करे। वात और वायु ही पुरूरवा है, यह विज्ञान है।

१ पुरूरवा[1]—हे घोर (दुःख देने वाली) पत्नी ! मन लगाकर ठहर। अभी संवाद के वाक्य करें। अपनी ये रहस्य बातें, नहीं कही जाने से, अनेक दिनों तक, अन्तिम दिन में भी, सुख नहीं देतीं।

२ उर्वशी—इस (कोरी) बात से क्या करें ? मैं तुम्हारे पास से चली गई हूं जैसे उषाओं में से पहली। पुरूरवा ! फिर अस्त (घर) को लौट जा, मैं वायु की तरह दुष्प्राप्य हूं।

उर्वशी उरु, बहुत स्थान को जो (अश्नोति) व्याप्त करे या वश करे अथवा जो उरु (जांघ) से सम्भोगकाल में कामी को वश कर ले। उरु (बड़ा) है काम जिसका। बहुतों में, या बहुतों का है काम जिसका।

१ ऋक्—स्त्री को देखकर पुरूरवा कहता है। 'घोर' इस लिए कि वियोग में दुःख दिया। हमारे दिल के उद्गार नहीं निकलने से इकट्ठे होकर कई दिन बीतने पर भी सुख नहीं देते, यह तात्पर्य है। अतः अब उफान निकाल लें। "पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे तु हृदयं प्रलापैरेव धार्यते (उत्तरचरित)" न कहने से कोई लाभ नहीं, कहलेना ही अच्छा है।

२. उर्वशी का उत्तर—'इस वाणी से' अर्थात् अब फिर मिलना हो नहीं सकता, खाली वाचिक सहानुभूति क्यों ? "उषाओं में से अगली" ऋग्वेद में कई जगह उषा और उर्वशी को समानार्थ सा प्रयोग किया है, यह नैरुक्तों के हाथ में अच्छा शस्त्र है। "उषाओं में से पहली" का तात्पर्य उस क्षीण आभा से है जो कुछ अन्धकार हटते हटते ही हट जाती है, और जिसके पीछे कुछ गुलाबी, गहरा गुलाबी प्रकाश आता है। इस वाक्य से तिलक महाशय का सिद्धान्त भी पोषित होता है। उत्तर ध्रुव देशों में, सूर्य का उदयास्त नहीं होता, किन्तु, नियमित काल की रात्रि के पीछे नियमित उषाएं चारोंतरफ घूमती दिखाई देती हैं, फिर वह भी वैसे चलते हैं। सो उनमें अगली उषा अर्थात् महारात्रि के अव्यवहितोत्तर उषा का झपड़ा, जिसके पीछे कई उषाएं आती हैं। तैत्तिरीय संहिता में तीस उषाओं का हाल है, देखो इयमेवसा या प्रथमा व्यौच्छत् ...त्रिंशतस्वसार उपयन्ति निष्कृतिं समानं केतुं प्रतिमुञ्चमानाः (तै ५. ३. ४. ७)॥ अपनी बात पर उर्वशी दृढ है। अपनी दुष्प्राप्यता ही उसके वक्तव्य का तत्त्व है।

पुरूरवा—तरकस में से बाण जीत के लिये नहीं फेंका जाता। वेगवान् भी मैं (शत्रुओं की) गौओं का पानेवाला न हुआ, न सैंकड़ों (शत्रु धनों) का। वीरविहीन (राज) कर्म में (मेरी सामर्थ्य) नहीं चमकती। कँपाने वाले वीर विस्तीर्ण संग्राम में (सिंहनाद) शब्द को नहीं समझते।

उर्वशी—हे उषा! वह (उर्वशी) धन और अन्न श्वसुर को देती हुई यदि पति को चाहती तो पास के (रसोई) घर से (पति) के घर को पहुंच जाती। जिस घर में वह पति को चाहती थी और दिन रात पतिसम्भोगसुख पाती।

,, —हे पुरूरवा! तू मुझको दिन में तीन बार संतुष्ट करता, और बिना सौतों के (ओसरे से) मुझे पूर्ण करता। (यों) मैं तेरे घर गई (रही) थी। वीर! राजा तू मेरे शरीर का उन दिनों (सुख देने वाला) था।

पुरूरवा—अपनी विरह वेदना बताता है। राजा बाण नहीं छोड़ सकता, दौड़ में गायें और धन नहीं पाता, सारी वीरता भूल जाने से (अब) वीरविहीन कामों में बल नहीं चलता, और न सिंहनाद ही हो सकता है। इस ऋक् में उर्वशी अपने पुराने प्रेम और राजा के पुराने सुखों की याद से उस की ग्लानि को मिटाती है। मानो उसी आनन्द के स्मरण में अपने को तृतीय पुरुष में कहती है। उषा का सम्बोधन अपनी आत्मा को है, मालूम देता है। इतना प्रेम था कि श्वशुर की सेवा करते भी पति के पास दौड़ आती। अन्तिम चरण का अक्षरार्थ यह होगा "दिन रात पुरुष चिन्ह से ताड़ित होती" यह उर्वशी ने परोक्षवचन से कहा, अब— में फिर आत्मनिर्देश आगया। यहां प्रथमचरण का अक्षरार्थ होगा, "तीन बार पुं प्रजनन से दिन में ताड़न करता"। अव्यती=invariable। अब भी उन पुराने दिनों का स्मरण करलो, कातर क्यों होते हो? सपत्नियों का न होना, अहोरात्र विहार, देह का आधिपत्य, यही बहुत थे।

६ पुरूरवा—जो सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्नेआपि, ह्रदेचक्षु, (मानिनियां) थीं उनके साथ सन्दर्भवाली चलती फिरती उर्वशी (आई) (अथवा, सुजूर्णि (=वेगवती) उर्वशी, ग्रन्थिनी और श्रेणि, सुम्नेआपि, और ह्रदेचक्षु इन सखियों के साथ गई) वे गुलाबी गहनेवालियां (पहले की तरह) नहीं चलतीं। आश्रय के लिए बच्चेवाली गौओं की तरह शब्द नहीं करतीं।

७ उर्वशी—इस (पुरूरवा) के जायमान होते (अप्सराएं वा) देवपत्नियां इकट्ठी हुईं। और इसको स्वयं चलनेवाली नदियों ने भी बढ़ाया। हे पुरूरवा! बड़े लड़ाई के संग्राम के लिए दस्युओं को मारने के लिए देवताओं ने तुमको बढ़ाया।

---

६ पुरूरवा का अभिप्राय कदाचित् यह है कि खैर, तुम्हारे प्रेम को तो मैं स्मरण करता रहूंगा, किन्तु तुम्हारे साथ की देवपत्नियां अब मेरे पास नहीं हैं। उर्वशी उसे रोकती है और वारंवार उसके जन्म और वीरता की स्तुति करके उसे भुलावा देती है कि तुम ऐसे बड़े आदमी, इन नाचीजों का ख्याल छोड़ दो (ऋक् ७)

इस ऋक् में सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्नेआपि, ह्रदेचक्षु, ग्रन्थिनी, चरण्यु—इतने पद इकट्ठे हैं। ग्रफिथ ने सब को नाम मान लिया है। सुजूर्णि=वेगवती, ग्रन्थिनी=सन्दर्भवती, गठीली? चरण्यु=विचरनेवाली। इनमें से अन्तिम को तो उर्वशी का विशेषण माना है। बाकी में चार सखियों के नाम हैं। एक अर्थ में सुजूर्णि उर्वशी का विशेषण, एक अर्थ में सखी नाम। दूसरे में ग्रन्थिनी सखी नाम, एक में उर्वशी का विशेषण। ये सब मेरे आश्रय के लिए (जब तुम साथ थीं तब की तरह) नहीं चलतीं, नहीं उत्सुक होतीं। गौवें जैसे शरण आने को शब्द करती हैं वैसे (उत्सुकता से) ये नहीं करतीं। 'गुलाबी गहनेवाली' विशेषण फिर उषा का ही स्मरण कराता है।

७ आधे में परोक्षोक्ति, आधे में प्रत्यक्षोक्ति। पुरूरवा, उर्वशी और देवपत्नियां तीनों ही ऋग्वेद के अनुसार मध्यस्थान देवता हैं। इस मन्त्र में नैरुक्त और ऐतिहासिक दोनों पक्ष खूब साफ प्रकट होते हैं। नैरुक्त अर्थ यह है—जब पुरूरवा (बड़े शब्द के करने वाले वायु) के वृष्टिकर्म में अपने को लगाने पर

८ पुरूरवा -जब सहायभूत पुरूरवा अपने रूप को छोड़ती हुई अमानुषी
(अप्सराओं) में मानुष (होकर) सामने होता है, तो
वे मुझसे हटकर चलती हैं, जैसे तरसत् मृग की भोज्य
(स्त्री) और रथ में जुते हुए घोड़े ।

९ „ -जब अमर इनमें मर्त्य (मैं) बिलकुल स्पर्श करता हुआ

जल सब तरफ से आ जाता है, आ घेरता है । और शब्द करने वाली स्वयं चलनेवाली नदियां इसे बढाती हैं (यहां या तो लौकिक नदियां मानें, जो वात को प्रेरणा करती मानी गई हैं, या द्युलोक की "सप्तसिन्धु' जो वृष्टि की प्रेरणा करती हैं (देखो तिलक का आर्य ध्रुवनिवास पृ॰ २८८-२९३) हे पुरूरवा ! तुमको मेघ के साथ बड़े संग्राम के लिए और मेघ के बध के लिए देवता बढाते हैं" यों वायु के अर्थ में सब ठीक लगाकर निरुक्तकार यास्क कहते हैं "देवपत्न्यो वा" अर्थात् जल के स्थान में देवपत्नी अर्थ (ग्ना) शब्द का करने से ऐतिहासिक बन जाता है, वह यों है । सब देवपत्नियां इसके चौतरफ आजाती हैं और स्तुति करती हुई स्वयं चलनेवाली (स्वच्छन्द) उसे बढाती हैं । हे पुरूरवा ! असुरों से युद्ध और उनके मारने के लिए तुम्हें देवता आगे करते हैं ।

८. बाइबल में एक जगह लिखा है कि ईश्वर के पुत्रोंने (देवताओं ने) मनुष्यों की कन्याओं को सुन्दरी देखा और उनसे विवाह कर लिया। इसके विरुद्ध वृत्तान्त को अर्थात् देवकन्याओं से अमर्त्यो से मर्त्यों के विवाह को टेनीसनने inverted scripture औंधी बाइबल कहा है । जिस देश को जातीय संकीर्णता की जड़ कहा जाता है उस (भारतवर्ष) में यह उलटा वेद बड़ा पुराना है । इससे ही पुराणों में जहां तहां राजा का शत्रुविजय में देवताओं की सहायता को स्वर्ग जाना, वहां अप्सराओं से विवाह और देवांशसम्भूत राजाओं का जन्म पाया जाता है । अस्तु । राजा अपने वार्तालाप के पुराने सिलसिले में ही कहे जाता है-८,९ में सब देवपत्नियों से और १० में केवल उर्वशी से अभिप्राय है । "अपने रूप को छोड़ती हुई" मनुष्य सेवन से । "सामने होता है" वा होता था तब भी वह भागती थी । अर्थात् पुरूरवा विषयों से अब भी सन्तुष्ट नहीं हुआ है ।

९. 'आति' आधि मानस पीड़ा । जैसे मानस पीड़ा छिपी रहती है, प्रभाग

वाणी से और काम से संपर्क करता है, तब वे भ्रान्ति बन कर अपने रूप नहीं प्रकाश करतीं जैसे खेलते हुए ओठ चाटते हुए घोड़े ।

१० ,, जो बिजली की तरह गिरती हुई प्रकाशित होती है, अन्तरिक्षसम्बन्धी (अथवा) व्याप्त, चाहे हुए पदार्थों को वा जल को मेरे लिए सम्पादन करती हुई, तो कामों में लगा हुआ मनुष्यों के लिए हित अच्छे जन्मवाला, पुत्र उत्पन्न होता है उर्वशी दीर्घ आयु बढ़ाती है ।

नहीं होती, जैसे अड़ियल घोड़े अपना असली रूप (गति का) हांकनेवाले को नहीं बताते, वैसे वे भी पूरी तौर से प्रेम नहीं करतीं । पुरुरवा अब फिर उन सबको चाहता है ।

१०. इसमें फिर नैरुक्त और ऐतिहासिक की संसृष्टि का आनन्द लीजिए।

जब बिजली (मेघों से) झट गिरती हुई प्रकाश करती है प्यारे (काम्य) जलों को लेजाती हुई अर्थात् बरसाती हुई, तब अवश्य मनुष्यों का लाभदायी जल का प्रवाह अच्छी तरह से होता है (और उसके द्वारा अन्न उत्पन्न करा के) उर्वशी विद्युत् सब मनुष्यों को दीर्घ आयु देती है । ठीक है बिजली चमकने से वृष्टि अधिक होकर दीर्घ आयु होती ही है । निरुक्त कहता है "नाराशंस्यो वा" अर्थात् इसका मनुष्योपाख्यान भी अर्थ है । वह जैसे—जब बिजली की तरह झनक के आती हुई उर्वशी (रूप से) चमकी, और मेरे चाहे हुए स्वर्गीय (प्रेमादि) भावों को पूरी तरह निभाती हुई, (वह मेरी प्यारी रही और वह गर्भवती है इससे) मनुष्यों का हितकारी (राजा) अथवा मनुष्य का पुत्र, अच्छे (देवाप्सरा सम्बन्धी) जन्मवाला, पुत्र उत्पन्न होगा, उर्वशी (अपनी सम्हाल से) उसकी आयु दीर्घ करती है।

अमर्त्य उर्वशी मर्त्य पुरुरवा की भी अपने सम्बन्ध से, पुत्र के होने के कारण, दीर्घ आयु बढ़ाती है, उसे अमर करती है, क्योंकि तैत्तिरीय श्रुति है "हे मर्त्य ! यही तेरा अमृतपना है कि प्रजा में तूही जन्म लेता है ।" "प्रजामनु प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्" । इसमें पुरुरवा ने उसकी पूरी खुशामद की है और उसे पाने की आशा ही ने तीन ऋचाएं एक साथ कहला दीं हैं ।

११ उर्वशी-यो पृथ्वीपालन के लिए तू उत्पन्न हुआ है, मेरे (उदर में) तैने बल रक्खा है। जानती हुई मैंने तुझे सब दिनों में (जो कुछ करना था) सिखाया, मेरा वचन नहीं सुनते, क्यों तो नहीं निभानेवाला (प्रतिज्ञाओं का) बोलता है?

१२ पुरूरवा-कब पुत्र उत्पन्न होकर पिता को (मुझको) चाहेगा? कब (मुझको) जानकर, पाकर रोता हुआ अश्रु बहावेगा? कौन समान मन वाले पतिपत्नी को बिलगावेगा, अब जो (गर्भरूप) अग्नि श्वसुरों में दीप्त हो रहा है।

१३ उर्वशी-मैं तुझे उत्तर देती हूं (तेरा पुत्र) अश्रु बहावेगा, और सोची हुई कल्याण वस्तु के होने पर रोता चिल्लाता होगा। जो तेरा (अपत्य) हम में निहित

---

११ यों, मुझमें पुत्र उत्पन्न कर के। आत्मा वै जायते पुत्रः पुत्र आत्मा ही होता है यह श्रुति है। तू फिर उत्पन्न हुआ है। यों पुत्र के रूप में स्वयं उत्पन्न होने की बात कह उर्वशी राजा को अमरत्व का लोभ दे नश्वर विषय वासना से दूर करती है। यद्वि कहो तू मेरे पास रह जा, तो अब पुराने समयों (कौलों) की याद दिलाती है, अब प्रतिज्ञा का पालन करके विलाप क्यों करते हो? स्मरण रहे, कौल तीन थे।

१२ अब राजा पुत्र की ममता माता पर डाल उसे लपेटना चाहता है। बिना पिता के पास रहे बेटा उसे कैसे जानेगा? यदि तुम्हारे गर्भ न होता, तो भलेही पृथक् हो जाते, किन्तु जब श्वशुर कुल का (मेरा) अग्नि "दम्पत्योः स्नेहबन्धनं" विद्यमान है तो पृथक् क्यों? 'समान मन वाले' दोनों ही हैं, किन्तु इस ऋक् में कड़ाही करुण स्वर है।

१३. उर्वशी पुत्र को पिता के पास भेजने की प्रतिज्ञा करती है, किन्तु अबतक का उसका प्रेम का स्वर यहां बदल कर 'मूढ!' बन जाता है। मूढ़ यों कि प्रतिज्ञाएं तोड़ चुका है। सुख दुःख में पुत्र को पिता का साथ बताकर

है वह तुम्हारे पास भेजती हूं। तुम घर लौट जाओ, मूढ़! तुम मुझे नहीं पाते।

१४ **पुरूरवा**-अच्छी तरह (तुम्हारे साथ) खेलनेवाला आज पड़ जाओ; बिना रुका हुआ दूरसे दूर देश जानेको चला जावे; अथवा पृथ्वी की (वा मृत्युपापदेवता की) गोद में शयन करे, अथवा जंगली कुत्ते वेगवाले इसे खा जावें।

१५ **उर्वशी**-पुरूरवा! मत मरो, मत पड़ो, अशुभ वृक भी तुमको न खाएं। स्त्रियों की कोई मित्रता नहीं ही होती, ये (इनकी) मित्रताएं लक्खो के हृदयों की सी (विश्वस्तों की घातुक) होतीं हैं।

१६ ,, -जब अपना रूप छोड़ (अथवा तुम्हारे प्रेम से अनेक रूपों में) मनुष्यों में विचरी थी, (तो) चार शरद (ऋतु वा वर्ष?) रात्रि रही थी, तब थोड़ासा घी दिन में एक बार खाती थी उससे मै यो तृप्त रहती हूं।

उर्वशी मानो सम्बन्ध तोड़ देती है। पुरूरवा यहां कह सकता है "ते हृदयं नाविदाम"।

१४ वही देह जो तुम्हारी लीलाओं का पात्र था, आज भृगुपतन, महाप्रस्थान गमन, जीवित खनन और आत्मघात को दुहाई देता है। न मालूम क्यों अन्तिम आठ मन्त्रों का सायणभाष्य कुछ निर्जीव और शिथिल है।

१५ यहां उर्वशी अपना दोष समस्त स्त्रीजाति पर रख कर राजा से पृथक् होना चाहती है, यह अन्तिम दशा है। राजा को अबतक उर्वशी में पूर्ण प्रेम था। बारंबार उसका उल्लेख और उससे अतृप्त होने का निदर्शन है। किन्तु यहां उर्वशी ने दिल तोड़ दिया। इस मन्त्र के अन्तिम चरण का Sentiment भाव अच्छा नहीं है।

१६ पुरूरवा पहले वाक्य को सुनकर उदासीन हो गया हो, तथापि पुराने प्रेम के सम्बन्ध से उर्वशी को साथ रखना चाहे, या उर्वशी के जीवन निर्वाह के लिए उसे अपनी राजधानी में लेजाना चाहे, तो यह कथन। यह पता नहीं चलता कि चार वर्ष से अभिप्राय है, या चार शरत् से, या चार शरद् ऋतु की रात्रियों से।

१७ पुरू० (अपने तेज से) अन्तरिक्ष को भरनेवाली, रज (जल) को बनानेवाली उर्वशी को खूब बसानेवाला मैं वश में लाता हूं । अच्छे कामों का देने वाला (पुरूरवा) तुझे उपस्थित हो, मेरा हृदय तप्त होता है, (इससे) लौट चल ।

१८ उर्वशी-ऐल ! तुझे देवता कहते हैं कि तू मृत्यु का बन्धुआ है, जिस कारण तू यों है, प्रकर्ष से जायमान तू देवताओं का हवि से याग करता है स्वर्ग में भी तू प्रसन्न करता है (यज्ञ से सबको)

(ई) ग्रिफिथ का अनुवाद (मैक्समूलर और आफ्रेक्ट के आधार पर)

१ पु॰ हे मेरी पत्नी ! ठहर, ए भयङ्कर आत्मावाली स्त्री, और अपन कुछ देर तक साथ बिचार करें । हमारे इन विचारों के से विचार, पिछले दिनो में न कहे जाकर भी हमें कभी सुख नहीं लाए हैं ।

२ उ॰ मुझे तेरे इस कहने का अब क्या करना है ? मैं प्रातःकालों में से पहले की तरह तेरे पास से चली गई हूं । पुरूरवा, तू अपने घर को लौट जा, मैं वायु की तरह पकड़ने में कठिन हूं ।

३ पु॰ विजय के लिए तरकस से छोड़े तीर की तरह, या वेगवान् घोड़े की तरह, जो गौओं को (बाजी में) जीतता है, सैंकड़ों (रुपए) जीतता है, बिजली चमकती हुई दिखलाई दी, जैसे

---

१७ पुरूरवा की अन्तिम आपत्ति-"मेरा चित्त दुःखी है" इस का खयाल न कर, काल को भूल जा, तैने आकाश व्याप्त किया है. तू बिजली रूप से जल की भी स्रष्ट्री है, मैं भी प्रेमियों में सर्वश्रेष्ठ हूं. इससे लौट चल ।

१८ तुम मृत्यु के बन्धन में हो इससे यागादिक करके अमर हो जाओ, और मेरे समीक होकर सदा अपनी इच्छा पूरी करो । अथवा यहीं से इसी लोक में बैठकर तुम यज्ञो से सब देवों को तृप्त करते हो, तो यज्ञफल से हमारे साथ मोद करोगे । ऐसे यज्ञों के कर्त्ता तुम यज्ञपुरुष का आश्रय लो, मेरे मोद की क्या चिन्ता करते हो ?

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

कायरों ने खिंचाया था । भाड़ लोग दुःख में भेड़ की तरह चरडाए ।

४ उ० अपने पति के पिता को जीवन और धन देती हुई, पास के घर से, जब उसका पति उसे चाहता, वह उस घर में पहुंच जाती जहां वह अपना सुख पाती, दिन और रात अपने पति के आलिङ्गनों का स्वीकार करके ।

५ उ० तू दिन में तीन बार अपनी जाया का आलिङ्गन करता, यद्यपि वह तेरे प्यारों को रूखी तरह से स्वीकार करती । हे पुरूरवा, मैं तेरी इच्छाओं के वश थी, वीर ! यों तुम मेरे देह पर राजा थे ।

६ पु सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्नेआपि, चरण्यु, ग्रन्थिनि, और ह्रदेचक्षु-ये सब युवतियां लाल गौओं की तरह दौड़ गई हैं; प्रकाशमान और दूध देने वाली गौवों ने ब्रहस में राम्भा है ।

७ उ० जब यह उत्पन्न हुआ था तो बुढ़ियाएं साथ बैठी थीं, नदियों ने स्वतन्त्र दयालुता से उसे पोषण दिया, और तब, हे पुरूरवा ! देवताओं ने तुझे बड़ी लड़ाई में दस्युओं को नष्ट करने के लिए बढ़ाया ।

८ पु जब मैंने मर्त्य होकर, अपने आलिङ्गनों में कपड़े खोलने वाली इन दैवी देवियों को लपेटा, वे कातर हरिणियों की तरह मुझसे डरकर भागीं, गाड़ी के घोड़ों की तरह से जब गाड़ी उन्हें छू गई हो ।

९ पु० जब, इन अमरों को प्यार करता हुआ, मर्त्य इनकी आज्ञा से देवियों से संपर्क रखता है, हंसों की तरह वे अपने देह की सुन्दरता दिखाती हैं, मचलते हुए घोड़ों की तरह काटती और कुतरती हैं ।

१० पु० वह, जो गिरती बिजली की तरह प्रकाशमान चमकी थी, मेरे लिए जलों में से बढ़ियां भेंटें लाई। अब उस तूफान से वीर युवा उत्पन्न हो! उर्वशी अपनी आयु सदा बढ़ावे।

११ उ० तेरे जन्म ने मुझे पृथ्वी की दुधार गायों से दूध पिलाया है, पुरूरवा! यह शक्ति तैंने मुझको दी है। मैं जानती थी और तुझे उसी दिन चेताया था। तू मुझे नहीं सुनना चाहता था। अब तू क्या कहता है, जब कोई बात तुझे लाभदायक नहीं?

१२ पु० पुत्र कब पैदा होगा और पिता को खोजेगा? विलापी की तरह उसे पहले पहल जानते ही क्या वह रोवेगा? दिल की लगन वाले पति पत्नी को कौन पृथक् करेगा, जब अग्नि तेरे पति के माता पिता के पास जल रही है?

१३ उ० मैं उसे ढाढस दूंगी जब उसके आंसू गिरते होंगे; उस सम्हाल के लिए जो सुख देती है वह नहीं रोवे चिल्लावेगा। हम दोनो में जो कुछ तेरा है वह मैं तुझे भेज दूंगी। मूर्ख! घर को लौट जा, तैंने मुझ को नहीं पाया।

१४ पु० तेरा प्रेमी आज के दिन सदा के लिए भाग जायगा, न लौट कर सब से दूरकी दूरी खोजने को। तो उसका बिछौना नाश की छाती में होने दो और भयङ्कर निर्दय भेड़िए उसे खा जांय।

१५ उ० नहीं पुरूरवा, मत मरो, मत नष्ट हो। कुशकुन के भेड़िए भी तुझे न खाएं। स्त्रियों के साथ स्थायी मित्रता नहीं हो सकती, जरखों के हृदय हैं स्त्रियों के हृदय।

१६ उ० जब बदली हुई सूरत में मनुष्यों में मैं रही, और चार पतझड़ तक उनमें मैंने रातें बिताईं, मैं दिन में एक बेर घृत का एक बिन्दु चखती थी, और अब भी मैं उससे ही सन्तुष्ट हूं।

१७ पु. मैं, इसका सर्व प्रधान प्रेमी, जो हवा को भरती है और वेध भर को नापती है ऐसी उर्वशी को मुझ से मिलने को बुलाता हूं। पवित्रता से लाया दान (वर) तुझे पहुंचे। तू मेरे पास झट आ, मेरा हृदय दुःखित है।

१८ हे इला के पुत्र ! ये देवता तुझ से यों कहते हैं। मृत्यु ने सच्चे ही तुझको अपना विषय कर लिया है, तेरे पुत्र अपनी भेट से देवताओं की सेवा करेंगे, और तू भी स्वर्ग में सुख पावेगा।

(ङ) बड़े खेद का विषय है कि स्वामी दयानन्दजी का ऋग्वेदभाष्य यहां तक पहुंच ही न पाया, नहीं तो "नैरुक्त" शैली का एक और अर्थ यहां उद्धृत किया जा सकता।

२ सर्वानुक्रम, सायणभाष्य में उद्धृत—

"· 'हये'। दो कम (बीस) उर्वशी को इला के बेटे पुरूरवा ने पहले की कामना से फिर पाकर पकड़ना चाहा, वह उसे न चाहती हुई उसकी बात मोड़ने लगी·"

३ बृहद्देवता ७, १४०–१४७ (डा. मित्र के संस्करण से)

पूर्वकाल मे अप्सरा उर्वशी राजा पुरूरवा के पास संवित् करके रही और उसने राजा के साथ धर्माचरण किया। इन्द्र ने उन दोनों के सहवास की और ब्रह्मा का पुरूरवा पर जो इन्द्र के समान प्रेम था उसकी ईर्ष्या करके उन दोनो के वियोग के लिए पास खड़े वज्र को कहा—"हे वज्र ! तू यदि मेरा प्रिय चाहता है तो इन दोनों की प्रीति तोड़ दे। "ठीक है" कह कर माया से वज्र ने उनकी प्रीति तोड़ दी। तब उस (उर्वशी) के बिना राजा पागलों की तरह फिरने लगा। घूमते घूमते सरोवर में उसने सुन्दरी उर्वशी को पांच सुन्दरी अप्सराओं से घिरी हुई देखा। उसके

कहा कि "आजा" किन्तु उसने राजा से कहा "नहीं"। राजा ने उसे प्रेम से बुलाया, किन्तु उसने राजा को दुःख से कहा "मैं आपको आज यहां दुष्प्राप्य हूं, स्वर्ग में मुझे फिर पाओगे। यह (सूक्त) उनका आपस में आह्वान और आख्यान है। इसे यास्क (कल्पित) संवाद मानते हैं, और शौनक इतिहास। 'हये' इति…

४ उसी में आर्षानुक्रमणी में उर्वशी और पुरूरवा ऐल को इस सूक्त के भिन्न भिन्न मन्त्रों का ऋषि लिखा है। जिस मन्त्र का जो अर्थ (जिसके प्रति) लगता हो, वही उस मन्त्र का देवता है, अर्थात् उसके प्रति वह मन्त्र कहा गया है ऐसा सायण भाष्योद्धृत अनुक्रमणिका में लिखा है।

५ सायणभाष्य में सूक्तस्थल में कुछ श्लोक "बृहद्देवता" से उद्धृत किए हैं। वही एशियाटिक सोसायटी के निरुक्तसंस्करण में, और मैक्समूलर की भाष्य भूमिका में उद्धृत है, किन्तु डा॰ राजेन्द्र लाल मित्र की बृहद्देवता में इनका पता नहीं। षड्गुरुशिष्य ने सर्वानुक्रमणी पर जो वेदार्थदीपिका टीका बनाई है, उसमें भी वही श्लोक, कुछ पाठभेद से, मिलते हैं। यद्यपि ये "वैदिक" नहीं कहला सकते, तथापि उनका अनुवाद, हम यहीं दे देते हैं—

ऐल और उर्वशी का इतिहास यहां स्पष्टता के लिए वर्णन किया जाता है। मित्र और वरुण दोनों दीक्षित थे, उर्वशी को देख चलचित्त हो, घड़े में शुक्र रखकर उनने उसे शाप दिया कि तुम पृथ्वी में मनुष्यभोग्या हो जाओ। इसी काल में इल राजा, मनुपुत्रों के साथ, शिकार खेलता हुआ देवी की गोद (? हिमालय) में घुसा जहां गिरिजा भगवान् शङ्कर को सब प्रकार से सन्तुष्ट कर रही थी। "यहां घुसनेवाला पुरुष स्त्री हो जायगा" यह कह (पार्वती) वहां घुसी थी, अतएव स्त्री होकर लज्जित होकर वह झटपट शिव के बाहर गया।

"राजन्! तुम इसे प्रसन्न करो" शिवजी के यह कहने पर अपने पुरुषत्व की सिद्धि के लिए देवी के शरण गया। देवी ने भी छे महीने में उसे पुरुषत्व-प्राप्त कर दिया। कभी स्त्रीकाल (वसन्तऋतु ?) में सौन्दर्य से मोहित होकर बुध ने अप्सराओं से भी विशिष्ट उस राजस्त्री (अर्थात् स्त्रीभूत राजा इल) की कामना की। इला में सोमपुत्र से राजा पुरूरवा उत्पन्न हुआ। प्रतिष्ठानपुर (पैठान) में उसकी उर्वशी ने कामना की "बिछौने के सिवाय कहीं तुम्हें नङ्गा देखकर मै जैसे आई वैसे चली जाऊंगी। दो भेड़े, पुत्र यहां मेरे पास हूठ कर दो" यह समय करके उसने राजा को प्रसन्न किया। चार वर्ष बीतने पर देवताओं ने दोनो भेड़े चुराए, उसका ध्वनि सुनकर वह भूपति नङ्गा ही उठकर "जीतकर आऊंगा" यों बोला। बिछौने से अलग ही बिजली ने इस (उर्वशी) को नङ्गा ही दिखा दिया। प्रतिज्ञा नष्ट होने से उर्वशी तो स्वर्ग को चली गई। तब उसे देखने की इच्छा रखता हुआ राजा पुरूरवा ने पागल की तरह इधर उधर उसे खोजता हुआ मानस सरोवर के तीर मे अप्सराओं के साथ विचरती हुई उसे देखा। पहले की तरह उससे भोग की राजा ने इच्छा की, किन्तु उसने अपने शाप के मुक्त हो जाने से अश्रुपूर्वक उसे "चला जा" कह कर प्रत्याख्यान किया।

६ **यास्क ने निरुक्त में** इस विषय में जो कुछ लिखा है वह हम ऋग्वेद के अंश की टिप्पणी में कह चुके हैं।

७ **शतपथ ब्राह्मण ५, १–२**

उर्वशी अप्सरा ने इडा के पुत्र पुरूरवा की कामना की। उसे स्वीकार करते समय कहा। तीन बार ही मुझको अहोरात्र में वेतस दण्ड से ताडन करना। अनिच्छा वाली मुझसे न मिलना मैं तुझको नङ्गा न देखूं। यह स्त्रियों का उपचार नहीं है। वह इसके साथ जुडकर रही। और इससे गर्भिणी भी हुई। तब तक सुख से

इसके साथ रही । तब गन्धर्व इकट्ठे हुए । "क्या ठीक है कि सुख से उर्वशी मनुष्यों में रही ? उपाय करो जिससे वह फिर आ जाय ।" उसके प्रकट दो भेड़े बिछौने में बन्धे थे। तब गन्धर्वों ने एक भेड़े को दबाया । वह बोली । जहां कोई वीर न हो, जहां कोई जन न हो वहां की तरह मेरे पुत्र को हरते हैं । दूसरे को दबाया । वह वैसे ही बोली । अब इसने (पुरूरवा ने) बिचारा । कैसे वहां वीर नहीं, कैसे वहां जन नहीं जहां मैं हूं ? वह नङ्गा ही कूद पड़ा । देरी इसको माना कि कपड़ा पहनता । तब गन्धर्वों ने बिजली को पैदा किया । उसको जैसे दिन में (वैसे साफ) नग्न देखा (उर्वशी ने) तभी यह तिरोभूत होगई । 'फिर आऊंगी' यों गई । छिपी हुई का ध्यान कर बकता हुआ कुरुक्षेत्र के पास फिरनेलगा । वहां आधि से पूर्णों वाली और कमलोंवाली (वापी) के पास चला गया । इसमें चलती फिरती अप्सराएं हुवक्रिया ले रहीं थीं । उसे यह (उर्वशी) जानकर बोली । यह वह मनुष्य है जिसके पास में रही थी । वे बोलीं । उसपर हम प्रकट हों । ठीक है । (सब) उसके (सामने) प्रकट हुईं । यह उसे जानकर बकने लगा । "हे पत्नि ! मनसे ठहर भयङ्करे! वचन मिले हुए करें तो । नहीं हमारे मन्त्र विना कहे ये सुख करते हैं परतर दिनों मे" । ठहर तो जा, बातें तो करें यों यह उसको बोला । उसको इसने उत्तर दिया "क्या ऐसी बातें करूं तुमारी मैं चली गई हूं उषाओं की पहली की तरह । पुरूरवः फिर घर को चला जा दुष्प्राप्य हवा की तरह मैं हूं" । नहीं तै ने वह क्रिया जो मैं ने कहा था । दुष्प्राप्य मैं तुझे अब हूं । फिर घरों को जा यह इसको बोली । तब यह खिन्न होकर बोला । "अच्छा देव आज गिरेगा बिना सम्हाला परम न लौटनेवाली दूरी को जाने को। और सोएगा निर्ऋति की गोद में, और निर्दय वृक इसे खाएंगे" । सुदेव जो यातो मरेगा

था गिर जायगा जिससे इसे वृक कुत्ते था खायें यह वह इसे बोला। उसको दूसरी बोली। "पुरूरवा मत मर, मत गिर मत तुझको भेड़िये अमङ्गल नाश करें। नहीं स्त्रियों की मित्रता है सालावृको के हृदय हैं इनके"। मत इसका आदर कर। नहीं स्त्रियों का मित्रता है। फिर एहों को जा यह उसको बोली। "जो रूप बदलकर विचरी मर्त्यों में शरद की रात्रि चार। घी थोड़ासा एकवार दिन में खाया उससे ही मैं तृप्त फिरती हूं"। सो यह उक्तप्रत्युक्त (सवाल जवाब) पन्द्रह ऋचा का बहुच कहते हैं। उसको हृदय अर्पण किया। वह बोली। वर्षभर (पीछे) की रात्रि को आना। तब मेरे एक रात्रि पास सोएगा। उत्पन्न भी तब यह तेरा पुत्र हो जायगा। वह वर्ष भर पीछे की रात्रि को सुवर्ण निर्मित (गन्धर्वलोकों में ?) आया। तब इसको एक बोले इसको लेले। तब इसको वह लादी। वह बोली। गन्धर्व तुझको प्रातःकाल वर देंगे, उनसे वर ले। उसे मेरे लिए तूही वर ले। तुममें से ही एक हो जाऊं यह कहना। उसको सबेरे गन्धर्वों ने वर दिया। वह बोला। तुममें से ही एक हो जाऊं। वे बोले। मनुष्यों में अग्नि की वह यज्ञिय तनू नहीं है जिससे यज्ञ करके हममें एक हो जावे। उसे स्थाली में रख अग्नि दिया। इससे याग करके हममें एक हो जायगा। उस (अग्नि) को और कुमार को लेकर चला आया। वह अरण्य में ही अग्नि को रख कुमार के साथ ही ग्राम को गया। फिर आऊंगा यों आया तो गुप्त। जो अग्नि था उसे अश्वत्थ और जो स्थाली थी उसे शमी (पाया)। वह फिर गन्धर्वों के (पास) गया। वे बोले। संवत्सर भर चार के खाने लायक ओदन बना। वह इसी अश्वत्थ की तीन तीन समिधें घी से आंज कर समित्वाली घीवाली ऋचा से आधान करे। उससे जो अग्नि होगा, वही वह होगा। वे बोले। यह सब तो परोक्ष ही है। अश्वत्थ की ही उत्तर अरणि बना।

शमीमयो अधर अरणि (नीचे की) बना। वह जो उससे अग्नि उत्पन्न होगा, वह। वह होगा। उसने अश्वत्थ की ही ऊपर की अरणि बनाई। अश्वत्थ की ही नीचे की। उससे जो वह अग्नि हुआ वह वही हुआ। उससे याग करके गन्धर्वों में से एक हो गया। इससे अश्वत्थ की ही उत्तरारणि करे, अश्वत्थ की ही अधरारणि। वह उस से जो अग्नि होता है वह वही होता है। उस से याग कर के गन्धर्वों में से एक हो जाता है॥

८ मैक्समूलर, चिप्स फ्राम दी जर्मन वर्कशाप, जिल्द ४ पृष्ठ १०७ प्रभृति – – –

वेद की कथाओं मे से एक जो उषा और सूर्य के इस परस्पर सम्बन्ध का, अमर्त्य और मर्त्य के इस प्रेम का, प्रातः काल की उषा और सायंकाल की उषा की एकता का, निरूपण करती है, उर्वशी और पुरूरवा की कथा है। उर्वशी और पुरूरवा ये दो नाम हिन्दू के लिये केवल नाममात्र ही हैं, और वेद में भी उनका असली अर्थ प्रायः पूरी तरह से उड़ गया है। ऋग्वेद में उर्वशी और पुरूरवा का एक संवाद है जिसमें दोनो वैसेही पुरुषायित (Personified) रूपक में है जैसे कालिदास के नाटक में। इसलिए पहली बात जो हमें सिद्ध करनी है यह है कि उर्वशी वास्तव में एक विशेषण था और उसका अर्थ उषा था।

उर्वशी का शब्दविज्ञान कठिन है। यह 'उर्व' शब्द से 'श' प्रत्यय लगा कर तो बनाया नहीं जा सकता, क्योंकि 'उर्व' कोई शब्द ही नहीं, और रोमश, युवश, प्रभृति शब्दों में अन्तोदात्त होता है। इससे मैं साधारण भारतवासियों का अर्थ मानता हूं। जिसके अनुसार यह नाम उरु (विस्तीर्ण) शब्द से, औ अश (व्याप्त होना) धातु से बना मानना पड़ता है। यों उर्व-अशी उषा के दूसरे प्रसिद्ध विशेषण 'उरूची' उरु-अच, दूरव्यापी के स्त्रीलिङ्ग रूप से तुल-

नीय होता है । यह वास्तव में बहुत ध्यान देने योग्य लक्षण है, और आकाश के और सब वासियों से उषा का भेदक है कि वह आकाश का बड़ा विस्तार रोकती है, और उसके घोड़े मानो विद्या की सी शीघ्रता से सम्पूर्ण क्षितिज पर दौड़ जाते हैं इससे हम पाते हैं कि 'उरु' से आरम्भ होने वाले नाम प्रायः उषा के ही पौराणिक नाम हैं। वेद में उषा का नाम कदाचित् ही यों लिया जाता हो जब कि उसकी दूर दूर तक व्याप्त शोभा का उल्लेख न किया हो, जैसे उर्विया विभाति, दूरतक चमकती है, उर्विया विचक्षे, दूर देखती हुई; वरीयसी, सब से चौड़ी, इसके विरुद्ध सूर्य का प्रकाश दूर फैला हुआ नहीं वर्णित किया जाता है, किन्तु दूर दौड़ता हुआ ।

किन्तु केवल उर्वशी के नामों के सिवाय ऐसे और भी चिह्न हैं जो हमसे कल्पना कराते है कि वह वास्तव में उषा की देवी थी । वसिष्ठ, यद्यपि वेद का अन्यतम प्रधान कवि कहकर प्रसिद्ध है, तथापि वसु (प्रकाशमान) का प्रधानतम द्योतक है, और यों सूर्य का भी एक नाम है । इससे यह हुआ कि जो पद केवल सूर्य ही पर घटते हैं वही पद इस प्राचीन कवि पर आरोपित कर दिए गए । वह मित्र और वरुण (रात्रि और दिन) का पुत्र कहा जाता है और यह पद सूर्यार्थक वसिष्ठ ही पर कुछ अर्थ रखता है, और इसलिए कि कई बार सूर्य को उषा का पुत्र कहा गया है, वसिष्ठ ऋषि भी उर्वशी से उत्पन्न कहा गया (ऋ ७. ३३. ११) उसके जन्म की विशेषता ही सियड् कीवर्णित अफ्रोडाइट की कथा का शीघ्र ही स्मरण दिला देती है ।

और भी ऋग्वेद में जिन थोड़ी सी ऋचाओं में उर्वशी का नाम आता है, उसे वही गुण और वही काम लगाए जाते हैं जो साधारणतः उषा के हैं ।

यह उषा के लिये वारंवार कहा गया है कि वह मनुष्य की आयु बढ़ाती है, और वही उर्वशी के विषय में वर्णित है (५. ४. १९ १०. ९५. १०)। एक ऋक् में (४. २. १८) उषसः की तरह उर्वशी शब्द ही बहुवचन में कहा गया है, इसी अर्थ में कि बहुत सी उषा वा बहुत से दिन मनुष्यों की आयु बढ़ावें। यह सिद्ध करता है कि इस शब्द (उर्वशी) का विशेषणार्थ अभी पूरी तरह से नहीं भूला गया था। वह अन्तरिक्षप्रा, आकाश को भरती हुई कही जाती है (यह उपमा सूर्य की है) बृहद्दिवा, बड़े प्रकाश वाली भी वर्णित है, ये सब उषा की प्रकाशमान उपस्थिति के सूचक हैं। उर्वशी उषा ही है इसका सब से अच्छा प्रमाण उसके और उसके पुरू-रवा के लिए प्रेम की जो कथा कही जाती है, वही है। यह कथा उषा और सूर्य की ही सच्ची हो सकती है। सूर्य वीर के लिए पुरू-रवा उपयुक्त नाम है इस बात के प्रमाण की बहुत कम जरूरत है। पुरूरवा का अर्थ है, बहुत प्रकाश से युक्त, क्योंकि यद्यपि 'रव' शब्द के अर्थ में आता है तथापि 'रु' धातु जिसका वास्तव अर्थ चिल्लाना है बड़े प्रकाशमान अर्थात् रेड लाल रङ्ग के अर्थ में भी लगाया जाता है (तुलना करो, रवर, रुफस, रौह, रोट, रुधिर, रवि=सूर्य)। पुरूरवा अपने को वसिष्ठ कहता है, जो कि हम जानते हैं सूर्य का नाम है और यदि वह इडा का पुत्र ऐड है तो वही नाम और जगह अग्नि को दिया गया है। ऋग्वेद के अन्तिम पुस्तक में इन दैव प्रेमियों में एक सम्वाद पाते हैं। इन पद्यों में से एक में उर्वशी कहती है "मैं सदा के लिए गई हूं, जैसे उषाओं की पहली"। यह कवि के मन में प्राचीन कथा का विलक्षण चमकना दिखाता है और मेमन की माता अपने पुत्र की लाश पर जो आंसू बहाती थी, और जिन्हें पिछले कवि प्रातःकाल की ओस कहते थे, उनकी हमें

याद दिलाता है । और चौथी ऋक् में उर्वशी अपने को सम्बोधन करके कहती है "यह व्यक्ति (अर्थात् मैं) जब उसको ब्याही गई थी, हे उषा ! उसके घर में गई और दिन रात आलिङ्गित हुई ।" फिर भी वह पुरूरवा को कहती है कि देवताओं ने तुझे अन्धकार की शक्तियों को मारने के लिए (दस्युहत्याय) बनाया, ऐसी बात सदा इन्द्रादि व्यक्तियों ही के लिए कही जाती हैं। उर्वशी की सहेलियों के नाम भी उषा की ओर इशारा करते हैं ।

यह अवश्य हमको मानना होगा कि वेद में भी कवि लोग उर्वशी और पुरूरवा के वास्तव अर्थ के वैसे अनभिज्ञ थे जैसे होमर टिथोनोस इयोस नामों का । पुरावार्त्ता नङ्गे सूर्य का वृत्त कहती और सती उषा का पति को देखकर मुंह छिपाना वर्णन करती । तो भी वह कहती है कि मैं फिर आऊंगी । जब सूर्य अपनी प्रिया की खोज में जगत् भर के ऊपर घूम चुका, तब वह मृत्यु के दरवाजे आता है और अपने एकाकी जीवन को समाप्त करने को होता है, वह फिर दिखाई देती है, वैसी ही उषा (जैसे होमर में भी इओस दिन का आदि अन्त दोनो करती है) और वही उषा उसको अमरों के वासस्थान को ले जाती है । पुरूरवा उर्वशी की सब कहानियों की जड़ छोटे कहावती वाक्य थे, जो प्राचीन भाषाओं को बहुत प्यारे थे जैसे " उर्वशी पुरूरवा को प्यार करती थी "=सूर्य का उदय होता है "उर्वशी ने पुरूरवा को नङ्गा देखा "—उषा हो चुकी "उर्वशी को पुरूरवा फिर मिलगया"=सूर्य अस्त हो रहाहै ।

आगामि प्रस्ताव में इस कथा का पौराणिक रूप दिखाया जायगा ।

श्रीचन्द्रधर शर्मा ।

———

सदाचरण और उत्तम प्रकृति।

सृष्टि के आरंभ से आज तक जिस सदाचरण की प्रशंसा होती आई है, जिसके अनुयाइयों के नाम बातचीत में नित्य दो एक बार आते हैं, जिसके अतुल प्रभाव से भगवान को दौड़ दौड़ कर कई बेर इस पृथ्वी पर आना पड़ा है, वह सदाचरण क्या है? इस बात के जानने के हेतु यत्न करना हमारे समयसंयमी पाठकों को कदाचित न अखरेगा। एक ग्रन्थकार कहता है "अच्छा गणितज्ञ होना, अच्छा कवि होना सहज है किन्तु अच्छा मनुष्य होना बड़ा कठिन है"। कोई आवश्यक नहीं कि मनुष्य उत्तम कवि वा दार्शनिक हो पर यह उसका प्रधान कर्त्तव्य है कि वह सात्विकशील हो। उत्तम प्रकृति मनुष्य का भूषण है। अकेले एक इसी गुण की सम्पन्नता से मनुष्य सब धनियों से धनी, सब विद्वानों से विद्वान और सब भाग्यमानों से भाग्यमान है। संभव है कि यह कुटिल संसार उसका यथावत् आदर न करे, पर उसका सन्मान स्वयं उसकी आत्मा करेगी, जिसके बिना मनुष्य लक्षाधिप वा सर्वविद्याविशारद हो कर भी एक राह के भिखमंगे और गाँव के गँवार से भी हीन है।

एडिसन लिखता है "उत्तम प्रकृति की मनुष्यों को इतनी आवश्यकता देख पड़ी कि उन्हें सामाजिक व्यवहार में सुगमता लाने के लिए एक कृत्रिम उत्तम-प्रकृति का आविष्कार करना पड़ा जिसका उन्हों ने शिष्टाचार नाम रक्खा" इसी शिष्टाचार की बदौलत हमें ऐसे लोगों के श्रीमुख से भी 'आइए, आइए, बिराजिए, बिराजिए' इत्यादि कोमल वाक्य सुनने को मिलते हैं जिनकी आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि

'जाव जाव, उठो उठो'। इससे उस कलह और उपद्रव का बचाव होता है जिसमें हम तुरन्त तत्पर हो जाते यदि भाषा का प्रयोग भावों को छिपाने के बदले उन्हें प्रकाशित करने के अर्थ किया गया होता।

सब से पहिले तो हमें यह देखना है कि सदाचरण कहते किसको हैं। यदि हम उन समस्त कर्म्मों की सूची तैयार करने बैठें जो इस सदाचरण के नाम से पुकारे जाते हैं तो यह बात हमारी सामर्थ्य के बाहर ही नहीं वरन् हमारे अभिप्राय-साधन के लिए निष्प्रयोजनीय होगी। किसी * कर्म्म विशेष में कर्त्ता से पृथक कोई दोष वा गुण नहीं होता। इस कहने से कि अमुक कार्म्म अच्छा वा बुरा हुआ हमारा केवल यही तात्पर्य्य रहता है कि अमुक परिणाम को उपस्थित करने में कर्त्ता के चित्त का संस्कार अच्छा वा बुरा था।

यदि कोई पूछे कि एक कर्म्म करने से मनुष्य को क्यों यश और आदर मिलता है और दूसरे के करने से क्यों छिः छिः सुनना पड़ता है तो इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि एक कर्म्म को विचार करते समय श्रद्धा और आदर का उद्भूत न होना और दूसरे के द्वारा घृणा और क्रोध का जागृत न होना असंभव है; ठीक उसी प्रकार से जैसे जिह्वा पर रखने से संभव नहीं कि चीनी मीठी और इन्द्रायण कडुवा न लगे। अतः जिस प्रकार हमारी इन्द्रियों को कुछ पदार्थ रुचिकर और कुछ अरुचिकर प्रतीत होते हैं उसी प्रकार हमारी आत्मा को भी कुछ कर्म्मों के चिन्तन से सन्तुष्टता और कुछ के चिन्तन से घृणा और क्रोध प्राप्त होता है। हमारा सौन्दर्य्य का भाव केवल रंग और आकार का साक्षात मात्र नहीं है, वह भाव

* कर्म्म=भौतिक पदार्थों के बीच परिवर्त्तन उपस्थित करना। मनुष्य के कर्म्म में मानसिक संस्कार भी संयुक्त रहता है इसी उसके गुण और दोष का विचार होता है।

इन सब से उत्पन्न अवश्य है पर इनसे सर्वथा भिन्न है । इसी प्रकार हमारे आचरण की उत्कृष्टता विषयक विचार केवल क्रियाओं का साक्षात अथवा उपकार का पता लगना मात्र नहीं है—वह एक और ही वस्तु है । यदि कोई पूछे कि चीनी क्यों रुचिकर और सौन्दर्य्य क्यों आल्हाद-कारक होता है तो इसका क्या उत्तर है ? सदाचारी से भिन्न सदाचार और दुराचारी से भिन्न दुराचार केवल नाम मात्र है । कर्म्म कुछ नहीं केवल कर्त्ता ही का किसी अवस्था में किसी परिणाम का विचारना और उसको उत्पन्न करना है । किसी अंग विशेष का प्रकार विशेष से परिचालित करना और भौतिक पदार्थों के बीच परिवर्त्तन उपस्थित कर देना स्वयं कोई दोष वा गुण नहीं रखता । अतएव किसी कर्म्म के सत् और असत् का विचार करने के लिए हमें उसको तीन खंडों में विभाजित करना पड़ेगा ।

(१) अवस्था जिसमें कर्त्ता स्थित है
(२) कर्त्ता का मानसिक संस्कार और
(३) परिणाम अर्थात् भौतिक परिवर्त्तन

इन तीनों में से यदि दूसरा खंड निकाल लिया जाय तो कर्त्ता सब दोषों से मुक्त और सब गुणों से रहित हो जायगा । शेष दो का काम केवल मानसिक संस्कार के अनुसन्धान में सहायता पहुंचाना है । तात्पर्य्य यह कि किसी कर्म्म के भले वा बुरे होने का विचार चित्त ही की ओर देख कर किया जासकता है । जैसे जब हमें कोई किसी व्यक्ति की ओर यह कह कर दिखलावे कि 'इस ने एक मनुष्य का वध किया है,' तो हम तुरन्त उसको दुराचारी कह देंगे और उसके प्रति क्रोध और घृणा हमारे चित्त में जाग्रत हो जायगी । पर वही इङ्गितकर्त्ता यदि इतना और कहे कि 'वह मनुष्य जिसका वध हुआ एक लुटेरा था और मारनेवाले की ओर आक्रमण करने के लिए

झपटा था ' तब हम फिर चट उसके साहस और पराक्रम की सराहना करने लगेंगे । अथवा यदि कोई मनुष्य जान बूझ कर किसी वृद्ध मनुष्य को ऊँचे स्थान से धक्का देकर नीचे ढकेल दे तो वह तुरन्त मनुष्य-वध के घोर पातक का भागी हो जायगा; पर वही मनुष्य यदि मार्ग में चला जाता हो और अचक्के में उस वृद्ध से टकरा जाय और वह वृद्ध उसके धक्के से नीचे एक नदी में गिरकर प्राण त्याग कर दे तो हमें उस पर किसी प्रकार से दोषारोपण करने का अधिकार नहीं है । शारीरिक क्रिया तो दोनों में एक ही है—जिस प्रकार एक के लिए उसको अपना अंग हिलाना पड़ा उसी प्रकार दूसरे के लिए भी—पर दूसरे में उस मानसिक तत्त्व का अभाव रहा जिसके बिना किसी परिवर्त्तन को मानव कर्म्म की सज्ञा दी ही नहीं जा सकती । इस मानसिक तत्त्व को लैटिन भाषा में Mens Reá कहते हैं । इसके बिना क़ानून भी अपना प्रचंड दंड नहीं उठाता । सारांश यह कि गुण दोष के विचार के लिए यही मानसिक संस्कार ही मुख्य है, स्वयं कोई कर्म्म अर्थात् भौतिक परिवर्त्तन भला वा बुरा नहीं होता ।

बहुतों का मत है कि जिस कर्म्म से दूसरों का उपकार साधन हो जाय वही श्लाघनीय और उसका कर्त्ता लौकिक प्रशंसा का अधिकारी है । इसमें मानसिक संस्कार का कुछ विचार नहीं किया गया है । तब तो स्टीम इंजिन तथा और बहुत सी उपयोगी कलें वैसी ही श्रद्धा और प्रतिष्ठा के योग्य ठहरती हैं जैसे संसार के उपकारी महात्मागण । यह तो ठीक है कि संसार में जितने सत्कर्म्म हैं सब का अन्तिम परिणाम सृष्टि का उपकार ही है, पर यह कह देना कि किसी पिंड को प्रशंसा वा घृणा का पात्र बनने के लिए उसकी उपकारिणी वा अपकारिणी गति ही आवश्यक है भूल है, सम्भव है कि उसकी गति अचेतन अवस्था में, किसी दूसरे पिंड के द्वारा,

अथवा विपरीत परिणाम उपस्थित करने का प्रयत्न करते समय उत्पन्न हुई हो । इस अवस्था में उसको कुछ भी प्रशंसा नहीं दी जा सकती ।

इस बात को यहां पर स्वीकार करना पड़ता है कि संसार के सब प्राणी हर समय एक ही कार्य्य को विचार कर के एक ही भाव नहीं प्राप्त करते । अतएव इस सत् असद्विषयक भाव की व्याप्तकत्व-सम्बन्धी तीन सीमाएं स्थिर करनी पड़ती हैं—

(१) पहिले तो बहुत से अवसर ऐसे देखने में आते हैं जिनमें चित्त सत् असत् का विवेक नहीं कर सकता अर्थात् चित्त की उस क्रिया ही का ह्रास हो जाता है जो इस विभिन्नता की मूल है । ये अवसर वही हैं जब चित्त क्रोध शोक आदि मनोवेगों से विचलित हो जाता है । आत्मा इन अवसरों पर दूसरे प्रकार की प्रबल भावनाओं से परिपूर्ण रहती है इससे यह विवेकमयी भावना उभड़ने ही नहीं पाती । इससे किसी कर्म्म की इस भावना उत्पन्न करने की प्रवृत्ति में अन्तर नहीं पड़ा, क्योंकि उस समय न कि केवल यही सत् असत् का विवेक वरन् समस्त प्रकार के विवेक (वृद्धि से सम्बन्ध रखने वाले भी) नष्ट हो जाते हैं । उस समय रेखा-गणित के तत्त्व भी इसी प्रकार अधिकार रहित हो कर चित्त से दूर हटे रहते हैं । किन्तु यह बात मनोवेगों के अत्यंत भयानक अवस्था पर पहुंचने पर होती है, सामान्यतः तो यह होता है कि चित्त में इस सत् असत् के विभेद बने रहने पर भी मनुष्य उसके अनुसार कार्य्य करने की परवाह नहीं करता अर्थात् उसकी इन्द्रियां इन्हीं मनोवेगो के अटल आदेश पर परिचालित होती हैं ।

(२) दूसरी सीमा उन जटिल कर्म्मों पर जा ठहरती है जिनके परिणाम परस्पर विरोधी होते हैं अर्थात् उपकार और अपकार दोनों की ओर प्रवृत्त रहते हैं । कोई कर्म्म जो कि हमारी श्रद्धा वा घृणा

का विषय है वास्तव में अभिप्राय से युक्त कर्त्ता ही है। अतएव कोई तो उस कर्त्ता को भला और कोई बुरा कहते हैं। इस अन्तर पड़ने का यह कारण है कि कोई तो उस उपकार की ओर दृष्टि रखते हैं जो उस कर्म्म से निकलता है और अपकार की ओर; कोई तो यह निश्चय करते हैं कि कर्त्ता का चित्त भलाई की ओर प्रवृत्त था और कोई यह समझते हैं कि उसका मुख्य अभिप्राय अनिष्ट ही था। यह गड़बड़ केवल परिणामों की जटिलता सह-गमन के कारण होता है जिनकी ओर देखकर हम कर्त्ता का अभिप्राय निकालते हैं। यदि हमारे पास कर्त्ता की मानसिक वृत्ति जानने का कोई और अधिक उत्तम साधन होता तो यह गड़बड़ कदापि उपस्थित न होता। प्रगट है कि मानसिक संस्कार के अनुसन्धान का यह साधन कभी कभी धोखा भी दे जाता है। उदाहरणत: जैसे कोई मनुष्य किसी गहरी खाईं के एक किनारे पर खड़ा होकर किसी अशक्त मनुष्य का जो कि खाईं के दूसरे किनारे पर है हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचे और वह अशक्त व्यक्ति नीचे जा रहे तो निरीक्षक को कर्त्ता की मानसिक प्रवृत्ति का निर्णय केवल इस घटना ही की ओर देखकर करना बड़ा कठिन होगा। लोगों में जो थोड़ा बहुत मतभेद इस सत् असत् के निश्चय में पाया जाता है उसका कारण एक यह भी है। ऐसे जटिल कर्म्मों के विषय में जो हम पृथक पृथक सम्मति स्थिर करते हैं इसका कारण यह है कि हम कर्म्मों के मानसिक तत्त्वों का पूरा पूरा विचार नहीं कर सकते। अतः यह दोष कर्म्मों के यथावत् ज्ञान प्राप्त करने में है स्वयं कर्म्मों में नहीं। यदि मानसिक संस्कार की ओर हम देखने पावें तो हमें भले बुरे का निर्णय करते कुछ भी देर नहीं लगेगी। हमारी रसना, ज्योंही कोई पदार्थ उस पर रक्खा जाता है मीठे कड़ुए का निर्णय कर देती

है । छोटे से बच्चे के मुँह में भी यदि ऐसे पदार्थ रख दिए जाते हैं तो उसे भी उनसे आनन्द वा पीड़ा प्राप्त होती है । मीठे और कड़ुए का फ़रक़ बच्चे को भी उसी प्रकार प्रत्यक्ष रहता है जिस प्रकार एक सयाने व्यक्ति को । चीनी की ओर इच्छा और इन्द्रायन की ओर अनिच्छा प्रगट कराने के लिए कोई शिक्षा वा मारपीट नहीं दरकार होती ।

(३) इन दो सीमाओं के अतिरिक्त एक तीसरी सीमा भी बांधनी ज़रूरी है जो कि कर्म्मों के विषय हमारी सम्मति पर बड़ी शक्ति के साथ प्रभाव डालती है—यह **सम्बन्ध** वा **सहयोग** है । हमें यह न समझ लेना चाहिए कि कर्म्मों के विषय में भावना उत्पन्न होने की शक्ति हमें और दूसरी मानसिक क्रियाओं के प्रभाव से वञ्चित रखती है । सम्बन्ध वा सहयोग इस शक्ति को हत्या तो नहीं कर लेता पर उसे नवीन नवीन विषय प्रदान करता है अथवा किसी व्यक्ति के किसी कर्म्म विशेष पर विचार करते समय उस व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाली और और बातों को सामने लाकर खड़ा कर देता है जो कि उस कर्म्म विशेष के निरीक्षण द्वारा स्थिर किए हुए भाव को या तो तीव्र कर देती हैं अथवा हलका ।

इस सम्बन्ध का सब से प्रचुर विस्तार उस समय देखने में आता है जब हम किसी समुदाय सम्बन्धी भावना को तदन्तर्गत किसी कर्म्म विशेष में प्रयोग करते हैं वास्तव में तो प्रकृति में कोई समुदाय नहीं होते पर हम लोगों ने बहुत से पृथक पृथक कर्म्मों को किसी किसी अंश में समानता के विचार से एक श्रेणी के अन्तर्गत मान लिया है और उस समूह को व्यञ्जित करने के लिए एक पृथक नाम रख लिया है । न्याय अन्याय, दया, क्रूरता आदि ऐसे ही शब्द हैं । इन शब्दों के सुनते ही हमारी भावना केवल एक दो कर्म्म पर

नहीं स्थिर हो जाती वरन उन सब कर्म्मों का मिश्रित पञ्चामृत किया हुआ भाव चित्त में उद्भूत होता है जो उस समुदाय-सूचक शब्द के अन्तर्गत माने गए हैं। इससे किसी एक ही कर्म्म के विचार में बड़ी तीव्र भावना का उद्गार होता है। इतना भर हम सुनने पावें कि अमुक कार्य्य उस समुदाय के अन्तर्गत आता है जिसको 'अत्याचार' कहते हैं फिर चट न कि केवल अकेले उस कर्म्म ही के विषय में हमारे चित्त में उद्गार होता है वरन उन समस्त घोर अनर्थों और उपद्रवों से थोड़ा बहुत भाव ग्रहण करके, जिन पर इस अनावृत शब्द का अधिकार है चित्त उससे कहीं तीक्ष्ण और उद्विग्न भावना का अनुभव करता है जो केवल एक कर्म्म के चिन्तन से उसे प्राप्त होता।

ऊपर कहा जा चुका है कि इस सम्बन्ध वा सहयोग के प्रभाव से भावनाएँ तीव्र ही नहीं वरन् हलकी भी हो जाती हैं। किसी किसी समय उस निर्भयता और निर्दयता की बड़ी प्रशंसा होती है जो दूसरे अवसरों पर निन्दनीय कही जाती है। यह प्रायः तब होता है जब तन और धन की रक्षा बिना इस निर्भयता तथा निर्दयता का अवलम्बन किए नहीं हो सकती। ऐसी दशा में दया और भय को चित्त में स्थान देना भीरुता और निर्बलता समझी जाती है। उस समय प्राणियों का रुधिर-पात करते हुए भी सम्बन्ध के विचार से कर्त्ता का मन कलुषित नहीं वरन् उज्ज्वल रहता है। बहुत सी जंगली जातियां विदेशियों का वध करने के लिए सदैव सन्नद्ध रहती हैं। इससे यह न अनुमान करना चाहिए कि वे स्वयं इस कर्म्म को दूसरे को हानि पहुंचाने वाला जानकर ही अच्छा समझती हैं। वे यह कार्य्य या तो हानि की आशङ्का से अथवा अपने समाज की रक्षा का हेतु समझकर करती हैं। उनके बीच भी ऐसा कोई अधम

न होगा जो किसी व्यक्ति को कष्ट के साथ प्राण त्याग करते देख दो चार बूंद आँसू न गिरा दे। इसी सम्बन्ध ही के विचार से जिसे हम निकृष्ट कर्म्म कहते है उनके बीच निन्दनीय नहीं होता। इसी प्रकार जब कोई बुराई हम उन व्यक्तियों में देखते हैं जिन्हें हम प्यार करते हैं-जैसे पिता माता, स्त्री पुत्र इत्यादि-तो इसी सम्बन्ध का प्रभाव उनके प्रति हमारी आन्तरिक घृणा में कमी कर देता है। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि हम उन दुष्कर्म्मों को पसन्द करने लगते हैं जो उन लोगों में होते हैं जिनसे हम स्नेह रखते हैं। परन्तु यह सम्बन्ध या सहयोग उन कर्म्मों की ओर दृष्टिपात करते समय उन बातों को भी सम्मुख लाकर उपस्थित कर देता है जिनके हेतु हम उन्हें प्यार करते हैं। स्नेह जो स्वयं एक उत्कृष्ट भाव है हमारे चित्त में उन दुष्कर्म्मों से आविर्भूत घृणा को भली भाँति ठहरने नहीं देता। हम अपने उपकारी माता पिता से स्नेह करने में सदाचार का व्यवहार करते हैं इससे उनके कर्म्मों का आलोचना का भाव हमारे कृतज्ञता के भाव के आगे दब जाता है।

मेरी जान में यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि कर्म्मों के सत् असद्विषयक विवेक का प्रादुर्भाव हमारी आत्मा में अवश्य होता है। शंका की जा सकती है कि यदि इस प्रकार की भावना मनुष्य मात्र में स्वाभाविक है तो संसार में अनेक प्रकार के दुष्कर्म्म और अत्याचार क्यों होते हैं? मैं पहिले कह चुका हूं कि कुछ अवसर ऐसे हैं जिनमें ये भेद-सूचक भाव उदय नहीं होते अथवा उनके उदय होने पर भी मनुष्य दूसरे प्रबल मनोवेगों के हाथ में काठ का पुतला हो जाता है। उसकी इन्द्रियाँ इन्हीं क्रोध शोक और इच्छा आदि प्रबल मनोवेगों के आदेश पर परिचालित होती हैं। चोर जिस समय चोरी के लिए जाता है तो वह यह नहीं जानता कि हम कोई बड़ा पुण्य करने जाते हैं, वह इस बात को भली प्रकार जानता है कि उसके

चित्त की वृत्ति बुरी है; किन्तु वह अपनी प्रबल इच्छा को रोकने में असमर्थ रहता है । क्या एक हत्यारे को किसी निरपराधी के हृदय में छूरी धँसाते देखकर किसी को हँसी छुटेगी ? क्या ऐसा भी कोई नराधम इस भूमण्डल पर होगा जो अपने पिता माता का बध करके प्रसन्नता के साथ लोगों में अपने कर्म्म की घोषणा करता फिरे ? क्या एक पशु का रुधिर भी पृथ्वी पर गिरता हुआ देखकर किसी मनुष्य कहलाने वाले जीव के मुख से चत्कार न निकलेगा ?

बहुत से तत्त्वज्ञ इस सत् असत् के भेद को बिलकुल कल्पित और मनुष्यकृत बतलाते हैं । इस विलक्षण मत के सत्यापकों में से सब से साहसी और अग्रसर डाक्टर मैन्डेविल (Dr Mandeville हैं । इनके हाथ में पड कर इस सिद्धान्त ने अत्यंत ओजस्वी और प्रभावशाली रूप धारण किया है । इन महाशय के विचार में सदाचार आदि की प्रशंसा केवल राजनैतिक युक्ति है; और जिस सत्कर्म्म की प्रशंसा करना संसार स्वीकार करता है वह केवल कर्त्ता का ऊपरी दिखाव के लिए आडम्बर मात्र है । ये कहते हैं कि मनुष्य का जीवन परस्पर पाखंड ही में व्यतीत होता है; जिसमें कि छल से कुछ अपना वर्तमान सुख उस शाबासी की लालसा से परित्याग किया जाता है जिनको कि समाज, जो उस स्वार्थत्यागी व्यक्ति से भी बढ़कर धूर्त्त है, सदैव देने के लिए प्रस्तुत रहता है । किन्तु यह साधुवाद उस सुख-परित्याग के प्रतिकार में दिया जाता है जो उसके अर्थात् समाज के लाभ के हेतु किया जाता है । इनका कहना है कि मनुष्य भी स्वभावतः और जीवधारियों की तरह केवल अपनी ही तुष्टि चाहता है दूसरे के सुख वा दुख का कुछ विचार नहीं करता । अतएव सब से पहिला काम प्रत्येक देश के शास्त्रकारों को यह देख पड़ा की किसी न किसी प्रकार इनसे अपना अपना कुछ सुख

समाज की भलाई के लिए परित्याग करावें किन्तु यह बलिदान ऐसे जीवों से प्राप्त करना जो कि अपना ही सुख देखते थे बिना उस परित्यक्त सुख का पूरा बदला दिए हुए सम्भव नहीं था। परिवर्त्तन में इन्द्रियों के भोग की सामग्री तो कोई ऐसी मिली नहीं जो देकर सन्तुष्ट किया जाता इससे मनुष्य को एक दूसरी ही तृष्णा का सहारा लेना पड़ा। इस कार्य्य के हेतु मनुष्य की प्रशंसा के हेतु स्वाभाविक तृष्णा उपस्थित हुई। लोगों को फुसला कर यह विश्वास दिलाया गया कि स्वार्थ परित्याग के कारण उनकी गणना महात्माओं में की जायगी। लोग चट इस सौदे के लिए सन्नद्ध हो गए और अपने किसी आनन्द वा सुख को—जिसको वे कदापि परित्याग न करते यदि अधिक लाभ न दिखाई पड़ता—उस साधुवाद के बदले में दे डालने को तैय्यार हो गए जिसको उन्हों ने अधिक मूल्यवान विचारा। The moral virtues are the political offspring which flattery begot on pride.

इस सिद्धान्त में यथार्थता का कितना अंश है पाठकगण विचार सकते हैं। यह कहता है कि निरपराध स्त्री बालकों का घोर हत्या-कांड देखकर जो कोई दो चार बूंद आँसू गिरा देता है और उनके त्राण की इच्छा प्रगट करता है वह केवल संसार को दिखाने के लिए;-अर्थात् उस सुख अथवा आनन्द को जो इस घटना के निरीक्षण के पूर्व उसमें था वह कदापि परित्याग न करता और अपने चित्त को आँसू गिराकर व्यथित न करता यदि एक भीड़ उसके इस कर्म्म के देखने को वहां न खड़ी होती। इस मत के दृष्टान्त इस संसार में इतने अधिक मिलते हैं कि एक सामान्य विवेचना वाले मनुष्य को इसके व्यापकत्व में प्रतीत लाने को बाध्य कर दे सकते हैं। बात यह है कि सच्चे सदाचार को संसार में प्रतिष्ठा और आदर पाते देख लोगों ने उसके बाहरी लक्षणों की नक़ल

बनाना आरम्भ किया। धीरे धीरे लोगों के लिये स्वार्थसाधन का यह एक मार्ग निकल गया। इस तरह के स्वांग बहुत दिखलाई देने लगे। कोई देश काल के विरुद्ध, चौगोशिया टोपी दिए और छः कली का घेरदार अंगरखा लटकाए इस आसरे में बैठा है कि कोई आकर देखे और कहे कि "अहा! बाबू साहब भी कैसे सीधे सादे और सज्जन व्यक्ति हैं।"। कोई चन्दन चर्चित कलेवर में किस हवादार मैदान में खड़ा होकर शंखनाद द्वारा अपने सदाचार की घोषणा कर रहा है। पर जिस तर्कना-प्रणाली पर उपरोक्त सिद्धान्त अवलम्बित है वह दूषित है। उसमें यह पहिले ही मान लिया गया है कि समस्त सद्विचार पाखंड हैं तदुपरान्त इस कथन का विस्तार बड़े कौशल के साथ किया गया है और संसार में प्राप्त अधिकांश उदाहरणों का बड़ा सजीव और तद्रूप चित्र खींचा गया है। अच्छा, हम थोड़ी देर के लिए मान भी लेते हैं कि हम सब लोग वास्तव में पाखंडी हैं और जीवन की धूर्तता से जानकार हैं, ऐसी अवस्था में हम सदाचार का ढकोसला स्वयं बना सकते हैं पर औरों पर जिन्हें हम उसी कपट-वेश में देखते हैं क्यों कर श्रद्धा कर सकते हैं जब कि हम सदाचरण के मूलतत्त्व से पूर्णतया विज्ञ हैं? अर्थात् स्वयं गहिरे पाखंडी हो कर हम पाखंडियों के कार्य्य पर क्यों-कर श्रद्धा और विश्वास रखते हैं?

यदि सत्यतः इस जगत में किसी एक की प्रसन्नता दूसरे पर होती है, किसी एक की आराध्य-दृष्टि अन्य पर होती है तो यह स्पष्ट है कि यह श्रद्धा वा पूज्य बुद्धि कदापि जानबूझ कर पाखंड के लिए नहीं होती वरन उस सच्ची सात्त्विक-शीलता के लिए होती है जिसके चिन्तन और हमारी श्रद्धा के बीच कोई दूसरा भाव नहीं घुस सकता। यह कैसे अनर्थ की बात होगी यदि हम उन लोगों को जो हमारे निकटवर्ती मित्र कहलाते हैं सदा अविश्वास की

(शेष फिर)

खुली चिट्ठी।

(४)

हिन्दी भाषा के उपन्यास-लेखकों के नाम।

प्रिय महाशयो,

आप लोग दो प्रकार की रचना करते हैं। एक तो उन विलक्षण और असम्भव ऐयारियों और तिलिस्मों में गोते खिलाना है जो कभी न थीं और जो विज्ञान की चाहे कितनी ही उन्नति हो जाय, कभी भी सम्भव न होंगी। दूसरा गार्हस्थ्य और समाज के उन आदर्श चित्रों को दिखाना है जो वर्तमान समय में नहीं हैं, या तो प्राचीन समय में थे, या उस समय भी कल्पना ही में थे। उन्हीं के रंगने में दोनों प्रकार के सज्जन अपना समय और पढ़ने वालों का सब व्यय करते हैं। दोनों ढंगों में नायक सब गुणों का पुतला होता है, प्रतिनायक सब दोषों की खान बताया जाता है। नायिकाओं के रूप में अनन्वयालङ्कार ही चलता है, उन के रूप में कोई भी कमी नहीं। ग्रन्थकार के प्यारों में गुण ही गुण है, और उस के विरोधियों में दोष ही दोष। स्वतन्त्ररमा में दोषों का एटलान्टिक है और परतन्त्रलक्ष्मी में सद्गुणों का पैसिफिक। धर्मात्मा सुख ही सुख पाता है, और व्यावहारिक मनुष्य दुःख ही दुःख। उनके नायक ब्राह्मण तोते की तरह धर्मशास्त्र को स्वप्न में भी जपा करते हैं, क्षत्रिय शौच-काल में तरवार बांधे फिरते हैं, नायिकायें नदी में डूबते भी पति का जूता उठाना ही बरतती हैं, और पिटलू पैयार भी अपने बटुए से नहीं चूकता। परन्तु क्या आपने कभी खयाल किया है कि जगत् में क्या ऐसी ही सृष्टि है? आप मुझ से कहेंगे "क्यों? चरित्रों की गोशमाली और छिद्रान्वेषण क्यों करें? क्या ब्राह्मण के मुख से "पीत्वा पीत्वा कहलावावें? क्यों हिन्दू की प्राचीन प्रथाको छोड़ कर नवीन वकीलों की कल कल मचावें? क्या यह सुन्दर

नहीं मालूम देता कि सद्गुणों का और पाठकों के प्रेम का एक पात्र बीसों बिस्वे तयार कर दिखावें ? यदि तुम भी उपन्यास लेखक हो तो किसी गद्दीधारी महन्त के मुख से शतरञ्ज या मदिरा की बात न कहलवाकर धर्मोपदेश करा देते जो उसके मुंह से कार्तिक माहात्म्य की तरह सुनाई देता ? "

यदि मेरे मत में उपन्यास लेखक का सब से ऊंचा व्यवसाय चरित्रों को जैसे वे कभी न थे और न होंगे वैसे बनाना ही होता तो मैं अवश्य ऐसा ही करता । तब तो जीवन और चरित्र को बिलकुल अपनी ही रुचि के अनुसार मैं गढ़ सकता था, मैं धर्मोपदेशक का सर्वोत्तम नमूना चुन लेता और सभी मौकों पर मेरे रुचिर उपदेश उसके मुंह में रख देता । किन्तु आश्चर्य है कि मेरा (अर्थात् सच्चे उपन्यास लेखक का) सब से प्रबल यत्न यही होता है कि ऐसे उच्छृङ्खल और इकतरफा चित्र से किनारा करूं और मनुष्य और वस्तुओं का वैसा सच्चा चरित्र दूं जैसे कि वे मेरे हृदय-काच में अङ्कित हुए हैं । अवश्य ही कांच में दोष हैं; चित्र कभी कभी बिगड़ गए हैं छाया भी धुंधली या बिगड़ी हुई है, किन्तु मैं आप लोगों को अपने विचारों को ठीक ठीक समझाने में वैसा ही बाधित हूं जैसा कि हलफ़ उठाकर ठीक गवाही देने में । यदि वास्तव चरित्र को आपने देख और समझ कर कलम पकड़ी है, तो, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कह सकता हूं,कि जिसकी स्तुति में आपने पृष्ठों पर पृष्ठ रंगे हैं, वह कदाचित नीरस अयोग्य और अनुपादेय चरित्र था । कदाचित् आप कहेंगे" यह बहुत ही बिरला संयोग होता है जब कि वास्तव दशा उस सुन्दर चित्र पर पहुंच जाय जो हमारे उन्नत विचार और शुद्ध रसों के अनुकूल है । तो वास्तव दशा पर कुछ उन्नति ही न कर दो, उन्हें उन शुद्ध विचारों से अधिक मिलती हुई बना दो जिनके रखने का हमारा अधिकार है । ठीक जैसा हम चाहते हैं, वैसा तो यह जगत् है ही नहीं, कुछ इसको रसमयी पेन्सिल से रंग दो, और विश्वास करा दो कि यह इतना उलझा हुआ मामला नहीं है । जिन मनुष्यों के विचार निर्दोष हैं उनसे निर्दोष ही

काम कराना । अपने अपराधी चरित्रों को भ्रम के मार्ग पर रहने दो और धर्मात्मा चरित्रों को सरल मार्ग पर । तो हम एक दृष्टि से ही देख सकेंगे कि किसी को सराहैं, और किस को कोसैं । यदि ऐसा, करोगे तो हम अपने पुराने विचारों को कुछ भी हिलाए बिना चरित्रों की स्तुति कर सकेंगे, और उस परम असन्देह विश्वास से उत्पन्न जुगाली के स्वाद के साथ कुछ चरित्रों को घृणा भी कर सकेंगे ।"

मेरे प्यारे मित्र ! कहो तो उस अपने ही गांव के मित्र का तुम क्या करोगे जिसने तुम्हारे भाई से थानेदारी छीन ली ? उन नए पाठशाला के अध्यापक को क्या करोगे जो "सुदृष्युपास्य:" भी स्लेट पर लिखकर साधता है और जिनके पढ़ाने की ढाल उसके पूर्वज से बुरी होने से दुःखदायक है ? उस योग्य नौकर को क्या करोगे जो अपने एक दोष से आपका सिर खपाता है ? अपने पाड़ोसी रामसेवक का क्या करोगे जिसने बीमारी में आपकी इतनी सेवा की परन्तु जब से आप अच्छे हुए आपके विषय की अनुचित बातें गांव में फैलाई ? और भला अपनी उस प्राणप्यारी कमलनयनी का क्या करोगे जिसका चिडाने वाला स्वभाव उस समय काच की चूडियों की चर्चा छेडता है जिस समय आप उसे रूस जापान के युद्ध का कारण समझते हों या अपने अटल प्रेम के अनुमोदन में हवा में हाथ हिला कर व्याख्यान दे रहे हों ? इन साथी मर्त्यों में प्रत्येक जैसा है उसको वैसाही लेना और समझना पड़ैगा; तुम न उनके नाक सीधे कर सकते हो, न उनकी हंसी को चमका सकते हो, न उनके स्वभावों को ठीक कर सकते हो, और इन लोगों को ही जिनमें आपको अपना जीवन बिताना पड़ैगा, सहना, सम्हालना और प्यार करना तुम्हें आवश्यक है । ये ही न्यूनाधिक कुरूप, मूर्ख और असम्बद्ध मनुष्य वे हैं जिनकी भलाई की बड़ाई करने को तुम्हें समर्थ होना चाहिए और जिनके लिए तुम्हें यथा सम्भव आशा और यथासम्भव सन्तोष काम में लाना पड़ेगा । यदि मुझ में सामर्थ्य भी हो तो भी मैं वह चतुर उपन्यास लेखक नहीं होना चाहता जो इस जगत् से एक ऐसा अच्छा जगत् बना देता

है कि जिस जगत् में हम प्रत्येक प्रातः काल अपना काम करने को उठते हैं, उसको छोडकर, मेरे ग्रन्थ को पढ लेने पर, रेतली सडकों और साधारण हरे खेतों पर तुम उपेक्षा की निर्दय दृष्टि डालो,–सच्चे श्वास लेते हुए मनुष्यों पर तुच्छता लगाओ जो तुम्हारी उदासीनता से ठिठर सकते है, या तुम्हारे कोप से नष्ट हो सकते हैं, जिन्हें तुम्हारी सहानुभूति, दया, और स्पष्टवादी वीरन्याय से भरोसा और काममें सहायता मिल सकती है। मैं नहीं चाहता कि तुम सच्चे मनुष्यों को भूल कर पेयारों के लिए आह भरते फिरो।

इसी से चीजें जैसी हैं उससे वे अच्छी दिखाई दें ऐसा यत्न किए बिना अपनी सीधी कथा कहने में ही मैं सन्तुष्ट हूँ। सिवा झूंठ के मैं कसीसे नहीं डरता। अपनी सबसे अच्छी सम्हाल करने पर भी उस से डरने का कारण है। झूंठ इतना सीधा है, सत्य इतना कठिन है। जब लेखिनी किसी राक्षस का चित्र बनाती है तो हमें प्रसन्नता और सरलता मालूम होती है, दांत जितने बड़े हों, और पङ्ख जितने फैले हों उतना ही अच्छा; किन्तु यदि हम सच्चा मनुष्य का चित्र खैंचना चाहते हैं तो वह अद्भुत आसानी जिसे हम अपनी प्रतिभा का फल मानते थे न मालूम कहां भाग जाती है। यदि अपने शब्दों को ठीक तोलकर देखें तो जान पड़ेगा कि यदि झूंठ बोलने का कोई प्रयोजन न भी हो तो भी ठीक सत्य कहना कठिन है।

सत्य के इस अद्भुत और अमूल्य गुण के कारण हमें वे सादे चित्र अच्छे मालूम देते हैं जिन्हें आपके से उच्च विचारों के मनुष्य घृणा करते हैं। साधारण गार्हस्थ्य जीवन के सच्चे चित्रों में इसी लिए आनन्ददायक सहानुभूति मिलती है, क्योंकि फुलों की सेज, या परमधर्म, वियोगान्त जीवन या जगत् को अकचकाने वाले तिलिस्म की अपेक्षा वह अधिक भाइयों के हिस्से में आता है। बिना शङ्का के, विमानपर चढे हुए देव, वनकन्या, परमहंस, और जादूगरनी से हम मुह फेर लेते है, और प्रेम से अपने फूलों को सींचती, या पत्ते पर भोजन करती बुढ़िया की ओर देखते हैं, जब कि मध्यान्ह का प्रकाश, पत्तों के

पड़दे में से डरता हुआ उसके चरखे के छू रहा है और उसके ताम्बे के लोटे, अथवा किसी पत्नी सस्ती "जीवनजड़ी" को चमका रहा है। "छि." हमारे आदर्श के प्यारे मित्र बोल उठेंगे 'कैसी ग्रामीण बातें हैं। इस विराट परिश्रम उठाने से क्या लाभ है कि बुढ़िया का या गंवारों का ठीक ठीक चित्र उतारा जाय? जीवन का कितना हलका चित्र है! कैसे भद्दे और जंगली मनुष्यों की चर्चा है।"

परन्तु, क्या नायक सदाही गुलाबजल में डूबा हुआ और सोने की मूठ की तरवार से खेलता होना चाहिए? जो चीज बिलकुल सुन्दर नहीं है वह भी तो प्रेम के लायक हो सकती है? क्या यह नहीं जानते कि मनुष्यजाति के अधिक सज्जन कुरूप ही हैं, और सबसे सुन्दर जातियों में भी टेढ़े नाक और बैठे गाल बहुत कम नहीं मिलते। तो भी क्या उनमें परस्पर प्रेम नहीं होता! हमारे एक मित्र ऐसे हैं जिनका मुखारविन्द भिड़ों के छत्ते का सा है, कुछ ऐसे हैं जिनके चेहरों पर पेशानी का मोड़ देखकर क्रोध आता है, किन्तु यह निश्चय है कि उन के हृदय है, और मित्रों के हृदय उनके लिये तड़फते हैं। उनके चित्र (चाहे वे सुन्दर नहीं) एकान्त में चूमे जाते हैं। कई माताएं ऐसी हैं जो अपनी युवावस्था में भी सुन्दरी न थीं, परन्तु अपने पति के युवावस्था के प्रेम को वे सपुलक स्मरण करती हैं, और तुतलाते बच्चे प्रेमसे उनके पीले चेहरे से अपना नाक रगड़ते हैं। और मुझे विश्वास है कई महाशय-ओछे कद और दुबली मूछों के-ऐसे भी होंगे जिनने एन्ट्रेन्स पास करते ही प्रतिज्ञा की थी कि "डाना काटा परी" या इन्द्र की परी से न्युन किसी से प्रेम न करेंगे, परन्तु कुछ अवस्था बढ़नेपर उनने प्रसन्नतापूर्वक भेंडी पत्नियों के साथ जीवन बिताया है। इन सब बातों के लिए परमेश्वर का धन्यवाद है। मनुष्य का भाव उन विशाल नदियों की तरह से है जो पृथ्वी को शोभित करती हैं। यह सुन्दरता के लिए प्रतीक्षा नहीं करता परन्तु अरुद्ध वेग से दौड़ता है और अपने साथ सुन्दरता लाता है।

स्वरूप की देवी सुन्दरता को उचित सन्मान के साथ प्रणाम है।

मनुष्यों में स्त्रियों में, बच्चों में, बागों में, घरों में, यह सब से अधिक विराजै। परन्तु हमको उस दूसरी सुन्दरता को भी प्यार करना चाहिए जिस का रहस्य देह की गठन नहीं है परन्तु गम्भीर मनुष्य सहानुभूति है। यदि सामर्थ्य है तो ऐसे देवता का चित्र खैंच दो जिसके आसमानी वस्त्र हो और चेहरे पर देवी प्रकाश की आभा का मण्डल हो, ऐसी राधा का चित्र खैंच दो जो दैव भगवान् की प्रतीक्षा में हाथ धरे अपने सुकुमार मुख को सुखा रही है, परन्तु हम पर उन कल्पित नियमों को मत चलाओ जो उपन्यास या सुकुमार शिल्प के राज्य में से अपने काम से घसे हाथों से आलू उबालती हुई बुढियाओं को, उन गोल पीठों और सब ऋतुओं को सहने वाले चेहरों को जिनने हल और कुदाली पर झुक झुक कर काम किया है, होली में थोडी सी भांग पर मस्त गवारों को, उन पीतल के बरतनों वाले घरों, मट्टी क हंडियो, लेडी कुत्तों, और प्याज के छिलकों को निकाल दे। इस जगत् में ऐसे सीधे सादे मोटे आदमी इतने अधिक हैं, जिनमें कृत्रिम उपन्यासों के लायक सहानुभूति नहीं है। उनके यहां होने को हम स्मरणी रक्खे यह अत्यन्त आवश्यक हैं नहीं तो हम अपने धर्म और दर्शन में उनकी चर्चा बिलकुल छोड जायंगे, और उच्च कल्पनाएं बना लेगें जो केवल असम्भव जगत् में ही घटैंगी। इस लिए कल्पनामय उपन्यासों को चाहिए कि हमें सदा उनका स्मरण कराते रहें, इसलिए हमें ऐसे उपन्यास लेखक चाहिए जो प्रेममय परिश्रम से इन साधारण वस्तुओं के सच्चे चित्राङ्कन करें, ऐसे मनुष्य जो इनमें सुन्दरता देखते हैं और जिनको यह दिखाने में आनन्द आता है कि स्वर्गीय प्रकाश इन सीधी वस्तुओं पर किसी तरह पडता है। संसार में बहुत कम महापुरुष होते हैं, बहुत कम परम सुन्दरी स्त्रियां होती हैं, बहुत कम वीर होते हैं। इन विरले असम्भवों को मैं अपना सम्पूर्ण प्रेम और सम्पूर्ण सहानुभूति नहीं दे सकता, मेरे प्रेम के भाव का अधिकांश मुझे अपने प्रतिदिन के साथियों के लिए चाहिए, विशेषतः उनके लिए जो सदा मेरे पास हैं जिनके चेहरे मैं जानता हूं, जिनके हाथ मैं छूता हूं और जिन के

लिए अदब के साथ मुझे मार्ग छोड़ना पड़ता है। चमत्कारी ऐयार और अद्भुत हत्यारे अपनी रोटी आप खाने वाले स्वतन्त्र मजदूर से अधिक मिलते भी नहीं। यह अत्यन्त आवश्यक है कि मुझ में स्नेह की एक तन्तु तो बचे जो मुझे उस मैले कपड़ों वाले भाई से मिलावे जो मेरी शक्कर तोलता है इसकी अपेक्षा कि मैं अपने स्नेह को जरी की टोपी पहनने वाले कल्पित दगाबाज पर अपने भावों को "भस्म-निहुतम्" करूं। यह आवश्यक है मुझे पड़ोसियों के सुख दुःख से सहानुभूति हो, और न उन कल्पित नायकों से जो कहासुनी में ही हैं अथवा जो आदर्श उपन्यास लेखक के आदर्श ही हैं। * समझे ?

वही चिट्ठी वाला।

---

* श्रीमती जार्ज इलियट की छाया, एडम बीड से।

जीवात्मा का संदेशा

(सर बाल्टर रैले की कविता का मर्मानुवाद)

१

आतमराम देह के अतिथी
फैला यह कृतघ्न संदेश।
डर माने मत सर्वोत्तम का
करदे सच्चा वारंट पेश।
जा अब मैं जीनेका नाहीं
बीज झूठ का बो उन माहीं॥

२

न्यायालय से जाके कह तू
"व्यर्थ न्याय की करै पुकार"।
गिरजा से कह "धर्म्म न तुझ में
वृथा करे शब्दों की मार"।
यदि यह दोनों दें कुछ उत्तर
झूठ भार रख उनके ऊपर॥

३

अधिपतिगण से "यद्यपि करते
हो निशिदिन तुम किञ्चित काम।
कार्य्य तुम्हारे कभी न होंगे
विना दान के चित्त ललाम।

अधिपति यदि कुछ उत्तर देवें
बोझा तेरा निज सिर लेवें ।

४

उच्चश्रेणि के उन पुरुषों से
राज काज में जिनका हाथ ।
"लाभ तुम्हारी जीवन आशा
घृणा तुम्हारा देती साथ" ।
यदि उत्तर पर होंय तयार
बोझा तेरा उन पर डार ॥

५

सहन शील जो बने उन्हें "तुम
कञ्चन याचो देके कांच,
इच्छा सब से प्रबल तुम्हारी
मान बड़ाई-जानो सांच" ।
यदि वे दें उत्तर तोहि नेक
भार झूठ का उन पर फेंक ॥

६

उत्सुकता से "भाव न तुझमें"
"काम अंध, कामातुर" प्रेम ।
"काल नाम तू अस्थिरता का"
"देह धूल तू" सच्चा नेम ।
उनसे कुछ उत्तर मत झेल
भार झूठ का उनपर मेल ॥

७

कहो आयु से "तू नित घटती"
"मान नहीं तुझ में थिर ठाम"

"सुन्दरता तू उड़े फूंक से"
मुख तेरे है कृपा लगाम " ।
यदि तुझको उत्तर कुछ देवें
भार झूंठ का निज सिर लेवें ॥

८

युक्ति बुद्धि से "सूक्ष्म दृष्टि के
झूंठे झगड़े तू करती"
कहो बुद्धि से "योंहि वृथा तू
ज्ञानचक्र में है पड़ती "
यदि उत्तर दें तुझको नेक
झूठ भार झट उन पर फेंक ।

९

भरी चिकित्सा निर्लजता से
पटुता है थोथा अभिमान ।
कहो दान से "निःस्नेही तू"
"नियम तुझे प्रिय कलह महान" ।
यदि तुझको कुछ उत्तर देवे
भार झूठ का निज सिर लेवें ॥

१०

"है लक्ष्मी तू चक्षु बिहीना"
"विश्व सदा तू होवे क्षीण"
"स्वार्थरत है मित्र भाव तू"
"न्याय बड़ा तू चापल हीन"
यदि वे कुछ भी उत्तर दें
झूंठ भार निज सिर पर लें ॥

११

व्यवसायों में ठोसपना नहिं
जन समूह पर वे निरभर।
विद्यालय में गूढ़ तत्व नहिं
दिखलावट उनके ऊपर।
देवें तुझको उत्तर नेक
बोझा तेरा उन पर फेंक॥

१२

गया भाग ईमान नगर से
ग्राम सदा करते हैं भूल।
दया शून्य हो गई वीरता
हुआ धर्म्म प्रायः निर्मूल।
यदि उत्तर से दें तोहि टाल
सत्य खड्ग से उन्हें संभाल॥

१३

जब सबही यह करले पूरा
तू मेरी आज्ञा अनुसार।
यद्यपि यह है दोष लगाता
तुझे चाहिए खड्ग प्रहार।
पर चाहे जो करे प्रहार
तुझको कोई सकै न मार॥

पुरोहित लक्ष्मीनारायण।

पंजाब का भूकम्प ।

१

शान्तिशील, सम्राट, सातवें एडवर्ड भूपाल,
दयासिन्धु नरदेव बीर का है यह शासन काल ।
कर सकता है कौन शत्रु फिर तुम पर अत्याचार ?
कहो पञ्चनद-भूमि ! माता ! क्यों उठी कांप इसबार ?

२

उन्नतमस्तक, सुरगणपूजित, पूत, हिमालय अङ्ग,
शोभित जिसके वक्षःस्थल पर पञ्चपयोधर गङ्ग ।
हुए विश्वभय हरण बीरवर सुत जिससे विख्यात,
बीर मात ! वह वेदविदित तेरा क्यों कम्पित गात?

३

महाबीर जब नृपति सिकन्दर आया तेरे द्वार,
जिसकी विजयशील सेना से था कम्पित संसार ।
तब तनुपालित विजय बाहिनी, लेकर अपने साथ,
नृप पुरु ने, निष्कम्प हृदय से, जाय मिलाया हाथ !

४

कालरूप, महमूद, गजनवी का जब भारी क्रोध,
हुआ सकल भारत पर, तब भी तूने तजा न बोध ।
निशि दिन तीव्र कृपाण चली, वह निकला रक्तप्रवाह,
तदपि देवि ! तव कठिन हृदय में नेक न उपजी दाह ।

५

प्रबल मुहम्मद् गौरी ने जब किया अतुल सङ्ग्राम,
जिसमें आए पृथ्वीराज सम वीर पुत्र तव काम।
हुआ रक्त कर्दम मय जब हा! दृषद्वती का तीर
एक बेर भी हुआ न कम्पित तब तव कठिन शरीर।

६

पुण्यपुञ्ज तेरे वपु पर कितनेही कई प्रकार,
म्लेच्छराज आए गर्वित हो कर निज कुपद प्रहार।
लुण्ठित देश, भग्न देवालय, हुए ध्वंस द्विजवंश,
तब भी तेरा कम्पित होता देखा एक न अंश।

७

धर्म्मवीर गुरु तेगबहादुर सम अनेक असहाय
काटे गए सिक्खजननी! जब निर्दोषी निरुपाय।
निरपराध जीवित बालक जब चिनेगए निश्चिन्त
अचला हुई न सचला तव तू, रही देखती, हन्त!

८

हे भारत की द्वारभूमि! अगणित ही अत्याचार
सहन करचुकी, श्रवण करचुकी निज सुत हाहाकार।
किन्तु आजतक हुई न माता! ऐसी कभी अधीर
हे मुनिजन जननी! कहदे क्यों तेरे नयन सनीर?

९

विश्वविदित ऋषिकुल पूजित सुरसेवित दिव्य अनूप
सुजला सुफला 'शस्य श्यामला" मा! तेरा वह रूप।

हाय! नष्ट होगया अङ्ग सब निर्बल रोग नवीन,
दीना, मलिना, भग्नहृदय, कम्पित तनु प्रभा विहीन।

१०

आदि सर्ग कारिणी देवि! क्या जराजीर्ण तव अङ्ग
हुआ? इसलिए कम्प, बिगड़ सब गया पुरातन रङ्ग।
कैसाही बलवान् पुरुष हो, कैसाही दृढ काय,
कर सकम्प देता तन को अन्त बुढापा हाय!

११

क्या अब तव सन्तति का इतना कल्मष बढ़ा अपार
धरणीधर भगवान् शेष नहिं सह सकते हैं भार?
धन जन बल भूतल आदिक नहिं रखते हैं अवशेष
क्षमा न करते वर्द्धमान अघ विश्वम्भर हर शेष।

१२

त्यागशील, बल गौरवयुत, गत सन्तति को कर याद
हे गुरु गौरवधरा! हुआ क्या यह तेरे उन्माद?
सबकुछ जाती भूल किन्तु नहिं भूलै किसी प्रकार,
दुःख काल मैं याद करै मा मृत सुत को बहुबार।

१३

प्रतिदिन प्रसरण शील, अचानक चरित मरण का योग
प्लेग वेग को देख हुआ क्या अब तेरे यह रोग?
समरभूमि में मरे न उतने किसी देश के बीच
जितने यहां रोग के कारण सोए आंखें मीच!

१४

क्षुधित दीन दुर्भिक्ष दलित सुतगण को अपने पास
देख सकी नहिं दयावती ! क्या यों मन उपजी त्रास ?
क्षुधा क्लिष्ट निज रुग्ण कलेवर रखलेती मा ! आप
किन्तु टूक उर के कर देती देख पुत्र सन्ताप।

१५

प्रभु कर्ज़न ने छात्रवृन्द को दिया असत् उपदेश
सत्य मूर्ति ! क्या सहन हुआ नहिं उसका दुस्सह क्लेश ?
हो सकती है सह्य-इतर लोगों की कुटिल कुरीति
बडे जनों की सही न जाती कल्मष भरी कुनीति।

१६

धर्म्मधरा ! क्या धेनुरक्त का इतना हुआ प्रताप ?
सहनशील ! नहिं सहन कर सकी जिसका अब आघात ?
उपकारक जीवों का होता रक्तपात जिस काल,
बुद्धिमान जन कहें पाप से तब होता भोंचाल।

१७

गुरुजन जिनके सीस दे गए हिन्दु धर्म्म के काज
तद् विरुद्ध सुन उनकी बातें क्या अब आई लाज ?
मान्य जनों का बात जहां जब कटती बिना विचार
वृद्ध लोग यों कहैं सभी तब पड़े गज़ब की मार।

१८

हरि मन्दिर में हरि प्रतिमा का होता है अवरोध,
धर्म्मभीरु ! इसलिए हुआ क्या तेरे तन में क्रोध ?
पूजा होती नहीं पूज्य की जहाँ पूज्य हों नीच
कहें वेद उत्पात वहां हो बनै रक्तमय कीच।

१९

विश्व बीच विख्यात सरस्वति से जो विद्वत् देश,
उसे म्लेच्छ रमणी देती है दम्भ सहित उपदेश।
क्या यह देखा नहीं गया इसलिए उठी तू डोल ?
उलटफेर से सभी जगत पर हो जाता है गोल।

२०

बता हेतु क्या है प्रकम्प का ? जननी ! स्नेहाधार !
निज हाथों से किया किसलिए सुतगण का संहार ?
पुत्रादिनी सुनी थी सांपन और न दूजी हाय !
समय फेर से माता भी क्या निज सुत लेती खाय ?

२१

महोदरी ! तव फटे पेट में कितनेही अब ग्राम
समा गए जन चिन्ह सहित, मिट गया जगत से नाम।
कोट कांगड़ा मिला धूल में, अगणित जन गृहहीन
भीख मांगते फिरैं, न मिलती, इतना भाग्य मलीन !

२२

जहां धनिक निज देश दशा की भूल चुके सब बात,
जहां रोगगण डेरा डाले रहते हैं दिनरात।
उसी देश पर हाय ! कम्प ने ऐसा किया प्रहार
कहा किसी ने सचकि "मरै को मारै शाह मदार"

२३

जिनके लिए भीख नृप मांगै, हुए खजाने राख,
हाय ! अभागों के हित तौभी मिले न पन्द्रह लाख।
जिन पर नीरद नीर न वर्षें जिन्हें न कुछ आमोद
धरणी ! उन्हैं उचित थी मिलनी तेरी प्यारी गोद !

श्री राधाकृष्ण मिश्र
भिवानी।

प्रकरण दूसरा ।

दक्षिण के सोलंकियों का इतिहास ।

सोलंकियों के कितने एक ताम्रपत्र, शिला-लेख और विक्रमाङ्क देवचरित से पाया जाता है कि इनका राज्य पहिले अयोध्या में रहा, जहां से ये दक्षिण में गये; और (१) भाटों के पुस्तकों से भी गंगातट पर इनका राज्य पहिले होना पाया जाता है; अत एव उत्तर से इनका दक्षिण में जाना, फिर वहां से गुजरात, राजपूताना, बघेलखण्ड आदि में फैलना निश्चय होता है; इसलिये हम प्रथम दक्षिण के सोलंकियों का इतिहास लिखते हैं, जिसके पीछे गुजरात आदि के सोलंकियों का वृत्तान्त लिखेंगे ।

कितने एक शिलालेख और ताम्रपत्रादि में लिखा मिलता है, कि "उदयन के अनन्तर ५९ राजाओं ने अयोध्या में, और उनके पीछे १६ राजाओं ने दक्षिण में राज्य किया । फिर सोलं-

(१) टॉड राजस्थान जिल्द १, पृष्ठ १०४ (कलकत्ते की छपी)

कियों की राज्यलक्ष्मी कुछ काल तक दूसरों के हाथ में रहने बाद राजा जयसिंह ने सोलंकी राज्य की पीछी [१] स्थापना की।" इसके सिवाय जयसिंह के पूर्व का कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता, अतएव राजा जयसिंह से ही इतिहास प्रारंभ किया जाता है।

जयसिंह और रणराग।

दक्षिण में सोलंकियों का राज्य पीछा क़ाइम करने वाला राजा जयसिंह हुआ, जिसके बिरुद (ख़िताब) वल्लभ, और वल्लभेन्द्र मिलते हैं। [२]येवूर के शिलालेख, और [३]मीरज से मिले हुए ताम्र-

(१) तज्जेषु राज्यमनुपाल्य गतेषु राजस्वेकोनषष्टिगणनेषु पुरा-दयोध्यां। तद्वंशजास्तदनु षोडशभूमिपालाः क्ष्मां दक्षिणापथभुवां बिभरां बभूवुः॥ दुष्टावष्टब्धायां च कतिपय पुरुषांतरांतरितायां चालुक्यकुल-सपदि भूयश्चलुक्यवंशय एव॥ वृत्तं॥ कंदः कीर्त्तिलतांकुरस्य कमलं लक्ष्मीविलासास्पदं वज्रं वैरिमहीभृतां प्रतिनिधिर्दैवस्य दैत्यद्रुहः। राजासीज्जयसिंहवल्लभ इति ख्यातश्चरित्रैर्निजैर्यो रेजे चिरमादिराज-चरितोत्कंठप्रजानाहरन्॥ (येवूर का शिलालेख, और मीरज का ताम्रपत्र। इंडियन ऐंटिक्वेरी जिल्द ८, पृष्ठ २२)।

(२) बम्बई हहाते के कलादगी ज़िले के सोरापुर इलाक़े में।

(३) सदर्न (दक्षिणी) मरहठा प्रदेश में।

पत्र में लिखा है, कि "उस (जयसिंह) ने राष्ट्रकूट (राठौड़) कृष्ण के पुत्र इन्द्र को जीता, जिसके सैन्य में ९०० हाथी रहते थे, और ५०० राजाओं को नष्ट करके सोलंकियों की राज्यलक्ष्मी को फिर बढ़ा[1]या।" इससे अनुमान होता है, कि राठौड़ और अन्यवंश के राजाओं के राज्य छीनकर उसने अपना राज्य जमाया था। उसके पीछे उसका पुत्र रणराग राज्य सिंहासन पर बैठा, जो शरीर का प्रचंड, युद्धरसिक, और [2]शिवभक्त

---

(१) यो राष्ट्रकूटकुलमिन्द्र इति प्रसिद्धं कृष्णाह्वयस्य सुतमष्टशतेभसैन्यं। निर्ज्जित्य दग्धनृपपंचशतो बभार भूयश्चलुक्यकुलवल्लभराजलक्ष्मीं॥ (येवूर का लेख, और मीरज का ताम्रपत्र। इंडियन ऐंटिक्वेरी जिल्द ८, पृ० १२)।

(२) चटुलरिपुतुरगपटुभटकरटिघटाकोटिघटितरणरागः। सुकृतहरधरणरागस्तनयोभूत्तस्य रणरागः। (इंडियन ऐंटिक्वेरी जि० ८, पृ० १२)। येवूर के लेख, और मीरज के ताम्रपत्र में रणराग का शिवभक्त होना लिखा है, परन्तु दक्षिण के सोलंकियों के कुलदेवता विष्णु होने चाहियें क्योंकि उनके ताम्रपत्रों के साथ की मुद्रा (मुहर) में वराह का चिन्ह ही मिलता है, जो उनके इष्टदेव का सूचक होना चाहिये,। उनके ताम्रपत्रों में उक्त चिन्ह के विषय में यह भी लिखा मिलता है कि "भगवान् नारायण की कृपा से उनको वराह लांछन प्राप्त हुआ था, जिसके प्रताप से वे शत्रुओं के राज्य आधीन करते थे।"। भगवन्नारायणप्रसादसमासादितवरवराहलाञ्छनेक्षणक्षणवशी-

था। इसके सिवाय इन दो राजाओं का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। रणराग का उत्तराधिकारी उसका (१)पुत्र पुलकेशी हुआ।

कृता रातिमण्डलानां .... चलुक्यानां... । (प्राचीन लेख माला भाग १, पृ० २१३, साउथ इंडियन् इन्स्क्रिपशन्स जिल्द १, पृ० ३९) कुलदेवता विष्णु होने पर भी शिवभक्त होना संभव है।

(१) सोलंकी राजा राजराज (दूसरे) और वीरचोड आदि के समय के कितने एक ताम्रपत्रों में पुलकेशी के पहिले का वृत्तान्त इस प्रकार दिया है कि—"उदयन से लगाकर ५९ चक्रवर्ती राजा अयोध्या में होने बाद उक्त वंश का विजयादित्य राजा विजय की इच्छा से दक्षिण में गया, जहां त्रिलोचन पल्लव (पल्लववंशी राजा) पर हमला करने में वह मारागया, जिससे उसकी सगर्भा राणी अन्तःपुर की कितनी एक स्त्रियों, और पुरोहित आदि सहित 'मुडिवेमु' नामक अग्रहार (दान किये हुये गांव) में जाकर विष्णु भट्ट सोमयाजी ब्राह्मण के यहां रही, जहां पर उसके विष्णुवर्द्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने चलुक्यगिरि पर जाकर भगवती गौरी की आराधना की, और कार्त्तिक स्वामी, नारायण, तथा मातृगण (देवियों) को प्रसन्न कर उनसे कुलपरंपरा के साम्राज्यचिन्ह, अर्थात् श्वेत छत्र, एक शंख, पंचमहाशब्द, पालिध्वज, प्रतिढक्का, वराह लाञ्छन, मोरछल, भाला, सिंहासन, मकरतोरण, सोने की छडी, गंगा यमुना (उक्त चिन्ह अथवा नामवाले ध्वज), आदि प्राप्त किये; और कदंबवंशी तथा गंगावंशी राजाओं को विजय कर सेतु (रामेश्वर), और नर्मदा नदी के बीच के ७५०००० (गांव वाले) दक्षिणापथ (दक्षिण देश) पर राज्य किया। उसने पल्लववंश की राज-

(१)पुलकेशी।

दक्षिण के सोलंकियों (जयसिंह के वंशजों) में प्रथम राजा पुलकेशी ही बड़ा प्रतापी हुआ, इसीसे पिछले कुल ताम्रपत्रों में बहुधा उसी के नाम से वंशावली लिखी मिलती है। उसके विरुद 'महाराज', 'सत्या(२)श्रय', 'रणविक्र(३)म', 'श्रीव-

कन्या से विवाह किया, जिससे विजयादित्य उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र पुलकेशी वल्लभ था," (राजराज दूसरे का दानपत्र। इंडियन एंटिक्वेरी जि० १४, पृ० ५१)। इन ताम्रपत्रों के अनुसार पुलकेशी प्रथम का दादा विष्णुवर्द्धन, और पिता विजयादित्य होना पाया-जाता है; परन्तु ये ताम्रपत्र पुलकेशी के समय से कई सौ वर्ष पीछे के हैं, और ऊपर जो उनके स्थान में जयसिंह, और रणराग नाम लिखे हैं वे स्वयं पुलकेशी के पुत्र के समय के शिलालेख से उद्धृत किये हैं, जो सर्वथा विश्वास योग्य हैं, अत एव विष्णुवर्द्धन, और विजयादित्य ये पुलकेशी के दादा, और पिता के सही नाम नहीं हो सकते। यातो ये नाम उक्त ताम्रपत्रों में ग़लत दर्ज होगये हों, या सोलंकियों के दक्षिण में आने बाद के १६ राजाओं के नाम जो नहीं मिलते उनमें से किसी दो के हों, जिनको पीछे से शृंखला मिलाने के वास्ते पुलकेशी के नामके पूर्व धरदिये हों।

(१) पुलकेशी नाम के 'पुलिकेशी,' 'पुलुकेशी,' 'पोलिकेशी,' और 'पोलेकेशी' पाठान्तर भी लेखादि में मिलते हैं।

(२) सत्याश्रय=सत्य का स्थान।

(३) रणविक्रम= रण में पराक्रम बतलानेवाला।

(¹)ल्लभ', और 'वल्ल(¹)'भ मिलते हैं। उसने 'वातापी' (बादा(²)मी) नगरी को अपनी राजधानी बनाया,

(१) 'वल्लभ' (प्रिय), 'श्रीवल्लभ', 'वल्लभेन्द्र', 'वल्लभनरेन्द्र', 'पृथ्वीवल्लभ' आदि जो बिरुद दक्षिण के सोलंकी राजाओं ने धारण किये थे, उनमें मुख्य 'वल्लभ' था, और उसी परसे अन्य (श्रीवल्लभादि) बिरुदों की उत्पत्ति हुई है। इनमें से एक या अधिक बिरुद बहुतसों के नाम के साथ लगेहुए मिलते हैं। जब सोलंकी राजा कीर्त्तिवर्मा दूसरे का राज्य राठोड़ दंति दुर्ग ने छीन लिया तब से 'वल्लभ', 'वल्लभ राज' आदि सोलंकियों के बिरुद दक्षिण के राठोड़ों ने धारण किये, और इन्हीं बिरुदों पर से राठोड़ों के राज्य समय में जो अरब मुसाफ़िर हिन्दुस्तान में आये उन्हों ने राठोड़ों को 'बलहरा' करके लिखा है। 'बलहरा' वल्लभराज के प्राकृत रूप 'बलहराय' का अपभ्रंश है। कितने एक यूरोपियन लेखकों ने 'बलहरा' शब्द का प्रयोग अरबो ने 'वल्लभी' के राजाओं के वास्ते किया हो ऐसा माना है, परन्तु उनका मानना यथार्थ नहीं है, क्योंकि अरबो ने स्पष्ट लिखा है, कि 'बलहरा' राजा की राजधानी 'मानकेर' (मान्यखेट—संस्कृत लेखादि में) थी, और उनका राज्य कोकन पर था, वल्लभी के राजाओं का कोकन पर अधिकार कभी नहीं रहा, और न उनकी राजधानी मानखेड़ (मान्यखेट) थी। अरबों ने यह भी लिखा है, कि उनके यहां की भाषा 'कनरिआ' (कनड़ी) है। ये सब प्रमाण केवल राठोड़ों के वास्ते ही यथार्थ कहे जा सकते हैं।

(२) तस्याभवत्तनूजः पुलकेशी यः श्रितेन्दुकान्तिरपि श्रीवल्लभोप्ययासीद्वातापीपुरीवधूवरताम् (शक संवत् ५५६=वि० संवत् ६९१ के एहोले के लेख से—एपियाफ़िया इंडिका जिल्द ६, पृ० ४), वातापी (बादामी) बम्बई इहाते के बीजापुर जिले के बादामी विभाग का मुख्य नगर है।

जो कीर्त्तिवर्मा दूसरे के समय तक सोलंकी राज्य की राजधानी बनी र[1])ही। उस प्रतापी राजा ने अश्वमेध, अग्निष्टोम, अग्निचयन, वाजपेय, बहुसुवर्ण, और पौण्डरिक नामक य[2])ज्ञ कर ऋत्विजों को बहु[3])त से गांव दिये। वह मानव (मनुस्मृति)

(१) कीर्त्तिवर्म्मा दूसरे तक के इस वंश के राजाओं को हम 'बादामी' के सोलंकी नाम से प्रगट करेंगे; और कीर्त्तिवर्म्मा दूसरे के राज्यच्युत होने बाद तैलपने सोलंकी राज्य की पुनः स्थापना की तब से 'कल्याण' (कल्याणी) नगर उनकी राजधानी रहा, अतः एव तैलप और उसके वंशजों को कल्याण के सोलंकी कहेंगे।

(२) तस्य सदृशगुणस्य नृपतेः प्रियतनुजस्तस्याप्रथश्रीपृथिवीवल्लभरणविक्रमाङ्कनृपः अग्निष्टोमाग्निचयनवाजपेयबहुसुवर्णपौण्डरिकाश्वमेधावभृथस्नानपुण्यपवित्रीकृतशरीरः (मंगलीश के समय के महाकूट के लेख से—इं० एं० जि० १९ पृ० १९)। शक संवत् ५५६ (वि० सं० ६९१) के एहोले के लेख में अश्वमेध यज्ञ करना ही लिखा है (भूश्चयेन हयमेधयाजिना प्रापितावभृतमज्जनावभौ), जिसका कारण यही होना चाहिये कि इन यज्ञों में अश्वमेध मुख्य होने से उसीका नाम लिखा हो। नेरूर के ताम्रपत्र से भी उपरोक्त सब यज्ञों का करना सिद्ध होता है।

(३) येवूर के लेख और मीरज के ताम्रपत्र में लिखा है कि "पुलकेशी ने अश्वमेध यज्ञ में २००० गांव ऋत्विजों को दिये थे", (वयमपि पुलकेशिक्ष्मापतिं वर्णयन्तः पुलककलितदेहः पश्यताद्यापि सन्तः। स हि तुरगगजेन्द्रो ग्रामसारं सहस्रद्वयपरिमितमृत्विक्साच्चका-

पुराण, रामायण, भारत (महाभारत), इतिहास, और नीति में कुश[1]ल था। उसके दो पुत्र किर्त्ति-वर्म्मा, और मंगलीश थे, जिनमें से बड़ा कीर्त्ति-वर्म्मा शक संवत् [2] ४८९ (वि० सं० ६२४=ई० सन् ५६७) में उसका उत्तराधिकारी हुआ।

पुलकेशी के समय के दो ताम्रपत्र शक संवत् [3] ३१० (वि० सं० ४४५=ई० सन् ३८८), और ४११ [4](वि० सं० ५४६=ई० सन् ४८९) के मिले हैं, जो[5]

राश्वमेधे) परन्तु यह कथन अतिशयोक्ति से ख़ाली नहीं है, इसी से हमने ऊपर बहुत से गांव देना लिखा है।

(१) मानवपुराणरामायणभारतेतिहासकुशलः नीतौ बृहस्पति-समः अग्निष्टोमवाजपेयपौण्डरिकबहुसुवर्णाश्वमेधावभृथस्नानपवित्री-कृतशरीरः स्वगुणैर्लोकवल्लभो वल्लभः—(मंगलीश के समय के नेरूर के दानपत्र से—इं० एं० जि० ७, पृ० १६१)।

(२) कीर्त्तिवर्म्मा के समय के बादामी के एक शिलालेख में शक संवत् ५०० (वि० सं० ६३५) में उसके राज्य का बारहवां वर्ष होना लिखा है, जिससे पुलकेशी का देहान्त, और कीर्त्तिवर्म्मा का राज्याभिषेक शक संवत् (५००—११=) ४८९ (वि० सं० ६२४) में होना निश्चय होता है।

(३) इं० एं० जि० ९, पृ० २९४।

(४) इं० एं० जि० ७, पृ० २११।

(५) इं० एं० जि० ३०, पृ० २१८, नं० ३५।

कृत्रिम हैं क्योंकि उस समय वह राज्य ही नहीं पाया था।

कीर्त्तिव[1]र्म्मा।

कीर्त्तिवर्म्मा के बिरूद 'पुरूरण पराक्र[2]म', पृथिवीवल्लभ 'महाराज', और 'वल्लभ' मिलते हैं। [3]एहोले के लेख से पाया जाता है, कि उसने नल, मौर्य्य, और कदंबवंशियों को नष्ट किया, शत्रुओं की लक्ष्मी को लूटा, और कदंबवंशियों के बड़े समूह को तोड़ने में महा पराक्रम बतलाया [4] था। उसके समय में नलवंशी राजा नलवा[5]ड़ी प्रदेश के, मौर्य्यवंशी (मोरी) कोंकण के, और कदंबवंशी राजा उत्तरी कानड़ा प्रदेश के मालिक थे, अत-

(१) कीर्त्तिवर्म्मा को 'कीर्त्तिराज' भी लिखा है (केवल एक स्थल में)।

(२) राजा पुरू के समान युद्ध में पराक्रम बतलाने वाला।

(३) बंबई इहाते के बीजापुर ज़िले में।

(४) नलमौर्यकदंबकालराचिस्तनयस्तस्य बभूव कीर्त्तिवर्म्मा परदारानिवृत्तचित्तवृत्तेरपि धीर्यस्य रिपुश्रियानुकृष्टा॥ रणपराक्रमलब्धजयश्रिया सपदि येन विरुग्णमशेषतः नृपतिगंधगजेन महौजसा पृथुकदंबकदम्बकदम्बकम् (एहोले का लेख- एपिग्रा० ई० जि० ६, पृ० ४-५)

(५) नलवाड़ी=बंबई इहाते के बेल्लारी और कर्नूल ज़िलों का कितना एक हिस्सा।

एव उसने ये प्रदेश अपने आधीन किये होंगे। महा(१)कूट के लेख में यह लि(२)खा है, कि "उसने बहुसुवर्ण और अग्निष्टोम यज्ञ किया, और अंग,(३) वंग, कलिंग, वट्टूर, मगध, मद्रक, केरल,

(१) बादामी से ३ मील एक पहाड़ी पर मन्दिरों का समुदाय है, जो 'महाकूट' नाम से प्रसिद्ध है।

(२) ज्येष्ठः श्रेष्ठगुणसमुदयोदितपुरुरणपराक्रमाङ्कप्रियः स्वबाहुबलपराक्रमोपार्ज्जितराज्यसंपन्नः ·····बहुसुवर्णाग्निष्टोमावभृथस्नानपुण्यपवित्रीकृतशरीरः वंगाङ्गकलिङ्गवट्टूरमगधमद्रककेरलगंगमूषकपाण्ड्यद्रमिलचोलियालुकवैजयन्त्यप्रभृतिरनेकपरनृपतिसमूहावमर्द्दलब्धविजये दिवमधिरूढे · · (इं० एं० जि० १९, पृ० १७)।

(३) वंग=बंगाल का पूर्वी हिस्सा,। अंग=बंगाल का पश्चिमी हिस्सा,। कलिंग=गोदावरी और महानदी के बीच का पूर्वी समुद्र तट का प्रदेश (उत्तरी सर्कार)। वट्टूर=शायद किसी शहर का नाम हो (दक्षिण में)। मगध=बिहार। मद्रक=पंजाब के वायव्य कोण का एक देश। केरल=मलबार तट पर। गंग=गंगवाड़ी, माइसोर राज्य के अन्तर्गत। मूषक= मलबार तट पर का, क्विलोन और कन्याकुमारी के बीच का प्रदेश। पाण्ड्य=मद्रास इहाते का दक्षिणी हिस्सा, जिस मे मदूरा, और तिनेवेल्ली विभाग हैं। द्रमिल=द्रविड देश, जिसकी राजधानी कांचीपुरी (कांजीवरम) थी। चोलिय=चोलदेश, अर्थात् पूर्वी समुद्र तट का वह देश जो पाण्ड्यदेश की उत्तरी सीमा से लगाकर पालु नदी तक फैला हुआ है। अलुक=शायद यह किसी शहर का नाम हो, अथवा यह शब्द 'शेष' शब्द का पर्याय होने से नागवंशियो का सूचक हो, जिनका राज्य सोलंकीराज्य के पश्चिमी हिस्से

गंग, मूषक, पांड्य, द्रमिल, चोलिय, आलुक, और वैजयन्ती आदि के अनेक शत्रु राजाओं को जीता था"। परन्तु उसके विजय का यह वृत्तान्त उक्त लेख के तय्यार करने वाले ने शायद अतिशयोक्ति से लिखा हो, क्योंकि इतने दूर दूर के देशों के राजाओं को विजय करना किसी अन्य लेख से सिद्ध नहीं होता, अतएव हम एहोले के लेख से उसके विजय का वृत्तान्त जो उद्धृत किया गया है उसी को विश्वास योग्य मानते हैं। पुलकेशी दूसरे के समय के चिप्लू(१)न के दानपत्र में उसकी राणी को सेन्द्रक वंश के महाराज श्रीवल्लभ सेनानन्द की बहिन, और उस (कीर्त्तिवर्म्मा) को वातापी (बादामी) नगरी का 'प्रथम विधाता' लि(२)खा है। 'प्रथम विधाता' का आशय 'प्रथम बसाने वाला' या 'प्रथम राजधानी क़ाइम करने वाला' नहीं, किन्तु ऐसा होना संभव है, कि 'उसने पहिले पहिल उक्त शहर की नींद-

की ओर था। वैजयन्ती=उत्तरी कानड़ा प्रदेश के बनवासी विभाग की राजधानी, जहां पर कदंबवंशियों का राज्य था।

(१) चिप्लून=बंबई इहाते के रत्नागिरि ज़िले में।

(२) इण्डि० ऐं० जि० ३, पृष्ठ ५१।

र्यता बढ़ाई हो'; क्योंकि वह तो पहिले ही से आबाद था, और पुलकेशी ने उसको अपनी राजधानी बनाया था, बादामी की सुन्दरता बढ़ाने वाला विष्णु का मन्दिर, जो पहाड़ को काट काट कर बनाया गया है वह भी कीर्त्तिवर्म्मा के ही समय उसके छोटे भाई मंगलीश ने बनाया था, और अन्य भी ऐसे ही उक्त शहर की शोभा बढ़ाने वाले महत् शिल्पकार्य उसके समय में हुए हों यह संभव है। देहान्त के समय उसके चार पुत्र पुलकेशी, विष्णुवर्द्धन, जयसिंह वर्मा और बुद्धवरसराज विद्यमान थे, परन्तु तीनों बालक होने के कारण उसका छोटा भाई मंगलीश राज्य का मालि(1)क बन बैठा।

---

(1) येवूरके लेख और मीरज तथा कोथूम से मिलेहुए ताम्रपत्रो में लिखा है, कि "अपने बड़े भाई का पुत्र बाल्यावस्था के कारण [राज्यप्रबन्ध करने को] अशक्त था, इसवास्ते मंगलीश ने राज्य का भार अपने हाथ में लिया था; परन्तु जब सत्याश्रय (पुलकेशी दूसरा) युवान् हुआ, तब राज्य पीछा उसको सौंपदिया"— (ज्येष्ठभ्रातुस्सति सुतवरेप्यर्भकत्वादशक्ते यस्मिन्नात्मन्यकृत हि धुरं मंगलीशः पृथिव्याः । तस्मिन्प्रत्यर्प्पयदथ महीं यूनि सत्याश्रयेसौ धातुश्चानां क इव हि पथो धर्मतः प्रच्यवेत ॥ इ० एं० जि० ८, पृ० ३१); परन्तु यह लिखना सर्वथा विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि ये

कीर्त्तिवर्म्मा के समय का एक शिलाले[1]ख बादामी के विष्णुमन्दिर (गुफारूप) से मिला है, जो शक संवत् ५०० (वि० सं० ६३५=ई० सन् ५७८) कार्त्तिक शुक्ल १५ का है, जिसका आशय यह है, कि कीर्त्तिवर्म्मा की आज्ञा से बनेहुए उक्त मन्दिर की उस रोज़ प्रतिष्ठा हुई, और उसके छोटे भाई मंगलीश ने लंजीश्व[2]र गांव उसके भेट किया ।

मंगली[3]श ।

मंगलीश के बिरुद 'उरूरण विक्रा[4]न्त',

लेखादि मंगलीश के समय से ४०० से भी अधीक वर्ष पीछे के हैं, जिनमें उस राजा का अपयश ढांकने का यत्न कियागया है, जब कि स्वयम् पुलकेशी दूसरे के समय के लेख से यही पायाजाता है कि, कीर्त्तिवर्म्मा के पीछे मंगलीश राजा बन बैठा, और पुलकेशी जब राजलक्ष्मी धारण करने योग्य हुआ तो वह उसपर द्वेष रखने, और अपने पीछे अपने पुत्रको राज्य देने का उद्योग करने लगा, जिस में उसको अपना महाराज्य, और प्राण दोनों छोड़ना पड़ा ।

(१) इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द ६, पृष्ठ ३६३ ।

(२) 'लंजीश्वर' गांव बादामी के पास है, और इस समय 'नंदिकेश्वर नाम से प्रसिद्ध है ।

(३) मंगलश के स्थानपर 'मंगलराज', 'मंगलेश', और 'मंगलीश्वर' नाम भी लिखे मिलते हैं ।

(४) युद्ध में उरू के समान पराक्रम बतलाने वाला ।

'रणविक्रान्त', और 'पृथिवीवल्लभ' मिलते हैं। एहोले के लेख से पाया जाता है, कि "उसने पूर्वी और पश्चिमी समुद्रतटों पर अपना अश्वसैन्य रक्खा था (अर्थात् दोनों समुद्रतटों के बीच के प्रदेश पर उसका अधिकार था), तलवार के बल से युद्ध में हस्तिसमूह को नष्ट कर कलचुरी (हैहय) वंश के राजा की लक्ष्मी छीनली, और रेवती (१) द्वीप को विजय (२) किया," उक्त लेख में कलचुरी राजा का नाम नहीं दिया; परन्तु महाकूट के उपरोक्त लेख में उसका नाम बुद्धनृप (बुद्धराज), और नेरू(३)र के ताम्रपत्र में

(१) रेवती द्वीप=बम्बई इहाते के रत्नागिरि ज़िले में वेंगुरला से ८ मील दक्षिण में 'रेडी' नाम से प्रसिद्ध है, जो यथार्थ में द्वीप नहीं, किन्तु समुद्र में गई हुई भूशलाका है।

(२) तस्मिन्सुरेश्वरविभूतिगताभिलाषे राजाभवत्तदनुजः किल मङ्गलेशः । यः पूर्व्वपश्चिमसमुद्रतटोषिताश्वसेनारजः पटविनिर्म्मितदिग्वितानः ॥ स्फुरन्मयूखैरसिदीपिकाशतैः व्युदस्य मातङ्गतमिस्रसञ्चयम् । अवाप्तवान्यो रणरङ्गमन्दिरे कटच्चुरिश्रीललनापरिग्रहम् ॥ पुनरपि च जिघृक्षोः सैन्यमाक्रान्तसालम् रुचिरबहुपताकं रेवतीद्वीपमाशु । सपदि महदुदन्वत्तोयसंक्रान्तबिम्बम् वरुणबलमिवाभूदागतं यस्य वाचा । (एहोले का लेख—एपि० इं० जि० ६, पृ० ५)।

(३) बम्बई इहाते के सावन्तवाड़ी राज्य के अन्तर्गत।

उसको शंकरगण का पुत्र बुद्धरा[1]ज लिखा है, जो यथार्थ है। बुद्धराज चेदी देश, और गुजरात के लाट प्रदेश का राजा था, अतएव मंगलीश ने गुजरात तक अपने राज्य की उत्तरी सीमा बढ़ा दी थी। नेरूर के ताम्रपत्र में यह भी लिखा है, कि "उसने अठारह युद्ध में जय पाने वाले चालुक्य (सोलंकी) वंशी स्वामीराज को मारा[2]) था"; परन्तु स्वामीराज कहां का राजा था इसका पता नहीं चलता।

मंगलीश विष्णु का भक्त था। उसने शक संवत् ५०० (वि० सं० ६३५) में बादामी के पहाड़ को कटवा कर गुफा रूप सुन्दर विष्णु का मन्दिर बनवाया (जब कि उसका भाई कीर्त्तिवर्मा राजा था), और लंजीश्वर नामक गांव उसके भेट कर

(१) तेन राज्ञा शंकरगणपुत्रं गजतुरगपदातिकोशबलसंपन्नं बुद्धराजं विद्राव्य चलिक्यवंशसंभवं अष्टादशसमरविजयिनं स्वामिराजं च हत्वा...... (इं० ऐं० जि० ७, पृ० १६१)

(२) कलचुरी (हैहय) वंशी राजा बुद्धराज का आनन्दपुर (गुजरात में) से दिया हुआ एक दानपत्र मिला है (एपि० इं० जि० ६, पृ० २९७–९९), जिस में उस को शंकरगण का पुत्र और कृष्णराज का पौत्र लिखा है। वह दानपत्र कलचुरि संवत् ३६१ (वि० सं० ६६७=ई० सन् ६१०) कार्त्तिक ब० १५ (अमावास्या) का है।

उसकी आमद से प्रतिदिन नारायण बलि करने, और १६ ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरान्त जो बचत रहे उससे परिव्राजकों (सन्यासियों) को भोजन कराने की व्यवस्था की थी। उसने अपने बड़े भाई के पुत्र पुलकेशी को, जो राज्य का हक़दार था, महरूम रख अपने पीछे अपने पुत्र को राज्य देने का यत्न किया, परन्तु उसमें उसको सफलता प्राप्त न हुई, किन्तु अपना प्राण भी खो(१)ना पड़ा।

मंगलीश की गद्दीनशीनी और देहान्त का संवत्।

रेवती द्वीप में नियत किये हुये ४ विषयों (ज़िलों) के हाकिम सत्याश्रय—ध्रुवराज इन्द्रवर्मा के दियेहुए शक संवत् ५३२ (वि० सं० ६६७=ई० सन् ६१०) के दा(२)नपत्र में विजयराज्य संवत्सर २० वां लिखा है। रेवती द्वीप मंगलीश ने ही विजय किया था,

(१) तस्याग्रजस्य तनये नहुषानुभावे लक्ष्म्याकिलाभिलषिते पोलिकेशिनाम्नि। सासूयमात्मनि भवन्तमतः पितृव्यम् ज्ञात्वापरुद्धचरितव्यवसायबुद्धौ ॥ स यदुपचितमन्त्रोत्साहशक्तिप्रयोगक्षपितबलविशेषो मङ्गलेशस्समन्तात्। स्वतनयगतराज्यारम्भयत्नेन सार्द्धं निजमतनु च राज्यञ्जीवितञ्चोज्झति स्म (एपि० इ० जि० ६, पृ० ५)।

(२) बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल जि० १०, पृ० ३६५।

अतएव वहां के हाकिम के दानपत्र का राज्य-संवत्सर (सन् जुलूस) यदि मंगलीश का राज्य-संवत्सर माना जावे तो उसके राज्य पाने, और कीर्त्तिवर्म्मा के देहान्त का समय शक संवत् (५३२—१९=) ५१३ (१) (वि० सं० ६४८=ई० सन् ५९१) स्थिर होता है। हैदराबाद दक्षिण से एक ताम्र(२)-पत्र शक संवत् ५३४ (वि० सं० ६६९) का मिला

(१) फ्लीट साहिब ने (इं० ऐं० जि० १९, पृ० ७—२०) मंगलीश के समय का महाकूट का लेख छपवाया है, जिसमें "तदुत्तरोत्तर-पवर्द्धमानराज्यपञ्चमश्रीवर्षे प्रवर्त्तमाने सिद्धार्थे वैशाखपूर्णमास्यामिमं प्रतिष्ठापितवान्" पढ़ा है; और सिद्धार्थ संवत्सर अर्थात् शक संवत् ५२४ को उसका पांचवां राज्यवर्ष मानकर वर्तमान शक संवत् ५२० ज्येष्ठ कृष्ण १ (वि० सं० ६५४) पूर्णिमांत और वर्तमान शक संवत् ५२१ (वि० सं० ६५५) वैशाख शुक्ला १५ के बीच मंगलीश का राज्य पाना निर्णय किया है, परन्तु उक्त साहिब ने उस लेख की जो छाप (फ़ोटो लिथो) दी है उसको सूक्ष्मदर्शक काच की सहायता से पढ़ो तो 'पञ्चम' शब्द स्पष्ट नहीं पढ़ाजाता इतना ही नहीं, किन्तु जिस अस्पष्ट अक्षर को वे 'म' (पञ्चम का) पढ़ते हैं उसके और ('श्री' वर्ष के) के बीच दो अस्पष्ट अक्षर और भी पाये जाते हैं उनका उन्होंने विचार नहीं किया। ऐसी दशा में जबतक किसी स्पष्ट लेख से उनका मानना विवाद रहित सिद्ध न हो तब तक हम उनके निर्णय को स्वीकार नहीं कर सकते।

(२) इं० ऐं० जि० ६, पृ० ७३।

है, जिसमें पुलकेशी दूसरे का तीसरा राज्यवर्ष होना लिखा है, अतएव मंगलीश का मारा जाना, और पुलकेशी का राज्याभिषेक शक संवत् (५३४—२=) ५३२ (वि० सं० ६६७=ई० सं० ६१०) में स्थिर होता है। इस हिसाब से कीर्त्तिवर्म्मा का २४, और मंगलीश का १९ वर्ष राज्य करना पाया जाता है।

मंगलीश के समय के दो शिलालेख, और दो दानपत्र मिले हैं, जिनमें से एक बादामी का ले[1]ख कनड़ी भाषा का है, जिसमें उपरोक्त लंजीश्वर गांव के दान का उल्लेख है। दूसरा शिलालेख महा[2]कूट का है, जो इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है। इन दोनों लेखों में संवत् नहीं है। नेरूर का दान[3]पत्र भी बिना संवत् का है, और उपरोक्त सत्याश्रय ध्रुवराज इन्द्रवर्मा का दिया हुआ दान[4]पत्र शक संवत् ५३२ (वि० सं० ६५७) का है।

---

(१) इ० एं० जि० १०, पृ० ६०।

(२) इं० एं० जि० १९, पृ० १६।

(३) इ० एं० जि० ७, पृ० १६१।

(४) बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल जिल्द १०, पृष्ठ ३६५।

प्रकरण तीसरा।

पुलकेशी दूसरा।

मंगलीश के मारे जाने पर उसके बड़े भाई का ज्येष्ठ पुत्र पुलकेशी दूसरा राजा हुआ, जो राजनीति कुशल, उत्साही, और बुद्धिमान होने से ही अपना गया हुआ राज्य पीछा लेने को समर्थ हुआ। मंगलीश और पुलकेशी के बीच के बखेड़े के समय पहिले के आधीन किये हुए कितने एक राजा फिर स्वतंत्र होने लगे, और शत्रुओं को उसका राज्य दबाने का अवसर मिला; परन्तु उसने अपने बाहुबल और बुद्धिमानी से सब उपद्रव शांत कर अपने राज्य को बहुत कुछ बढ़ाया। सोलंकीवंश में उसके समान प्रतापी दूसरा कोई राजा नहीं हुआ। उसके समय हिन्दुस्तान में दो ही प्रबल राजा थे। नर्मदा से उत्तर में कन्नौज का राजा श्रीहर्ष (हर्षवर्द्धन), और दक्षिण में पुलकेशी। श्रीहर्ष ने दक्षिण को भी अपने आधीन करने की इच्छा से उसपर चढ़ाई की थी, परन्तु पुलकेशी से परास्त होकर उसे लौटना पड़ा।

श्रीहर्ष जैसे महाप्रतापी राजा को जीतना साधारण गौरव की बात नहीं थी ।

उसके बिरूद 'सत्याश्रय', 'पृथिवीवल्लभ', 'वल्लभ', 'वल्लभराज', 'महाराज', 'महाराजाधिराज', 'भट्टारक', और 'परमेश्वर' मिलते हैं । वह शिव का परम भक्त था । शक संवत् ५५६ (वि० सं० ६९१= ई० सन् ६३४) में एहोले का लेख तय्यार हुआ उस समय तक का, अर्थात् उसके राज्य के पहिले २४ वर्ष का हाल उक्त लेख में इस प्रकार दिया है:—

"छत्र भंग होने (मंगलीश के मारेजाने) के समय राज्य पर शत्रुरूप अंधकार छागया, जिस को उसने अपने अतुल प्रतापरूप प्रकाश से मिटाया; ऐसे समय में अवसर पाकर अप्पायिक और गोविन्द अपने हस्ती सैन्य सहित भीम[1]रथी नदी के उत्तर के देश को जीतने के लिये चढ़ आये, जिनमें से एक[2] तो हारकर भाग गया, और दूसरे ने मैत्री करके लाभ उठाया; अपने

(१) भीमरथी नदी (भीमा नदी)=बम्बई हाते के अहमदनगर ज़िले में ।

(२) अप्पायिक ।

अजीर्ण दूर होता है खट्टी डकार नहीं आने देती दातों की तमाम बेमारियां दूर होती हैं पेचिश, छाती का दर्द या जलन, पेट की सब सिकायतें दूर होती हैं इसमे नशे की कोई चीज़ नहीं किसी तरह का नुकसान नहीं और बहुत स्वादिष्ट पान के बिना भी खा सके हैं कस्तूरी सोने के वर्क और २ कीमती चीज़ें इसमें पड़ती हैं प्रतिदिन का सेवन बहुत बिमारियों को रोकता है बुखार, हैज़ा, प्लेग, सरदी, खासी, दम आदि में छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब को पान में एक गोली से चार गोली तक उमर के अनुसार आराम करती है इसकी कीमत सर्व साधारण के लाभ के लिए बहुत ही कम रखी है अर्थात् प्रत्येक बोतल का जिसमें २०० गोलियां हैं कीमत ।) डाक-व्यय एक से बारह बोतल तक ।-)

(५) Pain Balm यह दवा गठिया, लकवा, जोड़, कमर, सीना, कंधे, पेट, सिर, दात, आदि का दरद वा सरदी, खासी आदि को वा कान के दरद को बाहर ही लगाने से आराम करती है प्रत्येक शीशी १) वी. पी. व्यय ।-)

(६) The Perfumed Hair Oil यह तेल गंज, खाज आदि को दूर करता है मगज को ठंडक देता है बाल बढ़ते हैं मूछे डाढी और पलकें बहुत बढ़ती हैं सिर और आंख की बेमारियां दूर होती हैं सुगन्धित है प्रत्येक शीशी ॥) वी. पी. व्यय ।-) दो शीशी तक।

(७) Eye Drops—यह दवा मंद दृष्टि आखो से पानी का आना आखो का दरद मास का बढना सूजना आदि आखों की अनेक बेमारियो को दूर करती है प्रत्येक शीशी ॥) VP व्यय ६ शीशी तक ।-)

(८) Ear Drops—यह दवा कान का दरद राध का बहना बहरापना आदि कान की सब बेमारियों को दूर करती है मूल्य प्रत्येक शीशी ॥) VP व्यय ।-)

(९) Ringworm Cure दाद और खाज वगैरहों के लिए इस दवा से और कोई उत्तम दवा नहीं है एक दफे लगाने से फिर होने का डरही नहीं होता मूल्य प्रत्येक शीशी ।) वी. पी. व्यय ६ शीशी ।-)

(१०) The Mild Purgative Pills इन गोलियों से हलका जुलाब होता है दस्त साफ आता है दुःख बिलकुल नही होता अजीर्ण जलन, बुखार आदि सब रोग दूर होते हैं मूल्य प्रत्येक शीशी ॥) वी. पी. व्यय ६ शीशी तक।-)

(११) Jvarasamhari—यह दवा समस्त प्रकार के बुखारों के लिए, जैसे रोजीना इकातरेका मोताजरा सरदी का आदि बुखार सब दूर करती है प्रत्येक वक्स का मूल्य १) वी. पी. व्यय।-)

(१२) The Innocent Hair Killer. यह दवा पाचही मिनट में मन चाहे बदन के किसी हिस्से के बाल उड़ाने के लिये प्रभावशाली है प्रत्येक शीशी मूल्य।) VP व्यय ६ शीशी तक।-)

(१३) The Aromatic Tooth Powder यह मंजन दांतोंकी सब बीमारियों के लिए लाभदायक है हाज़मा भी दुरुस्त करती है मूल्य प्रत्येक शीशी ≡) वी॰ पीव्यय ५ तक।-)

(१४) Specific for Involuntary Emissions and spermatorrhia. प्रमेहादि की अपूर्व औषधी।

मूल्य प्रति शीशी ॥) वी॰ पी॰ व्यय ६ शीशी तक।-)

(१५) Best muskor Kustoori काश्मीरसे आई हुई एकही तरह की और सबसे अच्छी मूल्य १) के ४८) फुटकर भी बिकती है वी॰ पी॰ व्यय अलग।

(१६) Specific for scorpion sting इस दवाके थोड़ी बूंदें उस जगह लगादो जहां पर डंक लगाहो लगातेही शीघ्र आराम होगा हर घरमें यह दवा रहनी चाहिए मूल्य प्रत्येक शीशी।) वी॰ पी॰ व्यय हिन्दुस्थान और बरमानें १से १२ शीशी तक।-) सीलोनमें वी॰ पी॰ व्यय १ से १२ तकके।≡)

नोट—ज्यो ख़रीदार एक दरजन शीशीयों से अधिक एक समय में लेगा उस को २॥) दरजन परही दी जायगी वी॰ पी॰ व्यय।-)

(१७ Healing Ointment. यह दवा हर क़िसम के पीप को दूर करती है बेमारी आदिकको जड़से खोती है जिससे फिर कभी उत्पन्न

ही नहीं होती मूल्य ॥) हिन्दुस्थान और बरमा में वी॰ पी॰ व्यय तीन शीशी तक के ।-)

(१८) The magic voice Pill यह गोलियें आवाज को साफ और तोकतदेती हैं गवैये लैकचरार पादरी आदि लोगों को बहुतही आराम देने वाली है गलेके खरखरे पन को दूर करती है-गाने वाले की आवाज को बहुतही साफ बना देती है, मूल्य १ शीशी ॥) वी॰ पी॰ १ से ६ तक ।-) हिन्दुस्थान और बरमा मे ।

(१९) Aromatic Toilet or Bathing Powder यह पाउडर नहाने के वखत जरूर चहिये यह बड़ी खुशबूदार चीज हैं कीमती साबुनकी जगह में भी इसही को काम में लाना चाहिए सब लोग मर्द औरतें दोनोंही के वास्ते बहुत लाभदायक है मैलापन पसीने की बदबू को दूर करती है बदन को साफ और चिकनाता है सुगंधित करता है हर आदमी को नहाते वख्त पास जरूरही रखना चाहिए मूल्य पर बाक्स ॥) वी॰पी॰ व्यय हिन्दुस्थान और बरमामें १ शीशी से ६ तक ॥)

(२०) Sanjiva Pills -गोलियां बुखार बदमिजाजी नींद का न आना दस्तका पतला होना सरदी, खांसी सिर को दरद और २ सब बेमारियों को ज्यो बालको के होती है बहुत लाभदायक है साथ ही बड़े आदमियों को भी अत्यन्त लाभदायक है-मूल्य प्रति शीशी ॥=) वी. पी. व्यय हिन्दुस्तान और बरमा में १ से ६ शीशी तक ।-)

(२१) Superfine Gorojan Pills -यह गोलिये सब प्रकार के बुखार रोजी ने, इकातरा, पसली, सोंना, मगज आदि के दरद को बहुत ही लाभदायक है और बदमिजाजी नींद का न आना सरदी खासी सिरका दरद और २ बिमारियां ज्यो बालको के हो जाती है उनको बहुत ही लाभदायक है मूल्य प्रति शीशी ॥=) डाक व्यय ।-)

(२२) Cure for skin Diseases इस दवा को ऊपर ही लगाने से शरीर में सब रोग याने खारिश खूटियां दाद फुनसी और मस्तक के खुजली खाज वगैरह बहुतही जल्द आराम होता है मूल्य ॥) वी. पी. व्यय २ बोतल के ५ आने

(२३) Kasasuvasany—यह बालों का तेल सबसे उमदा सब के पसन्द लायक ज्यो पूरब और पश्चिम में मुश्किल से मिलता है। इस के लगाने से बाल बढते हैं मूंछ और पलकें भी बढती हैं शिर और दिमाग और आखों को ठंडक पहुंचाती है गंज जखम आदि दूर करती है अंग्रेजी सुगन्ध वालों के लिए बहुत ही उत्तम है—मूल्य प्रति शीशी १) रुपया वी. पी. व्यय २ शीशी तक ।) आने—

सब से उत्तम गोरजन ५ रुपये तोला और सबसे उत्तम केसर १ रुपया तोला सबसे उत्तम सोधित कपूर २) रुपया तोला हमारे कारखाने में सब तरह के अतर भी मिलते हैं जैसे, गुलाब, खश खुश्बी, हीना, मोतिया, आदि आदि १॥) डेड़ रुपये फी तोले पर दिया जाता है वी. पी. व्यय अलग लिया जाता है।

नोट—सब प्रकार का पत्र व्यवहार अंग्रेजी भाषा में होना चाहिये।

मिलने का पता।

P. SUBBAROY,
PORTO NOVO, SOUTH,
Arcot District.

Please mention, the Samalochaka while ordering.

समालोचक में विज्ञापन की दर।

पहलीबार प्रति पंक्ति =)

छः बार के लिए -)   छपे विज्ञापन की बटाई ५)

वर्ष भर के लिए एक पेज २०) आधा पेज १२) १/४ पेज ८)

चौथाई पेज से कम का विज्ञापन नहीं लिया जायगा !!!

असली पान का मसाला।

कथ्था, चूना, सुपारी इलायची कोई चीज की ज़रूरत नहीं पानपर ज़रासा मसाला डालकर खाने से सब चीज़ों का स्वाद आता है मुंह लाल सुर्ख होता है दाम।) दर्जन २।) थोक लेने से और भी किफायत।

सैकड़ों अजीब चीज़ों से भरा हुआ हमारा बड़ा सूचीपत्र ज़रूर देखना—बेदाम भेजा जाता है—

पता-जसमाईन इंडिया एजन्सीकालवादेवी रोड, बम्बई।

विज्ञापन।

भ्रातृ द्वितीया नामक लेख की अलग भी कुछ प्रतियें तय्यार कराई गई हैं जिन महाशयों को चाहिये वे हमारे यहां से कीमत के =) आने डाकव्यय)॥ आध आना भेज करके मंगवा लेवें—

पुरानी फाइल।

समालोचक की पुरानी फाइल अब हमारे पास कम रह गई है जिससे लाचार हमको उसकी कीमत बढ़ानी पड़ी अब २) रुपये पर समालोचक की प्रत्येक वर्ष की फाइल मिल सकेगी जो महाशय अब भी चाहें लें, २) रुपये कीमत के प्रति वर्ष के डाकव्यय ४ आने भेज कर मंगालें इस कीमत पर हम जोलाई मास तक ही देंगे, पीछे इसकी कीमत और बढ़ा दी जायगी, ग्राहक महाशय मूल्य भेजना न भूलें, अवश्यमेव मूल्य भेजें या वी॰ पी॰ का आर्डर दें—   मनेजर।

प्राप्त स्वीकार

बदले में

लक्ष्मी उपदेश लहरी (हिन्दी मासिकपत्र), सौन्दर्य्य (गुजराती मासिकपत्र), भारती सर्वस्व (हिन्दी मासिकपत्र), कलाकौशल हिन्दी मासिकपत्र), चान्दसूरज (उर्दू मासिकपत्र), The Indian Sociologist (अंगरेजी मासिकपत्र) शेष फिर।

पुस्तके आदि।

१ श्री मती सुभद्रादेवी, मुरादाबाद (स्त्री प्रबोधिनी)

२ भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता—(शिवशम्भु का अंग्रेजी अनुवाद)

३ डाक्टर महेन्द्रलाल गर्ग, शिमला (पतिपत्निसंवाद, पृथ्वीपरिक्रमा)

४ मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को, जयपुर (भातृ द्वितीया)

५ The Telegraph office, Calcutta

1 Burke's speeches
2 Burnier's Travels in Hindushtan (India)
3 Stenart's History of Bengal
4. Antibiographical Memoirs of the Emperor Jahangir.

(शेष फिर)

विलम्ब का कारण।

प्लेग के कारण समालोचक बहुत देर से निकाला इस लिए पाठक क्षमा करें भगवान ने चाहा तो आगामि वर्ष से पत्र ठीक समय पर निकला करेगा ३ वर्ष तो जैसे तैसे शीघ्रही पुरा करने का उपाय करते हैं समालोचक के प्रेमियों को यह सुन कर बहुत आनन्द होगा कि विलायत तक के हिन्दी जानने वालों ने इसकी अच्छी कदर की है और लेख देने की भी प्रतिज्ञा की है।

मनेजर।

इधर ध्यान दीजिए।

समालोचक पत्र हिन्दी की जो सेवा करता है, वह पाठकों से गुप्त नहीं है। किन्तु इस पर हिन्दी हितैषियों की कृपा नहीं है। अनेक ग्राहक पत्र बराबर लेते चले जाते हैं परन्तु मूल्य देना 'पाप' समझते हैं और वी. पी. जाने पर 'इनकार' करके हानि करते हैं। अतएव यह संख्या उन ग्राहकों के पास, जिनने मूल्य दिया है, भिजवाते हैं। आगामि संख्या भी केवल उनहीं के पास भिजवाई जायगी जिनका स्वीकार पत्र आजायगा अन्यथा पत्र अब किसी को न भेजा जायगा—मनेजर।

उपहार की बात!

समालोचक के स्वामी आगामी वर्ष से उपहार देने का विचार करते हैं। उपहार कोई साधारण रद्दी पुस्तकों का नहीं होगा किन्तु उत्तम सर्व-प्रशंसित ग्रन्थ उपहार में दिए जावेगें। कालान्तर में इसका विशेष वर्णन कर दिया जायगा। केवल ग्राहकही (अग्रिम मूल्य देनेवाले) उपहार के पात्र होंगे। उपहार का मूल्य बहुतही स्वल्प होगा। ग्राहकों को जल्दी करना चाहिए।

देखिये!!!

संस्कृत कविपञ्चक छपकर तयार होगया है जिनके लेना हो शीघ्रता करके मंगवा लेवें दाम ॥।) डाकव्यय -)॥

मिलने का पता—

मेसर्स जैनवैद्य एण्ड को,

जयपुर।

Registered No. J. 11.

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि
ऋग्वेद

नया सन्दर्भ
चौथा वर्ष—अंक पहिला
अगस्त सन् १९०५
(क्रमागत संख्या ३७)

*स*मा*लो*च*क*

अग्रिमवार्षिक मूल्य
डेढ रुपया
विदेश में—
तीन शिलिङ्
एक संख्या
तीन आने

सूची

स्वामी और प्रकाशक—
मेसर्स जैनवैद्य एण्ड को, जयपुर

Vadic Press, Ajmer

समालोचक में विज्ञापन की दर।

प्रकाशक का निवेदन

यह समालोचक के चौथे वर्ष की पहली संख्या प्रकाशित की जाती है। अब पूरा प्रवन्ध कर लिया गया है कि इस पत्र के छपनेमें देर न हो। नए वर्ष मे और भी उन्नति की जारही है जो समय पर मालूम होगी। अभी तीसरे वर्ष के मई, जून, जुलाई के अङ्क छपरहे है प्रकाशित नही होसके। वे बहुत जल्द निकलेंगे।

जिन सज्जनो ने पिछले वर्ष वा वर्षों का मूल्य नहीं दिया है उनसे फिर सविनय निवेदन है कि वे अपनी मुट्ठी ढीली करें। सामयिक पत्र लेकर मूल्य न देना बहुत ही निन्दित काम है। उन्हें अनुमान नहीं है कि हम समालोचक के लिए कितनी हानि उठाते हैं, और आगामी वर्ष के लिए हम यह स्पष्ट कह देते है कि मुफ्त में पत्र बांटने से काम नहीं चलेगा यह अगस्त संख्या जिन्हें मिले वे या तो स्वीकारपत्र, या मूल्य या वी. पी. करने की आज्ञा भेजें। हम सितम्बर की संख्या वी. पी. से भेजेगें। हमें वृथा क्षति न होनी चाहिये इनका आहकों को कहां तक निवेदन करें।

बैनकबर्न

[सन् १३१४ में एडवर्ड दूसरे की आक्रमणकारिणी सेना को वीर रावर्ट ब्रूस के अधीन स्काटलेण्ड की सेना ने बैनकबर्न में बुरी तरह हराया था। उस समय का रावर्टब्रूस का युद्ध घोष, सुकवि रावर्ट बर्नस ने ओजस्विनी भाषा में लिखा है। उस की छाया देने का यत्न किया जाता है]

(१)

Scots, wha hae wi' Wallace bled,
Scots, wham Bruce has aften led;
Welcome to your gory bed,
Or to glorious victory!

वीरो! जो निजरक्त पात करते वैलेस के सङ्ग में,
वीरो! ब्रूस जिन्हें सजाय रण को है ले गया सङ्ग में;
आओ, स्वागत है, धरी रुधिर की शय्या रण क्षेत्र की,
या है जीत, महत्व-कीर्त्ति जिस की होती सदा साथ की!

(२)

Now's the day, and now's the hour;
See the front o' battle lower;
See approach proud Edward's power—
Edward! chains and slavery!

ये ही है दिन, काल भी अब यही, बेला यही आ गई;
देखो तो रिपुसैन्य ! आहव-घटा ये सामने आ गई;
देखो दर्पित एडवर्ड नृप की सेना बढ़ी ही चले—
होवै जो नृप-दास नीच, उसको दासत्व, बेड़ी मिले !

(३)

Wha will be a traitor knave ?
Wha can fill a coward's grave ?
Wha sae base as be a slave ?
Traitor ! coward ! turn, and flee !

होगा कौन स्वदेश शत्रु, खल जो विश्वास—घाती बनै ?
होगा कौन मलीन कापुरुष की जो जा समाधी भरै ?
होगा कौन कमीन हाय ! इतना जो दास जाके बनै ?
मोड़ो पीठ, स्वदेश शत्रु ! चल दो जल्दी, अरे कायरो !

(४)

Wha for Scotland's king and law,
Freedom's sword will strongly draw,
Freeman stand, or freeman fa' ?
Caledonian ! on wi' me !

वे हैं कौन स्वदेश के नृपति के औ' न्याय के वासते
खैंचेंगे अति वीरता सहित जो स्वातन्त्र्य के खड्ग को ?
या स्वाधीन रहैं डटे, यदि नहीं, स्वाधीन काटे मरैं ?
ऐसे वीर ! स्वदेशभूषण ! मुझे दे साथ, आगे बढ़ो !

(५)

By oppression's woes and pains !
By your sons in servile chains !

We will drain our dearest veins,

But they shall–they *shall* be free !

सोचो, सौंह करो सभी, स्मरण हैं अन्याय की यातना ?

क्या भूले ? सुत हैं त्वदीय सहते दासत्व की शृङ्खला ?

प्यारी भी निज नाड़ियां हम सभी खाली करें रक्त से,

होंगे किन्तु स्वतन्त्र वे, हम उन्हें स्वातन्त्र्य देंगे हठात् !

(६)

Lay the proud usurpers low !

Tyrants fall in every foe !

Liberty's in every blow !

Forward ! let us do, or die !

मानी जो अपहारि हैं झट उन्हें नीचा करो धूल में !

अन्यायी गिरते मरे समझना प्रत्येक ही शत्रु में !

है स्वातन्त्र्य सुवीर ! आज अपना प्रत्येक आघात में !

आगे हो ! बढ़ दो ! करें कुछ अभी, या नष्ट हों मृत्यु में !

अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

चारों वेदों के वेद्य, चारों वर्णों के भरण करने वाले, चारों आश्रमों के आश्रय, चारों दिशाओं में अदृष्ट होकर भी व्याप्त, चतुर्वर्ग के देने वाले, चारों युगों के रूप से सारे काल में व्याप्त, चतुर्वदन, तथापि चतुरवदन, चतुरात्मा, चतुर्व्यूह, चतुर्दंष्ट्र, चतुर्भुज, मन और वाणी, बुद्धि और इन्द्रियों से दूर, दिक्, काल, कार्य कारण भाव और अनुमानों से परे, परात्पर परमात्मा का परम कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करके आज समालोचक अपने जीवन के चतुर्थ वर्ष में प्रवेश करता है। उसी की परम कृपा का यह फल है कि नाना विघ्न बाधाओं, विलम्बों और विपर्ययों को अपनी बाल्यावस्था में सहकर

भी यह पत्र यथा कथञ्चित् अपने चतुर्थ वर्ष तक आ लगा है। क्या उस जगन्नाटक सूत्रधार का यह अभिप्राय तो नहीं है कि वह इस पत्र के बाल्य अङ्कों को दुःख में रंगा कर ज्यों ज्यों नाटक की प्रौढता होती जाय त्यों त्यों इसे सुखमय और सुखान्त बना देवे, क्योंकि प्रत्येक कुत्ते का भी दिन आता है, और शिशिर के शीत से ठिठिरे हुए कमलों पर भी अन्त को वसन्त का सूर्य चमकता है? जन्म ही से दुर्बलेन्द्रिय इस पत्र को यथासमय निकालने के यत्नों में स्वामी और सम्पादक सफल नहीं हो सके हैं, तथापि, अपत कटीली डार में "वे फूल" की आशा में उरझ कर वे इस वर्ष पहिले वर्षों की हतसफलता से शिक्षा लेकर भरपूर यत्न करेंगे कि अपनी दीर्घसूत्रता के कलङ्क को धो कर यह पत्र न केवल मातृभाषा हिन्दी की सेवा में अग्रसर हो, प्रत्युत उस के गौरव को अक्षुण्ण रखने में किसी प्रकार की कमी न रखकर अपने लिये हिन्दी के सर्वप्रधान मासिक पुस्तक का आसन पावे। परन्तु इस सम्पूर्ण आशासमुदाय पर तुषारपात न हो, और कार्यक्षेत्र में इसको लानेपर अदृष्टश्रुत विघ्न न आजांय, इसलिए शिष्ट सम्प्रदायानुमोदित मङ्गलाचरण करने में उस परममङ्गलमय की निष्काम भाव से स्तुति करते हैं। यदि कुछ हो सकता है, तो उसी की कृपाके लेश से, क्योंकि—

> नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
> न मेधया न बहुना श्रुतेन।
> यमेवैष वृणुते तेन लभ्य
> स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्।

तथापि, जब हृदय में यह विचार उठता है कि क्या हम इस योग्य हैं कि वह हमें "वृणुते तनूं स्वां" का पात्र समझे, तब हृदय में शून्यता आजाती, सिर में चक्कर आता है और चारों दिशाओं में

अन्धकार छा जाता है। जिस देश का आदर्श यह है कि मनुष्य का बड़प्पन इस से नहीं नापा जाता कि उसने इतने सच्चे काम इतने सच्चे आदमियों के सामने किए, प्रत्युत इससे कि कितने आदमियों को सफलता पूर्वक उसने धोखा दिया, कितने आदमी उसके बड़प्पन के घूंघट के भीतर दुराचार की भद्दी सूरत को न देख सकने में छले गए,—जहां का कर्मकाण्ड कटोरी मांजना और घण्टा बजाना, जहां की भक्ति अगले दोनों पैर रस्सी से बांध कर विचरने वाले शीतलावाहनों की तरह चैत्र की चांदनियों में रुकना और बनारसी दुपट्टों के भीतर अपने दुराचार जनित कुष्ठों को छिपाना है, जहां का ज्ञान दिन रात भंकते रहना और वे समझी से मनुष्य मनुष्य के पवित्र सम्बन्धों का नाश करना है वहां के मनुष्य, वहां के वे मनुष्य, जिन के हाथ अपात्रप्रतिग्रह से, मन परस्त्रीचिन्तन से, मुख परान्न से, और सम्पूर्ण अंश और भविष्यत् आशा अशिक्षित दासीकृत, और जीवन्मृत स्त्रियों की हाय से जल कर राख हो चुके हैं, किस प्रकार उस दैवी ज्योति के अलौकिक और शान्तिदायक प्रकाश की पवित्रता में अपने पापों को धो छिपाने की आशा कर सकते हैं? यही स्फिङ्क्स् की पहेली है, जिस का समाधान "समय" करै सो करै, हम तुम नहीं कर सकते।

———o———

अस्तु, **समालोचकका नया वर्ष** प्रारम्भ होता है। इस समय पिछले वर्ष की घटनाओं की ओर दृष्टिपात करना उचित है। इसके पहले कि हम उन बातों पर से भूल का पर्दा उठावें जो कुछ ही काल पहले वर्त्तमान थीं हमें एक प्रश्न पूछना चाहिये। क्या गतवर्ष में हिन्दुस्थानी राष्ट्र, हिन्दीभाषा और हिन्दू धर्म अपनी "पक्के गौरव" अवस्था से एक पद भी आगे बढ़े हैं? क्या धर्मसंस्कार, जो वास्त-

व में मनुष्यमात्र के जीवन का संस्कार होगा, एक पद भी अग्रसर हुआ है ? क्या समाज सरोवर की दुराचाररूपिणी दुर्गन्धिमय काई हाथ दो हाथ भी अलग की गई है ? क्या भाषा का पवित्र जल लाने वाली लहरों का मार्ग कुछ सरल बनाया गया है ? एक बात में क्या भारतवर्ष और भारतवासी, सर्वतोमुख उन्नति में, चारों ओर से बढ़कर शुभ परिणाम की ओर एक इञ्च भी बढ़ सके हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में किसी प्रकार की 'ननु नच' करके अपने आत्मा को धोखा नहीं देना चाहिये क्योंकि सबसे बड़ा पाप जो मनुष्य कभी कर सकता है अपने अन्तरात्मा को धोखा देकर उस की संशोधक और मार्गदर्शक उपदेशवाणी का गला घोटना ही है। यद्यपि क्लैव्य एक बुरी चीज़ है परन्तु अपनी वास्तव दशा को न जान कर सदा सब्ज़ी ही सब्ज़ी देखते रहना या देखते रहने का बहाना करना शुतुर्मुर्ग की सी पण्डिताई है जो पीछे शिकारी को आता देख कर अपना सिर बालू में छिपा लेता है, और समझता है कि मेरा सारा देह ही छिप गया। अतएव हमारी समझ में इस प्रश्न का उत्तर नाक छिपाकर यही देना पड़ता है कि गतवर्ष में भारत और भारतवासी अपने पद से कुछ भी आगे न बढ़े सन्देह यही है कि वे कुछ पीछे ही हट गए हैं। शताब्दियों के नासूरी अज्ञान और स्थितिस्थापकभाव की कृपा से आगे बढ़ना तो कठिन ही था, परन्तु राजकीय परिवर्त्तन शालिनी नीति ने यदि हमें पीछे न ढकेल दिया हो, तो ही हमें परमेश्वर की असीम कृपा का आभार मानना चाहिये। स्पष्ट कहना उचित है कि गत वर्ष कार्य्य का वर्ष न था, और न चिन्ता का वर्ष था, वह केवल—

कोलाहल का संवत्सर

था। दीपमालिका के रात्रि शेष में हिन्दू एक रीति निबाहा करते हैं। रातभर दरवाज़े खुले छोड़कर, हम लोग सवेरे सब जगह

बुहारी देते हैं, और सूप या चलनी पर लकड़ी के आघात से विलक्षण बाजा बजाते हुए "अलक्ष्मी" को अपने घर से निकाल दिया करते हैं। मालूम होता है, भारतवर्ष के सभी हितैषी—हम इस शब्द को चाहे किसी अर्थ में लें—इस प्रकार अलक्ष्मी के निकालने के कोलाहल में वर्षभर बिता देते हैं, क्योंकि अलक्ष्मी की मौरूसी जायदाद और पूर्ण अधिकार यदि कहीं पर है तो भारतवर्ष में। कोलाहल का आरम्भ, मान्यवर वायसराय लार्डकर्ज़न के छुट्टी जाने के समय से लेना चाहिए। भारतवासी कभी भी श्रीमान् का इस देश में फिर पधारना नहीं चाहते थे, और स्पष्टरूप से उन्हें कह चुके थे—

अपाः सोम मस्तमिन्द्र प्रयाहि
कल्याणीर्जाया: सुरणं गृहं ते।
यत्रा रथस्य बृहतो निदानं
निवेशनं वाजिनो दक्षिणावत्॥

और श्रीमान् को भी उचित था कि उस समय अपनी सर्वतोभद्र प्रवल शक्तियों को विश्राम देते। परन्तु भारतवर्ष का राजभोग सदेह स्वर्ग में रहने के समान है जिस के लिए कमज़ोर हृदय के मनुष्य तो यह प्रार्थना तक करने को तैयार हो सकते हैं "मरे पीछे भूत बनें तो भी भारतवर्ष में"। इधर भारतवर्ष में लार्ड एम्पथिल अपने पूर्वज के दिये हुए भारतवर्ष की फटी जेब को फाड़ने वाले वीतराग लामाओं के शिकार के निबाहने में लगे हुए थे, और उधर विलायत में मान्यवर महोदय भारतवर्ष के सूर्य की स्तुति, अपने चरणारविन्दों के पधारने को वृष्टि का कारण, और इटन कालेज के भारतवर्ष के वायसरायपने के ठेके की चर्चा कर रहे थे, इतने में जगदीश्वर की शक्ति ने सहृदया लेडीकर्ज़न को भयङ्कर कष्ट में भू-

तलशायिनी बना दिया। "यदनेन तरुर्न पातितः शमिता तद्विटपाश्रिता लता"। परम प्रबल वायसराय पर भी इस तरह कोई बलवती शक्ति प्रभाव डालकर उन के गमागम को रोक सकती है, इस ज्ञान के साथ देशदेशान्तरों की सहानुभूति का कोलाहल हो ही रहा था, इतने में श्रीमान् की वापसी पर उन के स्वागत करने का व्यवहार साधना बम्बई के सामने आया। श्रीमान् की इस अनुपस्थिति में भारतवर्ष की दशा प्रोषित भर्तृका कीसी बिलकुल न थी, जो "मीलयित्वा दृशौ" वियोग के दिनों को गिना करती है, प्रत्युत समस्त देश भयङ्कर स्वप्न में छाती पर चढ़े पत्थर तोड़ने वाले को देख, जागे मनुष्य के समान शान्ति के साथ विश्राम का श्वास लेरहा था। कलकत्ते जैसे जमीन्दार बहुल शहर में श्रीमान् का "त्वमर्कस्त्वं सोमः" स्वागत होना कठिन न था, परन्तु बम्बई में, अध्यवसायी पारसी और स्वतन्त्रचेता महाराष्ट्रों की बम्बई में ऐसा होना एक प्रकार असम्भव था। बम्बई के विना मुकुट के राजा सर फिरोज़शाह मेहता के काम और भाषणों के कोलाहल ने श्रीमान् को सब से न्यून अधिक सम्मति से सूखा सन्मानपत्र दिलाया, और स्वागत के दिन राजभक्तों और सेवकों का स्वागत था, प्रजा का और देश का नहीं। यही दिखाने को कि बम्बई नीरस नहीं है, और स्वागत कर सकती है, और जिन का वह आदर करना चाहती है उन्हें अपना हृदय अर्पण कर सकती है, कुछ ही सप्ताह पीछे "बम्बई और उस की स्त्री" अपने मेलेके वेश में वासकसज्जा बनकर अपनी पिछली उदासीनता को भुलाने लगी। पाठक, जानते हैं यह स्वागत किस के लिए था? यह किसी पत्थरफोड़ शासक के लिये बलात्कारसे मुस्कुराते हुए ओठों का स्वागत न था, परन्तु एक ओर शिक्षित भारतवर्ष के स्वार्थशून्य कर्मवीरप्रतिनिधियों का स्वागत था और दूसरी ओर "तत्रैव वाह्य

स्तव नृत्यगीते" कह कर स्वर्गीय सिविल सर्विससे पृथक् होने वाले, दुर्बलों के बल, सर हैनरी काटन का स्वागत था। इधर प्राचीन विद्वानों का पञ्चाङ्गसंशोधन का कोलाहल था, और उधर नवीन राजनैतिकोंका षाड्गुण्य राजनीति के सुधारने का कोलाहल था। उस समय को स्मरण करके, देशभर के भिन्नभाषी, भिन्नाचारी और भिन्नकर्मा सज्जनोंके एक विचार और उद्देश्यसे व्रती होना, अनमेल में मेलका एक अपूर्व निदर्शन था। महराष्ट्र और मद्रासी सज्जनों के व्याख्यानों का गम्भीर और विषयगुरु स्वर, वङ्गाली वक्ताओं के चपल और वचनशूर भाषणों की तुलना में अच्छा जंचता था। सर हैनरी काटन-अहा! न त्वा कामा बहवो लोलुपन्त:-नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्या:। इस समस्त कोलाहल से यह बात अवश्य सिद्ध होगई कि बम्बई, और बम्बई के माने सर फिरोजशाह, जिस काम को हाथ में लेंगे उस में सफलता अवश्य होगी यदि अधिकारी बीच में पड़कर भांजी न डाल दें। इस सिद्धान्त के उत्तरार्ध को सिद्ध करने का मौका भी इस कोलाहल के कुछ ही पीछे एक दूसरे कोलाहल के रूप में आपहुंचा। इसी कोलाहल में विलायत में जाकर आन्दोलन मचाने की कोलाहलपरम्परा का बीज बोया गया। बम्बई विश्वविद्यालय में विश्व विद्यालयों को सरकारी कठपुतली बनाने के नियम से भी कुछ बातें बढ़ कर की गईं थी, और जब भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्त बिना समझे ही इस नियमविरोधको पी गये थे, बम्बई के सदा जागरूक कांग्रेस नाइट की दृष्टि से वह न बच सका। इस के पीछे कैसे सर फिरोजशाह की सूचना की अवहेलना हुई, कैसे मामला हाईकोर्ट में पहुंचा और कैसे भारतव्यापी मुकद्दमों में सरकार की वे सरकारी बेआइनी कार्रवाई का पराजय होने के भय से झटपट कृतरक्षक बिल घुसेड़ी गई, ये सब बातें

इतिहास में दुःख के साथ पढ़ी जायगी। क्योंकि नियमों के पालन के विना कर्तृपक्ष की उच्छृङ्खलता को कोई नहीं रोक सकता, और यदि कर्तृपक्ष के प्रत्येक स्वेच्छाचार पर एक कृतरक्षक नियम पास कर दिया जाया करेगा तो कार्यकर्त्ताओं की शक्ति ईश्वर के समान हुई या नहीं? यद्यपि पीछे इस विषय में और प्रान्त भी जागे थे तथापि बम्बई की ओर से मि० गोखले ने इस समय कौन्सिल में जो स्पष्टवादिता और विरोध कुशलता दिखाई उसे देख कर और कोई होता तो कह उठता, "त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा!" परन्तु क्या कालिय पर नाचने वाले भगवान् कालिय का शिर उठाना पसन्द करते? कर्जन महोदय ने गोखले के कथनों पर कटाक्ष किये, उनके मित्रों के विद्या प्रेम पर संशय किये और "सरकार के शत्रुओं" की इन कार्य्यवाहियों पर न मालुम किस पिशाच के प्रभाव से असत् आक्षेप किये। मालुम होता है, भारतवासियों का भूत उन्हें रात भर सताता रहा और दूसरे दिन कलिकाता विश्वविद्यालय में उनने भारतवासियों के सत्य के आदर्श, धर्म के आदर्श, खुशामद, परनिन्दा आदि की ऐसी बुरी टीका की कि देश भर मर्माहत हो गया। सारे देश में आग लग गई। लोग कोरिया में प्रचारित परम सत्य का स्मरण कर के विस्मय करने लगे। इस के पीछे जो कोलाहल हुआ, प्रत्येक प्रधान नगर में और लण्डन में गम्भीरचेता शान्तदान्त वृद्ध पुरुषों की अध्यक्षता में किस प्रकार विना कोलाहल के कोलाहल से भारतवर्ष के सत्य की मान रक्षा करके राजनैतिक आन्दोलन में एक पद आगे उठाया गया वह भारतवासियों का दोष नहीं है, क्योंकि अत्यन्त घर्षण से चन्दन से भी अग्नि उत्पन्न हो जाया करती है। इस आलर्क विष से मत्त होकर, और अपने प्रिय पुत्रों की इस कलङ्कपङ्कलेपना को न सहकर, भगवती भूतधात्री क्षमा से न रहागया

और उस पवित्र देश में जहां पाणिनि ने विपाशा के उत्तर के कूप तक गिनकर अपने सूत्रों द्वारा उनका उल्लेख किया था, और जहां सत्य के मार्गों को बताने वाले स्मृति और सूत्रों की रचना हुई थी, इस असत्य के भय से भगवती कांप उठी और अपने ऊपर कांगड़े के गजनवी के मान का गंजन करने वाले किले को गिरा कर मानो उसने छाती पर मुक्का मारा। कई शताब्दियों से बकरों को काटने वाले पुजारी " इष्टिपशुमारं " मारे गये। अग्नि की सातों जिह्वाओं में से 'मनोजवा' ज्वालामुखी 'कराली' बनकर अपने भक्तों ही को खागई। कन्वोकेशन व्याख्यान की इस पृथ्वी को प्रोटेस्ट के साथ कोलाहल भूगर्भ में भी पहुंच गया। प्रोटेस्टमीटिङ्ग के सम्बन्ध में एक बात और हो गई है जिस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया है। युक्त प्रान्त की नियम बनाने वाली कौन्सिल के सब से युवा मेम्बर ने, जिन्हें, पायोनियर के शब्दों में " वह भयङ्कर भाषण की शक्ति है जिससे वे सदा अपने को डिवेटिङ् सोसाइटी में ही समझते हैं" बजट के भाषण के दिन महाभारत प्रभृति के श्लोकों को उद्धृत करके भारत के सत्यका मण्डन और विरुद्ध पक्षका खंडन शासकों के नाक के नीचे ही कर दिखाया। इधर पोर्ट आर्थर के पतन और सुशीमा के घोर पराजय से, जिनमें, घायल रूसियों के मिस से यूरोपकी विजयलक्ष्मी के अश्रुविन्दु पड़ गये, एक अद्भुत कोलाहल उत्पन्न हो गया जो रूसके आभ्यन्तर गदर और बखेड़ों से अपने रङ्गको बढ़ाता गया। इधर यह समझ कर कि इतने कोलाहल से भारतवर्ष घबड़ाया नहीं है, युद्ध विभाग से निकम्मे समझ कर निकाले मि० ब्राडरिक ने सेनासंशोधन के विषय में लार्ड किचनर को कोरा कार्ड देदिया, और कर्जन और उनके सहयोगियों के तर्कों का कर्तन करके उन्हें किचनर के बिल चुकाने मात्र का काम दिया। इस समय लार्ड कर्जन

भारतवर्ष के धन के व्यय के पक्ष में थे और जब उनने जान लिया था कि विलायत वालों का प्रेम उनकी प्रतिमा के मट्टी के चरणों को छोड़ कर किचनर पर लग गया है, तब उन्हें उचित था कि "अति दीर्घं जीविते को रमेत' कहकर पृथक् होजाते। परन्तु "अर्थ लोको नास्ति पर इतिमानो" चेपाचेपी से 'रामाय स्वस्तिरावणाय स्वस्ति' करके किसी प्रकार उनने अपने समय को पूरा करना ही विचारा है। इसमें श्रीमान् का जो अपमान हुआ उसके प्रायश्चित्त की तरह बङ्गाल के अङ्गभङ्ग का विषय श्रीमान् की मधुर मन्शा पर छोड़ दिया गया। और श्रीमान् ने अब तक के वङ्गदेशियों के कोलाहल और विलाप को पर्याप्त न समझकर उन पर यह वज्रपात कर ही दिया! यद्यपि बङ्गाल का अङ्गच्छेद एक निरपराध प्रबन्ध सम्बन्धी काम दिखाई देता है तो भी उपचीयमान बङ्गाली जाति और एकता पर नए पेड़ को चीरने के समान, इसका अन्तिम परिणाम बहुत बुरा होगा। यह आवश्यक बात नहीं है कि जब भारतवर्ष भी एकराष्ट्र हो जायगा तब उसका शासन भी एक प्रान्त की तरह से होगा परन्तु पृथक् होना चाहने वाले बिहार को पृथक् न करके चाहने वाले बङ्गालियों के दो खण्ड करना उसी पालिसी का अङ्ग है जो भारतवर्ष को शताब्दियों पीछे ढकेल रही है। यह मानो नए कोलाहल की साई है, क्योंकि बङ्गाली वह बला हैं कि चुपचाप इस "कटु औषधि को आंख मूंदकर" नहीं पिएंगे। अब हमारे कथन की फिर आवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं कि यह वर्ष कोलाहल का वर्ष ही रहा है। जब यह धूम हटजायगा, तब क्या वास्तव में नीचे कुछ अग्नि बच जायगी या केवल वर्त्तमानों की आंख फोड़ने ही को यह धुंआ है, यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु राक्षसी वाणी ने भारतवर्ष का बड़ा अपकार किया है, इसमें कोई संदेह नहीं—

ऋषयो राक्षसी माहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।
सा योनिः सर्ववैराणा सा हि लोकस्य निर्ऋतिः ॥
कामान् दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्त्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति ।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥

भगवान् करे, द्वितीय प्रकार की वाणी का उपयोग करने वाले शासक और शासित इस देश में हों।

* * *

बृहद्देवता--ऋग्वेद के किस मन्त्र का कौन ऋषि है, कौन छन्द है, कौन देवता है और क्या काम उस मन्त्र से लिया जाता है, ये सब बातें "सर्वानुक्रमणी" नामक पुस्तक में लिखी हैं। शौनक मुनि के नाम से "बृहद्देवता" नामक एक ग्रन्थ और भी प्रचलित है जिस में भी ये सब बातें लिखी हुई हैं। उस में केवल यही नहीं है परन्तु छोटे छोटे छन्दों में कई वैदिक उपाख्यान भी लिखे हैं जिन का सम्बन्ध कई मन्त्रों से है। इस से वैदिक पढ़ाई में यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। इस का एक संस्करण कलकत्ते की "बिब्लोथिका इण्डिका" में डाक्टर राजा राजेन्द्रलाल मित्र का शोधा हुआ छपा था। दूसरा अभी अमेरिका में छपा है। वहां हर्वर्ड युनिवर्सिटी एक प्राच्य पुस्तकमाला निकालती है। जिस में अब तक जातकमाला, सांख्य प्रवचन भाष्य, बौद्धधर्म के तर्जुमे, कर्पूरमंजरी और अथर्ववेद संहिता इतने ग्रन्थ छपचुके हैं। बृहद्देवता उसी माला में, दो भागों में, छपी है। एक में सम्पादक की भूमिका और खूब शोधा हुआ मूल पाठ है। उसके पीछे बहुत ही सुन्दर सूची और अनुक्रमणी हैं। दूसरे भाग में प्रतिश्लोक अनुवाद और पाठान्तर लिखे गये हैं। इसके

सम्पादक मेक डानल साहब हैं जो आक्सफोर्ड में बोडन संस्कृताध्यापक हैं। इस संस्करण में मूल पाठ के बनाने में बड़ा परिश्रम किया गया है। यूरोप में जितने बृहद्देवता के पुस्तक मिल सके वे सब मिलाये गए हैं और डाक्टर मित्र के संस्करण की भी पूरी सहायता लीगई है। अनुवाद भी बहुत अच्छा हुआ है। परन्तु डाक्टर मित्र के संस्करण की, भूमिका में, बहुत ही निन्दा कीगई है। कहा गया है कि उसमें कई श्लोक बार बार लिखदिए गए हैं, अच्छे पाठ नोटों में दिए गए हैं, और प्रति पंक्ति पाठ में एक भूल के हिसाब से पुस्तक में भूलें हैं, कहीं कहीं सात सात भूलें तक एक एक पङ्क्ति में हैं। एक जगह एक कथा लिखकर भारतवर्ष के प्रूफ संशोधन और पाठान्तर विवेचन की दिल्लगी उड़ाई गई है। कहा गया है कि विब्लेोथिका में पुस्तक छापने के निममों में एक यह भी है कि कम से कम तीन पुस्तकों में पाठ न मिलाकर न छापा जाय। एक विद्वान् किसी पुस्तक का संस्करण छापना चाहते थे, परन्तु उनके पास एक ही प्रति थी। अत एव, उनने अपने पण्डितों को काम में लगाया, और तीन प्रति तैयार होकर वह पुस्तक छाप दीगई। हम भी कहते हैं कि प्रूफ देखनेऔरपाठान्तर जांचनेकी प्रवृत्ति भारतवर्षके विद्वानों में बहुत ही कम है। यही नहीं, ज्यों ज्यों सम्पादक की प्राचीन ढंग की पण्डिताई की मात्रा बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उनकी पाठान्तर शोधने की ओर उपेक्षा बढ़ती जाती है। सब से शुद्ध संस्करण, भारतवर्ष में, निर्णयसागर प्रेस के होते हैं, और विब्लेोथिका में संस्कृत पुस्तक यदि किसी एम ए बीए का सम्पादित है, तब तो खैर, नहीं यदि किसी न्याय पञ्चानन्न के हाथ पड़गए, तब तो खूब ही पाठो की हत्या होती है। शोधने में जितने उदासीन, अनपेक्ष और अनभिज्ञ काशी के विद्वान् हैं इतने और कहीं के नहीं। परन्तु डाक्टर

मित्र पर यह कलङ्क मेकडानल साहब ने ठीक नहीं लगाया है। उनकी विद्वत्ता के आगे कई पश्चिमी पुरातत्ववेत्ताओं का ज्ञान पानी भरता था। क्या मैकडानल साहब को यह नहीं मालूम है कि डाक्टर मित्र ने बृहद्देवता का संशोधन हाथ में ही लिया था, परन्तु उसे वह पूरा न करसके? सम्भव है उनके सहकारी पण्डितों के संशोधन को दोहराने का उन्हें समय ही न मिल हो। यह संस्करण उनकी मृत्यु के पीछे प्रकाशित हुआ है। एक जगह स्पष्ट लिखा है कि डाक्टर मित्र ने यहीं तक शोधा है, आगे का भाग उनके शोधन का लाभ न उठा सका। मेकडानल साहब का संस्करण अवश्य डा० मित्र के संस्करण से अच्छा है, बहुत अच्छा है, परन्तु वह बना है उसी के आधार पर जिस वृक्ष के सहारे टहनी पर, चढ़गए, उसी वृक्ष को काटने लगना, हम नहीं जानते, क्या आक्सफोर्ड में पण्डिताई गिनी जाती है? यह तो हो नहीं सकता कि जान बूझकर मेकडानल साहब के सदृश विद्वान् सत्य का अपलाप करें, और डाक्टर मित्र के संस्करण को उनने इतना अधिक काम में लिया है कि यह "स्पष्ट लिखी" बात उनकी दृष्टि में न आई हो। अत एव यह हमारा ही दोष है कि डोक्टर मित्र के संस्करण को पढते समय हमारी दृष्टि उस नोट पर पड़ गई थी, और मेकडानल के संस्करण को पढते उनकी तीन प्रतियों वाली आख्यायिका पर।

* * *

जुलाई की सरस्वती अपने चित्रों की सुन्दरता और संख्या से अपनी प्राचीन संख्याओं से बढ़ चढ़ कर है। नेपाल और फिजी द्वीप वासियों के वर्णन पढ़ने योग्य है। सौभाग्यवती रामदुलारी दुबे का उत्साह बढ़ाया जाना चाहिये। हां, गत अङ्कों से सरस्वती की कविता कुछ आदर्श से उतरने लग गई हैं, उस में भावों का अभाव

होता जाता है। लाला पार्वती नन्दन की सरकारी भाषा दुर्बल होने पर भी मनोरञ्जक होती है। परन्तु सब से अधिक ध्यान देने के योग्य निबन्ध, इस संख्या में, सम्पादक का " मथुरा मास्टर " का चरित्र है। सम्पादक ने उत्तर भारत के अच्छे अंगरेजी पण्डित का मान कुछ कम ही रक्खा है। स्थान २ पर उनकी दिल्लगी उड़ाने का यत्न किया गया है। लेखक को कुछ असद् शब्द का प्रेम अधिक होता जाता है। जब हम छठे क्लास में नैसफिल्ड की ग्रामर पढ़ते थे, तब उस में एक ऐसे महावरे का जिक्र पढ़ा था, जो प्राय. अंगरेजी में नहीं आता। फुटनोट में नेसफिल्ड साहब लिखते हैं कि मैं इस प्रयोग को नहीं जानता था, परन्तु मथुराप्रसाद मिश्र ने मुझे इस का व्यवहार समझाया था। काशी के पुराने विद्वान् कहा करते हैं अंगरेजी पढकर काशी में दो भ्रष्ट न हुए-एक तो बाबू प्रमदादास मित्र और दूसरे पण्डित मथुराप्रसाद मिश्र जिनने अन्तकाल में अंगरेजी बोलने का त्याग करदिया था, और जो गले में गुलूबन्द न बांधकर कपडे में रुई भराकर उसे लपेटते थे। क्या अच्छा होता यदि सम्पादक महाराज उनके गङ्गाजल के प्रोक्षण और गीता पाठ से कुछ अधिक सहानुभूति दिखा सकते ! मिल्टन के विषय में डाक्टर मेसन ने कहा है "छोटों को बड़ों के दोष भी भक्ति के साथ कहने चाहियें।"

* * *

हिन्दीप्रदीप का भी नया संस्करण हुआ ! पांच छै महीने से वह नए सिरे से ठीक समय पर निकलने का उद्योग करता है। जिन नए पत्रों को वह नाक चढाकर देखता था, उनसे उसने समय पर निकलना, सम्पादक से भिन्न देश देशान्तर के लोगों से लिखवाना, और टिप्पणियां देना सीखा है; परन्तु यह हमें पसन्द नहीं। हिन्दीप्रदीप, भारतवर्ष में और हिन्दी में, एक प्रकार का एडिसन का स्पैक्टेटर

है। उसमें हमें भट्टजी की लेखिनी से जितना कुछ मिल सके पाने की आशा करनी चाहिये। और लोगों के लिये लिखने को और पत्र ही बहुत हैं। भट्टजी भी औरों को लिखता देख कर अपना लिखना कम कर देंगे जो हम लोग कभी नहीं चाहते। हम चाहते हैं, भट्टजी के पत्र में "भट्टजीपना" कम न हो।

* * *

सुना है कि सुदर्शन फिर दर्शन देने वाला है। अबके उसके नए उत्साह से निकलने का एक बड़ा भारी कारण है। काशी में रमेशचन्द्रदत्त के "भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास" का हिन्दी अनुवाद निकला है और वह हिन्दी पत्र सम्पादकों को, जो "इसमें लिखी बातों के समझने के एक मात्र उपयुक्त पात्र हैं" बिना आज्ञा के समर्पण किया गया है। सुना है उस पुस्तक का स्वतन्त्र खण्ड छापने को सुदर्शन जलदी कर रहा है। अच्छी बात है। जो "नया उत्साह" अकाल जलदों के समान बिना केन्द्र के मंडरा रहा था, उसे यह केन्द्र मिला। महामण्डल का अनन्त झगड़ा, बेबर के भ्रम का पातालभेदी विचार, सम्भव असम्भव का तूफान और स्वार्थान्धप्रकाशिका के खण्डन का परिकरबंध भी जिस सुदर्शन की नियत समय पर निकलने की शक्ति को न जमा सके, उसे यही बात उठावे तो सही। "मलय मरुतां वाता वाता, विकासितमल्लिकापरिमलभरो भग्नो ग्रीष्मस्त्वमुत्सहसे यदि। घन! घटयितुं तं निःस्नेहं य एव निवर्तने प्रभवति गवां, किं नश्छिन्नं? स एव धनंजयः"। सुदर्शन के निकलने में हमें एक और स्वार्थ है। उस के सम्पादक महाशय ने समालोचक के स्वामी को एक पत्र में लिखा था "आगामी श्रावण की संख्या में सुदर्शन समालोचक का स्वागत करेगा"। उस श्रावण को दो वर्ष बीत गये, पर हमारा स्वागत नहीं हुआ। वास्तव

में हमारे दुर्भाग्य से ही ऐसा हुआ है। सुदर्शन से हमारा एक और भी निवेदन है। वह यही कि दत्त के इतिहास की समालोचना करते समय वह इस बात का अवश्य ध्यान रक्खे कि बङ्किम बाबू का कृष्णचरित्र ही संसार भर की विद्याओं का सार नहीं है। कृष्ण चरित्र के मत के भरोसे जगत् भर के पीछे लाठी धरना ही पाण्डित्य की पराकाष्ठा नहीं है।

* * *

वैश्योपकारक पत्र, हमें आज मालूम हुआ, एक सम्पादक मण्डली से सम्पादित हुआ करता है। जब से निगमागम मण्डली भारतधर्ममहामण्डल में लीन होगई वा उसे लीन करगई, तब से हमें मण्डली नाम से कुछ भय होगया है। जो हो, मण्डली के सभी मण्डन एक गुण में तो एक ही नदी के वट्टे जान पड़ते हैं। वह गुण है, व्यङ्ग्य लिखना। प्रत्येक पङ्क्ति में व्यङ्ग और वक्रोकि की चिनगारियां फूटती हैं, और इस दोषमिश्र गुण से रहित लेख लिखने में मण्डनों को बड़ा क्लेश होता हुआ जान पड़ता है।

वैश्योपकारक की वैशाख की संख्या में महामण्डल पर दो तीन जगह लिखा गया है। एक जगह कहा गया है "उन सब का शोच्य परिणाम महामण्डल के ईतिहास की निभृत कक्षा में है"। इतिहास कैसे निभृत होसकता है और जब तक रहस्यवेत्ता लोग विद्यमान हैं और उनके चञ्चल ओष्ठों पर मधुर मौन की मोहर नहीं लगाई जाती तब तक उसकी निभृतता का क्या प्रमाण है? परन्तु छापे की भूल ने इतिहास को 'ईतिहास' छापकर बड़ा मज़ा कर दिखाया। अवश्य ही वे ईतियां, जो फलसस्यसम्पन्न महामण्डल की कृषि को खागईं, अपने प्राचीन गौरव और हथकण्डों के स्मरण से हास करती होंगी। यह भी नई बात पढ़ी कि प्रसिद्धि किसी के "अङ्क में वि-

जयमाल पहनाने के लिए तैयार" होसकती है। अङ्क में विजय मेखला भलेही पहना दी जाय। यह तो "भट्टस्य कट्यां सरटप्रवेशः" वाली बात हुई। आगे चलकर जो कहा है कि महामण्डल का वास्तव इतिहास वही होगा जिस में दरी का कोना बाबू बालमुकुन्द के हाथ में बताया जाय। उसके विषय में वक्तव्य यह है कि जिस इतिहास में उन तर्कचूड़ामणि लोगों को रत्नसिंहासन पर न बिठाया जायगा जो अपनी निरङ्कुश लेखनी और अनर्गल वाणी से महामण्डल की वर्त्तमान शोचनीय अवस्था के एक बड़े भारी अंश में कर्त्ता हैं तब तक उस इतिहास के पैर कभी न टिकैंगे। चाहे दरी का कोना कोई पकड़े, चाहे कोई आदि पुरुष रहे पर यारों के कुछ महत् और बिलक्षण उद्देश्यों को ऊर्ध्वबाहु होकर कह देना चाहिये था। मालूम होता है कि यदि मैक्समूलर के वेदानुवाद और एगलिङ्ग के शतपथानुवाद को ही लोग पढ़ैं और मूल ग्रन्थों को तिरस्कृत कर दें तो वैश्योपकारक की सम्पादक मण्डली उसका मण्डन करेगी। क्योंकि पञ्जाब में मण्डल को उर्दू पत्र निकालते देख उसने कहा है—स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयीन श्रुतिगोचरा। इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्। इसी तर्क को एक पद बढ़ा लेवें तो ग्रिफिथ के सामवेद और वाल्मीकिरामायण का पारायण करना "देशकाल के विचार से वास्तव में सुखदायक ही है"।

* * *

उलटी बात तो यह है कि ब्राह्मण स्वयं वेद न पढ़ैं, अवच्छेदकता के खरों में जन्म बितादें, या उससे भी दूर जा पड़ें, परन्तु यदि कोई अन्यजाति कुछ पढ़ने गुणने की बात करे जो ज़रा ज़रा सी भूलें पकड़ कर कहा जाता है कि विद्वान् ब्राह्मण ऐसी भूल नहीं कर सकता। स्वामी दयानन्द भी तो विद्वान् ब्राह्मण थे। राय बैजनाथ बहा-

दुर के ग्रन्थ में कौथुमी शाखा को कौतुभी छपा देखकर ठट्ठा करता वैश्योपकारक क्या यह नहीं जानता कि मारवाड़ियों के कुल गुरू परन्तु मेंहदी राग के क्रीतदास ऐसे पुरोहित कितने हैं, जिनका आदि कवि वज़ीरा तेली और महाकाव्य हकीमजी गर्मी वाले का ख्याल, जिनकी बाइबल शनिश्चरजी की कथा और कर्मकाण्ड धूम्रपान है, उन में कितने ऐसे हैं जो अपनी शाखा पूछने पर "माधुञ्जणी" (माध्यन्दिनी) कह सकते हैं और कितने ऐसे हैं जो शाखा जानते हैं तो नीमकी या खेलरे की ?

* * *

इसी नम्बर में समालोचक पर भी कुछ फर्माया गया है। लेखक को जानना चाहिये था कि समालोचक का " मुरारेस्तृतीय. पन्था " वर्ष जुलाई में पूरा होता है दिसम्बर में नहीं। एक वाक्य बड़ा विलक्षण है "लेखों में विशेषत्व होने पर भी देरी के कारण वह लुप्त और अनालोच्य हो गया"। यदि ऐसा है तो मासिकपुस्तक क्या झख मारने को निकाले जाते हैं ? यदि रोल्ट केस की तरह मासिक पत्रों के विषय भी समय बीतने से अनालोच्य और यातयाम और लुप्त हो जांय, तो यह मासिकपत्रों का दोष नहीं है यह उस रुचि का दोष है जो पत्रों को आज पढ़कर कल फेंक देना चाहती है। अभी तो सुस्त पत्रों का किब्लेगाह सुदर्शन विद्यमान है, जिस के लेख, दो दो वर्ष होने पर भी यातयाम नहीं होते।

——*:o:*——

कुण्डलिया

——:o:——

" अंधा बांटै जेवरी पीछे बाछा खाय "

पीछे बाछा खाय अंध की सूझत नांहीं ।
ज्ञान कहां तें होय ज्योति हिय नैनन मांहीं ॥
जतन करत नरदेह मोह माया तें भूलो ।
जानत काल न मूढ़ फिरत है फूलो फूलो ॥
'रसिक' आपनी शक्ति बिन जाचे काम जु धाय ।
अंधा बांटै जेवरी पीछे बाछा खाय ॥ १

" आग लगंते झोंपड़ा जो निकसे सो लाभ"

जो निकसे सो लाभ जात नर ऊमर बीती ।
काया रहे न वित्त वृथा क्यों थूक फजीती ॥
जो गिनती के श्वास ताहि बिरियां हरि गावो ।
धन जोबन तन मांहि वृथा जिन काल वितावो ॥
जाते जाते जो बचे 'रसिक' हाथ गहि गाभ ।
आग लगंते झोंपड़ा जो निकसे सो लाभ ॥ २

" बीते ब्याह कुम्हार के भांडा लेने जाय "

भांडा लेने जाय ब्याह के बीते जोही ।
निज हाथन उपहास करावत आपहु सोही ॥
जबलौं इन्द्रिय शक्ति तभी लौं कर हरि हेता ।
साधहु चारौं वर्ग काय मन बचन समेता ॥
आग लगे घर में 'रसिक' कूप खने जो धाय ।
बीते ब्याह कुम्हार के भांडा लेने जाय ॥ ३

" गुड जाने के कोथरा कै बनियां की हाट "

कै बनियां की हाट जाहि बांते सो जाने ।
निज कर्मन को भोग करे वोही पहिचाने ॥
लोग कहैं इस हाथ दे ले इस हाथ संभार ।
मिलै न फल इस लोक में तो परलोक मंझार ॥
रसिक करे जो ही लखे गति न और इस बाट ।
गुड़ जाने कै कोथरा कै बनियां की हाट ॥ ४

" गाडर आनी ऊनको बांधी चरै कपास "

बांधी चरै कपास भूलि निज गति बौरानी ।
त्यों देही को पाय आतमा हो हरखानी ॥
सुख चंचल जग जाल में फंसी रहै दिन रात ।
देह दण्ड जाने नहीं माने सुख परभात ॥
'रसिक' गर्भं अरु मृत्युदुख प्रभु विसारि परकास ।
गाडर आनी ऊन को बांधी चरै कपास ॥ ५

" सौगाहे सूआ पढे अन्त बिलाई खाय "

अन्त बिलाई खाय कीर दूजी गति नाहीं ।
राम अकारथ नाम भक्ति बिन हिरदै माहीं ॥
पढ़हु न वेदपुरान चौदहू विद्या सारी ।
लाभ कछू जिन जान अविद्या जो न विसारी ॥
' रसिक ' ढेर पकवान लखि भूख न कहूं भगाय ।
सौ गाहे सूआ पढे, अन्त बिलाई खाय ॥ ६ ॥

(असम्पूर्ण)

पुरोहित गोपीनाथ ।

———०———

४—हमारी गृह देवता ।

(तीन भाषाओं में)

———o———

" सैव साध्वी सुभक्तश्च सुस्नेहः सरसोज्ज्वलः ।
पाकः संजायते यस्याः करादप्युदरादपि ॥ * "

——प्रसङ्ग रत्नावली ।

यद्यपि इस समय वे एकान्तवासी, विचारशील, ज्ञान निधान, शान्तिप्रिय, परमोपकारी, धर्मसंस्थापक और परमपूज्य ऋषिवर्य नहीं हैं, वह उनका होम धूम, सुस्वर सामगान, पंच भूतात्मक ईश्वरोपासना और अतिथि सत्कार नहीं है; वे उन की पति सेवा परायणा, सन्तानहितकारिणी, गृह देवता, और कुल शीलवती अर्धाङ्गिनी नहीं हैं; वे उन के सुशील, कुलवान्, विद्योपार्जनोत्साही, गुरु सुश्रूषा परायण होनहार छात्र वर्ग नहीं हैं और वे उन के एकान्त पवित्र शान्ताश्रम नहीं हैं—तो भी उस समय का स्मारक—उन की परमोपकारिणी श्रुति स्मृति संबद्ध उक्तियां, हम को उन का यथावत् स्मरण दिला, के हमारे गात्र पुलकित कर हम को धर्मपदारूढ़ कर के परम मुक्ति को पहुंचाती हैं ।

काय कोणी इतका अधम मनुष्य जगांत सापडेल कीं, जो केव्हांहो आपल्या पूर्वजांच्या वचनांचा गौरव करणार नाहीं, त्यांचा वच-

* वही साध्वी स्त्री है जिस के हाथ से और उदर से भी सुभक्त (अच्छा भात वा भक्तिमान्), सुस्नेह (चिकना वा प्रेमी), सरस (षड्रस युक्त वा विचार सुन्दर), उज्ज्वल (स्वच्छ वा प्रतापी) पाक अर्थात् भोजन वा सन्तान पैदा होवे ।

नांस ईश्वराची आज्ञा समजणार नाहीं आणि त्यांच्या वचनांस पर-महितकारक प्रमाण मानून आत्मोन्नति करणार नाहीं ? जरी, "यथा राजा तथा प्रजा" किं वा "राजा कालस्य कारणं" असें आहे तरी, जगाचा इतिहास पाहिला असतां सहज कळून येणार आहे कीं, कसाही राजा, कसाही काल, व कसले ही प्रजा असली तरी समाजाचें धर्म बन्धन कधीं ही नष्ट झालेलें नाहीं.

अमारी भरतजननी हमणा एटली वद्धी अवनत दशा अने अधोगति मां आवेलो छे तो पण, तेना पुत्रोए हजी धर्मश्रद्धा, नीति परायणता, आचार विचार अने कुल मर्यादा तदन मूकी दीधी नथी. वैदिक, उपनिषत् अने स्मृति काल तो रहवाद्यो पण, पुराण कालनी तरफज जूवो—महात्मा व्यास भगवान् एकज अथवा अनेक होय तथापि पुराणादिकों नी रचना केवो असाधारण छे ! जरा विचार तो करो, ते वखत मां हमणानी वड़े सारा सारा कागद्, दवात, शाई, अने सुंदर पेन पेन्सिलों हती नहीं. छापखाना हता नहीं. मोट मोटा युनिव्हर्सिटी हाल, कालेज, स्कूलों हती नहीं. तो पण केटला मोटा मोटा महाभारत जेक महाभारत ग्रन्थो आज विद्यमान छे, जे अमारा थीं लखाय आतो वातजशी, पूरा वंचाय पण नहीं ! हमणानी पेठे ते वखत कोई एल एल डी., बी. एल., एल एल. बी., एम. ए., हता नहीं तथापि हमणा ना पदवीधारियों थीं एक श्लोक लखाय नहीं एवा लक्ष्यावधि श्लोक लखीने अमारो अपार हित करी गया छे.

अब इस वक्त हमारे पूर्वजों की उक्तियां ग्रन्थशेष, विचारशेष और नामशेष हैं । हम उन का निरादर कर बैठे हैं; हमारी जातीयता, महत्व, सौभाग्य, वैभव और आत्मोन्नति हम खो बैठे हैं । एक दिन हमारी स्वतंत्रता अन्यदेशियों को मात करती थी आज हम उन के गुलाम बन बैठे हैं ! जैसे तैसे यवनों के असह्य और क्रूर ताप को

सहन कर ब्रिटिश छत्र की शीतल छाया में स्वतंत्रता को प्राप्त हुए तो भी अपना हम को ज्ञान तो दूर पहिचान तक रही नहीं ! अब परदेशीय विद्वान् भट्ट मोक्षमूलर, डयूसन, ग्रीयर्सन प्रभृति द्वारा हमारे उपाधिधारियों की आंखों में हमारी ही ज्ञानांजनशलाका का प्रवेश होने से कुछ कुछ चका चौंध दूर होने लगी है; और किसी वक्त हम भी कुछ थे, हमारे पूर्वज भी कुछ थे, हमारी स्त्रियां भी कुछ थीं और हमारा देश भी कुछ था ; हमारी सामाजिक एकता, सामाजिक शक्ति, एवं देश भक्ति अपूर्व थीं ; हमारा राष्ट्र, हमारा राजा, हमारी विद्या, हमारा धर्म, हमारा कुल, हमारी जाति और हमारी संघशक्ति भी अपूर्व थीं ; हमारा ब्रह्मचर्य, हमारी शिक्षण प्रणाली, हमारा गृहस्थाश्रम और हमारी साध्वी स्त्रियां अनुपम थीं । अपना सतीत्व प्राण से अधिक, पति ईश्वर से अधिक एवं धर्म देह से अधिक समझती थीं । पूर्णतया गृहस्थाश्रम का भार धारण कर उतच पतिसुश्रूषा-परायण हो सुतरां विदुषी बन, अपनी सन्तान को सुशिक्षित कर गृहकार्य करती थीं ।

अहा हा ! किती पवित्र आणि पुण्यशील देव हूती ? जिच्या पोटीं कपिल महा मुनींचा अवतार झाला, आणि जी विद्या विनय संपन्न असून महा ब्रह्मनिष्ठ होती. बृहदारण्यकोपनिषदांत सांगिलें आहे कीं, जें ब्रह्मज्ञान अति कठिन, अगम्य आणि दुर्ज्ञेय तें—आपला पति याज्ञवलक्य याजपासून शिकून परम साध्वी मैत्रेयी निधूंत पाप होऊन परम मुक्तीला पावली. अत्रि मुनींची स्त्री अनुसूया सर्व शास्त्र पारंगत असून तिच्या पुढें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तिन्हीं देवां—ची मात्रा चालली नाहीं आणि त्यांस अनुसूये चे पुत्र व्हावें लागलें ! अगस्ति ऋषीची स्त्री लोपामुद्रा किती शहाणी आणि विदुषी होती. जिचा तोतेचा उपदेश सर्व विश्रुत आहे. तसेंच वशिष्ठ महामुनींची स्त्री अरु-

न्धती, तिणें दिलीप राजाच्या सुदक्षिणा राणीस संतानोत्पादना विषयीं किती उत्तम मार्ग दाखविला होता? इकडे द्रौपदी कडेपहा! ती किती व्यवहार कुशल आणि नीतिज्ञ होती? ज्या वेळेस पणांत दुर्योधनानें तीस जिंकिलें आणि तिला सभेंत आणण्या करितां दूत गेला तेव्हां तिनें कसा कायद्याचा खुबोदार बारीक प्रश्न केला होता? "काय महाराज युधिष्ठिर प्रथम आपण आपला पण लावून स्वत: हारल्यानंतर माझा पण लाऊन मला हरले?" त्याच प्रमाणे अश्वत्थाम्या नें तिच्या पुत्रांचें शिरच्छेदन केलें असतां अर्जुन शोकाकुल होऊन अश्वत्थाम्या चा शिरच्छेद करण्याची प्रतिज्ञा करून त्यास बांधून आणिलें आणि वध करण्यास उद्युक्त झाला असतां हें काम धर्म आणि नीति विरुद्ध जाणून द्रौपदी अर्जुनास म्हणाली कीं, "हा गुरु पुत्र आहे ह्याच्या वध करणें उचित नाहीं कारण माझ्या प्रमाणें च ह्याचा ही मातोश्रीस दु:ख होईल" इत्यादि धर्म नीति वाक्यानीं अर्जुनास शांत करून अश्वत्थाम्यास जीव दान दिलें.

श्रीमती विदर्भ राज कन्या 'रुक्मिणीए केवी सुन्दर, भक्ति पूर्ण पत्रिका लखीने भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने मोकली हती? के जे ऊपर थी परमात्मा श्रीकृष्ण ने स्वयंबरनी जगे जईने रुक्मिणीनी इच्छा पूर्ण करवी पड़ी. जों रुक्मिणी भणेली नहीं होत तो त्यांनी त्यांज शिशुपाल तेने लई जाते. तेम भरत जननी शकुन्तला दुष्यन्त राजा ने केवूं सुन्दर पत्र लखी ने तेना चित्तनो आकर्षण कीधो हतो? केवी भावपूर्ण कविता हती के जे वांचनाज मनुष्य नूं हृदय मुग्ध थई जाय? मंदोदरिये रावणने केवो उपदेश कीधो हतो? आ केवा पवित्र अन्त:करणनी अने शीलवती स्त्री हती? महाराजा हरिश्चन्द्रजी तारामती क्यारे पण विसराय के? केवी सती, केवी पतिव्रता, अने केवी पुण्यचरित्रा थई ते वद्धा जाणे छे.

अब हमें विशेष कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि हमारे देश की स्त्रियां अन्य देश की अपेक्षा बुद्धिहीन, धर्महीन और विद्या हीन न थीं। समय के फेरसे उनका विद्या पराङ्मुख होजाना, पतित होजाना और मूढ बनजाना पाया जाता है। तोभी अब भी ऐसे कराल काल में भी कितनी ही अपनी संतान के उपकार के लिये महासंकट उठा चुकी हैं, अपने कुल के लिये सर्बस्व खो चुकी हैं और अपने प्यारे पति के लिये मर चुकी हैं। उनको शिक्षण देना पुरुष की अपेक्षा बहुत सुकर है क्योंकि उनकी बुद्धि पुरुष से निसर्गतः ही तीक्ष्ण होती है। किसी कवि ने कहा है कि—

"स्त्रियोहि नाम खल्वैता निसर्गादेव पण्डिताः"

शिवचन्द्र भरतिया

—०*०—

सितम्बर की संख्या

छप रही है। उस में प्रधान लेख "हिन्दी प्रदीप" सम्पादक पूज्यनीय पण्डित बालकृष्ण भट्ट का "भारतेन्दु का स्मरण" होगा। एक त्रैभाषिक कविता भी निकलैगी। बैलूनका इतिहास भी बहुत रोचक लेख होगा। 'अत्र तत्र सर्वत्र' में वर्त्तमान हिन्दी साहित्य की उपयोगी चर्चा होगी—"अवसर" नामक एक मनोहर कविता भी होगी। शायद एक महिला का लेख भी उसमें छपैगा।

* * *

बाबू अयोध्याप्रसाद के स्मरण।

कष्टो जनः कुलधनैरनुरञ्जनीय
स्तन्मे यदुक्तमशिवं नहि तत् क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि॥

(भवभूतेः)

काशी नागरी प्रचारिणी सभा का गृहप्रवेशोत्सव मङ्गलपूर्वक हो चुका था। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी ने "धनि भाग आजु या भवन में नाथ तिहारे पग पड़े" कह कर सर डिग्गस लाटूश का स्वागत किया था, और माननीय पण्डित मालवीय ने चमकती अङ्गरेजी की छोटी स्पीच में उन्हें "गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ" कह दिया था। दूसरे दिन प्रातःकाल का समय है। मि० जैन वैद्य और हम, सिद्धेश्वर प्रेससे, कपड़े पहन कर; बाहर निकलनेको तैयार हैं। इतने में एक सज्जन "जैन वैद्यजी हैं क्या?" इस प्रश्न के पीछे आ खड़े हुए। हम ने देखा, उन के शरीर पर मोटे बनारस सिल्क का चपकन और चोगा है, पजामा है, बादामी बूट है। सिरपर उस ढंग का बङ्गाली शमला है जिस ढङ्ग का महामहोपाध्याय पदवी पाने वालों को सरकार से खिलत में मिला करता है। पूछने पर उन ने परिचय दिया कि "मैं मुजफ्फरपुर से आता हूं"। इस पर हम अपनी मुस्कुराहट को न रोक सके, क्योंकि काशी में दो दिन से ही "खड़ी बोली वाला आता है, खड़ी बोली वाला आता है" की धूम मच रही थी। जिस मूर्त्ति के लेख, नाम और वर्णन पत्रों में पढ़े

जाया करते थे, उसे यों अचानक सामने देखकर एक विलक्षण भाव उत्पन्न हुआ। अस्तु, परस्पर के परिचय के पीछे हम लोग एक गाड़ी पर सवार होकर चले। पहले मैंने प्रश्न किया कि आप कल के उत्सव में आ पहुंचे थे वा नहीं। उन ने इस के उत्तर में हां कह कर कहा कि एड्रेस गवांरी बोली में क्यों दिया गया, यदि वह खड़ी बोली में होता तो हम मुसलमानों को भी अनुकूल कर सकते। गंवारी बोली यह बाबू अयोध्याप्रसाद का ब्रजभाषा के लिये प्यारा नाम था। एक आध वार उन ने उस दिन भी कहा "जब तक यह गंवारी हमारे सभ्य साहित्य का पल्ला न छोड़ेगी तब तक इस की उन्नति न होगी" हम ने भी कहा "आप तलाक़ दिलाकर मानियेगा"। अस्तु बाबू साहब को उन कठिनाइयों का ज्ञान न था जो खड़ी बोली में एड्रेस देने पर सभा को पड़तीं, क्योंकि सब के सामने पालिसी में "सरल भाषा के पक्षपाती" बनने वालों को निखालिस उर्दू शब्द काम में लेना पड़ते और काशी के नाम को कुछ गौरव से रहित करना पड़ता। हमने ध्यान से देखा बाबू अयोध्याप्रसाद के नेत्र बिलकुल श्वेत थे। उन के बाल कहीं २ सफेद थे इसलिये इस अवस्था में भी आंखों में लाल डोरों के अभाव का हम पर असर पड़ा। हम ज्यों ज्यों ध्यान से उन पथराई हुई "धौली आंख धणी" को देखते थे, त्यों त्यों उन की भाव शून्यता और नीरसता मालूम होती जाती थी, जो मनुष्यों में अधिकांश के साथ विरोध रखने का फल और लक्षण है। वे कुछ ठहर ठहर कर श्वास लेते थे और चकित होकर इधर उधर तकते थे, मानों किसी भय में हैं। उनके अधरोष्ठ पर दो दांत निकले हुए थे और उनके ओष्ठ कुछ खुले हुए ही रहते थे। मालूम होता है यह gape करने की आदत उन्हें अधिक विरोध की शङ्का से होगई थी। पं० नारायण पाण्डे के

काल निर्णय की बात चली तो उनने कहा कि मुझे कलेक्टर साहब ने मुकद्दमे में रज़ामन्दी करने को बाधित किया था। उनने कहा था This case must be compromised out of court। पीछे जब उन्हें मालूम हुआ कि हम सारस्वत ब्राह्मण हैं तो वे बोले "हम खत्री हैं, आप के यजमान हैं, आपको तो हमारा पक्ष लेना चाहिये न कि पं० नारायण पाण्डे का जो आप से भिन्न ब्राह्मण हैं"। हमारे भिन्न ब्राह्मण का अर्थ पूछने पर उनने कहा कि ब्रजभाषा के पक्षपाती हरिश्चन्द्र अगरवाले थे और हम खड़ी बोली के रिफार्मर खत्री हैं इससे भी आपको हमारी ही तरफ होना चाहिए। इस तर्क से हम दंग आगए। सभा वाले हिन्दी साहित्य का एक इतिहास लिखने वाले हैं, इस प्रसङ्ग में आपने कहा "चाहे ये लोग कुछ करें इनके ब्रेन नहीं हैं, हमें चार घन्टे किसी लाइब्रेरी में बिठा दीजिए, झटपट इतिहास लिख डालें, ये लोग ऐसा ब्रेन कहां से लावेंगे ?"। फिर उनके खड़ी बोली आन्दोलन की वर्त्तमान अवस्था और सभा में उनके प्रस्ताव की सफलता की बात चली। उनने कहा "प्रभुदयाल पांडे पं० प्रतापनारायण मिश्र का शिष्य था। उसने प्रतापनारायण मिश्र को खड़ी बोली का आदि पक्षपाती लिखा है। इसपर हमने लिखा कि जैसे परशुराम ने जमदग्नि के वास्ते कार्त्तवीर्य को बलि देदिया उसी तरह से आप हमें भी अपने गुरु के लिए बलि देदीजिए। अब हम बनारस में आए हैं, आप लोग सब मिलकर हमें मार डालिए—मारडालिए, हां साहब, मार डालिए।" इतने में चौंकते हुए हम चौक पहुंचे, और वहां माननीय पण्डित मालवीयजी की गाड़ी सामने से आगई। वहां उनने हमें अपने साथ क्वीन्स कालेज ले जाने का आग्रह किया। लाचार हमें बाबू अयोध्याप्रसाद की मनोरंजक बातों से विदाई लेनी पड़ी। हमने उन्हें अपने साथ जाने को तैयार

न पाकर पूछा कि आप कहां ठहरे हैं। उत्तर मिला "गाय घाट पर, वहां मेरी लड़की का सुसराल है। वे भी बनारसिए हैं, दो तीन साल से उसे मेरे घर नहीं भेजते। इन बनारसियों के एक समूह ने तो मेरी खड़ी बोली को दुःख दे रक्खा है और दूसरा मेरी पुत्री को मेरे से मिलने के लिए भी नहीं भेजता।" इस पर हमने हंसकर कहा कि बेटियां अपने ही घर शोभा पाती ह, पिता के घर नहीं। आप दोनों को अच्छी तरह इन्हीं बनारसियों के हवाले कर दीजिये।" इसपर हंसकर हाथ मिलाकर बाबू साहब चले गए।

उस ही दिन सायङ्काल को फिर बाबू अयोध्याप्रसाद के दर्शन हुए। सभा के पुस्तकालय में बाबू साहब बैठे थे। वहीं पर उनने हम को पण्डित केशवराम भट्ट का हिन्दी व्याकरण दिखाया, और शिवहर स्कूल के हेडमास्टर रामदास राय का बनाया खड़ी बोली कविता में मिल्टन के पैरेडाइज़ लास्ट की द्वितीय पुस्तक का अनुवाद मिस्टर जैन वैद्य को, और उनके द्वारा हम को, दिया। पीछे उनने अपना वह लेख भी हमें दिखाया, जिसे वे कल की सभा में पढ़ा जाने के लिए लाये थे। इसके पीछे एक ऐसी शोचनीय घटना हुई जिस का उल्लेख हम नहीं करना चाहते, परन्तु बाबू साहब की स्वर्गीय आत्मा के अनुरोध से हमें उसे कहना ही पड़ता है। उस समय सभा के सभी उपस्थित मेम्बरों का फोटो लिया जाने वाला था।

"विमल बीए. पास बाबू श्यामसुन्दरदास" हमें तो हाथ पकड़ कर तीन तीन दफ़ा फ़ोटो के लिए ले चले परन्तु बाबूसाहब से उनने आंख तक न मिलाई। यही नहीं, यदि हम बाबू साहब को पकड़ कर न ले जाते, तो शायद मेरे पास की कुर्सी पर बैठे रहने और मुझ से बातचीत करते रहने पर भी उन्हें कोई फोटो के लिये न ले जाता। फोटो में भी मि० वैद्य उन्हें अपने साथ लेकर खड़े हुए, नहीं

तो विचारे पांचवीं छठी पङ्क्ति से भी वाहर धकेले गए थे। खैर, फोटो उतरा, मालवीयजी की सभा हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल हम गङ्गास्नान से लौट रहे थे। राह में वावू श्यामसुन्दरदास के मकान में पहुंचे। देखा कि खासी मण्डली जमी है। रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्ज़ हैं जो पूछ रहे हैं कि लोटा मांजने से क्यों पवित्र हो जाता है। वावू गोपालदास हैं। शायद पण्डित गणपति जानकीराम दुवे भी हैं। और हैं, जमीन छीलते हुए वावू अयोध्याप्रसाद। प्रायः आध घण्टा हम वैठे रहे, परन्तु वावू अयोध्याप्रसाद से कोई न वोला। उन की "खड़ी वोली डायरी" के पृष्ठ पण्डित गणपति दुवे के हाथ में थे। आखिर वावू साहव चले गए। तव वावू श्यामसुन्दरदास ने कहा कि "ये मुझ से यह कहने आए थे कि आज की सभा में मेरा प्रस्ताव विना विरोध पास करा दो तो मैं सभा में आऊं। तुम लोगों ने विहारी डेलिगेटों के न आने देने के लिए आजकल उत्सव किया है। इस के उत्तर में मैंने कहा कि मैं यह गारन्टी नहीं दे सकता कि आप का प्रस्ताव विना विरोध केपास हो ही जायगा।" हम भी चले आए। सायङ्काल को सभा में वावू साहव नहीं आए। वड़े झगड़े के वाद उनका प्रवन्ध पण्डित गणपति जानकीराम दुवे ने पढ़ा। सभा में इसका कोई प्रवल विरोध नहीं हुआ। अवश्य ही सभा "व्रजभाषा से हिन्दी साहित्य का पिण्ड छुड़ाने" को तैयार न थी परंतु उस ने इस प्रस्ताव के मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं की कि "खड़ी वोली में भी कविता हो और सभा उस के लिए विशेष उत्साह प्रदान करै"। वावू राधाकृष्णदास के जलपान में भी वावू अयोध्याप्रसाद नहीं आए थे। दूसरे दिन वावू राधाकृष्णदास से वे मिले थे। अपनी परम प्रसन्नता और सभा के "सुवह के भूले के शाम को घर लौट आने" पर हर्ष प्रकट कर के अपने घर चले गए।

वहां जाकर उनने लाल स्याही से अपना खड़ी बोली का विजय घ-ण्टा घोप छापा । बस, यही हमारा उनका साक्षात्कार हुआ । यह फ़रवरी की बात है । अगली गर्मियों में बाबू साहब ने मिस्टर जैन वैद्य को और हम को लीचियां बहुत खिलाईं,-बहुत ही खिलाईं । हम सदा उन लीचियों और उन के मनोविनोदी दाता को स्मरण क-रेंगे । इस वर्ष गर्मियां खूब पड़ी और जब हम आबू में दुर्लभ लीचि-यों का जिह्वा से प्रत्यक्ष करते तब हमें हठी किन्तु सरलहृदय, ती-व्र किन्तु मुग्ध, साहित्यरिफार्मर कहलाने के लोभी परन्तु काम कर-ने वाले, बाबू अयोध्याप्रसाद के स्मरण से हृदय में एक अपूर्व भाव उत्पन्न होजाता ।

काशी के साक्षात्कार के कुछ दिन पहिले बाबू अयोध्याप्रसाद ने एक पन्द्रह सेर का पुलिन्दा मि० जैन वैद्य के पास भेजा था । उस में बाबू अयोध्याप्रसाद का सर्वस्व था । या यों कहिए कि जिस जि-स पत्र में या जिस जिस मित्र को उन ने खड़ी बोली के बारे में जो टिप्पणी वा लेख लिखा था, उस की यह फाइल थी । यह साहित्य का कौतुक, यह शास्त्रार्थों का क़िल्लेगाह, हमने और मि० वैद्य ने बड़े ध्यान से पढ़ा था । वे ही काग़ज़ बाबू साहब ने काशी की सभा के मौक़े पर भेज दिये थे । यही उनका अमोघ शास्त्र था, यह उनका गाण्डीव था । उस में एक अंगरेज़ी नोट भी हाथ का लिखा रक्खा था । यह लिखा किसी ओर का है, परन्तु नीचे अंगरेज़ी में Ayodhya Prasad हस्ताक्षर है और 24—12—03 तारीख़ है । इसका अनुवाद हम पाठकों को सुनाना चाहते हैं । साथ साथ ब्रैकेट में जो टिप्पणियां हैं, वे हमारी लिखी हुई हैं ।

हिन्दी कविता की भाषा के सुधार को दो पीरियड हैं ।

(१) सन् १८७६ से १८८७ तक । इस पीरयड का आरम्भ मेरे

हिन्दी व्याकरण के बनने से हुआ। उस के पीछे बाबू लक्ष्मीप्रसाद ने "योगी" नामक पण्डित स्टाइल की खड़ी बोली की कविता बनाई (१८७६) उसके पीछे बाबू महेशनारायण ने 'स्वप्न' लिखा। यह मुन्शी स्टाइल में खड़ी बोली का निबन्ध है जो वर्डसवर्थ की ओड आन इमार्टैलिटी के छन्द में बना है (१८८१) [हिन्दी साहित्य की दृष्टि में ये दोनों ग्रन्थ मर चुके हैं]

(२) सन् १८८७ से आज कल तक। मेरी खड़ी बोली पद्य प्रथम भाग मुजफ्फरपुर में १८८७ में छपा। वृन्दावन के पण्डित राधाचरण गोस्वामी ने इस की ता० ११-११-८७ के "हिन्दोस्थान" में समालोचना की। इस पर उसी पत्र में मेरे दल के पंडित श्रीधरपाठक और विरोधी दल के पंडित प्रतापनारायण मिश्र में बड़ा भारी विवाद हुआ। इस बहस ने हिन्दी साहित्य में जो कुछ भी प्रेम रखते थे उन के सामने खड़ी बोली कविता के गुण और दोष रख दिये। उस समय से सभी विद्वानों ने इस विषय पर पूरा ध्यान दिया है और बहुत सी खड़ी बोली कविताएं लिखी गई हैं।

पूरी तौर से देखा जाय तो फल सन्तोषदायक है जैसा कि चाहा जा सकता है। इस आन्दोलन से जो हिन्दी भाषा उत्पन्न हुई वह मेरी डायरी के पृष्ठ २१ में "अङ्गरेजी पीरियड की हिन्दी का तीसरा काल" नाम से लिखी गई है। जैसा मैंने ऊपर कहा है पहला साधारण आन्दोलन, मेरी खड़ी बोली पद्य के प्रथम भाग के छपने पर 'हिन्दोस्थान' के द्वारा आरम्भ हुआ था। दूसरा साधारण आन्दोलन सन् १८८८ ई० में उसी पुस्तक के लण्डन में छपने पर हुआ और 'हिन्दोस्थान' और, आज कल बंद, पं० भुवनेश्वर मिश्र की सम्पादित, चम्पारण चन्द्रिका ने इस में भाग लिया। यद्यपि 'हिन्दोस्थान' स्पष्ट विरोधी नहीं था, तो भी उसने खड़ी बोली कविता पर कुटिल आक्षेप किये, और चम्पारण चन्द्रिका ने इस पक्ष का स-

मर्थन किया। [उन्हीं दिनों चम्पारण चन्द्रिका में बाबू अयोध्याप्रसाद ने खड़ी बोली रामायण में लिये प्रति पङ्क्ति एक रुपए का विज्ञापन दिया था। खेद है कि इस खड़ी बोली शाहनामे का कोई फिरदौसी नहीं खड़ा हुआ]

आन्दोलन का तीसरा समय जनवरी सन् १९०१ की सरस्वती ने आरम्भ किया। वहां प्रथम लेख भूमिका के सम्पादक ने यद्यपि खड़ी बोली आन्दोलन का मण्डन किया तो भी उस में मेरे भाग को वह भूल गये। [शायद यही आन्दोलन का उद्देश्य था कि खड़ी बोली के साथ बाबू साहब का भी नाम अवश्य रहै] इस पर पत्रव्यवहार और आन्दोलन शुरू हुआ। देखो मेरी डायरी पृष्ठ १। यह भूल मार्च १९०१ की नागरीप्रचारिणी पत्रिका ने भी जारी रक्खी। परन्तु उन सब ने अपनी गलतियां स्वीकार कीं और मेरे हक़ क़ुबूल किये। देखो सरस्वती जून १९०१ ई०।

आन्दोलन के इस समय में सब से अधिक ध्यान देने योग्य बात काशी नागरी प्रचारणी सभा का मत परिवर्त्तन है। सभा में बहुत से जीवित विद्वान् हैं, और वह हिन्दी साहित्य के उस तड़ को प्रतिनिधि है जो भूतपूर्व हरिश्चन्द्र ने क़ायम किया था। उनने खड़ी बोली के विरुद्ध लिखा था, और मेरे आन्दोलन के विरोधी सदा उनकी दुहाई देते थे। अपनी १८९७ की पत्रिका के पृष्ठ ३० में सभा ने आन्दोलन की बुरी समालोचना की थी और मुझे गालियां दी थीं। * परन्तु

---

* बाबू साहब का इशारा बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर की इस कविता पर है:—

पै अब केते भये हाय इमि सत्यानासी
कवि औ जांचक रस अनुभवसों दोऊ उदासी,
शब्द अर्थ को ज्ञान न कछु राखत उर माहीं,
शक्ति निपुनता औ अभ्यास लेसहू नाहीं,

वह अब विलकुल बदल गई है और खड़ी बोली कविता का पक्ष लेती है। देखो, जनवरी १९०१ की सरस्वती का दूसरा पृष्ठ। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि उस समय जो बाबू श्यामसुन्दरदास सरस्वती के सम्पादक थे, वे नागरीप्रचारिणी सभा के मन्त्री थे और हैं। सरस्वती के टाइटिल पेज पर "नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित" भी मिलता है। फिर फर्वरी मार्च १९०३ की सरस्वती के पृष्ठ ९९ में नये सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, जो सभा के मेम्बर हैं, मेरे मत का पूरा समर्थन करते हैं।

इस आन्दोलन का छोटा इतिहास भूमिहार ब्राह्मणपत्रिका, भाग ३ संख्या १ में छपा है। अयोध्याप्रसाद

२४—१२—०३

विन प्रतिभा के लिखत तथा जाँचत विवेक विन,
अहंकार सों भरे फिरत फूले जित निशिदिन,
जोरि बटोरि कोउ साहित्य ग्रन्थ निर्माने,
अर्थ शून्य कहुं कहूं विरोधी लक्षण ठानै,
जानत हूं नहिं कहा अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असंभव
वनि बैठत साहित्यकार, आचार्य स्वयंभव।
जात खड़ी बोली पै कोउ भयो दिवानो,
कोउ तुकान्त विन पद्य लिखनमें है अरुझानो
अनुप्रास प्रतिबंध कठिन जिनके उर मांही
त्यागि पद्यप्रतिवन्धहु लिखत गद्य क्यों नाहीं ?
अनुप्रास कवहूं न सुकवि की शक्ति घटावै
वरु सच पूछो तो नव सूझ हियें उपजावै
ब्रजभाषा औ अनुप्रास जिन लेखें फीके
मॉगहिं विधनासों ते श्रवन मानुषी नीके।

मालूम होता है, जैसे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी अपने कालचक्र में "हरिश्चन्द्री हिन्दी नए ढाल में ढली" लिख गए हैं, वैसे ही "पण्डित श्रीधर पाठक, बाबू हरसहायलाल (?) और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की हिन्दी' को "अयोध्याप्रसाद के आन्दोलन से सुधरी हिन्दी" कह कर नया तड़ बांधने का बाबू साहब को बड़ा आग्रह था। इस पर उनने मनही मन अपने शत्रु बना रखे थे। जब मार्च १९०१ की नागरीप्रचारिणी पत्रिका में खड़ी बोली कविता को महाराणी विक्टोरिया के राज्य काल की एक घटना कहा गया तब बाबू साहब ने पण्डित श्रीधर पाठक को यह पत्र लिखा—"सभा वालों ने खड़ी बोली कविता में आप को सन्मानपूर्वक आसन दिया है परन्तु जहां आप हैं वहीं आपका सेवक मैं भी हूं। परन्तु मेरा नाम नहीं लिखा गया। इसका कारण यह है कि मैंने तो "एक अग्रवाले के मत पर एक खत्री की समालोचना" लिखी थी, और आपने हरिश्चन्द्राष्टक की १००० प्रति बांटी थीं"। शब्द हमें ठीक ठीक स्मरण नहीं पर उस पत्र का आशय यही था। इधर पण्डित भुवनेश्वर मिश्र ने, एक जगह, यों लिखा है "पहले बाबू अयोध्याप्रसाद किले के नीचे खड़े थे, और शत्रु उन पर किले से हमला करते थे। अब बाबू साहब लकड़ियों और घास के सहारे किले के टीले पर चढ़ गए हैं" खड़ी बोली कविता का वास्तव में किसी ने विरोध नहीं किया। केवल पण्डित राधाचरण गोस्वामी अपने विरोध में दृढ़ रहे। वास्तव में सभी खड़ी बोली के अनुकूल थे। भारतेन्दुजी की दुहाई दी जाती है, परन्तु जैसा अच्छा उनका दशरथविलाप हुआ है, ऐसी मुन्शी स्टाइल की खड़ी बोली क्या किसी ने लिखी है ? बनारसी गिरि की लावनियां काशी में खड़ी बोली में बनती आई हैं। भारतेन्दुजी के पिता का बनाया रेखते का पद है। काशी को जो ब्रज-

भाषा के पक्षपातियों और खड़ी बोली के विरोधियों का अड्डा कहा कहा गया है वह ठीक नहीं। भारतेन्दुजी ने एक जगह लिखा है कि मुझ से खड़ी बोली कविता अच्छी न होसकी, परन्तु उस का यह अर्थ नहीं है कि खड़ी बोली कविता करो ही मत। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने 'हिन्दोस्थान' में खड़ी बोली का विरोध किया था सही, परन्तु सङ्गीत शाकुन्तल में जो बढ़िया खड़ी बोली कविता है वैसी अयोध्याप्रसाद जी के किस पक्षपाती ने लिखी है ? भूषण कवि के भी दो तीन कवित्त खड़ी बोली के मिलते हैं। इस के विरुद्ध पण्डित श्रीधर पाठक को लीजिए, जिन्हें बाबू अयोध्याप्रसाद अपना परम पक्षपाती मानते हैं। वास्तव में यदि खड़ी बोली में कोई कविता बनी है तो वह पाठक जी का **एकान्तवासी** योगी है। जिन विहारियों का नाम बाबू अयोध्याप्रसाद बड़े आदर से लेते हैं, उन के खड़ी बोली काव्य हिन्दी काव्य की दृष्टि में मर चुके हैं। परन्तु पाठक जी का "उजाड़ गाम" अच्छा बना है, वा "श्रान्त पथिक" ? कहां पहले की द्राक्षापाक कविता, और निसर्ग मधुर आनन्द, और कहां दूसरे की क्लिष्टकल्पना और खैंच खांच कर खड़े शब्दों की जोड़ तोड़ ? अब भी पाठक जी का 'भ्रमराष्टक' जितना मधुर है, उतना उनका "एड्विन और अंजलेना" नहीं। आजकल भी जो कुछ वे लिखते हैं ब्रजभाषा में ही उस का अधिक अंश होता है। उनके विरोधियों से इतनी सहायता मिलने पर भी बाबू साहब "खून लगा कर शहीद" बनने को तैयार थे, यदि वास्तव में उनका विरोध होता तो न मालूम वे अपने को सूकरात लगाते वा ईसामसीह। काशी की सभा ने कभी उन का विरोध नहीं किया। जिस कविता पर उन का दंश था, वह बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर की थी, और सभा सदा से हिन्दी साहित्य के इस अर्धाङ्ग पर विलाप कर-

ती आई है। अवश्य ही वह सूरदास और विहारीदास की भाषा को धकेलकर उस की जगह बाबू अयोध्याप्रसाद का lions painted by themselves चित्र नहीं रख सकती । वास्तव में खड़ी बोली में अयोध्याप्रसादों और रामदास रायों की ज़रूरत नहीं हैं, ज़रूरत है सूरदासों और तुलसीदासों की। कृष्ण भक्ति के कारण, प्राचीन वैष्णव ग्रन्थों के कारण, कथाभट्टों, रासधारियों और पुराने पंडितों के कारण ब्रजभाषा की "ताके विषे" अभी तक महाराष्ट्रदेशों तक गूंजती है। कोई सूरदास का सा गारुड़ी आवे, जो खड़ी बोली की अकड़ी नसों और हड्डियों में मोहिनी फूंक कर देशभर को मस्त कर दे। कालनिर्णय के पीरियड़ों पर लड़ना, सब को अपना शत्रु मानकर चलना, और विहारियों को ही हिंदी का एकमात्र अधिकारी मानना–उचित नहीं। पद्य की भाषा गद्य की तरह से सदा अक्खड़ नहीं हो सकती; उस में एक प्रकार की लोच वा मुड़ने की ताक़त सदा चाहिए। अंगरेज़ी में भी साधारण भाषा में लोच आने से saxon बन्द हुई, कोरे आन्दोलनों से नहीं। वह लोच ब्रजभाषा में ज्यादा है खड़ी बोली में कम। ब्रजभाषा वाले आग को 'आगि' वा 'आगु' करते हैं, खड़ी बोली वालों ने "आगी" बनाया है। बैसवारी वाले 'जहां' को 'जहं' करते थे विहार वाले "जहवां तहवां" (ओह!) करते हैं। मोड़ने तोड़ने में कमी नहीं है। अवश्य पण्डित राधाकृष्ण मिश्र की संस्कृत प्राय खड़ी बोली बहुत अच्छी खिलती है, परन्तु वह बाबू साहब के प्यारे मुन्शी स्टाइल से दूर है। और फिर क्या "फद फद फद फद प्यारी बोले चढ़ी चूल्ह पर दाल"—"प्यारी चमगुदड़ी"—अधेले की बूटी मिरच दमड़ी की लय लई"–इनसे कभी साहित्य चमका है? जितना जोश और जान, मरी ब्रजभाषा में बाबू राधाकृष्णदास के बनाए 'भारत बारहमासा'

और 'प्रताप विसर्जन' में है उस की एक कला भी क्या इन "प्यारी चमगुदड़ी" कविताओं–पण्डित श्रीधर पाठक की कविता को हम पृथक् किए देते हैं–में मिल सकती है ? जिस दिन किसी सुकवि की शक्ति से खड़ी बोली भी सरस हो जायगी उस दिन वृजभाषा चुप रह जायगी। दोनों भाषाओं को कविता के लिये लड़ने दें जीवन के लिये संग्राम होते २ Suuival of the fittest सत्तम का अवशेष हो जायगा। डायरियों और आन्दोलनों के छपने और खून लगाकर शहीद बनने से यह काम न होगा, यह होगा, नये कवियों के जन्मने से। वृजभाषा से यों पिण्ड नहीं छूट सकता। कोई यह न जानें कि मैं खड़ी बोली की कविता का विरोधी हूं, मैं उस का समर्थक ही नहीं परन्तु लीक पीटने वाले व्रजभाषा कवियों का निन्दक भी हूं। बाबू अयोध्याप्रसाद के यत्न उद्योग, परिश्रम, व्यय, अध्यवसाय, और हिन्दी की प्रीति, सहायता की स्तुति करता हुआ भी मैं उन्हें "त्वमर्कस्त्वं सोम" नहीं कह सकता, और न विहारियों का उन्हें "खून लगा कर शहीद" बनाना देख सकता हूं मेरा विचार था कि ये सब बातें बाबू अयोध्याप्रसाद से कहूं। परन्तु हा! वह परोपकारी और हिन्दी भाषा के हितचिन्तन का व्रती मनुष्य अब इस लोक में नहीं है। चाहे उन के प्रकारों से लोगों का विरोध रहा हो, परन्तु वर्त्तमान युग में विहार में क्या, हिन्दीभाषा के देशभर में, ऐसा तीव्र किंतु सत्समालोचक, और उदार देशसेवक विरला ही मिलेगा। उनने जो कुछ किया उस में हिंदी की हितकामना भरी हुई थी। लोगों ने उन्हें गालियां दीं, चिड़ाया, सिड़ी समझा; उनने भी छोटी छोटी बातों पर नुक्ता चीनी की, विना काम का द्वेष समझा, अपने को सताया और ईज़ा पहुंचाया गया समझा, परन्तु ऐसी बातें सदा होती आई हैं। आशा है कि उन की आत्मा अब अपने किये हुए भले कामों के फल में अनन्त शांति भोगती होगी। जिन लोगों ने वेसमझे बूझे, या अपने स्वार्थ के लिये, उन की निन्दा वा उन से विरोध किया होगा, वे अब इस लेख के ऊपर लिखे भवभूति के वाक्य को पढ़ते होंगे।

श्री चन्द्रधर शर्म्मा

प्राप्ति स्वीकार।

बदले में

काल (मराठी साप्ताहिकपत्र), कलाकुशल (हिन्दी मासिकपत्र), श्रीजैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स हरैल्ड (अंगरेजी, गुजराती, हिन्दी मासिकपत्र)।

पुस्तकें आदि

काल आफिस—पूना	पोलेंडकी अधोगति, पदार्थ संग्रहालय, वुल्फटोनः ब्लैक होल
बाबू शिवप्रसाद—इलाहाबाद	संख्या शब्दावली
जवाहरलालदिगम्बरजैन जयपुर	धनञ्जयनाम माला
सन्दर्भसदन—वृन्दावन	उपासनातत्व, स्मार्तधर्म, श्री वृन्दावन दर्पण, प्रतिमातत्व, श्री श्री गुरुतत्व संस्कारतत्व
पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी —प्रयाग	श्री गौरीशङ्कर उदयाशङ्कर ओझा का चरित्र

हमारे पुस्तक

	मूल्य	डा. म.
१ काव्य मञ्जूषा	॥)	⁻)
२ संस्कृत कविपञ्चक	॥।)	⁻)॥
३ भ्रातृ द्वितीया	=)	)॥
४ समालोचक की फाइल प्रतिवर्ष	२)	।)

जल्दी मंगाइये ! फाइलें बहुत कम हो गई है।

ऐतिहासिक ग्रन्थावलि।

हिन्दी भाषा में इतिहास का बड़ा अभाव है। इसे दूर करने के लिये हमने यह ग्रन्थावलि निकालना आरम्भ की है। इसके ग्रन्थकार उदयपुर के पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा हैं जो भारतवर्ष के पुरातत्त्व और इतिहास के शोधों के पूरे जानकार हैं। उनने वे शोधन किए है जो यूरोपीय एन्टिकेरियनों के भाग्य में भी न थे। इस ग्रन्थावलि में प्रतिवर्ष कमसे कम एक और अधिक से अधिक चार ग्रन्थ छपा करेंगे। पहले नाम लिखाकर ग्राहक बनने वालों को डाकव्यय माफ किया जायगा। समालोचक के मूल्य देचुकने वाले ग्राहकों से ¾ मूल्य लिया जायगा। ज्योंही कोई ग्रन्थ छप जायगा उसकी सूचना समालोचक द्वारा देदी जायगी। पहले नाम लिखवा देने वालों के नाम विना पूछे वी. पी. कर दिया जायगा। इस ग्रन्थावलि में जो ग्रन्थ निकाले जांयगे वे पूरी ऐतिहासिक खोज से लिखे जांयगे। अभी तक इस ग्रन्थावलि में यह ग्रन्थ छपरहा है:—

१ सोलङ्कियों का इतिहास पहला भाग

और निम्नलिखित ग्रन्थ इसमें छपाए जाने के लिए तैयार हैं।

२ सोलङ्कियों का इतिहास दूसरा भाग

३ सोलङ्कियों का इतिहास तीसरा भाग

४ मौर्यों का इतिहास

५ क्षत्रियों (satraps) का इतिहास

६ गुप्तवंश का इतिहास

इस ग्रन्थावलि से यह भी जान पड़ेगा कि उपाख्यान और दन्तकथा को छोड़कर केवल शिलालेखों और ताम्रपत्रों में ही कितनी इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है।

छपाई सफाई देखने लायक होगी।

मिलने का पता—मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को। जयपुर।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो न पात् ।
सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ॥
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु ।
धनानि सुषणा कृधि ॥
आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे ।
येन पितॄनचोदयः ॥
(ऋ० १ । ४२ । १, २, ७, ५)

*स *मा *लो *च *क*

मासिक पुस्तक

चौथा वर्ष
अङ्क दूसरा
सितम्बर, १९०५
(क्रमागत संख्या ३८)

अग्रिम वार्षिक मूल्य
डेढ़ रुपया
एक संख्या—
तीन आने

विदेश में वार्षिक
तीन शिलिङ्

इस संख्या के विषय

स्वामी और प्रकाशक—
मैसर्स जैनवैद्य एण्डको, जयपुर, राजपूताना

Vedic Press, Ajmer.

समालोचक में विज्ञापन की दर।

प्रकाशक का निवेदन

यह समालोचक के चौथे वर्ष की दूसरी संख्या प्रकाशित की जाती है। अब पूरा प्रबन्ध कर लिया गया है कि इस पत्र के छपने में देर न हो। नए वर्ष में और भी उन्नति की जारही है जो समय पर मालूम होगी। अभी तीसरे वर्ष के मई, जून, जुलाई के अङ्क छप रहे हैं प्रकाशित नहीं होसके। वे बहुत जल्द निकलेंगे।

जिन सज्जनों ने पिछले वर्ष वा वर्षों का मूल्य नहीं दिया है उससे फिर साविनय निवेदन है कि वे अपनी मुट्टी ढीली करें। सामयिक पत्र लेकर मूल्य न देना बहुत ही निन्दित काम है। उन्हें अनुमान नहीं है कि हम समालोचक के लिए कितनी हानि उठाते हैं, और आगामी वर्ष के लिए हम यह स्पष्ट कह देते हैं कि मुफ्त में पत्र बांटने से काम नहीं चलेगा। यह सितम्बर की संख्या जिन्हें मिले वे या तो स्वीकार पत्र, या मूल्य या वी. पी. करने की आज्ञा भेजें। हम अक्टूबर की संख्या वी. पी. से भेजेगें। हमें वृथा क्षति न होनी चाहिये इसका ग्राहकों को कहां तक निवेदन करें।

अवसर ।*

हूं सारथी मानुष भाग्य का मैं,
सुदृष्टि मेरी सब काम पूरै;
विख्याति, प्रेमादि, धनादि सारे
पादानुयायी मम हो सिधारैं ।
जाऊं फिरूं खेत पुरी घरों में,
नाघूं समुद्रों मरु काननों को;
हों दूर, चाहे सुसमीप होवें,
ज़रूर दीखूं पर मैं सभी को ।
बाजार प्रासाद कुटीर होता
प्रत्येक द्वारे, जलदी अवेरे,
विना बुलाया अथवा बुलाया,
किंवाड मैं एक दफा सम्हालूं ।
जागो पियारे ! यदि सो रहे हो,
जलदी उठो जी यदि खा रहे हो ।
मैं पीठ फेरूं इस पूर्व आवो,
ऐसा न होवे झट भाग जाऊं ।
सौभाग्य का है शुभ काल ये ही
आवें गहें जो पद चिन्ह मेरे ।

---

* *Opportunity* नाम अंगरेजी कविता का स्वतंत्र अनुवाद ।

पूजें उन्हीं की सब कामनायें,
विना हुए पूर्ण रहे न कोई
प्रत्येक वैरी (पर मृत्यु टारे),
साधे हमारे, वश हो, अवश्य ।
सन्देह में जो पड़ते सदा ही
होते कभी ये कृतकृत्य नाहीं ।
दारिद्र्य औ दुःख अनेक भोगें
मेरा तिरस्कार करें कभी जो ।
वे हाथ जोड़ें विनती करें तो,
आऊं नहीं मैं फिरके कदापि ।
ढूढें भले ही चहु ओर कोई,
बोलूं नहीं मैं, मिलता नहीं हूं ।

गङ्गासहाय शर्म्मा ।

अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

गत मास भारतवर्ष में घटनाओं का चक्र इस तेज़ी से घूम गया है कि देखने वालों को मुंह बा कर और सिरपर हाथ रख कर उस का स्मरण करने में भी कठिनाई पड़ती है । क्या था और क्या हो गया और उसका क्या परिणाम होगा, इसी की जांच करने में ऐतिहासिक, कभी सही और कभी गलत, अन्दाज़ लगाते है । गत मास ऐसे कई अन्दाज़ टूटे हैं और कई नए अन्दाज़ फिर टूटने के लिये बांधे गए हैं । किस प्रकार प्र-

वङ्ग का भङ्ग ।

जा के मत को लात मार कर और नए प्रस्ताव पर प्रजा का मत न ले कर, छिपे छिपे ही बङ्गालियों की बढ़ती जातीयता के मूल में कुठार मारने वाला भङ्ग का विचार, कर्त्ताओं ने ठान कर प्रजा पर डाल दिया, यह मालूम ही है। उसके पीछे मर्माहत बङ्गाली जाति ने गांव गांव सभा करके इस का विरोध आरम्भ किया, बङ्गीय कौन्सिल के क्या युवा क्या वृद्ध सभ्यो ने इसे बङ्गालियों और अंगरेजों के सदा के द्वेष को जगाने वाला कहा और इधर उधर व्यवहारकुशलों ने विदेशी पदार्थों के त्याग और स्वदेशियों के ग्रहण का बीड़ा उठाया। इस की परमावधि कलकत्ते के टाउनहाल और उस के उपप्लव मैदान की २०००० मनुष्यों की सभा ने करदी जिस में स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग से अनपेक्ष इङ्गलेण्ड की जेब काटने और शोक की सवारी में विद्यार्थियों को लगा कर उन के उत्साह प्रिय समाज को मिलाने की दूरदर्शिता दिखाई गई। विश्वदूत रूटर की कृपा से यह कोलाहल वृथा न गया, और दो दिन पीछे ही सरहैनरी काटन के उपदेश

सप्त शल्यानि।

से मि० हर्बर्ट रावर्ट ने लिबरल नेताओं की सहानुभूति से, पार्लिमेण्ट में इस विषय पर विचार करने का प्रस्ताव किया। यद्यपि

'नृपाङ्गणगतःखलः'' विचार करने का प्रस्ताव किया। यद्यपि अनुकूल सम्मति होने से स्वीकार की आशा न थी, तो भी यदि "अपने देश के सिवा सब देशों के मित्र" सर मञ्चूरजी भावनगरी उलटा विरोध करके चक्षुः शूल न बनते तो अच्छा ही होता। "यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति" और बङ्गालियों ने अपनी भाषा के अनुसार उनका अच्छा 'सत्कार' कर दिया। मि० ब्राडरिक के और कागज़ पार्लेमेन्ट में पेश करने के वचन पर वह प्रस्ताव पीछा लिया गया और विलायत के सभी पत्रों का ध्यान इससे वङ्ग विच्छेद की तरफ़ हो गया। सम्भव नहीं कि इस विषय में श्री-

मान् लार्डकर्ज़न की गोशमाली न की गई हो, और ब्राडरिक महाशय इतने अनजान बने थे, मानो, उनने आंख मूंद कर वायसराय को प्रसन्न करने को ही बङ्ग विच्छेद पर सम्मति देदी हो। भारतवर्ष के सेना सुधार में कुछ मास पहले जैसी उनकी बात बिलकुल न सुनी गई थी, वैसे कुछ तो उनके सान्त्वन का उपाय चाहिये ही था। परन्तु सान्त्वन से वास्तव सान्त्वन न हो सका।

सेनापतिका चक्र।

यद्यपि सेनापति के नए अधिकार और सेना के नए प्रबन्ध से सारा अधिकार और प्रताप वायसराय से प्रधान सेनापति में आगया है, और मुल्की लाट केवल जङ्गीलाट का बिल चुकाने वाले रहगए हैं जिस से भारतवासियों की लचकी पीठ सेना के बोझ से बहुत शीघ्र टूट जा सकती है, तो भी भारतवासी इस विषय में उदासीन थे।

पहलवानों का दङ्गल।

तुलसीदासजी के शब्दों में, "कोउ नृप होइ हमें का हानी। चेरी छांड़ि न होउब रानी" उन्हें सिविल एकतन्त्र से मिलिटरी एकतन्त्र केवल एक अंश ही अधिक अन्यायी जान पड़ा। सिविल एकतन्त्र कौनसा उन्हें दूध देता था? दूसरे जिस जाति को सदा हवल्दार तक बनकर रहजाना है और जो कभी सेना के ऊंचे पदों की आशा नहीं रखती उसे सेना के प्रबन्ध से क्या? और रूस के आक्रमण के स्ट्रेटेजी से क्या? तीसरे उन की दृष्टि में सेनापति और वायसराय का संगर दो लंगर बांधे पहलवानों की कुश्ती या मुर्गों की लड़ाई थी। लोग यही जानते थे कि सेर को सवासेर मिलगया है, लड़ाई होरही है। विलायत में भी इस विषय का शास्त्रीय गुरुत्व जाता रहा, केवल दो प्रबल पुरुषों की टक्कर ही रहगई जिस में खिसिया कर लार्डकर्ज़न ने इस्तीफे की धमकी दी थी। उन के यश के लिए अच्छा

होता, यदि वे उस समय पृथक् हो जाते। यद्यपि भारतवासी उनकी सर्वतोभद्र शक्तियों के विश्राम के लिए देई देवता मनारहे थे, और चाहे वे भारतवर्ष में सिविलसर्विस कराने का पक्ष लेकर इस्तीफा देते, तो भी देश उन के ढण्डे२ जाने से प्रसन्न होता, परन्तु पीछे यदि

अमोघेऽपि निर्वाणालातलाघवम्!

एक तन्त्र सेनाधिकार उन्हें दुःख देता तो वे उस वायसराय का स्मरण करते जो और बातों में दुःख देकर भी इस बात में उनका पक्ष लेता था। परन्तु श्रीमान् ने चार छोटे और निष्फल परिवर्तनों पर यह मानकर सन्तोष किया कि मिलिटरी मेम्बर अपना ही नियत कर के किचनर के क्रम को अपदस्थ कर देंगे और एक वर्ष और भारतवर्ष भोग लेंगे। परन्तु श्रीमान् की गणना में अब के भूल हुई। मि० ब्राडरिक ने अब के सर एडमण्ड बारो को नियत करने वा न करने का अपना अधिकार इन्हें न दिया। इस विषय का जो तार व्यवहार छपा है उस में स्पष्ट सिद्ध होता है कि पार्ले-

चुपड़ी और दो दो?

मेन्ट बन्द होजाने से निःशङ्क मि० बालफोर और ब्राडरिक असम्भावित लार्डकर्जन को निकालने को तैयार थे। मि० ब्राडरिक ने स्पष्ट कहा "तुम्हारे कहने से मैंने वङ्गविच्छेद मान लिया, और तुम्हारे चाहे कौन्सिल के मेम्बर देदिए, अब क्या मैं मट्टी का मम्मा हूं?" जैसे

कर्ज़न का तर्जन।

लड्डू न मिलने से बिगड़ैल लड़का फांसी की धमकी देता है, वैसे ही मान्यवर ने इस्तीफे की धमकी दी। मि० ब्राडरिक तैयार थे। अपनी आस्तीन में लार्ड मिन्टो को लिए बैठे थे। झट उन को नियत कर के मान्यवर के पीछे आगल ठोंक दी जिस से फिर श्रीमान् लार्डकर्जन आफ कैडलस्टन अपना मत न बदल सके। इस घटना से सिद्ध होता है कि बालफोर

दल के लोग कैसे पीतल के टुकड़े हैं जो अपने को सोना समझ रहे हैं। पार्लेमेन्ट रहते तो वालफोर और ब्राडरिक की हिम्मत नहीं हुई जो लार्डकर्जन को पृथक् करते, परन्तु उस के उठते ही उन्हें कोने में फंसाकर इस्तीफ़ा दिलवा कर माने। भारतवर्ष में महाराजाधिराज के प्रतिनिधि ने भी सेना संशोधन के सार्वजनिक विषय पर तो इस्तीफा न दिया, परन्तु व्यक्तिगत सिफारिशी के नियत न होने पर पृथक् होना ठीक समझा। मच्छरों को छाना और ऊंटों को पिया। लोग आश्चर्य न करें कि लार्डकर्जन ने शिमले की मसनद को खाली कर दिया और सूर्य अभी उदय ही होता है! प्रलय काल के मेघ भी नहीं आए और भूकम्प भी नहीं हुआ! क्या हुआ? श्रीमान् का अधःपतन! उस से विश्व ब्रह्माण्ड को क्या? इतना अवश्य है कि ऐसा पतन ऐतिहासिक घटनाओं में विलक्षण हैं। कितने विरुद्ध धर्मों का इस में समावेश था, और कैसे एक तन्त्र स्वाधीनता ने श्रीमान् के मस्तक को फिरा दिया था!

पीतल के टुकड़े।

विरुद्ध धर्माश्रय।

जो स्वयम् विश्व विद्यालय की उच्च शिक्षा का ऋणी है वह उस के द्वार को बंद और पढ़ाई को व्यय साध्य करें! जो समाचार पत्रों के राजा 'टाइम्स' का सम्वाददाता रहकर बढ़ा है और जिसका ढोल समाचार पत्रों ने पीटा है वह उन की स्वाधीनता को रोके! जो व्याख्यानों से चढ़ा हुआ है वह "भाषण की गुलामी" की निन्दा करें! जिसे पार्लेमेन्ट ने चढ़ाया, वह उस को तटस्थ कर देवे। जो महाराणी विक्टोरिया का अन्तिम वायसराय हो वह उस के साम्यवाद के घोषणा पत्र को कजोड़ा समझे! जो कोरिया में परमसत्य बोल चुका है वह एशिआ के सत्य के आदर्शों को लथेड़े! जो अमेरिका के धनियों को बर्मा में खान के सुभीते दे चुका है वह टाटा के वि-

श्वविद्यालय की चक्की में कङ्कर डाले। राजाओं ने जिसके पारिपार्श्वक बनकर 'उद्यानपालसामान्यं' शोभा बढ़ाई उन के अधिकारियों को वही कम करे और उन्हें रेज़िडेंटों की गुड़िया बनावे। जिसने यूरोपीयनों का रजवाड़ों में जमना बुरा समझा वही उनके लिये नये२ पद बनावे। जिस को बङ्गाली पण्डितों ने श्लोक पढ़२ कर आशीर्वाद दिये वही बङ्गाल का बलिदान करे। जिसने सर फिरोज़शाह को के.सी.एस.आई. दी वही यूनीवर्सिटी वेलिडेशन एक्ट पास करे। जो चेम्बर आफ कामर्स से दावत में मिला वह सर हैनरी काटन से कांग्रेस के प्रस्ताव न ले। जो प्रोटेक्शन का विरोधी था वह देश की कलाओं को न बढ़ावे। जो सोमालीलेण्ड और ट्रांसवाल में भारत की सेना का व्यय न देता था वही सेना के व्यय को बढ़ावे और सेनापति की उदण्डता को दबाने में वही दुर्बल हो जाय जो विश्व विद्यालय एक्ट और बङ्गभङ्ग में सहस्रबाहु था। पहले २ श्रीमान् के भाषणों और कार्यों से भारतवासियों को आशा हुई थी कि रिपन का भाई आया, गोरों से तिल्ली फटनेवालों को आशा हुई थी कि उन का मसीहा आया, और राजाओं ने समझा कि हम पर विश्वास करने वाला आया। परंतु वह संस्कार मिट गये। भारतवर्ष यदि श्रीमान् का किसी बात में ऋणी है तो कुछ कर घटाने और पुरानी इमारतों की रक्षा का और नहीं तो पीछे ढकेले जाने का। परंतु सारी प्रजा के विरुद्ध मत को जान कर भी श्रीमान् दूसरी दफ़ा भारतवर्ष में आये और रत्न से जुगनू बन कर, और अपने यश को नष्ट करके, सेनापति के हाथों से "अपवादैरिवोत्सर्गाः" बन गये। एक मारवाड़ी पत्नी ने अपने पति को कहा था "साजन! तुम बहुत लायक हो, मुझे तो तुम्हारे साथ यह मिला कि जो घर में नहीं था वह तो आप लाये नहीं और जो था वह खो दिया।" सम्भव है कि कुछ वर्षों

सायङ्काल का उपस्थान ।

पीछे भारतवर्ष आप को भूल जाय किन्तु अभी तो " पटुधारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विगलति" । चाहे खुशामदी लोग श्रीमान् को विदाई के तार दें, और बम्बई ही नहीं अदन तक उन्हें पहुंचाने जावें परंतु देश का मत श्रीमान् के विषय में यही है कि श्रीमान् को शीघ्र ही विदाई न मिल गई और उन की सर्वत पाणिपाद शक्ति बङ्गाल के भेदन से वाज् न आई । पुराणों में जैसे पृथ्वी और

तिसंकू विभ्र अन्तराले चिह्र!

स्वर्ग के बीच में लटकते त्रिशंकु को राल कर्मनाशा से अङ्ग को अपवित्र कर गई वैसे ही श्रीमान् ने भी १ सितम्बर को बंग विच्छेद की घोषणा कर दी । "मुर्गे बिस्मल ! मत तड़प, यां आंसू बहाना मना है" । जब मि० व्राडरिक पार्लेमेन्ट को और कागज़ात पेश करने का वचन दे चुके हैं तब इस शीघ्रता का करना न्याय है या नहीं यह विचारणीय है । जैसे तिब्बत मिशन में सरकारी आज्ञा का पालन न करने पर श्रीमान् के लत्ते लिये गये थे, वैसे मि० व्राडरिक फरवरी में इस विषय में कुछ करेंगे या नहीं यह प्रश्न है । अब स्थविर लार्ड मिन्टो भारतवर्ष में आते हैं और भारतवर्ष में उन का स्वागत है । बुढ़ापा बुद्धि का पिता है और आशा है श्रीमान् शीघ्र ही आकर श्रीमान् युवराज

आइये !

के पथदर्शक बनेंगे क्योंकि जब तक वे नहीं आते तब तक यहीं न रह जांय यह डर लगा हुआ है । जैसे श्रीमान् के पूर्वज गवर्नर जनरल ने बिना एक गोला गोली बरसाये नैपोलियन के आक्रमण का भय हटाया था, वैसे श्रीमान् भी क्या उपचीयमान् सेना व्यय के कारण रूस के भकोओं को सदा के लिये शान्त न कर देंगे ?

फैलता जाता है। गांव २ में सभा होती हैं। बड़े २ ज़मींदारों ने स्वयम् कलें खोलने की प्रतिज्ञा की है। मैञ्चेस्टर के माल को फैलाने के पाप का प्रायश्चित्त मारवाड़ियों ने बुरी तरह भोग लिया है और उन्हें अच्छी हानि उठानी पड़ी है। अब वे बङ्गालियों के साथ ही रहें इस में कल्याण है। मैनचेस्टर वालों ने निर्द्वन्द्व बन कर उन्हें जो आन्दोलन न करने का उपदेश दिया है उसे पढ़ कर हंसी आती है। चाहे मैनचेस्टर की जेब कटने से इङ्गलेण्ड वाले ध्यान दें चाहे न दें; स्वदेशी आन्दोलन देश भर में व्याप्त होना चाहिए। बङ्गाली पंडितों ने शास्त्रों में से स्वदेशी वस्तुओं के श्लोक खोजना आरम्भ किए हैं और अपने शिष्यों के नाम आज्ञा-पत्र लिखे हैं। यह नई व्यवस्था है। क्या अच्छा हो, यदि कुछ पंडित विदेश-यात्रा के भी यों ही प्रमाण ढूंढ दें जिस से श्री वेङ्कटेश्वर समाचार का तो मुंह बन्द हो! सारे भारतवर्ष में यदि चार पांच महीने भी स्वदेशी आन्दोलन का स्वस्ति—वाचन हो जाय तो इतनी उदासीनता न रहै और राजनैतिक क्षेत्र में ही वचन-बहादुर न कहला कर हम कर्मक्षेत्र में भी कुछ कर सकने वाले कहला जांय।

स्वदेशी आन्दोलन।

इसी जातीयता का लक्षण और भारतव्यापी नई जागने वाली सहानुभूति का निदर्शन, भारतवर्ष में एकाक्षर प्रचार का काम भी गतमास अग्रसर हुआ है। समानकाल में बङ्गाली और गुजराती साहित्यकारों में आन्दोलन उठा और माननीय जस्टिस शारदाचरण मित्र की अध्यक्षता में एक प्रभावशाली समाज कलकत्ते में देवनागरी प्रचार के लिये कायम हो... यदि पांच भाषाओं में एक पत्र न निकाल कर हिन्दी के

...क्षर प्रचार।

साथ और भाषाओं के पत्र द्वैभाषिक बनें, तो अच्छा। हिन्दी प्रान्त वाले इस विषय में चुप हैं, उन्हें कुछ करना चाहिए। स्वयं अग्रणी होने का हठ छोड़ कर पीछे काम करने वाले भी अच्छा कर सकते हैं। जापान के देवनागरी लिपि के स्वीकार पर अधिक हल्ला नहीं करना चाहिए। जापान अपना सुभीता स्वयं जान सकता है, हम उसके गुरु बनने योग्य नहीं हैं। अन्तर्जातिक व्यवहारों में जापान को (और हम को भी) अंगरेजी अधिक काम देगी और विजातियों की देवनागरी लिपि का उपयोग–जिसकी वे स्वयं भी सेवा नहीं करते—करने की अपेक्षा जापान में अधिक बुद्धि है!

जब सर फिरोज़शाह महता के एक ही मकारने बम्बई कांग्रेस को इतनी धूम से कर दिया तो मदनमोहन मालवीय और

काशी कांग्रेस। मुन्शी माधवलाल—पञ्चमकार के रहते क्यों लोग काशी कांग्रेस पर शङ्काएं करते हैं? माननीय गोखले का सभापति होना बहुत सुन्दर है क्योंकि कर्ज़न की कूलङ्कपा के सामने लोहे का दुर्भेद्य तीर उनने ही दिखाया था। युक्त प्रान्तवालों को पण्डित अयोध्यानाथ के प्राचीन गौरव का स्मरण करना चाहिए। कांग्रेस का विरोध यदि कहीं हुआ है तो उन्हीं के प्रान्त में, और उस के रहने न रहने का संग्राम उनने ही लड़ा है, अतएव रेशमी मोजे पहन कर लड़ने वाले और प्रान्त उनका उपहास न करें इस का उन्हें ध्यान चाहिए। सामाजिक परि[illegible] के कारण कई स्वाधीननेता छिपे रुस्तम भी कांग्रेस में आ जाते हैं इस से उन्हें पृथक् करना तो ठीक नहीं; उसके प्रभाव को रोकने को धर्मसभा कर लेनी चाहिए। एक हिन्दी की कान्फरेन्स भी उस समय होना अवश्य चाहिए। काशी नागरीप्रचारिणी सभा क्यों चुप है!

माननीय मालवीय ने अच्छा किया कि आत्मगौरव के लिए प्रयाग म्यूनिसिपेलिटी को छोड़ दिया। यदि यही भाव भारतवासियों में रहता तो वे इधर उधर अनाड़ी बन कर अप्रतिष्ठा न कराते फिरते। या इन सब बातों को हाथ में लें, या बिलकुल छोड़दें।

मण्डूका यत्र वक्तारः।

सभ्यसमाज प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट का ऋणी है कि उनने रूस जापान के लोमहर्षण संग्राम के बीच में पड़ कर शान्ति करादी और 'रणचण्डी के नृत्य को बन्द किया। संसार जापान की क्षमा और उदारता पर विस्मित है कि वह न केवल युद्धक्षेत्र में परन्तु धर्मक्षेत्र में भी वीर है। वे जातियां कहां हैं जो चीन पर चढ़ दौड़ी थीं और उस की बोटी २ छीनती फिरी थीं? परन्तु इतना मानभङ्ग होने पर भी रूस इतने ऊंचे सुर में है और जापान ने 'शठं प्रति शठम्' न करके अच्छा नहीं किया। यदि वह ही युद्ध में हारता तो उसकी क्या दशा होती? एशियावासी जापान के विजय से प्रसन्न थे, परन्तु इस सन्धि से उन्हें लज्जित होना चाहिए। शत्रु से उदारता क्या, और आततायी से 'तत्वमसि' कैसा? इतने वर्षों पीछे एशिया का एक राज्य यूरोप से शस्त्रों में तो जीता परंतु 'डिप्लोमैसी' में वह भी उन से हार गया? डिप्लोमैसी अभी हम में आई नहीं। 'राज्ञां नीतिबलम्'।

शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

श्रीमती ऐनी बेसन्ट ने मि० स्टेड के सम्भाषण में प्राचीन हिंदुओं को *Pharisees* अर्थात् कंस शिशुपाल के समान कहा है। इस से तो श्रीमती की कार्यावली में विघ्न होगा ही। परंतु वहीं पर भारतवासियों की राजनैतिक आशा पर यों गीला कम्बल छोड़ा गया है—"मैं नहीं समझती कि थोड़े से अङ्गरेजी पढ़े हिंदुओं को अधि-

थर्मामेटर और स्वतन्त्रता।

कार मिलने से देश का क्या लाभ होगा'। इधर सिनैट प्रभृति श्रीमती के सहयोगियों का सिद्धांत है कि यूरोप और अमेरिका की जातियों के आगे ही भविष्य है, यहां वालों के नहीं'। यदि यह घोर अनर्थकारी सिद्धांत भाग्यवादी भारतवासियों में फैल जायगा तो बड़ा अनर्थ होगा। परंतु प्रोफेसर आयर्लैण्ड ने एक थियोरी निकाली है कि ज्यों ज्यो गर्मी के मारे थर्मामेटर का पारा चढ़ता जाता है त्यों त्यों उस देशवाले राज्यशासन, प्रजातंत्र और स्वाधीनता के योग्य नहीं होते। अर्थात् परमेश्वर ने ठण्डे मुल्क वालों को शासक बनाया है, और गर्म मुल्क वालों को केवल एकतन्त्र का दास। राजा को ईश्वर मानने वाले और पुराण-प्रिय भारतवासियो में यदि सत्यनारायण की कथा के मिस से यह सिद्धान्त फैलाए जांय तो राजनतिक आन्दोलन का बहुत शीघ्र अन्त हो जायगा, और लोग महाराणी के घोषणापत्र की दुहाई न दिया करेंगे। राजा शिवप्रसाद के मतों के उत्तराधिकारियों को बङ्गालियों के तूफान पर इस अमोघ शस्त्र का उपयोग करने की हम सलाह देते हैं।

दादा दादाभाई।

महापुरुषों का पूजन देश के जीवन का लक्षण है और भारतवर्ष के वृद्ध महापुरुष दादाभाई नौरोजी के इकासिवीं वर्षगांठ का उत्सव देशभर में होना अच्छा लक्षण है। अल्पायु भारतवासियों में दादाभाई का जीवन कई युगों के बराबर है। जब जार्ज चतुर्थ बादशाह और लार्ड एमहर्स्ट गवर्नर जनरल थे उस समय, आपका जन्म हुआ था, और परमेश्वर करै—अहुरमज्द करै—जार्ज पञ्चम को राजभक्ति का प्रणाम करने को (और राजभक्ति कहलाती है कि वह दिन दूर हो) और कई उच्छृङ्खल वायसरायों का 'समरकण्ड निरूपण' करने को दादाभाई मार्कण्डेय की आयु पावें! लक्ष्मी नरसू चेट्टी का राजनैतिक आन्दोलन, डबल्यूसीबनर्जी और लालमोहन घोष का आन्दोलन,—ह्यूम और अयोध्यानाथ का आन्दोलन, और अन्त को प्रोटेस्टमीटिङ्ग और गोखले का आन्दोलन—चारों तरह के आन्दोलन दादाभाई की गोद में खेल चुके हैं। "अपि नः स कुले जायात्" जो दादाभाई का काम बंटा लेवे और इस परम परिश्रमी वृद्ध को विश्राम दे'

सहृदय संमिलन ।
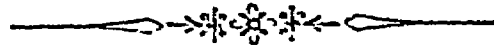
जरा जर्जरित विविध विपद् संपद् आधि व्याधि सन्निविष्ट इस क्षणिक जीवन में जब कभी किसी मार्मिक रसज्ञ सहृदय का साथ होजाय तो वह घड़ी कितने हर्ष और प्रमोद की बीतती है इसका अनुभव जिस भाग्यवान् को कभी हुआ हो वही इसे जान सकता है। दो अंगुल की जीभ निगोड़ी की क्या बिसात जो कह सके कि सहृदय सम्मिलन में क्या सुख है? महाकवि भारवि ने भी तो ऐसा ही कहा है "विमलं कलुषी भवच्चचेत: कथयत्येव हितैषिणं रिपुं वा"। जिस के मिलने से चित्त में विमल भाव उत्पन्न हो सहसा मन की कली खिल उठे उसे मित्र जानो और जिसे देख जी कुढ़जाय वरन मन मैला होजाय वह शत्रु है। इस का तो कहना ही क्या कि ऐसे सुयोग्य प्रेम भाजन मित्र संसार में विरले हैं। ऐसे कई एक विरले मित्रों में प्रात:स्मरणीय सुगृहीत नामा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र थे जिन्हें नि:सन्देह मैं अपने मित्रों की पवित्र नामावली का सुमेर कहूंगा। आज न जानिये क्यों उनका बिछोह मुझे पीड़ा पहुंचा रहा है। जी चाहता है कैसे एक बार फिर उन से मिल उन्हें गले लगाय मैं अपनी छाती ठंढी करूं। हा! भारतेन्दु का सरस्वती भण्डार मुझे कभी भूल सक्ता है? आश्विन मास के नव रात्रि की वह रात्रि या वह महोत्सव जिसे प्रतिवर्ष भारतेन्दु बड़े समारोह के साथ करते थे जो सरस्वती शयन के तीसरे दिन उत्थापनोत्सव के नाम से प्रख्यात है कभी भूलेगा? जैसी शिष्ट परंपरा चली आई है "मूले नावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्" शिष्टों में अग्रगण्य हमारे मित्र महोदय भला इस शिष्ट आचरण को कब भूल सक्ते हैं? जीखोल इस उत्सव

को मनाते थे । भाग्यवश आज मेरा भी प्रथम संमिलन उनसे इसी उत्सव में हुआ, सरस्वती उत्थापन महोत्सव में मग्न भारतेन्दु की बिखरी अलकावली तथा उनकी मुग्ध मुख छवि अब तक नहीं भूलती। हरिश्चन्द्र मेगाजीन में मेरे कई एक लेख उन से परिचय कराने का हेतु थे। वेलेख बालकों की तोतरी बोली थे, पर उन्हें वे बहुतही रुचे और वे बड़ेही सरल भाव से मुझ से मिले। उस समय मैंने अपने को कृतकृत्य माना बहुतसी संपत्ति मिलने पर भी वह सुख न मिलता जैसा इस सहृदय संमिलन में मुझे प्राप्त हुआ। फिर तो हमारी और उनकी घनिष्ठता बढ़तो होगई और बहुत दिनों तक क-व-सु-के ऐसे कोई हो अंक बच गये होंगे जिस में कोई लेख मेरे न रहे हों। हमारा हृदय अति हुलसित हुआ, जब मित्रने औरों से हमारा परिचय दिलाने में कहा आपही हैं जिन्होने मेगज़ीन में "कलिराज की सभा," "रेल का विकट खेल" "बाला विवाह प्रहसन" आदि कई लेख लिखे हैं "परगुण परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्त " भर्तृहरिके इस कथन को मित्र ने स्पष्ट कर दिखा दिया। जिन का लेख इस समय हिन्दी साहित्य के भण्डार को अलंकृत कर रहा है उस के सामने हम ऐसे क्षुद्रातिक्षुद्र किस गिनती में हैं किन्तु उत्साह बढ़ाने को मित्र का इतना कहना हमारे लिये बहुत ही उत्तेजक हो गया।

एक वार हम काशी गये थे उस समय आप के सरस्वती भंडार में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास भी वहां बैठे थे, उन से हमारा परिचय दिलाते उन्हो ने यह आशीर्वाद हमें दिया "हमारे उपरान्त तुह्मारा ही लेख हिन्दी लेखकों में परिगणनीय होगा"। यों तो काशी तथा प्रयाग में अठवारों हमारा उनका साथ रहा पर एक वार का यह संघटन अवश्य लिखने योग्य है।

यहां की छात्र मण्डली ने हिन्दीवर्द्धिनी। नाम की एक सभा

स्थापित की थी बहुत दिनों तक यह सभा चली। एक बार किसी प्रयोजन से बाबू साहब वहां आये थे सब लोगों ने उन से प्रार्थना की, आज आप के सभा का लेक्चरार हम लोग नियत करते हैं। बाबू साहब ने सबों की प्रार्थना स्वीकार की और कहा हम पद्य में लेक्चर देंगे। ६ बजे का समय नियत किया गया पर ४ बजे तक कुछ न सोचे थे कि क्या वहां कहेंगे। हम लोगों ने जब सुध दिलाई तब एक घंटे में शतरंज खेलरहे थे बात भी करते जाते थे और १०० दोहे लिख डाले जिसके एक २ शब्द में उत्तेजना भरी है प्रतिभा इसी का नाम है। वे दोहे प्रदीप की पहिली जिल्द के अंकों में पीछे से मुद्रित किये गये हैं। इत्यादि कितनी बार उनका सहृदय सं मिलन हुआ है। आपके पढ़ने वालों को यदि रुचें तो वे क्रमशः प्रकाशित किये जा सकते हैं।

बालकृष्ण भट्ट,-प्रयाग।

ये जो सेनापति और प्रजापति में विवाद हुए हैं, इन में यह बात स्पष्ट दीख आई है कि भारतवासी या तो तुच्छ माने जाते हैं या विलमान रह जाय। कुल बुद्धिशून्य। वायसराय की प्रबलता को रखने के लिये, वा उस अनुत्तम चिड़चिड़े पत्रव्यवहार को छपाने से छिपाने के लिए यही तर्क दिखाया जाता है कि ऐसा करने से सम्राट् के प्रतिनिधि का मान भारतवासियों की दृष्टि में घटजायगा न्याय हो वा अन्याय, भारतवासियों की दृष्टि में मान न गिरने पावे। इसी लिये टाइम्स आदि पत्रों को, जिनने अपने अपने मुर्ग के पक्ष में खूब कहा है झिड़कारा गया है कि ये बातें मन में सोचो भारतवासियों को क्यों सुनाते हो? परन्तु कार्लाइल के शब्दों में ऐसे महापुरुष और खल के संकर वायसराय का मान कब तक न टूटता? जिसने प्रजामत पर एड़ी रखकर नवीन शिक्षितों की आशाओं पर तुषार डाला, क्या उस की मानमूर्त्ति के लिये कोई किचनर गजनवी न उठता? और भारतवासी कब तक ना समझ बच्चे रहैंगे?

कुण्डलिया ।

(गताङ्क से आगे)

" नदी किनारे रूखरा जब कब होय विनास "
जब कब होय विनास काल चढ़ि बाढ़ जु आवै ।
जरा जीर्ण नर देह ग्रास ते कौन छुड़ावै ?
मृत्यु लिए कर घात रहा तकि औसर अपना ।
प्रान जाय तजि काय जीव जनु जग सुख सपना ॥
'रसिक' चेत हरि नाम भज जबलौं आतुरश्वास ।
नदी किनारे रूखरा जब कब होय विनास ॥ ७ ॥
" ढ़ाक चढ़त वारी गिरै करै राउ पर रोष "
करै राउ पर रोष दोष निज ताहि लगावै ।
अपनी करनी भूलि परहिं अपराधि बनावै ॥
दुख प्रति फल निज पाप है सुख हु सुकृत परिणाम ।
रीति यही जग दूसरे शिर पोंछत निज काम ॥
सुख दुख अपने कर्म के 'रसिक' प्रभू निरदोष ।
ढ़ाक चढत वारी गिरै करै राउ पर रोष ॥ ८ ॥
" सूने घर को पाहुनो ज्यों आवे त्यों जाय "
ज्यों आवे त्यों जाय लाभ कछु बिना उठाये ।
होकर हाय हताश निशा वासर विसराये ॥
पैसत मानुष खोरि जीव उन्नति अभिलाषी ।
माया में लिपटाय रहे पुनि अन्त निराशी ॥
सुकृत करे नहिं जो 'रसिक' तन मानुष को पाय ।
सूने घर को पाहुनो ज्यों आवे त्यों जाय ॥ ९ ॥

" सोई नारि सतेवरी ज़ाकी कोठी ज्वारि "

जाकी कोठी ज्वारि जाहि हरि नाम जीभ पर ।
सती भक्ति पति पाद चित्त थिर धर निस वासर ॥
श्वसुर सासु आदेश रत देवर ननंद पियारि ।
जो सेवै गुरु जनन को कामहु करै विचारि ॥
'रसिक' कहै पति पुत्र युत अरु सौभाग्य सँवारि ।
सोई नारि सतेवरी जाकी कोठी ज्वारि ॥ १० ॥

" जोगी था सो रम गया आसन रही विभूत "

आसन रही विभूत जीव तजि देह सिधारा ।
लार (संग) गये नहिं द्रव्य पिता माता सुत दारा ॥
पाप पुण्य नर देह गहि करे जो सारा काम ।
संग जात परलोक में छांड़ि सुयश अरु नाम ॥
'रसिक' रही मिट्टी जबै आन लिया यमदूत ।
जोगी था सो रम गया आसन रही विभूत ॥ ११ ॥

(क्रमशः)

पुरोहित गोपीनाथ ।

———o———

सङ्गीत की धुन ।
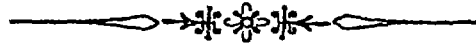
लाहौर के गान्धर्व विद्यालय के अध्यक्ष और संस्थापक पण्डित विष्णुदिगम्बर पुलस्कर, आजकल राजपूताने का दौरा, अपने कुछ विद्यार्थियों के साथ, कर रहे हैं । अजमेर में 'समालोचक' का एक विशेष प्रतिनिधि उन से मिला । उस ने देखा कि पुलस्कर महाशय गौर वर्ण, गठीले शरीर के युवा महाराष्ट्र हैं । देह की बनावट और भाषण की मधुरता से पहले उन के बङ्गाली होने का सन्देह होता है । विष्णुराव स्वभाव के बड़े शान्त, मिलनसार और परिश्रमी सज्जन दिखाई देते हैं । नमस्कार प्रणाम के उत्तर प्रतिनिधि ने पूछा—"महाराष्ट्र, केरल, कर्णाटक, मईसोर प्रभृति में सङ्गीत की मर्यादा है, प्रतिष्ठा है । वहां इसे मीरासियों की जायदाद समझ कर इस की घृणा नहीं होती । फिर क्यों आप ने पञ्जाब में इस विद्या के प्रचार का उद्योग किया और इस में क्या आप को अधिक कठिनाई नहीं पड़ी ?"

मि० पुलस्कर—अवश्य पड़ी, परन्तु हमारे गुरुदेव साधु महात्मा की यही काम करने की आज्ञा हुई । वेदादि शास्त्र दक्षिण में पञ्जाब ही से गए थे, इसलिये उन की यही आज्ञा थी—जिन ने मुझे सङ्गीत की थियोरी और उस का योगाभ्यास से संबन्ध समझाया—कि जड़ को सुधारो, फिर सब सुधर जायंगे ।

प्रतिनिधि—क्षमा कीजिये, पण्डित जी, आप तो बहुत साफ हिन्दी बोलते हैं ? क्या संगीत विद्या आप के यहां वंश परंपरा से चली आई है ?

मि० पुलस्कर ने कहा, "हां मैं पहले भी गुजरात में बहुत

रहा हूं, और अब व्याख्यान आदि के देने से हिन्दी ही बोलनी पड़ती है। महाराष्ट्र में कोई भी ब्राह्मण ऐसा होगा जिसको वंश परंपरा से भजनकीर्त्तन न आता हो या कुछ न कुछ सङ्गीत न आता हो। हमारे पितामह गदर के दिनों में उत्तर भारत में ही थे और "आमचे व-ड़ील" हरिकीर्त्तन करते थे। मैंने दस वर्ष तक प्रैक्टिस किया, किन्तु वास्तव ज्ञान महात्मा गुरुदेव की कृपा से ही हुआ। उन्हीं की कृपा से मैंने जो कुछ—

"हां, आप ने क्या इस विद्या में नये आविष्कार भी किये हैं? और इस के नोटेशन का जो आप का नया क्रम है वह आपही का है?"

"हां वह मेरा अपना ही है" विष्णुराव ने कहा "मैंने प्राचीन ऋषियों के ग्रन्थों पर ही चल कर सब कुछ जाना है। द्रुतगत अणु द्रुत पहले भी था, अणु अणु द्रुत, और अणु अणु अणु द्रुत मेरी समझ है। ऐसे ही इन चिह्नों को देखिये इन से सरगम का नया ही रूप हो गया है और पढ़ने पढ़ाने में बड़ी सुगमता हो गई है। देखिये, इस पुस्तक (सङ्गीत बाल बोधक) में तिस्र आदि नाम भी हमारे ही निकाले हैं। यह बात आप कहीं न पाइएगा।"

"क्या महाराजा शौरीन्द्रमोहन टागोर का क्रम आप ने देखा है? उस के विषय में आप का क्या मत है?"

"वह अङ्गरेजी नोटेशन का अनुकरण और केवल बीस पच्चीस रागों पर ही चलता है। उस में यह बात नहीं कि साठ साठ पेज तक एक ही राग का विस्तार चले। हमें इस के लिए नए टाइप भी बनवाना पड़े हैं।"

"तो अब पञ्जाब में आपका काम कैसे चल रहा है?"

"चार वर्ष में जो कुछ हुआ है उस से भविष्यत् की अच्छी आशा होती है। पहले लोग हमें कहा करते थे कि लड़कों को बिगाड़ते

हो। धीरे २ सभी सभ्य सज्जन आने और मानने लगे हैं। महाराज कश्मीर १५०) प्रतिमास देते हैं। गुप्तदान भी बहुत कुछ आ जाता है। इतना व्यय किसी न किसी तरह चलता ही है। एक मकान के लिए ज़मीन भी मिल गई है। अपना प्रेस भी खोल लिया है जिस में 'सङ्गीतामृतप्रवाह' हिंदी मासिकपत्र छपता है। हमारी वर्कशाप में हार्मोनियम तम्बूरो प्रभृति बनाए जाते हैं और उनकी बिक्री से सब खर्च निकल कर विद्यालय को १५०) २००) प्रतिवर्ष बच जाता है।"

"क्षमा कीजिए, हार्मोनियम बनाने में आप विलायत से क्या सामान मंगाते हैं और यहां कितना बनाते हैं?"

"प्राण विलायती होता है, शरीर यहां का बना होता है। प्राण यहां बनावें तो एक एक पर्दे में २) २) रुपए लगते हैं; पूरा पटता नहीं। हां, इन तीन महीनों की छुट्टियों में हम या प्राफेसर और विद्यार्थी घूमने को निकलते हैं। कोई यों देता है तो यों, नहीं तो गा बजा कर लेते हैं। हम लोग इस में से कुछ भी रुपया नहीं लेते, चाहे जहां से जो पावें। हमने 'नार्मल' वा उपदेशक क्लास खोला है और सङ्गीतविशारद की उपाधि भी इस वर्ष से देना चाहते हैं। बस पञ्जाब में लोग हमें जान गए हैं और काम भी चलता है"

"मैंने सुना था आप लोग आनरेरी काम करते हैं।"

"नहीं, हमलोग रईस या जागीरदार तो हैं ही नहीं। अन्न वस्त्र तो वहीं से लेना पड़ता है। हमारा आनरेरीपना समझो तो यही है कि हम कहीं नौकरी नहीं करेंगे। रजवाड़ों में हमें ३००) ४००) मासिक मिल सकता है। कई प्राफेसर भी १५०) २००) पा सकते हैं।"

"तो आपका मिशन क्या है और अभी तक पंजाब में आप को क्या करना है? क्या आपका सङ्गीत यूनिवर्सिटी खोलने का भी विचार है?"

"मिशन दो प्रकार के होते हैं, मिसरी का मिशन और कड़वा मिशन। हमारा मिसरी का मिशन है। जो एक दफ़ा जान जायगा वह अवश्य हाथ बढ़ावेगा। जब वेश्या म्लेच्छ आदि के साथ मिसरी कुपथ्य थी तभी लोगों ने उसे न छोड़ा तो यह तो सुपथ्य है। लोग चाहे कुछ कहैं पर उन के कान नहीं मानते, वे उन्हें खैंच ही लाते हैं। पंजाब में गांव २ में हमारे शिष्य हैं और वहां २ उनने हमारे क्रम से, हमारे पुस्तकों से, पढ़ाना शुरू किया है। हमारे साथी ही जा कर परीक्षा लेते हैं। जलन्धर होशियारपुर में इस बात में सफलता हुई है। हमें बड़ी भारी आवश्यकता एक बड़ा मकान बनाने की है, फिर परमेश्वर की कृपा और लोगों की सहायता से स्थान२ में सङ्गीत पाठशाला बन कर हमारे विद्यालय से सम्बद्ध हो जांय इस में क्या कठिनता है ? हमारा उद्देश्य यह है कि ब्राह्मणजाति इस विद्या से घृणा न करै जिससे उनमें इस सुकुमार और मनोहर विद्या का प्रचार हो और भारतवर्ष का पुराना गौरव लौट आवे। सम्भव है कि अभ्यास से मल्लार से मेघ आना और दीपक से दीपक का जलना प्रभृति—

प्रतिनिधि—क्या इन की इस शक्ति में आपका विश्वास है ?

पुलस्कर—भगवद्भजन में सब शक्ति है। उन शक्तियों के जानने से देश का दुःख दूर होजायगा।

"पञ्जाबियों की सङ्गीत की योग्यता के विषय में आप का क्या मत है ? क्या उनका मस्तिष्क और जातियों की अपेक्षा अधिक अनुकूल है ? सुना है वङ्गालियों ने अन्तःपुर में और बाहर सङ्गीत का अच्छा प्रचार किया है।"

"पञ्जाबियों में कई शताब्दियों से सङ्गीत के संस्कार दूर हो गए

हैं, तो भी परिश्रम से वे और जातियों से अच्छे होजा सकते हैं। व ङ्गदेश में मैं स्वयं कभी गया नहीं, परन्तु यह कह सकता हूं कि हमें बङ्गालियों ने कभी जेब से सहायता नहीं दी है।"

"अच्छा, जाने दीजिए, परन्तु 'भूखे पेट भजन नहिं होई' देश कङ्गाल है, इस में शिल्प या राजनैतिक आन्दोलन को ही समय नहीं मिलता और न रुपया। ऐसे समय में विश्राम के कार्य सङ्गीत को इतना ध्यान देना लोगों को रुचता है?"

"जो भक्त हैं, भावुक हैं, सहृदय हैं, वे आटे में नमक और रुपये में पैसा हमें दे ही देते हैं। जो नहीं हैं वे या तो रुपया गाड़ छोड़ते हैं या दुर्व्यसनों में डाल कर भी देश की दीनता की दुहाई दिया करते हैं। सङ्गीत से प्रसन्न होकर भगवान् सब कुछ देदेंगे। कई दुर्व्यसनी बालक हमारे यहां रह कर उत्तम चरित्र के बनगये हैं। रही राज़नीति, सो कभी आजमा देखिए आप के व्याख्यान का अधिक प्रभाव होता है या हमारे तानारीरी के एक जातीय गीत का। "सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थ मूलाः।" यदि हमारे विद्यालय की पुस्तकों का एक एक सेट भी प्रत्येक भद्रपुरुष लेले तो कल हम स्वयंभर (*Self-supporting*) हो जांय।"

"राजपूताना के दौरे में आप दरबारों से मिलकर यह प्रबन्ध क्यों नहीं करते कि उन के गुणीजन खाने या स्तुतिपाठकों में आप के उत्तीर्णपरीक्ष छात्र रहैं जिससे निरर्थक और उत्पात की गज़लों से तो देश बचे। मन्दिरों में भी "दिलदार यार प्यारे" की जगह आप के यहां के जातीय गीत और भजन गवाए जांय न?"

"हां, यह बहुत अच्छा होगा। कृष्नगढ़ महाराज ने दो विद्यार्थी मेरे यहां भेजने का वचन दिया है। मीराज और मुधोल राज्य ने भी विद्यार्थी भेजे हैं। परन्तु राजपूताना के दरबार इतने दुर्मद

हैं कि उन तक मेरी गति ही नहीं होती। अब मैं उदयपुर जाऊंगा और ता० १६ अक्टोबर को विद्यालय खुलेगा। तब तक जो हो जाय सो हो जाय।"

"अब के काशी में राष्ट्रीय महासभा होने वाली है, क्या आप वहां जातीय गीतों के पुरुष और रमणियों से गान का प्रबन्ध नहीं कराएंगे?"

"कांग्रेस के कर्त्ताओं से हम समय और स्थान मांगेंगे और यदि अनुकूल हुआ तो एक या अधिक प्राफेसर और विद्यार्थी वहां भेजेंगे। रमणियों का तो—

"क्यों? क्या देश की दुर्दशा में पुरुष लगे रहैं और गृहलक्ष्मियें दाक्षिणात्य और बङ्गदेश की रमणियों की तरह इस सरस्वती की वीणा को न उठावें?"

"नहीं, जालन्धर कन्या महाविद्यालय में हमारे ही क्रम से शिक्षा दी जाती है। मैं भी यही चाहता हूं कि गृहलक्ष्मियां इस सुकुमार शिल्प को लेलें। बङ्गदेश में तो मैं कभी गया नहीं, पर इधर अभी यह बात दूर है।"

"थियासोफी से आप का कुछ सम्बन्ध है? उस के विषय में आप का क्या मत है?"

"मुझे अपने काम से फुरसत नहीं मिलती। मैं यही चाहता हूं कि इसी में ४८ वा ७२ घण्टे का अहोरात्र हो जाय। सब बातों में जो अपने अनुकूल अंश हो वह मनुष्य ने ले लेना, और हमें किसीसे कुछ वास्ता नहीं, न उनके महात्माओं से हमारा काम है।"

"पञ्जाब में हिन्दू मुसलमान और हिन्दू सिक्खों के झगड़े का क्या आपके विद्यालय पर कुछ प्रभाव पड़ा है?"

"नहीं, प्राय: ७५ उच्च कुलों के मुसलमान हमारे यहां पढ़ गए हैं। परन्तु वे पूरा नहीं सीखते कुछ कमही सीखकर चल देते हैं।

इस का कारण यह है कि हम गज़लें तो सिखाते नहीं और " गाइए गणपति जगवन्दन " घर जाकर बोलने में उन्हें शरम आती है। परन्तु मैंने कहा न, कान हमारे यहां विना आए नहीं मानते । सिक्ख भी हमारे यहां पढ़ते हैं परन्तु उनका और हिन्दुओं का झगड़ा मिटने वाला नहीं है क्योंकि उस में राजनैतिक अभिसन्धि है । हां आज कल बङ्गाल में जो स्वदेशी आन्दोलन चला है शायद इससे कुछ वर्षों में यह मिट जाय । "

" स्वदेशी आन्दोलन ! आप का काम भी स्वदेशी है ! "

" हां, हार्मोनियम को लोग सबसे सरल और उपयोगी समझते हैं परन्तु तुम्बुरु ठीक है । अजी, हम तो शहनाई प्रभृतिका मिला जुलाकर खासा बैण्ड, फौजी बैण्ड, बनादें पर करें क्या ? "

" क्या आप को आशा है पञ्जाब में हिन्दी चल जायगी ? "

" सरकार कचहरियों में न करै तो दूसरी बात है नहीं तो साधारण व्यवहार में एक दिन उर्दू को हिन्दी निकाल देगी । हमारी हिन्दी पुस्तकों का द्वितीय संस्करण होता आया परन्तु उर्दू विकती नहीं । "

"अच्छा, कोई नया जातीय गीत तो लिखाइए—"**सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा** "तो मैंने सुना है"।

" वह नहीं यह नया लीजिए । इसका नोटेशन सङ्गीतामृत प्रवाह की नवम संख्या में छपा है ।

राग खम्माज ।

" भारत हमारा देश है, हित उस का निश्चय चाहेंगे ।
और उसके हित के वास्ते, हम कुछ न कुछ कर जांयगे ॥
भारत की दुःखप्रद अवनति पर, क्यों न अश्रु बहाऐंगे ?
और उस के मिटाने के लिए हम कुछ नकुछ कर जांयगे ॥
भारत हमारी मातृभूमि, उसका ऋण हम पर बहुत ।
उस के शोधन के लिए, हम कुछ न कुछ कर जांयगे ॥
धन विद्या और धर्म से उन्नति भारत की हो ।
इस उन्नति के मार्ग में, हम कुछ न कुछ कर जांयगे ॥

हमारी आलमारी।

अगस्त की 'सरस्वती' में नेपाल राजवंश के कई सुन्दर चित्र हैं जो गत संख्या में छपने से रह गए थे। 'विविध विषय' के पीछे सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का 'महाकवि माघ' लेख है। भाषा कुछ पण्डिताऊ होने पर भी काल निर्णय और कवि का गुण वर्णन अच्छा है। 'सार्थ' का (स्वार्थ नहीं) अर्थ 'सुयोग' नहीं है साथ अथवा caravan है। देखो, गन्तव्ये सति जीवित ! प्रिय सुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते ? और सार्थवाह। प्रसङ्गागत श्लोकों का अनुवाद सुन्दर है। आशा है कि लेखक शीघ्र ही "विशेष विशेष स्थलों के अच्छे २ पद्यों को अनुवादसहित फिर किसी समय लिखेंगे और उनकी समालोचना भी करेंगे"। वे माघ के लिए वही कर सकते हैं जो राय देवीप्रसाद ने मेघदूत के लिए किया है। 'पावसराज' और 'प्रेमपताका' नई भाषा में परिचित भावों की कविताएं हैं। रविवर्मा के 'कुमुदसुन्दरी' चित्र के साथ सम्पादक की उसी विषय की चलती कविता है। निज़ाम शाह 'एक शिकारी की सच्ची कहानी' कहते हैं। बड़े हर्ष का विषय है कि सम्पादक ने "व्यर्थ निन्दा प्रतिबन्धक लोगों के लिए" मिलकी 'स्वाधीनता' का अनुवाद किया है, जिस की भूमिका इस संख्या में छपी है। "प्रतिवन्धहीन विचार और विवेचना की जितनी महिमा इस पुस्तक में गाई गई है उतनी शायद ही कहीं हो"। अन्त के पैरोग्राफ़ साकूत लिखे गए है और साकूत ही पढ़े जाने चाहिएं। "जिन लोगों का यह ख़्याल है कि व्यर्थ निन्दा के प्रकाशन को रोकना अनुचित नहीं है, वे सदयहृदय होकर यदि मिल साहब की दलीलों को सुनेंगे और अपनी सर्वज्ञता को ज़रा देर के लिए अलग रख देंगे तो उनको यह बात अच्छी तरह मालूम हो जायगी कि

वे कितनी समझ रखते हैं। निन्दा प्रतिबन्धक मत के जो पक्षपाती मिल साहब की मूल पुस्तक को अङ्गरेजी में पढ़ने के बाद 'व्यर्थनिन्दा' के रोकने की चेष्टा करते हैं उनके अज्ञान, हठ और दुराग्रह की सीमा और भी अधिक दूरगामिनी है। क्योंकि जब मिल के सिद्धान्तों का खण्डन बड़े२ तत्त्वदर्शी विद्वानों से भी अच्छी तरह नहीं हो सका तब औरों की क्या गिनती है? परन्तु यदि उन्होंने मूल पुस्तक को नहीं पढ़ा तो अब वे कृपापूर्वक इस अनुवाद को पढ़ें। इससे उनकी समझ में यह बात आ जायगी कि अपनी निन्दा के प्रकाशन को—चाहे वह निन्दा व्यर्थ हो चाहे अव्यर्थ—रोकने की चेष्टा करना मानों इस बात का सबूत देना है कि वह निन्दा झूठ नहीं बिलकुल सच है। व्यर्थ निन्दा के असर को दूर करने का एक मात्र उपाय यह है कि जब निन्दा प्रकाशित हो ले तब उसका सप्रमाण खण्डन किया जाय और दोनों पक्षों के वक्तव्य का फैसला सर्व साधारण की राय पर छोड़ दिया जाय। ऐसे विषयों में जनसमुदाय ही जज का काम कर सकता है, उसी की राय मान्य हो सकती है। जो इस उपाय का अवलम्बन नहीं करते, जो ऐसी बातों को जन समूह की रायपर नहीं छोड़ देते, जो अपने मुकद्दमे के आप ही जज बनना चाहते हैं, उनके तुच्छ हेय और उपेक्ष्य प्रलापों पर समझदार आदमी कभी ध्यान नहीं देते। ऐसे आदमी तब होश में आते हैं जब अपने अहंमानी स्वभाव के कारण अपना सर्वनाश कर लेते हैं। ईश्वर इस तरह के आदमियों से समाज की रक्षा करें!"

'देशव्यापक भाषा' में व्यापक भाषा और लिपि के सामाजिक आन्दोलन का विचार किया गया है। भूल से जस्टिस शारदाचरण को भूतपूर्व जज लिखा है। अन्त में ग्रीव्ज़ साहब के चलती कैथी के प्रचार के प्रस्ताव के खण्डन का उपसंहार यों है—"पादरी सा-

हब की नागरी लिपि देखने का तो सौभाग्य हमें नहीं हुआ, पर परलोकवासी पिन्काट साहब की दो एक चिट्ठियां हमारे पास हैं। वे नागरी में हैं। उन को देखने से जान पड़ता है कि पिन्काट साहब ने एक एक अक्षर एक एक मिनट में लिखा होगा। यदि ऐसे लेखक कैथी लिखने वालों से कोसों पीछे पड़े रह जांय तो कोई आश्चर्य नहीं"। 'व्योमविहरण' में बैलून का असमाप्त इतिहास है। 'लोमहर्षण शारीरिक दण्ड' वास्तव में लोमहर्षण यो हैं कि उनका उपयोग सभ्य अंगरेजी राज्य के स्थापन की सहायता में किया गया था। 'जापानी जीत का कारण' सामाजिक सूत्र की शिथिलता, विदेशियों को न घुसने देना, विज्ञान का बल, प्रभृति को लिख कर हिन्दुओं की उन से तुलना कर के अन्त में ये मर्मस्पृक् वाक्य लिखे गए हैं—"जापान में सब लोग परस्पर शादी विवाह करते हैं, हिन्दुस्तान में अपने वर्ण में भी शादी करने में अनेक झंझट पैदा होते हैं। जापान में छुआछूत नहीं, हिन्दुस्तान में इस की पराकाष्ठा है। ये बातें विचारने लायक़ हैं। पर विचार करने वालों ही की यहां कमी है। विचार करै कौन?"। "आंख" का नीरस लेख अभी चला जाता है।

'भारतमित्र' में आविष्कार रहस्य, पुराने हिन्दी पत्रों का इतिहास, शिवशम्भु का विदाई का चिट्ठा, पण्डित देवकीनन्दन त्रिपाठी का स्मरण, राजपूताने के सिक्कों की सभा, वर्षा वर्णन और एकाक्षरप्रचार पर समय समय पर अच्छे लेख, निकले हैं। इस पत्र के बड़े आकार को देखने से हमें दुःख होता है क्योंकि इस के बहुत से लेख मासिक पत्रों के द्वारा रखने लायक होते हैं। बाबू योगेन्द्रचन्द्र वसु के अन्तकाल ही में 'हिन्दी बङ्गवासी' बिगड़ गयाथा, तो अब उस का सुधरना दूरपराहत है। यदि वसु महाशय के विराट् आकार और

विराट् उपहार की धूम न होती तो कदाचित् कलकत्ता प्रधान हिन्दी पत्रों का स्थान न बनता, इस के लिए हिन्दी उन की कृतज्ञ रहैगी। पण्डित लज्जारामजी के पृथक् होने से **श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार** बहुत कुछ गिर गया है। काग़ज़ के साथ साथ लेख भी बिगड़ गये हैं। 'आचार्य पर आचार्य' के निष्फल लेख से हम कोई लाभ नहीं देखते, सिवाय इस के कि व्यवस्थाओं का रहा सहा मान और नष्ट हो जाय। पहले सिख मन्दिर का विषय अच्छा लिखा गया था, और राष्ट्रभाषा पर गुजराती साहित्यकारों के वचन खूब उद्धृत किये थे, परन्तु फिर कोई लेख ध्यान देने योग्य नहीं निकलता। पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र का विलाप ताता से भी अधिक किया गया है और न मालूम हिन्दी साहित्य की सेवा में उन्हें भारतेन्दु का वा प्रतापनारायण का स्थान दिया है। एकाक्षर के मण्डन में इस पत्र ने देवनागरी लिपि को 'अनादिकाल से चली आई' कहा है। ऐसी भद्दी हिमायत की कोई ज़रूरत नहीं है और न इस से देवनागरी का पक्ष प्रवल होता है। देवनागरी लिपि हज़ार वर्ष की भी नहीं है और बङ्गला उस से प्राचीन है; देवनागरी का हक़ देशव्यापकता और सरलता पर है न कि "ब्रह्मणो द्वितीय परार्द्धे" पर। बम्बई से निकलने वाले और हिन्दी साप्ताहिक पत्र उपेक्ष्य हैं। " अजमेर के **'राजस्थान समाचार'** ने युद्ध के दिनों में सीधे तार मंगा कर राजस्थान में एक प्रकार की हलचल और हिन्दी साहित्य में एक नई बात कर दी थी, परन्तु हिन्दी पत्रों ने उसे उत्साह का वाक्य भी न कहा। थाली फेरने वाले उपदेशकों को विश्वमण्डन कहने वाले उस के स्वामी के व्ययपर एक शब्द भी न कह सके। लेख भी उस पत्र में बीच में अच्छे निकलते थे परन्तु अब फिर पत्र बिगड़ चला है। अभी रूस जापान का युद्ध बंद हो जाने से न मालूम कितने पत्रों के

विषयों का दिवाला निकलेगा! **प्रयाग समाचार** और **भारत जीवन** की दशा बहुत उन्नति की अपेक्षा रखती है।

प्रयाग के राघवेन्द्र ने अषाढ़ और श्रावण के अङ्क कुछ विलम्ब से निकाल कर अपना प्रथम वर्ष पूरा कर दिया। "भीषण भविष्य" के निरर्थक लेख में हम कुछ लाभ नहीं समझते। स्वतन्त्र कन्या का झूंठा आदर्श उस देश में क्यों खड़ा किया जाता है जहां दूधके दांत टूटने के पहले ही कन्या पतिसात् करदी जाती है? विचारी पढ़ने वाली कन्याएं कभी उन कृत्यों को नहीं करतीं जो द्वितीय प्रकरण में वर्णित हैं, अवश्य वे वाल विधवा उनसे भी बढ़ कर चरित्र करती हैं जिन की संख्या बढ़ाने का यत्न धर्म लोकाचार और गड्डलिकाप्रवाह रात-दिन किया करते हैं। 'कुल और सम्प्रदाय' और 'साङ्ख्यदर्शन' पठनीय और रोचक हैं। बाल्मीकीय रामायण के काल निर्णय में लेखक लिखते हैं—"इस विषय (इतिहास) की मीमांसा में कुछ लोगों को तो केवल अटकल बाज़ी से ही सन्तोष हो जाता है और कुछ लोग आस्तिक बुद्धि, शास्त्रीय प्रमाणों के सहारे अपने उद्देश्य की पूर्त्ति करते हैं। हमारी समझ में इन दोनों में दूसरे नम्बर के जिज्ञासु श्लाघ्य हैं" याने शिलालेख के मानने वाले से गरुडपुराण मानने वाला श्लाघ्य है। हिन्दी साहित्य फण्ड का वर्तमान हिन्दी प्रचारक समाजों से पृथक् तितिम्मा खड़ा करना ठीक न होगा। हां यदि पांचवें सवार बनने का शौक न पूरा होतो दूसरी बात है। काशी की सभा या नागपुर की मण्डली यह काम कर सकती है। सोशल कान्फरैन्स और स्वामी विवेकानन्द पर लिखते समय सम्पादक को जोश अच्छा आया है। 'साम्यवाद' नीरस परिहास है। क्या अच्छा हो यदि कालिदास के विषय में ऐसी दन्तकथाएं न सुना कर यह सुनाया जाय कि कालिदास, भवभूति और दण्डी एक काल में नहीं थे। "कालिदास गिरां

सारं कालिदासः सरस्वती " यह श्लोक मल्लिनाथ का है। इसका उत्तरार्ध है "चतुर्मुखोथवा साक्षाद्विदुर्नान्ये तु मादृशाः"। और अर्थ भी लेखकोक्तिसे भिन्न है। हिन्दी साहित्य में मि० सप्रेको नागपुर की हिन्दी प्रकाशक मण्डली पर एक वाक्य है—" जो नियमावली हमको मिली है उसके आवरण पृष्ठपर आरम्भ में श्री और सर्व धर्म्म प्रतिष्ठितम् लिखा देख कर हम इस मण्डली की भावी उन्नति की आशा करते हैं " नहीं तो नहीं करते।

हिन्दीप्रदीप की **अगस्त** की संख्या में सम्पादकीय टिप्पणियां बहुत सुन्दर हैं। राजनीति धर्मनीति दोनों रैडिकल हैं। कुलीनता कौमियत का कलङ्क बहुत सरल भाषा में सरल लेख है, इस में एक श्लोक क्षेमेन्द्र का क्या अच्छा लिखा है:—

> कुलाभिमानः कस्तेषां जघन्यस्थान जन्मनाम्।
> कुलकूलङ्कषा येषां जनन्यो निम्नगाः स्त्रियः॥

भारतेन्दुजी के अप्रकाशित पद्य अमूल्य हैं। प्रेरित में वर्णमाला में रोगों का चित्र है। कांग्रेस रिपोर्ट की समीक्षा में सर फिरोज़शाह की कांग्रेस की उपयोगिता के वर्णन का अनुवाद है। बन्दरसभा महाकाव्य परिहास है, रोचक है। नई खबरें पहली एप्रिल का स्मरण कराती हैं। बड़े हर्ष की बात है कि भट्टजी का लेख अपनी पुरानी रोचकता को न खोकर समय पर निकल ने लगा।

वैद्योपकारक की ज्येष्ठ आषाढ़ की संख्याएं साथ निकाली है। आरम्भ में पञ्जाब में भूकम्प की कविता है जो समालोचक में छप चुकी है। अपना एक ही लेख दो पत्रों में भेजने से यह लाभ तो होता है कि यदि एक के देर हो तो दूसरा झट छाप दे। " लड़की की बहादुरी " का लिखने का ढंग बहुत अच्छा है। ऐसे रत्नों

का भण्डाफोर करना चाहिये, परन्तु पाप मार्गों का अधिक परिचय नहीं। जाट का चरित्र बहुत अच्छा खैंचा गया है। पुराने मारवाड़ियों के अस्त होते रत्नों में भक्त और कवि रामदयाल ने नेवटिया के विषय में लिखा है "यदि इस ढंग की कविता कोई अभिमानी कवि या विबुध जननी काशी के आस पास का कोई साधारण मनुष्य प्रकाश करता तो कुछ लिखने योग्य बात न थी। किसी स्वच्छ सरोवर में कमल का पुष्प खिल उठे तो कुछ आश्चर्य नहीं पर यदि वह अर्क प्रधान मरु भूमि में खिलता दिखलाई दे तो आश्चर्य है" टोगो की विजय भेरी, सुकवि राधाकृष्ण मिश्र की मनोहर कविता है। नमूने सुनिये।

मिला जुलाके खराब करदें मनुष्य जो काम काज के हों।
राजद्रोही कहैं उन्हें जो हितैषी अपने समाज के हों।
स्वतन्त्रता से न बोलने दें न बात लिखने दें जी की भाई।
नियम के बन्धन से बांध दें यों गऊ को बांधे हैं ज्यों कसाई।
समझते अपने को सभ्य हैं ये, असभ्य औरों को हैं बनाते।
गुलाम करते हैं एशिया को उधर गुलामी फिर छुटाते।
दोष कहां तक गिनावें इन के ? पराधीनता बुरी बला है।
सम्हलने पाया न देश फिर वो जो इस से कटवा चुका गला है॥

"जापानी मारवाड़ी" गूढ़ अभिसन्धि युक्त उपन्यास है। बनावटी कुञ्जलाल रोचक कथा है। "अन्योक्ति पुष्पावली" कोर अप्रयुक्त शब्दों को लाकर कुछ कविता को नीरस कर देते हैं। पंजाब भूकम्प पर मारवाड़ियों की मुट्ठी ढीली न होने पर सम्पादक मंडली कहती है-"ट्रान्सवाल की लड़ाई के समय उन की दान शक्ति अङ्गरेज़ों के लिये उछलने लगी थी। बड़े बाज़ार के बालगोपालों की मण्डली में उन्हीं की (राय हरिराम गोयनका) मुरली बाज

रही है इसलिये उन्हीं से पूछते हैं कि प्रेसीडेन्ट वहादुर ! आपने अपनी एसोसियेशन की उदारता का पर्दा अभी तक किसलिये नहीं उठाया ? ”

श्रावण के **वैश्योपकारक** में कई छोटी २ कविताएं हैं। एक सीकरनिवासी “ क्या वैश्यको आर्य नहीं कह सकते ? ” के उत्तर में एक विलक्षण तर्क लिखते हैं “ और विलायत वालो के गुरुघंटाल मैक्सम्यूलर साहव तो आर्य शब्द का असली अर्थ किसान ही वतलाते हैं ऐसी अवस्था में ब्राह्मण शब्द का गौरव ही क्या है जिस में ब्राह्मण लोग कृपणता करते ? ‘गुप्त गुरु का सुपना, शिल्प और वाणिज्य, खेती करना बुरा नहीं है “ और छोटे छोटे लेख हैं। ‘ पुस्तक ’ “ वड़ा आदमी ” “ईश्वर ही सच्चा वन्धु है” अच्छी कविताएं हैं।

अक्टोबर की संख्या में

'कूपरवानक' नामक व्यङ्गयपूर्ण रूपक निकलैगा। बाबू गोपालदास के "भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता के इतिहास" की समालोचना होगी। इस संख्या मे स्थानाभाव से न छप सकने वाले कई रोचक और सुन्दर लेख और काव्य होंगे।

आप जानते हैं—

अबकी राष्ट्रीयसभा काशी में भरैगी ?
जानते हैं—राष्ट्र 'या' नेशन क्या होता है ?
नहीं तो, समालोचककी प्रथमवर्ष की फाइल पढ़िये !!!
अब तक राष्ट्रीय महासभा ने क्या क्या किया है ?
द्वितीय वर्ष की फाइल पढ़िये ! ! !

प्रत्येक वर्ष की फाइल सवा दो रुपए में घर बैठे मिल सकती है ! !

ऐतिहासिक ग्रन्थावलि।

हिन्दी भाषा में इतिहास का बड़ा अभाव है। इसे दूर करने के लिये हमने यह ग्रन्थावलि निकालना आरम्भ की है। इसके ग्रन्थकार **उदयपुर के पंडित गौरीशङ्करजी ओझा हैं** जो भारतवर्ष के पुरातत्त्व और इतिहास के शोधों के पूरे जानकार है। उनने वे शोधन किए हैं जो यूरोपीय एन्टिकेरियनों के भाग्य में भी न थे। इस ग्रन्थावलि में प्रतिवर्ष कमसे कम एक और अधिक से अधिक चार ग्रन्थ छपा करेंगे। पहले नाम लिखा कर ग्राहक बनने वालों को डाकव्यय माफ़ किया जायगा। **समालोचक** के मूल्य देचुकने वाले ग्राहकों से $\frac{3}{4}$ मूल्य लिया जायगा। ज्योंही कोई ग्रन्थ छप जायगा उसकी सूचना समालोचक द्वारा देदी जायगी। पहले नाम लिखवा देने वालों के नाम विना पूछे वी. पी. कर दिया जायगा। इस ग्रन्थावलि में जो ग्रन्थ निकाले जांयगे वे पूरी ऐतिहासक खोज से लिखे जांयगे। अभी तक इस ग्रन्थावलि में यह ग्रन्थ छप रहा है:-

१ सोलङ्कियों का इतिहास पहिला भाग

और निम्नलिखित ग्रन्थ इसमें छपाए जाने के लिये तैयार हैं।

२ सोलङ्कियों का इतिहास दूसरा भाग

३ सोलङ्कियों का इतिहास तीसरा भाग

४ मौर्यों का इतिहास

५ क्षत्रपों (Satraps) का इतिहास

६ गुप्तवंश का इतिहास

इस ग्रन्थावलि से यह भी जान पड़ेगा कि उपाख्यान और दन्तकथा को छोड़कर केवल शिला लेखों और ताम्र पत्रों में ही कितनी हिन्दुस्थान के इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है।

छपाई सफ़ाई देखने लायक होगी।

मिलने का पता—**मेसर्स जैनवैद्य एण्ड को। जयपुर।**

Registered No.

*स*मा*लो*च*क*

मासिक पुस्तक

भाग ४ अङ्क २ } नवीन सन्दर्भ { क्रमागत संख्या २१
अक्टोबर १९०५ }

विषय

अग्रिम वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया
विदेश में तीन शिलिङ्
इस संख्या का मूल्य तीन आना महसूल आध आना

स्वामी और प्रकाशक—
जैनवैद्य एण्डकम्पनी, जौहरी बाजार । जयपुर,

Vedic Press, Ajmer.

स्वदेशी व्यवस्था

——:०:——

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायु मनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥
(ऋग्वेद ४. ३८. ५)

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥
(मनुः)

सदैव वासनात्यागः शमोयमिति शब्दितः ।
निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते ॥
विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर्हि सा ।
सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता ॥
देशसेवकवाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति सा मता ।
चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम् ॥
विदेशवस्तुनिर्मुक्तिः कथं मे स्यात्कदा विधे ।
इति या सुदृढा बुद्धिर्वक्तव्या सा मुमुक्षुता ॥
(अपरोक्षानुभूतौ, किञ्चित्परिवर्त्तनम्)

मुख्यः पुरुषयत्नोत्थो विचारः स्वात्मदर्शने ।
गौणो वरादिको हेतुर्मुख्यहेतुपरो भव ॥
गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञ मात्मीयात्पौरुषादृते ।
उष्ट्रं दान्तं बलीवर्दं तत्कस्मान्नोद्धरत्यसौ ॥
(योगवासिष्ठे)

उपानद्गूढपादस्य सर्वा चर्मावृतेव भूः ॥
(नीतिः)

आहिताग्निका । *

(शिखरिणी छन्द)

(१)

प्रतिज्ञा की तूने अति कठिन, उत्साह-भरिते !
निभाओगी कैसे ? धन–जन–धरा–धान्य–रहिते !
अखण्ड ज्योती जो अब यह जगाई, भगवती !
सदा पालोगी क्या तन–मन उसे दे ? गुणवती !

(२)

सहोगी ताने भी ? क्षुर–सम धरा पै चल रही,
न घूमैगा माथा, प्रति–पद चढ़ाई बढ़ रही ?
न पीछे भागोगी ? नहिं भय ? मिलैं सर्प पथ में,
डरावैंगे भालू-कुजन–रिपु–सिंहादि वन में ॥

(३)

वसन्तों में ठण्डा मलयज चलैगा पवन भी,
खिलैगी गर्मी की सुविमल निशा में वह जुही ।
मयूरों की मौजें, घन–वलित–विद्युद्–वलन से,
दिखावैगी वर्षा, दृढ़तर–प्रतिज्ञा–दलन से ॥

---

* श्रीमती सरला देवी की ' आहिताग्निका ' को पढ़कर ।

(४)

जुन्हाई में सारे कमल खिल जावें शरद में,
दुराशा के पाले, हिम शिशिर, खैंचें विषय में।
कहो देवी! कैसे दहन कर दोगी मदन का?
न देखोगी पीछे फिर, वह महा-मोह मन का?

(५)

रहैं चाहै कोई विषय-सुख के कीट बन के;
न देखैंगी तू तो पल-भर उन्हैं कष्ट सह के।
त्वदीया निन्दा से उदर भर लेंगे बहुत से,
दबाई जीभों से जन तव बड़ाई कर सकैं॥

(६)

स्वधा, स्वाहा, को तू प्रति समय में ठीक कहके,
न प्रायश्चित्तीया[1] बन कभि अपभ्रंश कहके।
कहां घी पावैगी? अब सुखद गो-वंश न रहा;
ढकैगी काहे से सरस तनु जो कोमल महा?

(७)

मिलैगी रेज़ी तो, यदि वह नहीं, वल्कल सही;
कलेजे में वेदी रच यह प्रतिज्ञाग्नि धर ली।
विलासों की मज्जा हवि अब बनैगी सहज में,
सदा स्वार्थों को तू वलि-पशु करैगी हृदय पै॥

---

[1] आहिताग्निः अपशब्दं प्रयुज्य प्रायश्चित्तीयां इष्टिं निर्वपेत्।

(८)

अहो धन्या ! देवी ! यदि यह प्रतिज्ञा निभ गई,
अंधेरे को नांघा, अब उदय-लाली लख गई ।
उषा का झण्डा ये सुभग अगुआ है बन गया;
प्रतीची का जाला नयन-पट से है हट गया ॥

(९)

विदेशी चीज़ें ही बन हह ! गईं जन्म-गुटिका;
स्वदेशी पावैं, वा, अब, न, हम, हा ! हन्त !! खटका ।
गड़ेंगे कांटे भी, नयन-जल की वृष्टि पड़ते,
न ढीली होने दे कमर, दुख देशार्थ सहते ॥

(१०)

उजाला देवैगी प्रबल हठ की ज्योति तुझ को;
घृणा के झोंके भी नहिं कर सकैं मन्द उस को ।
बढ़े ही जाना तू, नहिं चरण भी एक हटना;
जमाना ज्योती को, विजय-गिरि पै जाय डटना ॥

(११)

यहां, आत्म-स्वार्थ-प्रवण-मन का होम करना;
विरोधों के आगे, तृण सम, निज प्राण धरना ।
यही इच्छा है ? जा, भगवति ! भला हो तव सदा;
हमारा भी होगा तव चरण में मङ्गल सदा ॥

श्रीचन्द्रधर शर्म्मा

प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन् अमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥

(ऋग्वेद ७ । ७६ । २)

अत्र, तत्र, सर्वत्र ॥

जिस १६ अक्टूबर को मुगलसम्राट् अकबर की हिन्दू मुसलमानों के मिलाने वाली अनुकूल नीति का देहान्त हुआ था उसी १६ अक्टूबर के मान्यवर लार्ड कर्जन की प्रतिकूल नीति ने 'बन्दे मातरं' और 'वन्देएमादरं' के ही नहीं सम्पूर्ण भारतवर्ष के सहानुभूति की राखी में बांध दिया है। बङ्ग विभाग की वास्तव जलन एक देशी होने पर भी इस का सर्वदेशी उपयोग इन प्रश्नों से प्रकट होता है। क्या और प्रान्तों का अप्रकट प्रजामत इससे भी बुरी तरह न कुचला जायगा !? क्या उन के भावों की ऐसी ही अवहेलना नहीं होती है ? राजनैतिक आन्दोलन ने इस वार अपनी सफलता दिखा दी है। राजनैतिक क्रोध और व्यवसायिक स्वदेशी आन्दोलन का संकर बहिष्कार योग (बायकाट) अपने कोलाहल के रूप के उलांघ चुका है। अब वङ्गदेश के नेताओं के समक्ष स्वदेशी पदार्थों के जुटाने का प्रश्न है। स्वदेशी आन्दोलन पर वृथा ही कुछ शासक बौखला उठे हैं। सब से अधिक स्वदेशी मत के प्रचारक लार्ड कर्जन हैं जिन ने दिल्ली दरबार में टाटनहाम कोर्ट के फर्निचर का परिहास किया था, जिनने सेना में स्वदेशी वस्त्र, चाद, और देशी शस्त्रागारों का प्रचार किया। मैंचेस्टर की लकी डे की कृपा से रीती जेब, प्रजा का परमेश्वर की सहायता से विरोध करने का प्रोक्लेमेशन, और भारतव्यापी स्वदेशी आन्दोलन—मान्यवर लार्ड कर्जन का पुण्य है। अब शिक्षा संशोधन के पुराने साथियों का अन्तिम व्याख्यान सुना, "नग्नानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन् मृगपतिः ?" कहते हुए श्रीमान्, काश्मीर और इन्दौर का "उपहृतं धनु नाम किमु-

स्यते" सुन कर, आयुष्मान् युवराज और युवराज्ञी का स्वागतमात्र कर के, "परिमीलिताक्षमिच्छाविलास वनवास महोत्सवानां" स्मरण करते हुए, स्वदेश को पधार जांयगे। अब स्वदेशी आन्दोलन को, विलायती जुलाहों की फटी जेब की पुकार से सहायता की आशा को गौण फल ही मान कर, देशी शिल्पों का पुनर्जीवन ही प्रधान फल लेना चाहिए। भारतवर्ष को भी विषाद और क्रोध की यमुना और सरस्वती को राजभक्ति की गङ्गा में छिपा कर, एक रोती और एक हंसती आंख से, दुर्भिक्ष से भूखे पेट और प्लेग से व्रणित गले को छिपा कर, युवराज की पहुनई करनी होगी।

वङ्ग देश की सुप्रसिद्ध राजनैतिक और सामाजिक नेत्री, **भारती** सम्पादिका विदुषी श्रीमती **सरला देवी घोषाल** का विवाह लाहोर के कृती चौधरी **रामभजदत्त** से होना बहुत ही अच्छा हुआ। "ऋते कृशानोर्नहि मंत्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम्" और नवीन बङ्गाली वसन्त की सर्वोत्तम मंजरी का प्रौढ़ पंजाब के प्रतिनिधि से योग, तडित्तोयदयोरिव, सदा मङ्गलदायक और अभिमान—कारक हो। पंजाब में स्त्री शिक्षा का कार्य कुछ अग्रसर होरहा है। "पाञ्चाल पण्डिता" के कार्य को "हिन्दी भारती" अग्रसर करे! पंजाब के सुप्त वीरोचित गुणों को स्वदेशी व्यायाम जगावे! कांग्रेस की सुलगती आग को यह दम्पति उत्साह के हवि से दीप्त करै! नवयुवक पंजाब अपनी इस कुलप्रतिष्ठा को विस्मित किन्तु प्रसन्न होकर स्वीकृत करै, और वृद्ध पंजाब के सठियाए कानों में भी ललित मञ्जीरों के झणत्कार का स्वर पहुंचे।

विजयी जापान।
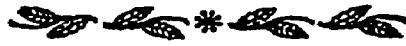
(१)

अहोराग किस अद्भुत ने यह रंग अति लाल मचाया है?
पीडित प्लेग दलित दुष्कालों, भारत को हरषाया है।

(२)

राजा रंक आदि सब ही के चित्त लखाते अति पुलकित।
बालक युवा वृद्ध नर नारी मन सब ही के हैं प्रफुलित।

(३)

निर्बल के भी सूखे मुख पर ललित ललाई छाई है;
और सबल के हृदय पटल में भीति अतीव समाई है।

(४)

बालक बीर देश ने अपना क्षुद्र कृपाण उठाया है;
बल दर्पान्ध कुटिल बैरी को चौपट चित्त गिराया है।

(५)

मेरु ओट से बाल अरुणसम सुंदर दरस दिखाया है,
निज प्रताप के प्रखर तेज से अस्ताचल डरपाया है।

(६)

वीर कुरोपटकिन को यालू समर भूमि से दिया भगाय,
लियोयांग में उसे घेर कर चहूं ओर से दिया दबाय।

(७)

अति दृढ दुर्ग पोर्ट आर्थर के घेरा अति घनघोर दिया,
रूसी जनरल इस्टोसल को शरन गहन लाचार किया।

(८)

चढ़ आया अतिक्रोध जार को जब अरि दल ने दिया दबाय,
सेनापति विकरालनाम संग बेड़ा बाल्टिक दिया पठाय ।

(९)

जब यह फ्लीट अतुल-बलशाली महा भयंकर पोतसमूह,
टारपिडो आदिक से सज्जित चली, कुशल-रचना-रण-व्यूह ।

(१०)

दीन धीवरों पर जितलाई शूरवीरता अति अपनी,
जनु इसने सब खोलि बताई सीमा बुधि बलकी इतनी ।

(११)

सुंदर शिशु के चारु वदन को जार चूमते बारम्बार,
इसी फ्लीट भारी पर अपने मन का रख सब आशा भार ।

(१२)

हैं सशंक सब योरप वासी देख रहे धर ध्यान इधर,
वीर पेश भी पुनि नहिं गाफिल ठाडा ढाटा बांधि परिकर ।

(१३)

रणधीर साहसी टोगो के जब रूसी बेड़ा दृष्टि पड़ा,
दृढ़ व्यूह रच सुदृढ़ बांधकर किया धड़ाधड़ समर कड़ा ।

(१४)

रूसी दल में पड़ी खलबली इधर उधर नाविक भागे,
सोते थे केबिन में वह भी चौंक चौंक कर सब जागे ।

(१५)

हुआ युद्ध अति बिकट भयंकर अंधियारी चहुं दिशि छाई,
कायर इत उत फिरें भागते धीर वीर की बनि आई।

(१६)

युवा वीरवर युद्ध धुरन्धर जापानी दल के आगे,
बूढे रूसी तितर बितर हो तड़ तड़ मरे कटे भागे।

(१७)

डूब मरे बहुतेरे जल में अपनी लाज बचाने को,
शरण गही अरि की कितनों ने अपने प्राण बचाने को।

(१८)

नौका कितनी रूस ज़ार की जल निधि मांही दई डुबाय,
यश कीरति बल विक्रम उनका सभी रसातल दिया पठाय।

(१९)

हे जापान वीर तुम ऐसे जैसा और न जग मांही,
जैसी यह जय तुमने पाई पढ़ी, सुनी, देखी नाहीं।

(२०)

अरि पर पाओ विजय सदा तुम रहो सुखी सम्पन्न विशेष,
यह दिल से आशीस हमारी राजा प्रजा और सब देश।

(२१)

मङ्गल, कुशल, सकल जगतीतल,
सुसमय, सुख, सम्पत्ति, समृद्धि,
विजय, सुयश, सन्तान, शील, गुन
इनकी करें जगत पति वृद्धि।

पण्डित गंगासहाय

बैलून

—⊰⊙⊱—

यह कहना कदाचित् असङ्गत न होगा कि आधुनिक समय की वस्तुओं में ऐसी कोई नहीं है कि जिसने अपने प्रथम प्रकाश के समय उतनी ही आशायें मनुष्यों में अंकुरित करदी हों और उतनी ही प्रशंसा प्राप्त की हो जैसा कि वह यन्त्र जिस के लिये हम लोग **मान्ट गाल्फीर** भाइयों (Brothers Mont Golfier) के चिरबाधित और ऋणी हैं। बैलून के निकालने वाले दो **जोज़फ़** और **एटीएनी मान्ट गाल्फीर** (Joseph और Etionne Mont Golfier) थे। पहला बैलून जो कि इन भाइयों ने मनुष्यों के सामने प्रकाश किया ५ जून सन् १७८३ ई० को फ्रांस देश के एक छोटे शहर **ऐनानए** में उड़ाया गया था। इस बैलून के उड़ने का कुछ हाल **सेन्ट फ़ां** (St. Fond) ने अपनी पुस्तक "La Description des Experiences de la Machine Aerostatigue" में जो कि उसी वर्ष छापी गई थी इस भांति दिया है—

पहिला बैलून और बैलून के संबन्ध में मनुष्यों की कल्पनायें।

"मनुष्यों को कैसा आश्चर्य हुआ जब कि यन्त्र के निर्म्माण करने वालों ने यह प्रगट किया कि जैसे ही उस में गैस (gas) भर जायगा जिस के बनाने का वे सहज उपाय रखते थे वैसे ही वह यन्त्र बादलों के भीतर उड़ जायगा। परन्तु यद्यपि मान्ट गाल्फीरों को (अर्थात् दोनों भाइयों को) बुद्धि और उन के अनुभव में बहुत भरोसा था, तथापि यह कार्य ऐसा अविश्वसनीय जान पड़ता था

कि उन लोगों को भी, जो उस के सम्बन्ध में सब से अधिक जानते थे और उसका सब से अधिक पक्ष करते थे, उस की सार्थकता में सन्देह होने लगा।

निदान मान्ट गाल्फीर भाइयों ने अपना कार्य आरम्भ किया। सब से पहिले उन्होंने धुआं जो कि उन कार्य के लिये आवश्यक था बनाया। वह यन्त्र, जो पहिले कागज़ से मढ़ा हुआ कपड़े का एक ढक्कन, एक भांति का ३५ फीट ऊंचा बोए, जान पड़ता था, फूल आया; दर्शकगणों की आंख के सामने ही बढ़कर उस ने एक सुन्दर रूप धारण कर लिया और वह अपने को चारों ओर फैला कर भाग जाने के लिये मानो यत्न करने लगा। बहुतसी दृढ़ भुजायें उसको थामे हुए थीं। उचित संकेत के देते ही वह खोल दिया गया और बड़े वेग से १००० फैदम की ऊंचाई उसने दस मिनट से कम में तय करली।

तब ७२०० फीट की दूरी तक वह क्षितिज क्षेत्र में गया और गैस के बहुत घट जाने से धीरे २ उतरने लगा। पृथ्वी पर वह अच्छी अवस्था में पहुंच गया और इस पहले यन्त्र ने, जो ऐसा फली भूत हुआ, माण्ट गाल्फीर भाईयों को एक अति अद्भुत वस्तु प्रकाश करने का यश सदा के लिये प्राप्त कर दिया। यदि हम उन अगणित कष्टों पर, जोकि ऐसे जोखट के काम करने में हुये होंगे, अथवा उन कटु समालोचनाओं पर, जोकि उसके करने वालों पर होतीं यदि कहीं किसी कारण से सफलता न प्राप्त होती, अथवा उस धन पर जिसका व्यय इस कार्य के साधन में हुआ होगा, एक क्षण के लिये भी ध्यान दें तो हम उन मनुष्यों को, जिन के चित्त में ऐसे कार्य करने का ध्यान आया और जिन्होंने उसे सफलता के साथ किया, उच्च श्रेणी की प्रशंसा करने से मुख नहीं मोड़ सकते"।

सैण्टफां के इस वर्णन और बहुत सी अन्य बातों से यह प्रत्यक्ष है कि बैलून लोगों के लिये कैसी अद्भुत और साथ ही कैसी प्रशंसनीय वस्तु थी। विज्ञान के इतिहास से जाना जाता है कि प्रायः जितनी वस्तु प्रकाश हुई हैं उनका पहले पहल अनादर हुआ है केवल दो नई प्रकाशित वस्तुओं और उनके प्रकट करने वालों की प्रशंसा हुई है, एक तो अमेरिका और उसके पता लगाने वाले कोलम्बस की और दूसरे बलून और उसके निर्माण करने वाले माण्ट गाल्फीर की। यद्यपि अमेरिका के प्रकट होने से मनुष्य जाति को जो लाभ हुए हैं और बैलून से अबतक जो लाभ हुए हैं इन दोनों में बहुत अन्तर है; तथापि यह सच है कि इन दोनों के समान किसी और नई वैज्ञानिक वस्तु का आदर नहीं हुआ। बैलून के प्रगट होने से वे आशायें, जो मनुष्यों को इसे पहले देख कर हुई थीं, अभी पूरी नहीं हुई हैं; और न उनका बैलून के द्वारा पूर्ण होना सम्भव ही जान पड़ता है, परन्तु उन लोगों को जो माण्ट गाल्फीर के पहले बैलून उड़ने के समय उपस्थित थे इन बातों का ध्यान कदापि नहीं हुआ। जिस समय कोलम्बस ने ऐमेरिका का वर्णन स्पेन वालों को सुनाया था उस समय स्पेन के सब मनुष्यों ने यही समझ लिया कि बस अब हमको एमेरिका के किनारों पर पैर धरते ही ऐसी असीम सम्पत्ति मिल जायगी कि उस का ध्यान भी किसी यूरोपीय सम्राट को न होगा। इसी भांति बैलून के प्रकाश होते ही फ्रांस के प्रत्येक मनुष्य ने अपने ध्यान और अपनी बुद्धि के अनुसार उस से अपने २ हित की चीज़ सोच लिया। वास्तव में बात भी ऐसी ही है कि किसी मनुष्य का आकाश में उड़ना एक ऐसे अचम्भे की बात है कि इस के सम्बन्ध में न जाने कहां २ के ध्यान उड़ते हैं। बैलून को चढ़ते हुए देखकर घूमने वालों के चित्त में यही आया होगा कि समस्त ब्रह्माण्ड में

कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां हम नहीं पहुंच सकतें। ज्योतिषियों ने सोचा होगा कि अब ग्रहों की परीक्षा के लिये केवल दुरबीन ही पर निर्भर न रहना पड़ेगा किन्तु एक २ ग्रह को स्वयं चल कर देख-लेंगे। बैलून के निकलने के थोड़े ही दिनों बाद ऐसे २ उपन्यास भी निकले जिन के लेखकों ने विज्ञान की अति सूक्ष्म जड़ के ऊपर एक बड़ा भारी तूल अपनी कल्पना की सहायता से खड़ा कर दिया।

यह एक साधारण बात है कि जब मनुष्य कोई नई वस्तु निकालता है तो लोगों के चित्त में यह आशा दृढ़ हो जाती है कि और भी नई बातें उस के सम्बन्ध में प्रकट होंगी; जब वह सीमा, जिस के भीतर ही भीतर मनुष्यों के सब अनुभव घिरे हुए हैं, एक बार भी पार करदी गई तब मनुष्यों की बुद्धि और समझ अपने को मानो एक असीम मैदान में पाती है जिस में वह स्वच्छन्द हो चारों ओर नई वस्तु की खोज में दौड़ती है और किसी वस्तु का पाना असम्भव और अपनी शक्ति के बाहर नहीं समझती। कुछ इसी प्रकार की अवस्था लोगों की बैलून निकलने के पश्चात् हो गई। एक बैलून के उड़ने के समय कुछ लोगों ने एक बुड्ढे सिपाही को जिसका नाम **मारशल विलेराय** (Marechal Villeroi) था और जो उस समय रोगग्रस्त था ले जाकर एक खिड़की में बैठा दिया। **मारशल विलेराय** को बैलून में कुछ विश्वास न था परन्तु वह लोगों के बहुत कहने सुनने से खिड़की पर जाकर बैठगया। जैसे ही बैलून की वे रस्सियां, जिस से कि वह पृथ्वी में जकड़ा था काटी गईं,—वह उड़चला। वैद्य **चार्ल्स** ने, जो कि माण्ट गालफीर के बाद बैलून का दूसरा बनाने वाला हुआ है और जो इस बैलून में एक कुर्सी में बैठा था, झुक कर सलाम किया। इस घटना को देखते ही बुड्ढा मारशल अचम्भे में आगया और उसका अविश्वास मनुष्य जाति की बुद्धि

और उस के पराक्रम में पूर्ण विश्वास से बदल गया । उस की आंखों में आंसू भर आये और वह बड़ी दीनता और आग्रह से कह उठा—"हां ! यह तय है; यह निश्चय है कि ये लोग कोई न कोई द्वार मृत्यु के जीतने का निकाल लेंगे परन्तु उस समय जब मैं यहां न रहूंगा" ।

(क्रमशः)

साहित्य और मनुष्यत्व ।

सृष्टि का रहस्य अज्ञेय और मनुष्य की प्रकृति दुर्ज्ञेय है। सृष्टि के मुख के परदे को उठा कर और मनुष्य की प्रकृति के भीतर जा कर जिस शक्ति धारी पुरुष ने किसी अलौकिक सत्य या मूल तत्व को पाया है वह मनुष्य समाज का बंधु है, समस्त पृथ्वी के पूजने योग्य है । अधिकतर, सम्पूर्ण विषय वासनाओं से रहित और ज्ञानमार्ग का अवलम्बन करने वाले साधक, योगी, और तत्वज्ञानी इस मार्ग के पथिक हैं । ये अपनी उन्नति के साथ ही साथ जीव का और संसार का कल्याण करते हैं। यद्यपि ये संसार में लिप्त नहीं होते परन्तु तो भी ये संसार के लिये रात दिन चिन्ता करते रहते हैं । मनुष्यों के हित के लिये ये अपने प्राणतक देने में भी विमुख नहीं होते। इन के विचार से पाप, ध्यान और धारणा से उत्पन्न, महा सत्य के दो एक कण लेकर भक्त और भावुक की उत्पत्ति हुई है । कवि और दार्शनिक भक्त और भावुक के छोटे शिष्य हैं । यद्यपि ये चिन्ता और भाव राज्य के अधिपति हैं, परन्तु तो भी कवि और दार्शनिक को प्रकृत भक्त और भावुक के समीप मस्तक झुकाना पड़ता है। इसका कारण यह है कि प्रकृत कवि और दार्शनिक ये दोनों अहंकार रहित हैं अर्थात् इनको अहंकार नहीं है । सत्य और सौन्दर्य के चरणों में ही लोटने

से थे अपने को धन्य मानते हैं। प्रकृत भक्त और भावुक उस सौन्दर्य और सत्य की यथार्थ मूर्ति हैं।

सत्य और सौन्दर्य से ही साहित्य उत्पन्न होता है। सत्य की धारणा और सौन्दर्य का बोध जितना जिस को अधिक है उसने उतना ही साहित्य को संवारा। उनमें से जिन को साहित्य के निर्माण करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ उन्होंने उस शक्ति को अन्य विषयों में लगाया। मनुष्य की सेवा ही उन का धर्म है, मनुष्यत्व प्राप्त करनाही उन के जीवन का प्रधान लक्ष्य है। जिन मनुष्यों में निरन्तर ये दोनों शक्तियां विराजमान हैं, मनुष्य रूप में वेही देवता हैं। सारे देश, सभी समाज और समस्त लोक चिरकाल तक उन को प्रीति की पुष्पांजलि का उपहार देते रहते हैं।

साहित्य और मनुष्यत्व क्या है? और इनका परस्पर क्या संबन्ध? आज मैं इन दोनों का विचार करती हूं।

जिस दिन से इस संसार में मनुष्य की सृष्टि हुई है, उसी दिन से भाषा की भी सृष्टि हुई है। मनुष्यों के हृदय में स्थापित भाव के प्रकाश का नाम ही भाषा है। किसी जाति विशेष की बोली का नाम भाषा नहीं है, किन्तु भाषा सभी जाति की होती है। जो सनातन काल से भाव का सोता बहता चला आया है, वही भाषा है। भाषा ही साहित्य को उत्पन्न करने वाली है। साहित्य से समाज, समाज से धर्म और धर्म से मनुष्यत्व है। ये परस्पर में शृङ्खलाबद्ध हैं, एक दूसरे के मुख की ओर देखने वाले हैं, एक के अलग होते ही दूसरा प्रभाहीन हो जाता है। एक ही के न रहने से दूसरे का अस्तित्व क्रमशः लोप हो जाता है। प्रकृत साहित्यकार इन तीनों को एक ही केन्द्र में लगा कर उन की अमानुषी प्रतिभा को चालित करता है। उस के फल से मनुष्यों की कर्तव्य बुद्धि का उदय होता है,

कार्य करने वाली शक्तियें बढ़ती हैं; और उन में एक दूसरे की ओर सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। सहानुभूति से एकता, एकता से सभ्यता, और सभ्यता से जातीयता उत्पन्न होती है। जातीयता ही जातीय जीवन के उन्नति की सीढ़ी है, जिस जाति में जातीयता वा एका नहीं है उस जाति की उन्नति कदापि नहीं हो सकती। जिस जाति में एका नहीं है वह जाति संसार में जन्म लेकर दूसरों के चरणों की शरण लेती है; और फिर इसी कारण से वह उपहास को प्राप्त होती है। उस जाति का अस्तित्व परस्पर के वैर विरोध में ही नष्ट हो जाता है; और वह जाति मानो अज्ञान के अन्धकार में डूब जीवन मृत के समान रहा करती है। उस जाति के प्रायः सभी मनुष्य आलस्य के वश हो अपनी उन्नति का उपाय नहीं करते। वे इसी पर आरूढ़ होकर अपने समय को बिता देते हैं कि जो हमारी प्रारब्ध में होगा वही होगा; फिर वे इसी विचार में एक दिन अचानक काल के गाल में पड़ जाते हैं।

इस आलसी, मानी और मृतक की समान जाति की उन्नति करने में सब से प्रथम जातीय साहित्य की उन्नति करनी चाहिये। इस का कारण यह है कि साहित्य ही सम्पूर्ण विषयों का मूल और मेरुदण्ड है। मूल और मेरुदण्ड की विना रक्षा किये कुछ भी नहीं हो सकता। विना नींव के दृढ़ हुए बड़े बड़े सुन्दर महल गिर पड़ते हैं इसी भांति विना साहित्यरूपी जड़ के दृढ़ हुए जातीय जीवन का अन्त हो जाता है। उस की राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति इत्यादि बड़े बड़े विषय भी आधार के अभाव होने के कारण कर्महीन हो जाते हैं। साहित्य ही इन सब का आधार है। साहित्य के उल्लंघन करने से कोई काम नहीं बनता। इस कारण सब से प्रथम अङ्ग प्रत्यंग सहित साहित्य की उन्नति और पुष्टि करनी चा-

हिये । साहित्य को केन्द्र मानकर समाजधर्म, जातीयता आदि सभी को चलाना चाहिये । सत्य से बढ़कर और कोई पदार्थ नहीं है। वही सत्य साहित्य के मध्य में स्थापित है ; धर्म के समान परममित्र दूसरा कोई नहीं है—वही धर्म साहित्य की ऊंची सीढ़ी है। मनुष्य यदि अपनी उन्नति करना चाहै तो उसे मन से, प्रेम से साहित्य ही को जीवन का आदर्श करना चाहिये। भक्त जिस भांति प्रीतिपूर्ण आंसुओं के जल से हृदय को धोते हुए आराध्य देवता की पूजा करते हैं,—साहित्य की सेवा करने वाले भी उसी भांति शुद्ध अन्तःकरण से साहित्यधर्म की सेवा करते हैं। जो देखा देखी अथवा पाखण्ड से साहित्य की सेवा करते हैं वे संसार में प्रतिष्ठा कदापि नहीं पा सकते। वे यथार्थ साहित्य के निमित्त ही साहित्य की सेवा करते हैं; और सत्य के लिये ही सत्य की खोज करते हैं। यह सत्य ही साहित्य है, कविता ही इसका जीवन है; ऊंचा आदर्श ही इस का लक्ष्य है । इसी साहित्य से धर्म और धर्म से मनुष्यत्व है ।

अब इस स्थान पर हमारे पाठक गण यह प्रश्न कर सकते हैं कि जिस जाति में साहित्य नहीं है क्या उस जाति में धर्म नहीं है ? (उत्तर) हां—है;—परन्तु वह धर्म अज्ञान के अंधकार से ढका हुआ कुसंस्कार मय है, इस कारण वह एक प्रकार से जीवन शून्य है। उस से समाज गठित नहीं होता; सभ्यता का विस्तार नहीं होता, किसी नवीन विषय का प्रकाश नहीं होता । वह केवल जड़ भाव की समान है; उस में अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होता, प्रकाश और अंधकार का ज्ञान नज़र नहीं पड़ता । स्वार्थ और परोपकार का सूक्ष्म विचार नहीं होता, मस्तिष्क और हृदय संघर्षण नहीं होता, वह तो किसी प्रकार से अपने जीवन की यात्रा का निर्वाह करता है परन्तु जिस से मनुष्यजन्म सार्थक हो जाय; जिस से मनुष्यत्व का अलौकिक प्रकाश हो आय उस का बीज उस धर्म में नहीं है ।

यह मनुष्यत्व क्या है—इस के उत्तर में बातें तो बहुतसी हैं, और उन में अनेक मत भी आजांयगे, परन्तु इस समय यहां उन बातों और उन मतों के भली भांति से प्रकाश करने का स्थान नहीं है, वहुत ही संक्षेप से मैं एक बात का उत्तर यहां पर देती हूं। मनुष्यत्व क्या है ? उत्तर—

"जीव में प्रेम, स्वार्थ का त्याग, और भगवान् में भक्ति"

इन बातों का जितनी वार, जिस भाव से और जिस प्रकार से मैंने विचार किया,—मन में इन सब बातों का एक ही उत्तर पाया, कि " जीव में प्रेम, स्वार्थ का त्याग, और भगवान् में भक्ति " यही मनुष्यत्व है।

हिन्दुओं की परम पूजनीय श्रीमद्भगवद्गीता भी इसी बात का उपदेश देती है, मुसलमानों का कुरान भी यही शिक्षा देता है, और अंग्रेजों की बाइविल भी यही बात कहती है कि साहित्य वा काव्य इसी पवित्र भाव का प्रतिविम्बमात्र है। साहित्यकार इसी भाव को हृदय में धारण कर के अपने काव्य के विशाल चित्रपट पर जीव और संसार को अंकित करते हैं। संसार के हृदय में जो बातें छिप रही हैं उन को निकाल कर प्रकाशित करते हैं। जीव क्या है ? जगत् क्या है ? दोनों में क्या सम्बन्ध है ? मनुष्यों का कर्तव्य और परिणाम क्या है ? इत्यादि और भी अनेक प्रकार की चिन्ता और भावों को, अपने तीक्ष्ण विशाल तथा अनुभवशील हृदय में धारण कर के 'कवि' नामक शक्तिधारी पुरुष ने काव्य में वा साहित्य में चित्रित किया है। कवि की सृष्टि संसार से स्वतंत्र नहीं मानी जा सकती। संसार के हृदय में जो बातें छिपी हैं हृदय की भाषा में उस को वर्णन करने के लिये ही कवि ने अपना जन्म लिया है;। सत्य और सौन्दर्य ही जगत् का जीवन है; सत्य और सौन्दर्य ही काव्य का भी जीवन

है; इस कारण कवि का प्रधान काज, सत्य और सौन्दर्य की सृष्टि है। प्रकृति की छाया इस सृष्टि पर पड़ती है। कोमल और कठोर इन दो तरह के भावों से ही प्रकृति है। चित्र खैंचने के समय जिस भांति प्रकाश और छाया का प्रयोजन होता है; प्रकृति की पूर्णता के लिये भी उसी प्रकार कोमलता और कठोरता का प्रयोजन है; इन दोनों का समावेश बड़ा ही गम्भीर आवश्यक और रहस्यमय है। कोमलता और कठोरता के इस समावेश में मनुष्य के जीवन की छाया में अपनें हृदय के भाव को मिला कवि को एक नवीन जगत् की रचना करनी पड़ती है। इस कारण कवि का कार्य्य अत्यन्त ऊंचा और बड़ा है। इसी कारण मैंने प्रबन्ध के मुख बंध में कहा था कि वास्तव कवि, दर्शनिक, साधक-योगी, वा तत्वज्ञानी, ये भक्त और भावुक के छोटे शिष्य हैं। संसार में रहकर भी इन्हें स्वतन्त्रता का अवलम्बन करना पड़ता है, और निर्लेप भाव से रहना पड़ता है। साधारण विषयी मनुष्यों के समान कलुषित स्वभाव हो जाने से वे स्थायी साहित्य में स्थान नहीं पा सकते। कारण कि, सत्य सेवी, सत्य के उपासक, और सत्य के प्रचारक होने पर उन को बड़ा कठोर व्रत करना पड़ता है;—सामयिक सुकीर्ति, अकीर्ति, निंदा, यश, हानि, लाभ, शत्रुता, मित्रता, इन सब को तृण जान कर उन को अपने गन्तव्य मार्ग में जाना होता है। अधिक क्या कहूं, सत्य के ध्यान और धारणा में तन्मय होकर, वचन में, मन में, ज्ञान में, भाव में, व्यवहार में, असत्य की छाया को बिना स्पर्श किये हुए उन्हें रहना होता है। उन को संसार की कठोरता और वैर, भाग्य की ताड़ना और विड़म्बना, पद पद पर सहना पड़ती हैं। किसी एक सिद्ध पुरुष ने कहा था कि "बारह वर्ष तक एक मन होकर जो सत्य की सेवा कर लेता है फिर उस के पास असत्य कभी नहीं आ

सकता, और न फिर असत्य में उस की प्रवृत्ति होती है।" हाय! बारह वर्ष क्या, मोह से बन्धे हुए माया के जीव—बारह मुहूर्त—या बारह पल भी सत्य की अटल आस्था को स्थापित कर निश्चिन्त रह सकते हैं, या नहीं, मुझे इसी में सन्देह है। इस अवस्था में नित्य और अनन्त काल तक स्थायी साहित्य की उत्पत्ति किस प्रकार होगी? इसी कारण तो हिन्दुओं का एक मात्र वेद ही प्राचीन साहित्य है; और उसे सत्य कह कर ही महाभारत के बनाने वाले श्री व्यासजी अपने जन्म के छिपाने योग्य इतिहास को भी प्रसन्न मुख से प्रकाश कर सके। और इसी कारण तो वे पंचम वेद प्रणेता "व्यासो नारायणो: हरि:" इस विशेषण को प्राप्त हुए। हाय सत्य! तुम्हारे सौन्दर्य से जो मोहित हुआ वह क्या पुनः संसार में सांसारिक कहा सकता है! नहीं, वह तो लौकिक यश की प्राप्ति के स्थान में आगे चरण धरता, और लोक निन्दा प्राप्ति के स्थान में अपने चरण को दो पग पीछे हटा कर रखता है। हे सत्यदेव! तुम्हारे प्रेम में मोहित होकर, महाराजा हरिश्चन्द्र ने राज पाट को त्याग, स्त्री पुत्र को बेच, चांडाल की सेवा की थी। तुम्हारे ही प्रेम के वशीभूत हो महाराज मोरध्वज ने अपने प्राण प्यारे दुलारे पुत्र को चौकी पर बैठा, एक ओर स्वयं और एक ओर अपनी रानी को खड़ा कर, आरा चलाकर उस को चीर दिया था। इन सत्य, सुन्दर, महादर्श, और अलौकिक भक्तों के रंग में रंगे जाकर कवि और दार्शनिक जनों ने क्षण काल के लिये बाह्य जगत् को तिलांजलि दे, अन्तर जगत् के गम्भीर भावरूपी समुद्र को मथ कर अनुपम रत्नों को निकाला। उन रत्नों की असीम शोभा को देखने से ही मनुष्यों के ज्ञान के चक्षु खुल जाते हैं, हृदय और मन शुद्ध हो जाता है, ईर्षा, द्वेष, कुटिलता, नीचता, स्वार्थपरता ये सभी से दूर हो जाती हैं; तब मनुष्य,—"जीव

में प्रेम, स्वार्थ का त्याग, और भगवान् में भक्ति" इस महा सत्य और वास्तविक मनुष्य भाव के प्राप्ति का अधिकारी होता है।

साहित्य का यह जो ऊंचा आदर्श है, वह इस समय कहां पाया जायगा? धर्म शास्त्र के ग्रन्थ अथवा नीति शास्त्र के ग्रन्थ ऐसे सरल नहीं है और न ऐसे मनोहर ही हैं, फिर साहित्य के ऐसे उच्च आदर्श पूर्ण ग्रंथ को कौन देगा? दार्शनिक तो एक ही गम्भीर विषय को लेकर उसी का विचार करते रहते हैं। वैज्ञानिक उस में भी शान्त नहीं हैं। वे प्रत्यक्ष इन्द्रिय ग्रहण के प्रमाण प्रगट करने के निमित्त, मिलाना, अलग करना, और यन्त्र संयोग आदि से क्षीण काय मनुष्यों की सहन शीलता की परीक्षा करते रहते हैं। पुरातत्व के जानने वाले प्राचीन काल की बातें खोजने और उस का मूल पर्यन्त इतिहास इकट्ठा करने में तत्पर रहते हैं। इस अवस्था में, मनुष्य को सरलता पूर्वक अल्प श्रम से, आशा के मोहनी मन्त्र से, दीक्षित कर मनुष्यत्व के मार्ग में कौन ले जायगा? 'कवि-महापुरुषों' ने ही इस भार को अपने ऊपर लिया है। कवि ही मनुष्यों को वर्त्तमान और भविष्यत् के मार्ग को दिखाने वाले, धीरज देने वाले, मित्र और परम गुरु हैं, वास्तव में कवि के समान मनुष्यों को शिक्षा देने वाला संसार में दूसरा उत्पन्न नहीं हुआ; कवि ही वास्तव साहित्यकार और कविता ही वास्तव स्थायी साहित्य है। कविता से यहां केवल छंदोवद्ध सुर, तान, लय, गान, और पद्य ही को समझना न चाहिये, सत्य और सौन्दर्य मय सदा नवीन विचित्रता मय गद्य साहित्य भी काव्य नाम से विख्यात है। देश, काल और पात्र को भूल कर भूत, भविष्य और वर्त्तमान को विस्मृत कर, सत्य और ज्ञान से मनुष्य के जीवन की कहानी सर्वदा के लिये पृथ्वी पर स्थायी रहै, इसीलिये कविता का जन्म हुआ है। सांसारि-

क प्राणी मात्र के करुणा पूर्ण स्वर का प्रतिस्वन करके ही कविजन अपने को धन्य मानते हैं। इसी कारण से महाप्राण कवि गंभीर सहानुभूति के साथ संसार के उस महा दुःख को दूर करने की भली भांति से चेष्टा करते हैं, धीरज देकर, उपाय बता कर, मार्ग दिखा कर वे अपने भक्तों को धीरज देते हैं। मनुष्य समाज में खड़े हो वक्तृता न देकर, "यह करो वह करो" न कहकर भी कविजन मानसिक मनुष्य को अङ्कित कर देते हैं और पार्श्वस्थ घटना और कार्यावली को इस भाव से चित्रित करते हैं, कि आशा हीन महा दुःखी भी उन को देखकर धीरज प्राप्त कर सकें। इस श्रेणी के कवि का जो काव्य है वह गद्य में हो, या पद्य में हो, स्थायी साहित्य में उस का स्थान सब से ऊंचा है। इसी कारण सम्पूर्ण देशों और सम्पूर्ण समाजों में काव्य के ग्रंथों का उतना आदर है। काव्य में सदा ऊंचा आदर्श है और सदा नयापन है, इसी कारण से सौन्दर्य के प्यासे मनुष्य सरलता से इस की ओर आकर्षित हो जाते। हैं अवश्य ही सब को संसार के धर्मों का पालन करना होगा; वाणिज्य करना होगा, जीविका निर्वाह के लिये अनेक चेष्टा करनी पड़ेगी; ऐसी अवस्था में क्या केवल काव्य ही की सहायता से चलना होगा? अतएव घटना मूलक, स्थूल साहित्य एवं समयानुकूल सामयिक संवादादि से पूर्ण लेखे जोखे आदि से युक्त जीविका के उपयोगी ग्रन्थों का भी प्रयोजन है, और इसी हिसाब से अर्थ नीति, व्यवहार नीति तथा राज नीति का विचार करना आवश्यक है। परन्तु पाठक गण! सत्य के अनुरोध से हमें यह बात भी अवश्य कहना होगी कि उन से आत्मा का उत्कर्ष साधित नहीं होता। मनुष्यत्व का जो मूल बीज है, साधना का जो उच्च अङ्ग है, वह उस में अधिक नहीं है।

(क्रमशः)

संगीत । *
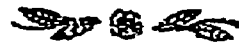
संगीत (music) का अर्थ और लक्षण क्या है ? इस प्रश्न का का उत्तर देना तनिक टेढ़ी खीर है। थोड़ी देर तक इस के उत्तर देने में बड़े २ तत्ववेत्ता और वैज्ञानिकों के होश पैंतरा होजायंगे। बात तो यह है कि यह शब्द ऐसा ही रहस्यमय है कि इस का अर्थ और लक्षण निर्जीव लेखनी से हो ही नहीं सकता। यह एक ज्ञान गोचर शब्द है जिसका अनुभव कर्मेन्द्रिय द्वारा होता है। और जिस ने इस का रस स्वाद किया वही इसका अर्थ और लक्षण अति व्याप्ति अव्याप्ति दूषणों से बचकर बता सकता है। हमारी अल्प बुद्धि से तो इसका लक्षण यही है कि जो स्वर आत्मा को ऐहिक आनन्द प्रदान करें वही संगीत Music है। जो आनन्द यह प्रदान करता है उसका यदि चित्र उतारा जाय तो इस की श्रेष्ठता का परिज्ञान हो। परंतु चित्र उतारना तो काले कोसों दूर रहै आप उस की व्याख्या भी नहीं कर सकते हैं। प्रायः इंगलैण्ड के छोटे बालक पवन को *Singing in the pines* (अर्थात् देवदारु के कुञ्ज में गाता है) कहा करते हैं। और उनका कहना तिल मात्र भी असत्य

---

* यह लेख हमारे पास बहुत काल से रक्खा था। हम कदाचित् इसे देर से छापते, परन्तु आरा नागरीप्रचारिणी सभा ने अपने वार्षिक विवरण में इसका उल्लेख किया है कि "समालोचक में भेज दिया गया"। जब सभा को यह आग्रह है कि उनकी लिखी एक पङ्क्ति भी वृथा न जाय, तब हम भी इस लेख को धन्यवादपूर्वक छापे देते हैं (समा. सम्पा.)

नहीं है । चाहे हमारे पाठक हमें विक्षिप्त अथवा पागल कहें पर मैं यही कहूंगा कि पवन की मधुर सनसनाहट में भी संगीत पूरित रसका स्वाद है । काव्यरसिक तो हमारी हां में हां जरूर मिलायेंगे और निरे वैयाकरण से हमें प्रयोजन भी नहीं । ईश्वर ने यह आनन्द और स्वाद साहित्य प्रेमियों ही के भाग में लिखा है । हमारी हां में हां मिलाने वाले यदि विचार करेंगे तो इसका अनुभव सहज ही में हो जायगा कि सजीव पदार्थों के अतिरिक्त निर्जीव पदार्थों से भी संगीत मय (Musical) शब्दों का स्वयं प्रादुर्भाव होता है चाहे उस में ताल सुर की परिणीत सीमा और नियम न हो । काव्य रसिक इस का वास्तविक आनंद लूटते हैं और कहते हैं कि वसंत ऋतु के पवन मालती कुञ्ज में हंसते और गाते हुये किलोल करते हैं, और पतझाड़ की झकोरी वायु विना पत्ते के ठुढ्ढ पेड़ों के गले लग लग कर (अश्रुपात) करती है । और वर्षाऋतु की वायु अपनी कोमल सन सनाहट में सङ्गीत माधुर्य्य मय हृदय को अनुपम आनन्द प्रदान करती हैं चाहे उस में कृत्रिम सङ्गीत के नियम न हों और उस का खरज के सुर में भी कठिनता से मिलान हो । सुर और ताल दोनों में एक भी ज्ञान गोचर नहीं है केवल उस के रस की प्रधानता ही आत्मा को आनन्दित करती हैं । सरिता प्रवाहध्वनि कदाचित् ताल की सीमा में थोड़ी बहुत कही जा सकती है और यही बात जलोर्मि के विषय में कही जा सकती है जो निरन्तर वालुकामय तटस्थलों पर टकराती रहती है । अथवा ज्वार भाटे जो सिंह के ऐसा गर्जन कूलों पर करते हैं वे भी ताल (समय) सीमा बद्ध हैं । संसार के अनेक निर्जीव पदार्थ सङ्गीतमय हैं जो अपने ही वैज्ञानिक नियमों की सीमा में बद्ध हैं । इन की प्रतिच्छाया मानवी कला दूर से उतार सकती है । चल पदार्थों में एक अद्भुत और विचित्र

संगीत रस परिपूर्ण है । ओले, पतझाड़ की गिरती हुई पत्तियों, और कोमल टहनियों की नोक झोक तथा तोड़ मोड़ में कैसा रहस्यमय संगीत का ताल सुर अंकित है इस का अनुभव काव्यरसिक ही कर सकते हैं । पलाचन की लकड़ी भी ताल सुर से रहित नहीं है । चाहे हमें पागल ही कहिये पर इस का अनुभव भी हमारे ऐसे पागल ही कर सकते हैं ।

यदि निर्जीव पदार्थों को छोड़ कर जीव धारियों के आनन्द मय मधुर सुरों की ओर ध्यान दीजिए तो इस लोक में इतने उदाहरण मिलेंगे कि जिन की गणना नहीं हो सके । जैसे श्यामा, पिद्दा, मैना, कोयल, बुलबुल, पपीहा, तूती आदि । सब को छोड़ कर कोयल ही को देखिये । यदि इस को वसन्त ऋतु की नायिका कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी । इस के गाने पर मोहित होकर इङ्गलैण्ड के Words worth, Cowper आदि प्रसिद्ध कवियों ने ऐसी मनोहर और सार गर्भित कविता की है कि आगे पालकी धरदी गयी और कलम तोड़ दिये गये । बुलबुल Night in gale के गाने पर मोहित हो कर Words worth ने इस प्रकार लिखा है:—

Oh, Nightingale ! thou surely art,
A creature of fiery heart:
Those notes of thine, they pierce and pierce
Tumultuous harmony and fierce.

अर्थात्—ऐ बुलबुल ! तू एक ऐसी उमंग भरी पक्षी है कि तेरे गाने हृदय में घर करते हैं और सुर तेरे कपट मयी (दगाबाज़) (?) हैं ।

बुलबुल के विचित्र गाने के प्रभाव तथा अन्य सजीव और निर्जीव लौकिक पदार्थों के मधुर स्वरों की आलोचना और समीक्षा

करने से निश्चय होता है कि संगीत का जादू मानसिक वाक्य धारा में प्रवेश करके स्वतन्त्र प्रभाव जमाता है । और इसका रसास्वादन थोड़ा बहुत प्रत्येक मानवी हृदय को होता है और थोड़े काल पर्य्यन्त मनुष्य की चेतनावस्था जड़ स्वरूप हो जाती है। केवल मनुष्य ही पर इसका अनुपम प्रभाव नहीं पड़ता है वरन अनेक जीवधारी पशु भी इस के वशी भूत होकर मुग्ध और लीन हो जाते हैं। यहां तक कि इस के चपेट में आकर अपना बहुमूल्य प्राण भी न्योछावर कर बैठते हैं । जैसे खरगोश, सर्प्प, मृगा, सिंह, भेड़ी, भेड़िया, खसी, बिल्ली, कुत्ते, घोड़े आदि अनेक जन्तुओं पर संगीत का विचित्र जादू प्रभाव जमा देता है । सिंह तो प्राय: संगीत विमोहित होकर अपने आखेट से हाथ धो बैठते हैं और गोली खा कर अपना अनमोल प्राण खो देते हैं। रोम नगर में एक कुत्ता था जिस का नाम ही Opera Dog (नाटक का कुत्ता) प्रसिद्ध हो गया था। वह नित एक थियटर में संगीत के चसके में जाया करता था यदि किसी दिन भीतर नहीं घुसने पाया तो जब तक अभिनय होता था वह बाहरी दिवार ही में कान सटाये गाना सुनता रहता था और आनन्द मय हो कर पूंछ हिलाता रहता था ।

एक बुड्ढा गवइया कार्य्य वश किसी ऐसे ग्राम में जा पड़ा जहां भेड़ियों को बहुतायत थी। गांव के बाहर ही राह से भेड़ियों ने इस बिचारे गवइये का पीछा किया । मारे डर के इस के देवता कूच कर गए । किसी प्रकार भागता हुआ आधी रात को गांव में पहुंचा। वहां के निवासी नींद में खुर्राटे ले रहे थे। यह बिचारा भागा और एक टूटे फूटे घर के छप्पर पर चढ़ गया । भेड़ियों ने छप्पर को चारों ओर से घेर लिया और उछल कूद कर के ऊपर चढ़ने की चेष्टा करने लगे । अब तो गवइयाराम की नानी मर गयी। डर से हु-

ग्रय दहल गया। एकाएक उस को एक नई बात सूझी और वह झो-
ळ से सारंगी निकाल कर लगा घोंटने और सोचा कि कदाचित् इस
के विचित्र स्वरों से यह जंगली जानवर भाग खड़े हों। सारंगी हाथ में
आई तो आप गाने भी लगे। अब जितने भेड़िये थे सभी सारंगी के
सुरों पर मोहित होकर चित्रवत् खड़े हो गए जब वह सारंगी नहीं
बजाता तब वे उछल उछल कर घुड़कियां देते और यदि बजाने ल-
गता तो सब के सब शान्त हो जाते थे। निदान विचारा रात भर सा-
रंगी बजाता रहा और भेड़िये चुप चाप सुनते रहे। जब प्रातः काल
हुआ और ग्राम निवासी घर से उठ उठ कर आये तब सब के सब
नौ दो ग्यारह हुए और विचारे गवइये की जान बची।

सारांश यह कि संगीत को प्रकृति से संबन्ध है। यही कारण
है कि इसका जादू जीवधारियों पर ऐसा पड़ता है कि चेतनावस्था
को थोड़ी देर के लिये जड़ स्वरूप कर देता है। संगीत के सात सु-
र भी प्रकृति से ही लिए गए हैं:—

सुर जंतु

ऋषभ—वृषभ से

गंधार—मेष से

मध्यम—सारस से

पञ्चम—कोकिला से

धैवत—तुरंग से

निषाद—गज से

खरज—(षड्ज) मयूर से

यथा दोहा।

प्रगट रिषभ स्वर वृषभ से मेखहिते गंधार।
धैवत तुरग निखाद गज षजं मयूर विचार॥

पञ्चम विरच्यो कोकिला मध्यम सारस जान ।
हरि विलास सिद्धांत मुनि स्वर उत्पत्ति बखान ॥ (विवेककोष)

आज समय के फेर से चाहे कोई भी इस संगीत (music) को अनादर और घृणा की दृष्टि से देखें किन्तु पूर्व समय में पुराणों से सिद्ध है कि इसका बहुत आदर था। यहां तक कि वेद का अंग ही इसको मानते हैं। सरस्वती और नारद आदि के हाथ में वीणा का होना ही इसको प्रमाणित करता है। श्रीकृष्ण भगवान की वंसी और उसका विचित्र जादू आज तक हमारे हृदय पर रुचित है। क्या यह पदार्थ सङ्गीत रसमय उन के हाथ में दिखौआ थे? नहीं। वे इस के पूर्ण मर्मों में अभिज्ञ थे और उस काम की पराकाष्ठा का अन्त उन लोगों के पवित्र शरीर के साथ लुप्त हो गया। आज हम हज़ार वर्ष की तपस्या में उन बाजों को वैसा नहीं बजा सकते हैं। सङ्गीत से ईश्वर भी प्रसन्न होते हैं। मुसलमान मतावलम्बियों के अतिरिक्त सभी इसको श्रेष्ठ और उत्कृष्ट समझते हैं। न जाने मुसलमान भाइयों में यह क्यों हराम है; पर हां कोरानशरीफ का खुश इलहानी (अच्छे सुरों) में पढ़ना उनके मत में भी हलाल है। इस बात को लोगों ने सिद्ध कर दिया है कि यह विद्या सङ्गीत music की भारत ही से दूसरे देशों में गयी है। इसके अनुपम प्रभाव तो ऐसे हैं कि प्रकृति को भी हिला देते हैं। दीपक और मलार की महिमा आजतक गाई जाती है। यद्यपि उन रागों में वह गुण आज नहीं देखने में आता है तथापि आज भी अच्छे गवइयों के गाने से गुण के किंचित् अंश प्रकटित होते हैं। दीपक तो कोई गाता ही नहीं पर मलार के प्रभाव से स्वच्छ नभमण्डल में बादलों का आना मैं अपनी आखों से देख चुका हूं। हाय रे भारत! तेरी ऐसी काया पलट हो गई है कि आज उसी संगीत का कर्ता और प्रेमी संसार में

"लावैरा" और "आवारा" कहा जाता है। 'समय के फेर ते सुमेर होत माटी को' यह विद्या तो भारतवर्ष से पधार ही चुकी थी किन्तु हम अपने बङ्गाली भाइयों को कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने विचारे निःशरण संगीत को अपने घर में आश्रय दिया। आठ वर्ष के बालक से अस्सी वर्ष के वृद्ध तक बङ्गाल में इसके रसिक हैं। यदि हम लोग थोड़ा भी इधर ध्यान दें तो यह विद्या फिर भी उन्नति शिखरावलम्बी होकर भारत के कलंक को मिटा दें।

जैनेन्द्रकिशोर
आरा

ऐतिहासिक ग्रन्थावलि।

हिन्दी भाषा में इतिहास का बड़ा अभाव है। इसे दूर करने के लिये हमने यह ग्रन्थावलि निकालना आरम्भ की है। इसके ग्रन्थकार **उदयपुर के पंडित गौरीशङ्करजी ओझा** हैं जो भारतवर्ष के पुरातत्त्व और इतिहास के शोधों के पूरे जानकार हैं। उनने वे शोधन किए हैं जो यूरोपीय एन्टिकेरियनों के भाग्य में भी न थे। इस ग्रन्थावलि में प्रतिवर्ष कमसे कम एक और अधिक से अधिक चार ग्रन्थ छपा करेंगे। पहले नाम लिखा कर ग्राहक बनने वालों को डाकव्यय माफ़ किया जायगा। **समालोचक** के मूल्य देचुकने वाले ग्राहकों से $\frac{3}{4}$ मूल्य लिया जायगा। ज्यों ही कोई ग्रन्थ छप जायगा उसकी सूचना समालोचक द्वारा देदी जायगी। पहले नाम लिखवा देने वालों के नाम विना पूछे वी. पी. कर दिया जायगा। इस ग्रन्थावलि में जो ग्रन्थ निकाले जांयगे वे पूरी ऐतिहासक खोज से लिखे जांयगे। अभी तक इस ग्रन्थावलि में यह ग्रन्थ छप रहा है:—

१ सोलङ्कियों का इतिहास पहिला भाग

और निम्नालिखित ग्रन्थ इसमें छपाए जाने के लिये तैयार हैं।

२ सोलङ्कियों का इतिहास दूसरा भाग

३ सोलङ्कियों का इतिहास तीसरा भाग

४ मौर्यों का इतिहास

५ क्षत्रपों (Satraps) का इतिहास

६ गुप्तवंश का इतिहास

इस ग्रन्थावलि से यह भी जान पड़ेगा कि उपाख्यान और दन्तकथा को छोड़कर केवल शिला लेखों और ताम्र पत्रों में ही कितनी हिन्दुस्थान के इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है।

छपाई सफ़ाई देखने लायक होगी।

मिलने का पता—**मेसर्स जैनवैद्य एण्ड को। जयपुर।**

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
(ऋग्वेद ८।८।१२।१०)

*स*मा*लो*च*क*

नवम्बर—दिसम्बर

११०५

—:०:—

भाग ४; क्रमागत

संख्या ४०,४१

—०—

वार्षिक मूल्य १॥)

यह संख्या ।=)

जैन वैद्य एण्ड

कम्पनी

जयपुर ।

विषय ।

Vedic Press, Ajmer.

नवम्बर—दिसम्बर, सन् १६०५

झुकी कमान ।

(१)

आए प्रचण्ड रिपु, शब्द सुना उन्हीं का,
भेजी सभी जगह एक झुकी कमान ।
ज्यों युद्ध चिन्ह समझे, सब लोग धाये,
त्यों साथ थी कह रही यह व्योमवाणी ॥
"सुना नहीं क्या रणशङ्खनाद ?
चलो पके खेत किसान ! छोड़ो ।
पक्षी इन्हें खांय, तुम्हें पड़ा क्या ?
भाले भिड़ाओ, अब खड्ग खोलो ।
हवा इन्हें साफ़ किया करैगी,—
लो शस्त्र, हो लाल न देश—छाती ॥"
स्वाधीन का सुत किसान सशस्त्र दौड़ा,—
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी ।

(२)

"छोड़ो शिकारी ! गिरि की शिकार,
उठा पुरानी तलवार लीजै ।
स्वतन्त्र छूटें अब वाघ भालू,
पराक्रमी और शिकार कीजै ।

विना सताए मृग चौकड़ी लें—
लो शस्त्र, हैं शत्रु समीप आए।।"
आया सशस्त्र, तजके मृगया अधूरी;
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी।।

(३)

"ज्यौनार छोड़ो सुख की रईसो!
गीतान्त की वाट न वीर! जोहो।
चाहे घना झाग सुरा दिखावै,
प्रकाशमें सुन्दरि नाचती हों।
प्रासाद छोड़ो, सब छोड़ दौड़ो,
स्वदेश के शत्रु अवश्य मारो।।"
सर्दार ने धनुष ले, तुरही बजाई;—
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी।।

(४)

"राजन्! पिता की तव वीरता को,
कुञ्जों, किलों में सब गा रहे हैं।
गोपाल बैठे जहं गीत गावैं,
या भाट वीणा झनका रहे हैं।।
अफ़ीम छोड़ो, कुल-शत्रु आए—
नया तुम्हारा यश भाट पावैं।।"
बन्दूक ले नृप—कुमार बना सुनेता,
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी।।

(५)

" छोड़ो अधूरा अब यज्ञ, ब्रह्मन् !
वेदान्त-पारायण को विसारो ।
विदेश ही का बलि वैश्वदेव,
औ' तर्पणों में रिपुरक्त डारो ॥
शस्त्रार्थ शास्त्रार्थ गिनो अभी से—
चलो, दिखाओ हम अग्रजन्मा ॥
धोती सम्हाल, कुश छोड़, सबाण दौड़—
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी ॥

(६)

" माता ! न रोको निज पुत्र आज,
संग्राम का मोद उसे चखाओ ।
तलवार भाले भगिनी ! उठा ला,
उत्साह भाई निज को दिलाओ ॥
तू सुन्दरी ! ले प्रिय से विदाई,
स्वदेश मांगे उनकी सहाई ॥ "
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी
है सत्य ही विजय, निश्चय बात जानी ॥
है जन्म भूमि जिन को जननी समान,
स्वातन्त्र्य है प्रिय जिन्हें शुभ स्वर्ग से भी,
अन्याय की जकड़ती कटु बेड़ियों को,
विद्वान् वे कब समीप निवास देंगे ? *

श्री चन्द्रधर श

* एक अङ्गरेज़ी कविता के आधार पर । झुकी कमान, पान के बीड़े की तरह, वीरों को बुलाने को भेजी जाती है ।

विक्रमोर्वशी की मूल-कथा ।

(द्वितीय लेख)

(ख) पौराणिक मूल ।

(१) विष्णुपुराण, ४, ६ (गद्य)

पुरूरवा अत्यन्त दानी और तेजस्वी राजा था, जिस सत्यवादी और रूपवान् राजाको 'मित्रावरुण के शाप से मुझे मर्त्यलोक में रहना होगा' यह विचार कर उर्वशी ने देखा । उसको देखते ही अपना मान छोड़, स्वर्ग के सब सुखों की इच्छा को तज, उसी में मन लगा, सेवा करने लगी । उसे सब लोकों की स्त्रियों से कान्ति, सुकुमारता, लावण्य, हास्य, विलास, आदि गुणों में उत्कृष्ट जान राजा की चित्तवृत्ति भी उर्वशी के अधीन होगई । दोनों ही एक दूसरे में मन लगाए रहें, और कहीं न देखें, और और सभी प्रयोजनों को छोड़ बैठे । राजा ने बुद्धिमानी से उसे कहा । हे सुभ्रु ! तुझ से मेरा अत्यन्त प्रेम है, कृपा करके विवाह करले । ऐसा कहने पर लज्जा से मुंह छिपा, उर्वशी बोली । ऐसा ही सही, यदि मेरे वचन का आप पालन करें । अपना वचन मुझे कहो, यह पूछने पर बोली । सोने के समय मेरे पुत्र समान दो भेड़े न हटाए जांय । मैं आपको नंगा न देखूं । घी ही मेरा भोजन रहेगा । राजाने कहा यों हो सही । उसके साथ राजा ने अलकापुरी में चैत्ररथादि वनों में, निर्मल कमलों वाले सरोवरों में, विहार करते एकसठ हजार वर्ष, दिन दिन बढ़ते आनन्द में बिताए । उर्वशी भी उसके उपभोग से दिन दिन अनुराग बढ़ने के कारण स्वर्गलोक में रहने की इच्छा नहीं करती थी ।

उर्वशी के बिना स्वर्गलोग अप्सराओं और सिद्धगन्धर्वों को रमणीय नहीं मालूम पड़ने लगा। तब उर्वशी और पुरूरवा के समय (प्रतिज्ञा, कौल) को जानने वाला विश्वावसु, गन्धर्वों के साथ, रातको, नेत्रों के पास से ही, एक भेड़े को ले गया। आकाश में ले जाए जाते उसका शब्द उर्वशी ने सुना और कहा, "मुझ अनाथा के पुत्र को कोई ले जाता है, किसके शरण जाऊं?" यह सुन कर भी राजा 'मुझे देवी नंगा देख लेगी' यह विचार कर न गए। गन्धर्व दूसरे भेड़े को भी लेकर चलने लगे। चुराए जाते उसके शब्द को सुन कर "मैं अनाथा हूं, विना पति की, कुपुरुष के आश्रय में हूं" यह (उर्वशी) की आर्तवाणी हुई। राजा भी मारे गुस्से के अंधेरा समझ कर (नंगे ही) तलवार लेकर, "मारा है दुष्ट! मारा है" कहता दौड़ा। इतने में गन्धर्वोंने अत्यन्त उज्ज्वल बिजली पैदा की। उसके प्रकाश से राजा को विना वस्त्रों के देखकर उर्वशी, प्रतिज्ञा टूट जाने से, उसी क्षण चली गई। उन भेड़ों को छोड़कर गन्धर्व सुरलोक को चल दिए। राजा भी जब उन भेडों को ले, प्रसन्न होते हुए, बिछौने पर आया तो उर्वशी को न पाया। उसे न देखकर विना कपड़ों ही के पागल होकर घूमने लगा। कुरुक्षेत्र में, कमलसरोवरमें, चार अप्सराओं के साथ उसने उर्वशी को देखा और उन्मत्तों की तरह "हे भयंकर पत्नि! मन में रह, वचन में रह" ऐसे कई प्रकार के सूक्त कहने लगा। उर्वशी बोली महाराज! ऐसी अविवेक चेष्टा को बस कीजिए। मैं गर्भिणी हूं। वर्ष के अन्त में आप यहां आवें। आपके कुमार होगा। एक रात्रि मैं तुम्हारे साथ रहूंगी। ऐसा सुनकर प्रसन्न हो राजा अपने घर चले आए। उन अप्सराओं से उर्वशी ने कहा "यह वह पुरुष-श्रेष्ठ है जिस प्रेमी के साथ मैं इतने काल तक रही।" यह कहे जाने पर अप्सराएं बोलीं "इनका रूप बहुत ही अच्छा है, इनके

साथ तो हमारी भी सर्वदा रमण करने की इच्छा हो सकती है"। वर्ष पूरा होने पर राजा वहां आए। उर्वशी ने उसे 'आयु' कुमार दिया। और एक रात्रि राजा के साथ रह पांच पुत्रों की उत्पत्ति के लिए गर्भ पाया। और राजा से कहा "मेरी प्रीति से महाराज के प्रति सभी गन्धर्व सन्तुष्ट हैं और वर देना चाहते हैं, सो वर मांगो" राजा बोले "मैंने सब शत्रु जीत लिए हैं, मेरी इन्द्रियों की सामर्थ्य घटी नहीं है, मेरे मित्र भी हैं, सेना और कोश भी है। हमें उर्वशी सालोक्य से सिवा, और कुछ अप्राप्य नहीं है। सो मैं इस उर्वशी के साथ काल बिताना चाहता हूं" यह कहने पर गन्धर्वों ने राजा को अग्निस्थाली दी। और उसे कहा। अग्नि को वेद के अनुसार तीन बार उर्वशी—सलोकता मनोरथ का उद्देश करके याग करो। इससे अवश्य ही अभिलषित को पाओगे। ऐसा कहने पर उस अग्निस्थाली को ले राजा चला आया। जंगल में राजा ने सोचा "अहो! मेरी बड़ी मूर्खता हुई जो मैं अग्निस्थाली को लाया, उर्वशी को नहीं" और अग्निस्थाली को वन में ही छोड़ दिया। अपने नगर को लौट आया। आधी रात बीतने पर नींद टूटने से सोचा "मेरे उर्वशी सालोक्य प्राप्ति के लिये गन्धर्वों ने अग्निस्थाली दी थी। वह मैंने जंगल में छोड़ दी। सो मैं वहां उसे लेने जाता हूं।" यह सोच, उठ कर जब वहां गया तो अग्निस्थाली नहीं देखी। शमी गर्भ अश्वत्थको अग्निस्थाली के स्थान में देखकर राजा विचारने लगा "मैंने जहां थाली फैंकी थी वहीं शमीसंयुक्त अश्वत्थ हो गया है। सो इसी अग्निरूप को ले, अपने घर जा, अरणि बना, उससे उत्पन्न अग्नि की उपासना करूंगा।" अपने नगर में पहुंचकर ऐसी ही अरणि बनाई। उसके प्रमाण को अङ्गुलों से नापते हुए गायत्री का पाठ करने लगा। पाठ करते करते जितने गायत्री के अक्षर थे, उतने अङ्गुलों (२४)

को ही अरणि बनी। उससे अग्नि मंथन करके, वेदके अनुसार तीनों अग्नियों का होम किया। और उर्वशी--सालोक्य फलका निर्देश किया। उसी विधि से बहुत से यज्ञों को करके गन्धर्व लोकों को पाया, उर्वशी के साथ वियोग नहीं पाया। पहले एक ही अग्नि था; ऐल (पुरूरवा) ने इस मन्वन्तर में त्रेता (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय) चलाई।

(२) भागवत ६. १४

उससे इलामें उदाहृत पुरूरवा का जन्म हुआ। इन्द्र के भवन में नारद के द्वारा जिसके रूप, गुण, उदारता, शील, धन, पराक्रम आदिका गान सुन कर काम पीड़ित हो उर्वशी उसके पास आई। मित्रावरुण के शाप से मनुष्यलोकता को पा, कामदेव के सदृश सुन्दर उस पुरुषश्रेष्ठको जान, धैर्य धारण करके, उसके पास उपस्थित हुई। वह नरपति उसे देखकर रोमाञ्चित हो, हर्ष से नेत्र प्रसन्न करके, मीठी वाणी से बोले। हे सुन्दरि! तुम्हारा स्वागत है; बैठो, क्या करें? मेरे साथ अनन्तकाल पर्यन्त रमण करो। "हे सुन्दर! किस कारण तुम में दृष्टि और मन न लगै? जो दृष्टि और मन आपसे क्रीडा करने की इच्छा से और अङ्गको पाकर भी लौट आते हैं। हे राजन्! मानद! ये मेरे दो भेड़े अमानत रख लो, मैं तुम्हारे साथ रमण करूंगी। स्त्रियों का वर श्लाघ्य ही होता है। वीर, घृत ही मेरा भोजन रहे और मैं तुझे नङ्गा न देखूं।" महामना ने इन सब बातों को वैसे ही मान लिया। "धन्य है तुम्हारा रूप और धन्य तुम्हारा मनुष्यलोक को मोहनेवाला भाव, कौन मनुष्य स्वयं आई हुई तुझ देवी को न स्वीकार करै!" वह पुरुष श्रेष्ठ, यथावत् रमण करती हुई उस के साथ चैत्ररथादि देवताओं के विहारों में यथावत् विहार करता रहा। कमल-केसरकी सुगन्धिवाली उस देवी के साथ विहार करता हुआ, उसके मुख के आमोद से मुराया जाकर बहुत से अहर्गणों तक आन-

न्द करता रहा। इन्द्र ने उर्वशी को न देखते हुए गन्धर्वोंको प्रेरणा की कि " उर्वशी से रहित राजधानी मुझको शोभा नहीं देती।" वे रात्रि को वड़े अंधियारे में आ, पत्नी उर्वशी के पास राजाने रक्खे हुए भेड़ों को चुरा ले चले। देवी लेजाए जाते पुत्रों का चिल्लाना सुनकर बोली " नपुंसक और अपने को वीर मानने वाले दुष्ट स्वामी ने मुझे मारडाला। जो पुरुष, होकर भी, दिन में स्त्रियोंकी तरह, रात को निश्चिन्त सोता है और जिस के विश्वास से मैं नष्ट हुई और चोरों ने मेरे पुत्र चुरा लिये।" जैसे हाथी अंकुश से, वैसे इन वाक्य वाणों से विद्धहोकर राजा विना वस्त्र ही क्रोध में रात्रिको खड्ग लेकर दौड़े। गन्धर्व भेड़ों को वहां छोड़ कर विजलियां चमकाने लगे। मेषों को लेकर आते हुये अपने पति को उर्वशी ने नङ्गा देखा (और अदृश्य होगई) ऐल भी शयन में पत्नी को न देख कर विकल और उदास हो उसी में मन लगा, पागल की तरह भूमि में घूमने लगा। कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी में उसे और उस की प्रसन्न मुख पांच सखियों को देख कर पुरूरवा सूक्त को बोला। हे घोरपत्नि! ठहर ठहर। मुझे छोड़ना ठीक नहीं। आज भी सन्तुष्ट न होकर के वातें करें। देवि! इस देह को तूने वहुत दूर घसीटा है, यह यहीं गिरता है; यह तेरे प्रसाद का पात्र नहीं होता तो इसे भेड़िए और गीध खाते हैं।"तू पुरुष है, मत मर ये वृक भी तुझे न खांय, स्त्रियों से कहीं भी मित्रता नहीं होती। जैसे भेड़ियों के हृदयों से। स्त्रियें विना दया के क्रूर असहिष्णु और साहस को चाहने वाली होतीं हैं। थोड़ी सी वात के लिये विश्वस्त पति और भ्राता को भी मार डालती हैं। मूर्खों में झूंठा विश्वास वना कर, मित्रता छोड़, नए नए को चाहती हुई स्वच्छन्द पुंश्चलियां वन जाती हैं। ईश्वर! वर्ष के अन्त में आप मेरे साथ एक रात्रि रहोगे और आपके औरभी पुत्र होंगे।" देवी को गर्भिणी जानकर

वह अपने नगर को लौट गया और वर्ष के अन्त में वहां आ, उर्वशी को वीरमाता पाकर प्रसन्न हुआ। रात्रि को उसके साथ विताया। घबराए हुए, विरह से पीड़ित राजा को उर्वशी बोली—इन गन्धर्वों से मांगो, ये मुझे तुमको देदेंगे। हे राजन्! उसकी स्तुति से सन्तुष्ट होकर उनने अग्निस्थाली दी। उसे उर्वशी मानता हुआ वह चलता चलता वन में जागा। स्थाली को वन में छोड़, घर को जाकर रात को ध्यान करते हुए त्रेतायुग आजाने से उस के मनमें फिर त्रयी (अग्नि) आयी। स्थाली छोड़ आने की जगह पर जाकर वहां शमीगर्भ अश्वत्थ को देखकर राजा ने उससे दो अरणी वना, उर्वशी लोक की कामना से. उर्वशी का मन्त्ररूप से ध्यान करते हुए (याग किया)। उस अरणि के मन्थन से जातवेदा जो अग्नि उत्पन्न हुआ, उसे तीन वार राजा ने त्रयी विद्या से अपने पुत्रपने में कल्पित किया। उर्वशी लोक को चाहते हुए, राजा ने उस अग्नि से सर्व-देवमय विष्णु भगवान् को याग किया। पूर्वकाल में एक ही वेद था, सर्व वाङ्मय एक ही ओङ्कार था, एक देव नारायण, एक अग्नि और एक वर्ण था। हे राजन्! त्रेता के आदि में पुरूरवा को ही त्रयी हुई। अग्नि की कृपा से और सन्तान होने से (अथवा अग्नि के पुत्ररूप होने से) राजा गन्धर्व लोक को पहुंच गए।

(३) मत्स्य पुराण, अध्याय २४।

बुध ने इला के उदर में धर्मात्मा पुत्र जना, जिसने अपने तेज से एक सौ एक अश्वमेध किये। पुरूरवा यह उसका नाम था और वह सर्वलोक नमस्कृत था। वह महाराज रोज रोज इन्द्र से मिलने को जाया करता था। कभी सूर्य के साथ दक्षिण-आकाशगामी रथ पर आरूढ़ हो, उसने केशी नामक दैत्य राजसे लेजाई जाती चित्रलेखा.

उर्वशी को देखा। यश चाहनेवाले बहुत अस्त्रों को लिए हुए बुधपुत्र ने वायव्यास्त्र चलाकर उसे युद्ध में जीतकर, " इन्द्र को भी इसने (केशी ? ने) यों ही युद्ध में जीता था " इस से देवताओं से मित्रता करली और उर्वशी इन्द्र को देदी। तब से लेकर इन्द्र मित्र होगया। भरत ने लक्ष्मी स्वयंवर प्रवृत्त किया जिस में मेनका, उर्वशी, और रम्भा को नाचने की आज्ञा दी। उस में उर्वशी लक्ष्मी बनकर लय के साथ नाच रही थी। नाचती नाचती, पुरूरवा को देख, कामपीड़ित हो भरत के बताए हुए सम्पूर्ण अभिनय को भूल गई। भरत ने क्रोध से शाप दिया कि इसके वियोग से भूतल में तू पचपन वर्ष लता रहेगी और पुरूरवा पिशाच वहीं तेरा अनुभव करेगा। तब चिरकाल तक जाकर उर्वशीने उसे पति बनाया, और भरत के शाप के अन्त में बुध के पुत्र से उसने आठ पुत्र जने, जिन के नाम सुनो। आयु, दृढ़ायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, शुचिविद्य, और शतायु—इन सबही के बल और ओज दिव्य थे।

(४) हरिवंश—१० । २६—

हे प्रजापति तात ! प्रजापति मनु ने पुत्रकाम होकर मित्रावरुणों की इष्टि की। जब मुनि ने मित्रावरुणों के अंश में आहुति दी, तब दिव्य वस्त्र और अलङ्करणों वाली दिव्य इला उत्पन्न हुई। दण्डधर मनुने उसका 'इला' नाम कहा और कहाकि तू मेरा अनुगमन कर। इलाने उत्तर दिया कि हे वक्ता ! मैं मित्रावरुणों के अंश में उत्पन्न हुई हूं, उन्हीं का अनुगमन करूंगी, हत धर्म मुझे न मारे (इससे मैं तुम्हारे साथ नहीं जाती)। मनु देव को यों कह मित्रावरुणों के पास जा, हाथ जोड़ इला रमणी यों बोली। देवो ! मैं तुम्हारे अंशमे हुई हूं बोलो, क्या करूं ? मनुने मुझे कहा था कि मेरा अनुगमन कर। उस धर्मपरायणा, साध्वी इलाको यों कहते समय मित्रावरुणों ने जो कहा

सो सुन। महाभागे ! तू हमारी कन्या कहलावेगी और वही मनुका वंशधर पुत्र होगी। तीनों लोकों में प्रसिद्ध सुद्युम्न तेरा नाम होगा। यह सुनकर वह पिता (मनु) के पास लौट चली। रस्ते में बुधने उस का मथुन के लिए आह्वान किया और सोमपुत्र बुधसे उस में पुरूरवा उत्पन्न हुआ। *** महाराज ! बुधका पुत्र पुरूरवा विद्वान्, तेजस्वी, दानी, यागी 'दक्षिणा' देनेवाला था। उस ब्रह्मवादी, क्षान्त, धर्मज्ञ, सत्यवादी को मान छोड यशस्विनी उर्वशीने वरा। राजा उसके साथ १०; ५,५,६,७,८,१०,८ वर्ष रहा। विशाल अलका में, धनोत्तम नन्दन में, मनोरथ के अनुसार फल देनेवाले उत्तरकुरुओं में, गन्धमादन की तलटी में, मेरुके उत्तर पृष्ठमें, देवताओं से बसे हुए इन मुख्य वनों में वह उर्वशी के साथ परमहर्ष से निवास करता था। महर्षियों से स्तुत पुण्यतम देश प्रयाग में उसने अपना राज्य बनाया। देवसुतों के समान, स्वर्गमें उत्पन्न, महात्मा सात पुत्र उसके हुए—आयु, धीमान् अमावसु, विश्वायु, धर्मात्मा श्रुतायु, दृढायु, वनायु, शतायु। ये उर्वशी के पुत्र थे। इस के पीछे कथा वैसे ही ठीक ठीक चली है जैसे विष्णुपुराण में। विशेष इतना ही है कि गङ्गाजी के उत्तर तीर में प्रयाग में प्रतिष्ठान पुरमें उसने राजधानी बनाई।

(५) वायु पुराण में ये कथा हरिवंश के शब्दों में ही वर्णित है केवल कलाप ग्राम में राजा की यात्रा, उत्तर यामुन तीर में राजधानी और सात के स्थान में छ पुत्रों का उल्लेख है।

(६) देवी भागवत में भागवत की ही कथा का सार है।

* प्रथम प्रस्ताव में विक्रमोर्वशी के वैदिक मूल दिखाए गए थे, और दूसरे में पौराणिक मूल बताए गए हैं। काश्मीरिक सोमदेव भट्ट कृत **कथा सरित्सागर** में भी पुरूरवा और उर्वशी की कथा है। यह पार्वती के प्रणय—मन्दरान्दोलन से निकला हरमुखाम्बुधि का कथामृत चाहे और कई कवियों और नाटकों का जन्मदाता हुआ हो, परन्तु सोमदेव भट्ट के कालिदास के बहुत पीछे होने से, कालिदासीय कथा सोमदेवीय कथा से कुछ नहीं लेसकी है, यह कहना अयुक्त न होगा। सम्भव है, यदि कालिदास पञ्चम शताब्दी में ही हुए होतो, कथा--सरित्सागर की मूलभित्ति **गुणाढ्य** की बृहत्कथा और उस से पहले की भूतभाषामयी पैशाची बृहत्कथा ने कालिदास को कुछ ऋणी बनाया हो। यों तो जितने पुराणों के वाक्य ऊपर उद्धृत किए

---

* **टिप्पणी**—प्रथम प्रस्ताव में वैदिक और प्रायोवैदिक ग्रन्थों से उर्वशी की कथा को खोलने का यत्न किया गया था। बड़े खेद का विषय है कि हिन्दी सामयिकपत्रों के कर्ताओं ने उस पर कुछ भी न लिखा। इस से यह अभिमान करना कि वह प्रबन्ध निर्दोष था मेरी धृष्टता होगी परन्तु यह अनुमान करना आवश्यक होगा कि हिन्दी साहित्यज्ञों ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया। अपनी तरफ से वेद के कठिन अर्थों को समझाने में जो टकाभर यत्न किया था, और शतपथ का जो मूलानुसारी अनुवाद किया था उस पर वर्धक या कर्तक सम्मति पाने की मेरी बड़ी इच्छा थी। और वह इच्छा उन लोगों से थी, जो काशी से प्रकाशित रमेशचन्द्रदत्तीय भारतवर्ष के इतिहास के अनुवाद का समर्पण लिखने वालों की भाषा में " इस में लिखी बातों के समझने के उपयुक्त पात्र है "।

गए हैं उन में से कई एक को भी आधुनिक ऐतिहासिक कालिदास से प्राचीन न मानेंगे, परन्तु पुराणों में किसप्रकार की कथा चली आई है और वास्तव वैदिकरूप इस कथा का क्या था, यह दिखाने के लिए ऐतिहासिक विचार पीछे डाल दिए गए हैं। अब आगामि प्रस्ताव में कालिदास की कथा का सार देकर किस किस वैदिक या पौराणिक कथा से उसका स्वारस्य और वैरस्य है और वह कवि ने किस अभिप्राय से किया है, इसका यथाज्ञान अनुसन्धान करने का विचार है। परमेश्वर चाहेगा तो वह प्रस्ताव अवकाश मिलने पर पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जायगा।

श्री चन्द्रधर शर्मा

प्रयाग के धार्मिक मासिक पत्र 'राघवेन्द्र' ने आश्विन १९६२ के अङ्क के ५५ पृष्ठ में लिखा है "विक्रमोर्वशी की मूल कथा में लेखक महाशय ने कलकत्ते के The Arya Mission Institution को भी मात कर दिया है"। इस संक्षिप्त समीक्षा का अर्थ मैं नहीं समझा। यदि लेखक का अभिप्राय यह है कि किसी बङ्गाली के गवेषणा के परिश्रम को मैं विना नाम धाम दिए अपना रहा हूं तो यह कहना भल होगा कि "बङ्गला भाषा के भण्डार" को "नाच कूद का सार" विना बनाए हिन्दी में कुछ लिखना असम्भव नहीं है। और यदि कुछ धार्मिक कटाक्ष है तो, लेखक क्षमा करें, अनर्थक वेद पढ़ने या सुनने से—चाहै उसे शलाटु और नीरस पत्ते न भी कहा जाय—सार्थ वेद को जानने का यत्न करना अधिक पुण्यकारक है, और वैसा करने वाले को धर्मच्युत कहने का इशारा करना भी संकीर्ण कलुषता है।

कुण्डलिया ।

(गत पूर्व अङ्क पृष्ठ ८७ से आगे)

"पीतम बात न बूझही धरयो सुहागिन नाम"
धरयो सुहागिन नाम वृथा बहकायो प्रानी
विषय नायका ताहि नचावत है मनमानी ।
प्रीति नहीं निज पति कछू औ व्यभिचार सुहात,
इन्द्रिय सुख में रत रहै स्वामी मन किहि भात ?
' रसिक ' कहै शृंगार सब वृथा देह अभिराम
पीतम बात न बूझ ही धरयो सुहागिन नाम ॥ १२ ॥

"कोऊ काहू को नहीं देखो ठोक बजाय"
देखो ठोक बजाय जगत स्वारथ का साथी
मात पिता सुत नारि सुता वृष घोटक हाथी ।
बाग बगीचा मित्र राज दरबार'रु भोई
जड़ चेतन निज लाभ बिना लखि है नहिं कोई ।
' रसिक ' नांहि संसार इक संगी स्वार्थ विहाय
कोऊ काहू को नहीं देखो ठोक बजाय ॥ १३ ॥

"जैसे कंता घर रहे तैसे गये विदेश"
तैसे गये विदेश कबहु सुधि भूलि न लीनी
जप तप किये न यज्ञ भोग में रुचि हु न दीनी ।
एक एक कर सब गए दिवस रहा नहिं कोय
अब पछतावत है वृथा निज हाथन तें खोय ।
' रसिक ' लोक परलोक का साधन किया न लेश
जैसे कंता घर रहे तैसे गये विदेश ॥ १४ ॥

"भुस ऊपर को लीपनो अरु बारू की भीत"

अरु बारू की भीत रहै थिर दिवस किते कहु ?
बिन श्रद्धा को दान पुण्य सुख हेतु न नेकहु ।
कनक कामिनी मांहि मन तन पर भगुवां भेख
यह ठग बिथा जगत में गली गली में देख ।
मन मैला तन ऊजला 'रसिक' राम सुख मीत
भुस ऊपर को लीपनो अरु बारू कीं भींत ॥ १५ ॥

"सदा न फूलै तोरई सदा न सावन होय"

सदा न सावन होय चराचर रूप बढावन
रूप न रहै हमेश चहै संग जोवन जावन ।
जोबन थिर नहिं सदा देह नहिं अजर अमर पुनि
सत्य एक भगवान ध्यान जिहि धरत योगि मुनि ।
'रसिक' जागि उठि राम भज अवसर पर जनु सोय
सदा न फूलै तोरई सदा न सावन होय ॥ १६ ॥

"सखी पराये पीटने कहा तुरावै गाल"

कहा तुरावै गाल वृथा पर हेत मूढ जन ?
सुत दारा पितु मात तुम्हारा इन में एक न।
अपने अपने कर्म भोग सब भोगत जग में
इन से कछु न सहाय जीव की उन्नति मग में ।
रसिक वेगि मारग लगहु छोरि सबै जग जाल
सखी पराये पीटने कहा तुरावै गाल ॥ १७ ॥

(क्रमशः)

पुरोहित गोपीनाथ ।

बैलून ।

(पृष्ठ ८५ गताङ्क से आगे ।)

बैलून का सिद्धान्त और पैरेशूट का वर्णन।

अब हम थोड़ा सा हाल इस बात का देते हैं कि बैलून किस भांति बनाया जाता है और किस सिद्धान्त पर उस का उड़ना निर्भर है । विज्ञान का यह प्राचीन सिद्धान्त है कि यदि कोई वस्तु किसी द्रव पदार्थ में डालदी जाय तो उसकी तौल उतनी ही घट जायगी जितनी उस द्रव पदार्थ की तौल हो जिसका स्थान वह वस्तु लेलती है । यह सिद्धान्त यूनानी वैज्ञानिक आर्कमीडीज़ का निकाला हुआ है । इस सिद्धान्त के निकालने का किस्सा यों है ।

सिराक्यूज़ के राजा हाइएरो ने किसी सुनार से एक सुवर्ण मुकुट बनवाया । जब वह बन कर आया तो राजा को बड़ा सन्देह हुआ कि इस में सुवर्ण के अतिरिक्त और भी कोई धातु मिली है; परन्तु इस अपने सन्देह का वह कोई प्रमाण न दे सकता था । इस संकट में उसने आर्कमीडीज़ के पास पत्र लिखा । आर्कमीडीज़ का यह नियम था कि वह प्रतिदिन एक तालाब में स्नान करने जाता था । सिराक्यूज के राजा के पत्र पहुंचने पर उसको इस बात की बहुत आकुलता हुई कि यह किस भांति जाना जाय कि कोई पदार्थ स्वच्छ है या किसी अन्य पदार्थ से मिला हुआ है । एक दिन स्नान करते२ वह तालाब के बाहर यह कहते हुए नङ्गा ही निकल आया कि " मैं जान गया मैं जान गया ! " । इस के पश्चात् उसने वही सिद्धान्त जो ऊपर लिख आये हैं निकाला जो अब तक उसके नाम से

विख्यात है। यह सिद्धान्त आर्कमेडीज़ को तालाब में अपना देह हल-का मालूम होने पर सूझा। इस नीति के अनुसार कि हर एक वस्तु किसी द्रव पदार्थ में डालने से उतनीही कम हो जाती है जितनी कि उस द्रव पदार्थ की तौल हो जिसका स्थान वह वस्तु छेक लेती है आर्कमीडीज़ ने सिराक्यूज़ के राजा के सुवर्ण मुकुट को पानी में तौला परन्तु उसका बोझ उतना ही कम न हुआ जितना कि उसे घटना चाहिये था यदि मुकुट केवल सोने ही का होता। इससे यह सिद्ध हो गया कि मुकुट में सोने के सिवा और भी अन्य पदार्थ मिला है।

यह प्रत्येक मनुष्यका अनुभव होगा कि पानी के भीतर हर-एक पदार्थ का बोझ साधारण बोझ से कम होता है। इस का कारण यह है कि हर एक वस्तु के ऊपर जो पानी में छोड़ी जाती है दो शक्तियां काम करती हैं। एक तो उस वस्तु का बोझ जो उस को नीचे की ओर खींचता है और दूसरे पानी की शक्ति जो उस को ऊपर की ओर फेंकती है। परन्तु यह ऊपर फेंकने की शक्ति केवल पानी ही में नहीं हवा में भी है। किसी पदार्थ को साधारण रीति से तौलने पर जो हमें उसकी तौल मालूम होती है वह उसकी वास्तविक तौल नहीं है किन्तु वास्तविक तौल से उतनी कम है जितना कि उस हवा का बोझ हो जिसका स्थान वह पदार्थ छेकता है। वास्तविक तौल तो शून्य Vacuum में तौलने से ज्ञात होती! पानी में यदि कोई ऐसी वस्तु डाली जाय जो उस पानी से भारी है जिस का स्थान वह छेकती है तो वह डूब जाती है, यदि पानी के बोझ के बराबर हो तो जिस स्थान में रख दी वहीं रहेगी, यदि पानी के बोझ से कम हुई तो तैरने लगेगी। इसी प्रकार वह पदार्थ जिसका बोझ हवा के उस भाग के बोझ से

भारी है जिसको कि वह छेकता है हवा में फेंकने से गिर जाता है। यदि उस पदार्थ का बोझ हवा के बोझ के बराबर हुआ तो जिस स्थान में रख दो वहीं रहेगा, और यदि उसका बोझ हवा के बोझ से कम हुआ तो हवा के ऊपर चढ़ जायगा। केवल इसी साधारण प्राकृतिक नियम पर बैलून का आकाश में उड़ना निर्भर है—बैलून एक बड़ा खोखला और गोल पदार्थ है जिस में कि कोई इस प्रकार का गैस भरा रहता है जो हवा से हलका हो और वह इस कारण से उड़ता है कि वह उस हवा से हलका होता है जिस का कि वह स्थान छेकता है। यह एक ऐसी सरल बात जान पड़ती है कि आश्चर्य होता हैं कि बैलून का निर्म्माण करना माण्टगाल्फीर के पहले किसी को क्यों न सूझा। योरोप के प्रसिद्ध ज्योतिषी लालण्ड Laland नें जब बैलून के निर्म्माण होने का समाचार सुना उस के थोड़े ही समय के अनन्तर उन्होंने यह लिखा:—"इस समाचार को सुनकर हम सब लोग कहते हैं कि यह ऐसा ही होना चाहिये परन्तु हम लोगों को यह पहले क्यों न सूझा"। प्रायः जभी कोई प्रकृति की नई घटना किसी ने प्रगट की है या किसी नई वस्तु का प्राकृतिक नियमों का सहारा लेकर निर्म्माण किया है तो वह मालूम होने के बाद बहुत सरल सी जान पड़ी है परन्तु पहले लोगों को नहीं सूझती थी। माण्टगल्फीर के बैलून बनाने के छै वर्ष पूर्व अंगरेजी वैज्ञानिक कवेंडिश Cavend'sh ने हाईड्रोजन गैस निकाला था और सब से पहले इस गैस से किसी वस्तु को उड़ाने का काम एडिनबरा Edinburgh के अध्यापक डाक्टर ब्लेक ने लिया था। उन्होंने चिमड़े कागज़ का एक छोटासा खोखला गुब्बारा बनाकर उस में हाईड्रोजन भर दिया और उसे अपने मेज़ पर से पढ़ाने के कमरे की छत तक उड़ा कर इस बात का अपने विद्यार्थियों

को प्रमाण दिया था कि हाइड्रोजन गैस हवा से हलका होता है। परन्तु उन्हें कभी इस बात का गुमान भी न हुआ कि इस गैस से सिवाय थोड़े से विद्यार्थियों के चित्त बहलाने के और भी कोई काम लिया जा सकता है।

मांट गाल्फीर का पहला बैलून केवल गरम हवा से भरा गया था। गरम हवा ठंडी हवा से हलकी होती है क्योंकि वह फैल जाती है और पहले से अधिक स्थान छेकती है। इसी कारण से गर्म हवा से भरा हुआ बैलून ऊपर को उड़ता है परन्तु वह वहीं तक जा सक्ता है जहां तक कि हवा बैलून से भारी हो। जैसे २ हम ऊपर को चढ़ते हैं वैसे ही वैसे हवा सूक्ष्म मिलती हैं। इसी कारण से बैलून उस हद के बाहर जहां तक कि हवा उस से भारी है नहीं जा सक्ता। हाइड्रोजन गैस का भरा बैलून गर्म हवा के भरे बैलून से बहुत ऊंचा जाता है क्योंकि हाइड्रोजन बहुत हलका होता है। बैलून का उतरना इस भांति होता है। गर्म हवा का भरा बैलून जैसे उस के भीतर की हवा ठंडी होती है उतरता है। किसी गैस के भरे हुए बैलून को उतारने के लिये थोड़ा गैस निकालना पड़ता है। परन्तु कभी २ हवा में उड़ने वाला एक दूसरे ही यन्त्र के द्वारा उतरता है जिस को पैराशूट (Para chute) कहते हैं। इस की सूरत छाते के अनुसार होती है। इस में एक कुर्सी बैठने के लिये रस्सियों से जकड़ी रहती है। जब बैलून पर जाने वाले मनुष्य को पैराशूट के द्वारा उतरना होता है तो वह बैलून की कुर्सी छोड़ पैराशूट की कुर्सी पर आ जाता है और तब उस डोर को जिस से पैराशूट बैलून में बंधा रहता है काट देता है। पहले तो कुछ दूर तक वह इस भयानक चाल से गिरता है कि उसकी अपेक्षा बैलून के उड़ने का वेग केवल साधारण हिलोर जान पड़ता है; परन्तु थोड़े ही देर में जब

वायु पैराशूट के तहों में घुस जाती है और उस को छाते के अनुसार खोल देती है तब उसका वेग इस कारण से घट जाता है कि उस की चौड़ी सतह के गिरने में वायु रुकावट करती है।

पैराशूट की परीक्षा सब के पहिले पशुओं पर की गई थी। बेलून के प्रसिद्ध उड़ने वाले ब्लैंकार्ड (Blanchard) ने अपने कुत्ते को ६५०० फीट की उंचाई से पैराशूट में बेठाकर छोड़ दिया। गिरते हुवे पैराशूट को हवा के एक झोंके ने ऊपर उड़ा दिया। थोड़ी ही देर बाद ब्लैंकार्ड और उस के कुत्ते से आकाश ही में बहुत ऊंचाई पर भेंट हुई और बेचारे पशु ने भूंक २ कर अपने स्वामी के देखने की प्रसन्नता प्रगट की। हवा के एक दूसरे झोके ने फिर दोनों को अलग कर दिया; परन्तु ब्लैंकार्ड के पृथ्वी पर उतरने के थोड़े ही देर बाद पैराशूट भी अपने पशु पथिक के सहित उतर आया।

सन् १८०२ में गारनेरिन (Garnerin) ने अपने को १२०० फीट की उंचाई से गिराने का साहस किया। परन्तु कुछ प्रमाणों से ऐसा जान पड़ता है कि पैराशूट के गुण और उस के बनाने की रीति लोग गारनेरिन से पहले भी जानते थे। सन् १६७७ ईस्वी में पैराशूट की सूरत का एक यन्त्र वेनिस नगर के एक बहुत कलों के समूह में निकला था। और एक भांति के पैराशूट का वर्णन गारनेरिन के उड़ने के १८१ वर्ष पहले मिलता है। सोलहवीं शताब्दी में फ्रांस के सम्राट् ल्यूई चौदहवें (Louis X I V) के उस दूत ने जो स्याम देश को भेजा गया था इस प्रकार लिखा है:—

"स्याम के राजा के दरबार का एक शिल्पकार ऊंचे बांस के पेड़ की चोटी पर चढ़ गया और वहां से उसने अपने को हवा में सिवाय दो छातों के और किसी वस्तु की सहायता बिना छोड़ दिया। कभी वायु

उसको पृथिवी पर लाती थी, कभी वृक्षों और घरों की चोटियों पर ले जाती थी, और कभी नदी में फेंक देती थी परन्तु इस को किसी प्रकार की चोट नहीं लगने पाई।"

क्या यह वर्णन पैराशूट का नहीं किसी और वस्तु का है? अब हम यहां पर वैलून का कुछ संक्षिप्त इतिहास देना चाहते हैं। यह तो लिख ही चुके हैं कि पहला वैलून ५ जून सन् १७८३ को मांटगाल्फीर भाइयों ने ऐनान में उड़ाया था। दूसरा वैलून २७ अगस्त १७८३ ई० को पेरिस में प्रोफेसर चार्ल्स ने उड़ाया। यह वैलून हाईड्रोजन से भरा हुआ था। दो मिनट के भीतर वह ४२८ फैदम ऊंचा उड़ गया। इस उंचाई पर पहुंच कर वह मनुष्यों की दृष्टि से एक बादल के टुकड़े के कारण छिप गया परन्तु जब फिर दिखाई दिया बहुत ऊंचाई पर था। इस वैलून का गिरना हाइड्रोजन गैस के फैलजाने और इस लिये वैलून के फटजाने के कारण हुआ यह घटना एक गांव में कुछ किसानों से थोड़ी दूर पर हुई। वे लोग बेचारे बहुत ही डर गये और यही समझने लगे कि यह कोई बड़ा भयानक राक्षस आकाश से कूदा है। गांव के दो पादड़ियों के यह कहने पर कि फटा हुआ बलून किसी बड़े भयानक पशु की खाल है उन लोगों ने उसे पत्थर फरुओं और गदालों से पीटना आरम्भ किया। निदान उन्होंने उसे एक घोड़े की दुम में बांध कर खेत से बहुत दूर पर फेंकदिया। जिस समय यह घटना हुई थी उस समय के चित्रों में किसानों का गदालों और फरुओं से मारना, कुत्तों का भूंकना, एक सिपाही का बन्दूक चलाना, एक मोटे पादड़ी का हाथ उठा २ कर व्याख्यान देना और बहुत से लड़कों का ढेला मारना यह सब बातें दिखलाई गई हैं।

(हाशिया: वैलून का संक्षिप्त इतिहास)

इस दुर्घटना का समाचार पैरिस में पहुंचा परन्तु जब बैलून की खोज की गई तब एक टुकड़े का भी पता न लगा।

जिस समय यह दूसरा गुब्बारा चार्ल्स का बनाया हुआ मंढ़ाया गया था उस समय छोटा माण्टगल्फोर वहां उपस्थित था। उस के थोड़े ही समय बाद वैज्ञानिक सभा के कहने पर उस ने एक बैलून ७० फीट ऊंचा और ४० फीट चौड़ा बनाना आरम्भ किया। यह बैलून फ्रांस के सम्राट ल्यूई १६ वें के सामने, बैलून यात्राकी वर्सेल्ज़ (Versailles) में जांच करने के लिये बनवाया था। इस समय की ऋतु अच्छी नहीं थी प्रायः बादल घिरे रहा करते थे और पानी बरसता था इस लिये बैलून का उड़ना नहीं हो सकता था। ११ सितम्बर को कुछ बादल हटे और समय अनुकूल जान पड़ा। संध्या को बैलून भर कर लोगों को दिखलाया गया परन्तु उड़ाया नहीं गया। उड़ाने के लिये दूसरा दिन नियत किया गया और वैज्ञानिक सभा के मन्त्री गण भी बुलाये गये। दूसरे दिन प्रातःकाल बादल आकाश में छा रहे थे और अंधड़ का सामान दिखलाई पड़ता था; परन्तु इस कारण से कि लोग बहुत उत्सुक हो रहे थे बैलून का उड़ाना रोका न गया। दस मिनट के भीतर बैलून अग्नि के धुंवे से भर दिया गया। ५०० पौण्ड (लगभग ६ मन) का बोझ बैलून में उस का बल कम करने के लिये बांध दिया गया। बैलून रस्सियों से बन्धा था जिसको बहुत से मनुष्य मिलकर पकड़े थे। जैसे ही बैलून पृथ्वी से थोड़ा ही ऊपर चढ़ा था कि आंधी आ गई और पानी बड़े वेग से बरसने लगा। ऐसे समय में उस के बचाने का उपाय केवल यह था कि वे रस्सियां जिस से मनुष्य बैलून को थांभे थे काट दी जातीं कि जिस से वह उड़ कर चला जाता। परन्तु इस कारण से कि इसी बैलून को वर्सेल्ज में फिर राजा के सामने उड़ाना

था उसके खींच लाने का बहुत यत्न किया गया। परन्तु परिणाम यही हुआ कि बैलून के कागज टुकड़े २ हो गये और वह किसी काम का न रहा। बैलून उड़ाने की यह तीसरी परीक्षा वैसी फलीभूत न हुई जैसी की इस के पहले की दो हुई थीं।

वर्सेल्ज में बैलून उड़ाने की तारीख ११ सितम्बर नियत हुई थी। केवल ६ दिन बीच में थे जिस में दूसरा बैलून तैयार करना था। परन्तु मांण्टगाल्फ़ोर ने कुछ मित्रों की सहायता से रात और दिन कठिन परिश्रम से नियत समय के पहिले एक नया बैलून तैयार कर दिया। यह बैलून वरसेल्ज में जाने से पहिले पेरिस में उड़ाकर देखा गया। ११ तारीख को प्रातःकाल वह पैरिस से वरसेल्ज लाया गया। उस समय पैरिस से वरसेल्ज की सड़क गाड़ियों से भरी थी। फ्रांस के सब नगरों से बड़े २ लोग वरसेल्ज में आ रहे थे। निदान जब फ्रांस के सम्राट् लूई और उन की महाराणी आगई और उन्होंने बैलून को अच्छी तरह से जांच कर ली तब वह उड़ाया गया। यह देखने के लिये कि कोई जीव बैलून पर चढ़ कर जीवित रह सकता है या नहीं इस वार बैलून के साथ एक पिंजड़ा लटका दिया गया जिस में एक भेड़ और कुछ कबूतर बन्द थे। बैलून विना रोकटोक के बहुत ऊंचे तक चढ़ गया। वहां से कुछ उत्तर की ओर झुक कर वह ठहर गया और तब फिर उसने धीरे २ उतरना आरम्भ किया जिस स्थान से उड़ा था वहां से १०८०० फीट को दूरी पर एक जंगल में उतरा। इसकी उड़ने की ऊंचाई, जैसा कि ज्योतिषियों ने बतलाया १७०० फीट थी।

बैलून की इस चौथी परीक्षा के बाद माण्टगाल्फ़ोर पैरिस में लौट आया। यहां अब लोग इस बात के लिए उत्सुक होने लगे कि कोई मनुष्य बैलून में उड़ाया जाय। मांटगाल्फ़ोर ने दसवीं अक्तूबर तक

एक बैलून तैयार कर दिया । इस बेलून में आदमी के बैठने की भी जगह बनाई गई और अग्नि भी लोहे के छड़ों में बन्द कर इस वास्ते धरदी गई कि यदि बैलून में धुआं कम होजाय तो उस में बैठने वाला मनुष्य अधिक धुआं बनाले । कुल बोझ इस यन्त्र का १६०० पौंड था । १५ अक्तूबर बुधवार के दिन पिलेट्रिडोज़ रोज़ियर्स (Pilatre des Roziers) इस नये यन्त्र में बैठकर हवा में उड़ने को तत्पर हुआ । बेलून भर दिया गया और उस में ८० फीट लम्बी रस्सियां बांधदी गई । बेलून उड़ाया गया और ८० फीट की दूरी पर जिस के आगे वह रस्सियों के कारण नहीं जा सकता था ४ मिनट और १५ सेकण्ड ठहरा रहा । रोज़ियर्स को इस बैलून यात्रा में किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंची । १७ अक्तूबर शुक्रवार के दिन फिर रोज़ियर्स बैलून में ८० फीट तक उड़ाया गया परन्तु इस दिन वायु के वेग के कारण इस परीक्षा में उतनी ही सरलता और सुन्दरता न आई जैसा कि बुधवार को रविवार को तीन परीक्षायें इस भांति की गईं । पहली बार उड़ाने में बैलून २०० फीट गया । इसमें रोजियर्स एक ओर बैठा था और दूसरी ओर उस के बोझ को समान करने के लिये ११० पौंड का बोझ धर दिया गया था दूसरी परीक्षा में रोजियर्स ११० पौंड के साथ २०० फीट की ऊंचाई तक उड़ गया । नीचे उतरने के समय वायु के एक झोंके ने बैलून को एक पेड़ में अटका दिया परन्तु रोजियर्स के फिर नया धुआं देने पर वह तुरन्त पेड़ की डालों से निकल कर उड़ गया । इस दूसरे बार की परीक्षा में यह सिद्ध हो गया कि बैलून गिरता नहीं किन्तु उतरता है और मनुष्यों के चित्त से यह शङ्का दूर हो गई कि बैलून यदि किसी जङ्गल में पड़ गया तो नहीं बच सकता । (असमाप्त) ।

———o———

बिदा !

(वंशस्थ-वृत्त के पांच चरणों के छन्दों में टामस कार्लाइल की 'एड्यू' कविता का मर्म)

(१)

अदृष्ट औ' काल मिलैं, मिलैं, मिलैं,
अदृष्ट औ' काल मिलैं, मिलैं, मिलैं;
स्वर्गीय काष्ठागत प्रेम जो बनै
वही तुम्हारा मुझ से बना हुआ,
प्रिये, हमारा तुम से लगा हुआ ।

(२)

जो हो चुकी बात, गई, गई, गई,
जो हो चुकी बात, गई, गई, गई;
मुझे न बाकी कुछ दुःख के सिवा,
तथापि मैं याद किया करूं सदा,
प्रिये, तुझे याद किया करूं सदा ।

(३)

विलाप के अश्रु गिरैं, गिरैं, गिरैं,
वियोग के अश्रु गिरैं, गिरैं, गिरैं;
विषाद वा हर्ष रहै, त्रिकाल में,
सर्वस्व से भी प्रिय मानता हूं,
प्रिये, सदा ही प्रिय मानता रहूं ।

---

१ काष्ठागत=सर्वोत्कृष्ट

(४)

कुमार्ग औ' दुःख, भरा, भरा, भरा,
कुमार्ग जो दुःख भरा, भरा, भरा;
वियोग क्यों ? प्राण वही, शरीर दो;
नहीं मिलेंगे अब तो, कभी नहीं;
प्रिये, मिलेंगे अब तो कभी नहीं ।

(५)

कुवैद्य ऐसा मिलने न वे, न वे;
कुवैद्य ऐसा मिलने न वे, न वे,
आमोद का मोद रहा सुवैद्य सा,
तथापि लो आज सलाम अन्त की,
प्रिये ! यही आज सलाम अन्त की ।

निराशा ।

आश्विन के राघवेन्द्र में ' हमारा बस्ता ' कहता है—" श्री विशिष्टाद्वैतन पत्र का उदय उचित समय पर हुआ है । " पत्र का नाम शायद " विशिष्टाद्वैतिन् " है, परन्तु बहुत सोच कर भी हम न जान सके, कि रूस जापान की सन्धि, बङ्गाल का स्वदेशी आन्दोलन, लार्ड कर्जन का इस्तीफा या और कोईसी सामयिक घटना इस 'राघवेन्द्र' के भाई के लिए ' उचित समय ' क्योंकर है । आगे चलकर एक वाक्य है—"इस के एक दो लेखों का भाषा अनुवाद हम कभी अपने पाठकों को भेंट करेंगे" । इस से ही कदाचित् उस पुण्यवान् पत्र के लिए ' उचित समय ' है ॥

साहित्य और मनुष्यत्व।

(गताङ्क पृष्ठ ९३ से आगे)

यहां तक तो मैंने कवि और काव्य का उल्लेख किया है; अब मुझे यह सन्देह होता है कि कदाचित् यहां कोई यह विचारने लगे कि साहित्य के नाम में कवि और काव्य क्यों आया ? इस में मुझे यही कहना है कि प्रकृत काव्य ही साहित्य है; काव्य के विना साहित्य का मेरु—दंड भंग हो जाता है। महाबुद्धिमान् राजा दक्ष ने शिवजी को अलग कर के यज्ञ करने की चेष्टा की थी, काव्य को छोड़ कर साहित्य की आलोचना करना भी वैसी ही चेष्टा है।

इस समय जो बात कही है, कि "साहित्य से ही मनुष्यत्व है, अपने से मनुष्यत्व नहीं है; जो निकृष्ट जीव का लक्ष्य है; यथार्थ मनुष्य का लक्ष्य वह नहीं है; मनुष्य का अपना लक्ष्य समझना, अपने भीतर ज्ञान की शिखा को प्रज्वलित करना और रक्त मांस के शरीर को भुलाकर चिन्ता और बुद्धि को सब से प्रथम अधिकार देना,—एक बात में शरीर को भूल कर मन को समझाने की शिक्षा देना; यह कवि का कार्य है; सर्वदा प्रतापशाली कवि यही करते हैं।" इसी कारण से कवि संसार के मित्र हैं,—सम्पूर्ण स्त्री पुरुषों की प्रीति के पात्र हैं। जब दार्शनिक और वैज्ञानिक मूल की खोज करते हुए विद्या बुद्धि, और चिन्ता के इन्द्रियातीत राज्य में जाकर विस्मय में पड़ जाते हैं तब तो एक हिसाब से वे भी कवि हुए। उन का "तत्व" उस समय कवि के स्वभाव—जात—सौन्दर्य के अनुभव में मिलकर एक हो जाता है। मृत्यु का उल्लेख दृष्टान्त से किया जाता है; मृत्यु के पीछे क्या होगा; इस बात को जैसे कवि जानते हैं, उसी प्रकार दार्शनिक भी जानते हैं। इन विषयों को पूरी तौरपर

कोई भी नहीं जानता, दोनों ही केवल संदेह करते हैं; परन्तु पहला तो तब भी अपनी आशा को नहीं छोड़ता,—उस समय भी वह आशा की अमृतमयी देववाणी को सुनाता है। कैसी अपूर्व और मनोहर सान्त्वना है!

परन्तु हाय! किसी २ स्थान में एक घोषणा उठी है,—कि "विज्ञान के उत्कर्ष के साथ क्रमानुसार कविता का भी लोप हो जायगा!" यह बात क्या ठीक है? कविता का लोप हो जाना—यह कैसे संभव हो सकता है? नहीं, मैं इस बात को कदापि नहीं मान सकती। जब कि सृष्टि के आरम्भ से ही कविता की उत्पत्ति हुई है, तब सृष्टि के साथ ही साथ कविता भी अनन्त काल तक रहेगी; मनुष्य जबतक मनुष्य रहेंगे अथवा मनुष्यत्व से देवत्व प्राप्त करेंगे तबतक कविता भी उनके साथ ही साथ विराजमान रहेगी, और उन के साथ ही इस की शोभा, श्री, सुन्दरता की वृद्धि भली भांति से होगी। जो सत्य और सुन्दर है, जो सार और शुभदायक है; जो जीवन का धीरज, और आत्मा का खाद्य है, वही कविता है,—और उस का अनुशीलन करना ही मनुष्यों का स्वाभाविक धर्म है।

कविता का लोप होना असंभव है। "विज्ञान के प्रकाश से काव्य की स्फूर्ति नहीं होती,—" यह बात समझ में नहीं आसकती। किसी २ का यह विचार है कि—कविता आधी निद्रा और आधा जागरण है, आधी चेतना और आधा स्वप्न है, आधी स्मृति और आधी विस्मृति है!—जो जीवन अन्धकार से ढक रहा है; वह तीक्ष्ण सूर्य्य की किरणों से प्रकाशित होगा; परन्तु विज्ञान का प्रकाश इतना मन्द है; इतना तीक्ष्ण है और इतना ज्वालामय है कि जिस से सारा कविता के कल्पनांश लोप हो जायगा।

यह बात जिस स्थान से उठी है, उस स्थान में जिस समय वि-ज्ञान शास्त्र का बड़ा आदर और गौरव है उसी समय उसी स्थान में कविता रत्नमय सिंहासन पर राजराजेश्वरी रूप से विराजमान है। इसी से कहा जाता है कि कविता का लोप नहीं हो सकता; और जो ऐसा होता तो अपूर्व कवित्व-मय निखिल-संसार इस असीम-र-हस्य-मय मनुष्य—जीवन के साथ ही लोप हो जाता। और न मालूम उस अनन्त शून्य में कौन महा पुरुष विज्ञान के असाधारण क्रीड़ा कौतुक देखने के लिये जागता रहता?

इस समय यह महावस्तु कविता कहां पाई जायगी? महा कवि का काव्य आलेख्य ही उसे दिखायेगा। संसार की प्रकृति के भाव को देख कर जिस महादर्शक कवि की सृष्टि हुई है उस का विचार क-रते ही विस्मित होकर अपने को भूल जाना होता है; और हृदय के आवेग से यह कहना पड़ता है कि हे कवि! तुम कहां हो? हे प्रकृ-ति! तुम क्या हो? हे कवि! तुम क्या हो? प्रकृत साहित्यकार उस सत्य और कविता का प्रचार कर के कृतार्थ और धन्य हुए हैं और उसी सत्य के प्रकाश से मनुष्यभाव को शिक्षा देकर मैं भी अप-ने को धन्य मानूंगी।

कहा जाता है कि कईबार सधारण मनुष्य के न जाने योग्य मार्ग में महा कवि की विशाल बुद्धि चली जाती है। उस से समाज को क्या लाभ है? यदि लाभ है तो क्या है? वह बुद्धि की छटा मर्त्य-लोक को छोड़ कर अनन्त आकाश में लीन होजाती है, हो जाने दो; माया के मन्त्ररूपी स्वप्न के राज्य में विराजमान हो कर अपने को भूल जाती है, भूल जाने दो; कल्पना के रथ पर चढ़कर अनेक देश देशान्तरों में विचरण करती है, करने दो; क्योंकि उसी से उस बुद्धि की भली भांति स्फूर्ति होती है; क्योंकि वह बुद्धि फिर मनुष्य सं-

माज में ही लौट कर आती है । उषाकाल के मनोहर प्रकाश में जो पक्षी अपने २ घोंसलों को छोड़ अनन्त आकाश में जाकर सांसारिक जनों की दृष्टि में नहीं आते सायंकाल की स्निग्ध और मधुर छाया में उन्हें भी नीचे उतरना पड़ता है । पाठक गण, कविता को भी ठीक इसी प्रकार जानो । यह काव्य कभी मनुष्यों के नेत्रों से अगोचर आकाश मार्ग में गमन कर जाता है; परन्तु यह चाहै जितने ऊंचे पर भ्रमण करै इस का मूल तुम्हारे और हमारे हृदय में स्थापित होता जाता है ।

इस कारण काव्य ही साधारण मनुष्यों की बुद्धि और चिन्ता से दूर है यों निराशा के नेत्रों से उसे न निहारो । काव्य केवल इस लोक अथवा इस जीवन से नहीं है । यदि ऐसा होता तो उस के रूप में भेद होता ; यह कितनी ही उन्नति को प्राप्त हो जाय परन्तु यह काव्य तुम को और हम को भूलने वाला नहीं; और भूल भी नहीं सकता; कारण कि तुम्हारे हमारे इस तुच्छ हृदय पट पर विशाल संसार का महादर्श दिखानाही उस का लक्ष्य है । इसी कारण काव्य क्षुद्र स्थान में नहीं रह सकता; देशकाल और पात्र की विशेषता से भी उस की तृप्ति नहीं होती । कवि आवश्यक समझ कर दण्ड और पुरस्कार को लेता है, परन्तु वह भी परम संतोष और अति विचक्षणता के साथ; अत एव कवि ही उस समय समाज के नेता हुए । औरों की अपेक्षा अल्प परिश्रम से ही उन्होंने अपना अभीष्ट सिद्ध किया क्योंकि समाज के ऊपर तथा मनुष्यों के हृदय के ऊपर उनका प्रभाव सब से अधिक है । यों ही सत्काव्य के पाठ से जिस भांति समाज का कल्याण होता है, उसी भांति असत्काव्य के पाठ से समाज का अमङ्गल होता है । इस से कवि को बड़ी सावधानी से चलना पड़ता है । उस का दायित्व बड़ा भारी है । देश के राजा तो आदर्श

राज्य में राज करते हैं; और कवि मन के भीतरी राज्य में राज्य करते हैं। जो कवि अथवा साहित्यकार इस बड़े भारी दायित्व और कर्तव्य को भूल कर कुमार्ग में चलते हैं वह देश के शत्रु, समाज के शत्रु और सम्पूर्ण मनुष्य जाति के शत्रु हैं।

यहां पर बहुत व्याख्या करने का प्रयोजन नहीं है; हमें केवल इतना ही कहना है कि जो मनुष्य लोक—शिक्षक के पद पर स्थित हो कर क्षुद्र स्वार्थ के अनुरोध से अपने कर्त्तव्य और दायित्व को भूल जाते हैं वे देश का उपकार करने के बदले उसका अपकार करते हैं। अतः इनका अस्तित्व साहित्य संसार में अधिक दिन तक नहीं रह सकता। सम सामयिक पत्र-सम्पादक की कीर्त्ति वा अपकीर्त्ति पाकर शीघ्र ही अनन्तकाल के बबूले में लीन हो जायंगे; यह निश्चय है। पहले एक स्थान में कह आये हैं, कि "संसार के हृदय में जो बातें छिप रही हैं, उस हृदय की भाषा को उल्लेख करने के लिये ही कवि ने जन्म लिया है।" संसार के हृदय में क्या छिप रहा है? व्यथा, दुःख, ग्लानि, विलाप, मर्मकातरता, यही सब छिपे हैं। क्या इसके विपरीत भावयुक्त सुखकी छवि वहां नहीं है? अवश्य है परन्तु उसकी स्मृति बड़ी अस्पष्ट और बड़ी क्षीण है, उस क्षीण सुख के प्रकाश में दुःख का चित्र और भी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है, और घोररात्रि के समय सघनबन में रस्सी के टुकड़े को सांप के भ्रम से अधिक भयदायक माना जाता है। रोने से ही मनुष्य का जन्म है; रोने से ही मनुष्य का शेष है। इस अनन्त दुःख सागर के किनारे में सुखरूपी जो एक ध्रुव तारा दिखाई देता है, वह उन्हीं भक्त वत्सल भगवान के प्रेम की छाया है। उस छाया का प्रचलित नाम धर्म है; प्रताप शाली कवि अपनी तीक्ष्ण दिव्य दृष्टि के बल से उस छाया के प्रकाश में जीव और जगत् को देखते हैं; और काव्य चित्रपर उसी को

अङ्कित करते हैं। वे देखते हैं कि पुत्र के शोक से आतुर हो माता विलाप कर रही है; उस में कैसा अपूर्व काव्य प्रकाशित होता है! वे देखते हैं कि सती अपने मृतक पति को आगे धरे चुपचाप मौन भाव से बैठी है। उस के मुख पर कैसी गम्भीरयन्त्रणा की छटा झलक रही है। वे देखते हैं कि रात्रि के समय सघन वन के बीच चन्द्रमा की चांदनी के प्रकाश में निराशायुक्त प्रणयिनी एक हाथ से लता पाश को कण्ठ में डाल कर अपने दूसरे हाथ से आंसुओं को पोंछती हुई प्रेममय जीवन का अन्तिम अभिनय कर रही है। वे देखते हैं कि सागर में मिलने की इच्छा से बड़ी तेजी से बहने वाली नदी किस भांति कल२ शब्द करती हुई और अपने मन ही मन में रोती हुई जा रही है। यह देखते हैं कि अकाल में अगणित स्त्री पुरुष जीर्ण शीर्ण और कंगाल होकर धीरे २ मट्टी की देह को मट्टी में मिला रहे हैं, मनुष्य अपने नेत्रों से इन शब को देखते ही रो उठता हैं, फिर वह उस रोने के साथ ही साथ अपनी मर्म कहानी को पूर्ण करता है। लीलमयी प्रकृति चुप चाप इन कठोर खेलों को खेल रही है, कवि इन सब कर्मों के भीतर जाकर अपने दिव्य नेत्रों से इन सब को देखते हुये काव्य और साहित्य में इसी को लिपियद्ध कर के संसार की सहानुभूति के निमित्त चेष्टा करते हैं। इस कारण दुःख ही मनुष्य भाव का विकाश है और इस मनुष्यत्व दुःख से ही साहित्य की उत्पत्ति है। दूसरी ओर देखिये—स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ सुकुमार बालक अमृतमयी अपनी तोतली वाणो से माता की गोद को प्रकाशित कर रहा है, शरदकाल के चन्द्रमा की चांदनी अपनी ज्योति से आकाश में व्याप्त होकर अमृत की वर्षा करती हुई चलरही है; नवीन दम्पति प्रसन्न मुख से एक दूसरे की ओर एकटक लोचन से निहारते अपने मन में कितनी आशा की गढ़न्त गढ़ रहे हैं!

कैसे सुख का दृश्य है! कौन कहता है कि संसार दुःखमय है? परन्तु हाय! यह मुहूर्त्त का अभिनय मुहूर्त्त में ही शेष हो जाता है! अकस्मात् आकाश मेघों से परिपूर्ण होगया; देखो! सहसा मूशलधार वर्षा होने लगी; काली आंधी के भयंकर अंधकार ने पृथ्वी और आकाश को एक कर दिया। घड़ी २ में बिजली चमकने लगी,—हाय! क्या होगया; देखते २ चारों दिशाओं को कंपित करते हुए वज्र के समान आकाश से ओले गिरने लगे; जिस सुशोभित कमरे में सुन्दर पलङ्ग पर बैठे हुए अभी थोड़ी देर पहले हमारे नवीन दम्पति स्वप्न की समान अपनी आशा से मोहित हो संसार में इन्द्र के नन्दन-वन की शोभा को देख रहे थे; हाय! उसी नंदन वन का एक फल खिलकर वज्ररूपी ओले से छिन्न भिन्न होकर झुलस गया। इस ओर वही सुकुमार बालक अपनी माता का आंचल पकड़े हुए आंगन में ठुमक २ चाल से इधर उधर चल रहा था; कि इतने ही में वर्षा और आंधी के तूफान को देख माता सुकुमार बच्चे को गोद में लेकर कोठरी में जा बैठी; परन्तु मूशलधार वर्षा ने वज्र के समान बड़े २ ओलों की सहायता से उस कोठरी की छत्त का गेरना प्रारम्भ किया; अचानक उस कोठे की एक कड़ी ने गिरते ही माता की गोद में बैठे हुए उस बालक के कपाल को भेद कर माता के देखते २ ही उस के जीवन-सर्वस्व अमूल्य निधि बालक को संसार से उठा दिया! अभागिनी माता यह दृश्य देख कर विलाप करने लगी कि इतने ही में दूसरी कड़ीने गिर कर माता को भी यमालय पहुंचा दिया। क्या विचित्र छायाचित्र है!

कवि कहता है—कि देखो! दुःख के चित्र को अंकित कर के कहता हूं कि तुम उस का तिरस्कार करो, परन्तु असीम सुख कहां पर है, इस बात को विचार देखो। "सुख" कहकर मनुष्य जिस

को ग्रहण करते हैं वास्तव में वह सुख नहीं है। वह तो दुःख का ही एक मात्र स्थान है, सुख पानेकी आशा से लोक में सुख का अभिनय तो केवल नाम मात्र है; यथार्थ सुख नहीं पाया जाता; प्रकृत सुख संसार में नहीं है, यदि है तो केवल भगवान् की भक्ति में और "अहंता" अर्थात् " मैं हूं " इस के छोड़ने में ही है। इस अहंता के त्याग देने में ही मनुष्यत्व है। मैं दुःख का चित्र दिखाकर मनुष्य भाव का प्रचार करता हूं।

देखो! पुष्पों में कीड़े हैं, कमल में कांटे हैं चन्द्रमा में कलङ्क है; प्रेम में वियोग है, और जीवन में मृत्यु है। इस बात को जान कर बताओ तो सही तुम को संसार में सुख की आशा कहां है?

पाठक गण! एक हिसाब से तो यह सब निराशा काव्य की बात रही। "जगत् दुःखमय है, जगत् में अटल सुख नहीं है—माया नहीं है। ममता नहीं है, दया नहीं है। विचार नहीं है। हमने तो केवल दुःख ही भोगने के लिये जन्म लिया है, जब तक-जीवित हैं तब तक दुःख ही भोगेंगे, इस के पीछे रोते हुए चिरकाल के लिये हमें विदा लेनी होगी। कहां जांय-किस से कहैं? यदि संसार के भीतर ही रहैं तो वहां भी दुःख ही दुःख है; इसी कारण तो कहा जाता है कि ऐसी निराशा की वाणी जिस काव्य का प्राण है वह निराशा काव्य है। मैं यह नहीं कह सकता कि इन काव्यकारों ने जो कुछ कहा है वह ठीक नहीं है। मेरा केवल विरोध यही है कि वह एक ही ओर को देख कर सृष्टि के रहस्य को समझते हैं। मनुष्य वास्तव में अवस्था और घटना के दास हैं; प्रतिकूल घटना का सोता मनुष्य को बहाता हुआ लिये जाता हो, यदि कोई उस अवस्था में सहानुभूति प्रकाश कर धीरज दे तो मनुष्यों का हृदय उसी ओर को भली भांति से आकर्षित हो जायगा। परन्तु निराशा

के काव्य में बहुधा ऐसा नहीं होता; इसी कारण इस श्रेणी के काव्य में संसार के मङ्गल की अपेक्षा अमङ्गल की आशङ्का कुछ अधिक है; क्योंकि नियमित प्रतिकूल घटना के जाल में पड़ कर मनुष्य के उन्मत्त हो जाने की संभावना है ; तब श्रेष्ठ मार्ग में न जाकर ईश्वर में अविश्वास करता हुआ मनुष्य या तो आत्मघाती होता है, नहीं तो जीवन्मृत होकर इस संसार क्षेत्र में नाना प्रकार के क्लेशों को भोगता हुआ अपने जीवन को बिताता है। परन्तु सुख का विषय है कि जातीय काव्य का मूल उपादान ऐसा नहीं है; अतएव हम निराशा के काव्य में बिना एक सुख का चित्र दिखाये शान्त नहीं रह-सकते। यह हमारी अस्थि और मज्जा के साथ मिल गया है। जिस भांति तरङ्गों के उठने से सफेद फेन की राशि उत्पन्न होती है; जिस भांति मेघों के संघर्षण से बिजली उत्पन्न होती है उसी भांति अनेक प्रकार के दुःखों की अशान्ति के बीच में सुख की उत्पत्ति होती है। हमें कभी भगवान् में अविश्वास नहीं हो सकता। हमारा अटल विश्वास है कि जीवन सदा दुःख ही के साथ नहीं बीतता है; जीवन की मर्म व्यथा, करुणामय आंसुओं की धारा, उस शक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द भगवान् के चरण कमलों में अवश्यमेव स्थान पाती है। और उसके द्वारा दुर्दिन के उपरान्त हमारे सुदिन-रूपी सुख का विकाश अवश्य होता है।

यह आशा की बात केवल धीरज देने के लिये ही नहीं है; वरन हमारे धार्मिकजन सांसारिक सुख दुःख को समान भोगते हैं। धार्मिकजन सम्पूर्ण कर्मों के भीतर भी स्पष्ट अनुभव में आने वाले समय को ताकते ही रहते हैं। इसी कारण हमारे काव्य में, हमारे साहित्य में संसार की सार बात का विचार होता है; अन्य देश के काव्य कितनी ही उन्नति क्यों न प्राप्त करलेवें हमारे आदर्श

से केवल नाम मात्र के लिए ही आगे बढ़े हुए हैं। हम लोग निराशा काव्य के प्रेम में इतने लीन होगये हैं कि उस के कारण इस समय हम आस्था—हीन हो, हृदय के भाव को क्रमानुसार खो बैठे हैं; यह केवल इसी का फल है कि हम लोग आत्म—प्रिय आत्म—सुख की खोज करने वाले होकर भी उस के सुख के स्वाद को नहीं पाते; और इसी कारण कातर स्वर से हाहाकार करते हुए मृत्यु को बुला रहे हैं; इस से एक प्रकार आत्मघाती होते जाते हैं।

सुख आत्म प्रतिष्ठा में नहीं है,—आत्म विसर्जन में है; यह प्राचीन कहावत है, परन्तु पाठकगण! आज भी इस के सीखने के विषय को छोड़ हम इस समय इस जीवन के सुख से इतने अंधे हो रहे हैं, कि बहुत समय तक विचारने पर भी सुख की मात्रा को ठीक नियत नहीं करसके। काव्य का ऊंचा आदर्श इसी कारण से तो नीचा होगया है। मनुष्य भाव में भी मनुष्य इसी कारण हीन प्रभा वाले होगये हैं। उसी से तो इस समय इस देश में निराशा काव्य का आदर भी क्रमशः बढ़ता जाता है। यह बात सत्य है कि आर्य साहित्यकारों ने विविध प्रकार के दुःख का चित्र अंकित किया है; परन्तु उस के भीतर ही सुख के एक असीम सौन्दर्य का विकाश कर धर्म का महात्म्य दिखाया है। यह हिन्दू साहित्य के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता; आशा की मोहनी मूर्त्ति दिखाने वाले प्रारब्ध और पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वास रखने वाली कोई दूसरी जाति देखने में नहीं आती। हिन्दुओं का सर्वस्व और हिन्दू जाति का धर्म भी यही है। इसी धर्म भाव के अनुसार चलने से हिन्दुओं को साहित्य और मनुष्यत्व प्राप्त हो सकता है। अन्य देश की बात को जाने दो, हमारा भारतवर्ष यदि उन्नति करना चाहे तो इसी धर्म के भाव से अपनी उन्नति कर सकता है; और पहले भी इसी धर्म के भाव से उन्न-

ति के शिखर पर पहुँचा था; यदि इस धर्म भाव का पुनः उद्धार क-रना चाहो तो साहित्य और मनुष्यत्व के भीतर इसी धर्म भाव की उन्नति करो; क्योंकि इस मार्ग का अनुगामी होना ही श्रेष्ठ है।

तभी तो कहती हूं कि रोना ही अच्छा है क्योंकि हृदय के शोक सन्ताप रोने से बहुधा धुल जाते हैं, करुणा ही संसार का जीवन है, करुणारस ही कवि का सर्वस्व है। इसी से तो वह देखो आदि कवि महा कवि के मुख से निकले हुए करुणा रस से पूर्ण "मा निषाद प्रतिष्ठां" इत्यादि वही आदि श्लोक। महा कवि दि-व्य नेत्रों से मूर्त्तिमती करुणा को देख कर, चराचर विश्व के रोने के सुर को भली भांति से सुन हृदय के पूर्ण आवेग से सब से प्र-थम रोने लगे और उस के पीछे उसी सुर में उनने अपूर्व रामच-रित को लिख कर संसार को मंत्र से मोहित किया।

देखो! माता के गर्भ से पृथिवी पर आने के समय जीवन के उस प्रथम मुहूर्त्त का वही प्रथम रोना है, और जीवन के अन्त में विदा के समय में भी वही शेष रोना है। जरा विचार कर देखो कि मध्यम अवस्था की घटना कैसी २ विचित्र हुई हैं! वही एक रोने का सुर जीवन की आदि में और वही जीवन के अन्त में है! देखो, जरा विचारने का स्थान है कि उसी रोने के सुर ने तुम्हारे जी-वन में व्याप्त होकर तुम्हारे हृदय के ऊपर कैसा प्रबल अधिकार प्राप्त किया है।

अब दूसरी ओर देखो; जिस हँसी से अमृतकी वर्षा होती है, जिस मधुर हास्य को देख कर स्वर्ग का बोध होता है, जिस हँसी से असीम शुद्ध, शान्त और पवित्र हृदय में ज्योति का प्रकाश होता है; भगवद्भक्त परम प्रेमिक जिस हंसी के गुण से उस रस-राज श्री रास शेखर सच्चिदानन्द की अपूर्व लीला को हृदयंगम करके मोहित होते हैं, जीवन्मुक्त पुरुष जिस हंसी को देख कर अखिल

ब्रह्माण्ड को एक माया का खेल विचार आनंद सहित जीवन व्यतीत करते हैं; वह स्वर्गीय आशक्ति हीन हास्य भी क्या इस कविता को उत्पन्न नहीं करता है ? परन्तु इस हंसी से कौन हंसते हैं ? वास्तव में कवि ही मनुष्य प्रकृति के भीतर जाकर उस के हृदय की व्यथा और मानसिक बात को प्रकाश करते हैं, और साथ ही साथ अपनी चतुरता से हंसी की किरणें फैला कर उस के प्रति मनुष्य के हृदय को आकर्षण करते हैं । अतएव कवि का कार्य्य बड़ा प्रशंसनीय है । क्या विज्ञान के प्रकाश में कविता का लोप हो जायगा ? इस बात को मन में भी स्थान न देना । यह अनन्त जीव जन्तु परिपूरित संसार, यह असंख्य नद, नदी, सागर, पर्वत, बन, जल और स्थल, यह चन्द्रमा सूर्य और तारागणों से पूर्ण आकाश, अपूर्व शोभा की भांडार दिगन्त व्यापिनी धान्य युक्ता पृथिवी, और यह निखिल ब्रह्मांड, जबतक स्थित रहेगा, तबतक कविता भी पृथ्वी पर स्थित रहेगी । इसे भी जाने दो, पाठक गण ! एक बार तुम अनन्त अभ्यन्तर जगत् की ओर दृष्टि उठा कर देखो कि तुम्हारा स्नेह, प्रेम, अथवा शोक विरह, मर्म कातरता, तुम्हारा धर्म, और तुम्हारा मनुष्य भाव सदा है फिर कैसे तुम कविता के हाथ से छुटकारा पाओगे ? याद रखना, आकाश में स्थित चन्द्रमा और माता की गोद में बालक चिर काल तक पृथिवी को अपने मधुर हास्य से हास्यमयी करेंगे; उस हास्य के उपभोग को क्या विज्ञानी मनुष्य मन से भूल सकते हैं ? जिस से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है, जिस से बढ़कर कोई शोक नहीं है-उस परार्थ में आत्मोत्सर्ग और शोक से आतुर हुई माता का मर्म भेदी रोना क्या किसी समय मनुष्यों की सहानुभूति की प्राप्ति से वंचित रहेगा ? ऐसा नहीं हो सकता । विज्ञान की शक्ति असीम है । परन्तु कविता उससे भी बलवती है ।

यही परोपकार की प्रवृत्ति है, और पुत्र शोकादिक की अवधि को भुला देती है। वास्तव में सजीव भाव ही कविता है। विचार देखो कि विज्ञान जड़ जगत् के ऊपर अपना अधिकार करता है, परन्तु मनुष्यों के हृदय की कोमलता और कठोरता पर उस का अधिकार कितना है; यहां कविता ही को जय मिला, क्योंकि मनुष्य की आत्मा का मूल सूत्र कविता में ही बंध रहा है; इस कविता का दूसरा नाम धर्म है, धर्म से ही पुत्र शोक भूला जा सकता है; परोपकार के लिये भी उत्साह हो सकता है। विज्ञान तो इस शक्ति का विचार करने में भी असमर्थ है।

ऐसी अवस्था में इस भावमयी पृथ्वी में निवास करके, कभी महत्व के ऊंचे शिखर पर चढ़ कर और कभी अवस्था के अधीन हो, अवनति के गड्ढे में गिर कर, भावमयी कविता के अस्तित्व लोप हो जाने की कल्पना भी हम नहीं कर सकते। तुम्हारा समाज, व्यवहार; अर्थनीति, शिल्प, वाणिज्य, व्यवसाय इत्यादि अनेक बातें हैं परन्तु पाठकगण। कविता के विना सब से आगे कौन तुम्हें मनुष्य करैगा? कौन तुम्हें दया, धर्म और कर्त्तव्य कर्म का मार्ग दिखावेगा? और कौन तुम्हें वास्तव में पुरुष सिंह के योग्य महान् कार्य्य में उत्साह और उत्तेजना देने को आगे बढ़ेगा? पहले जब तक हम मनुष्यभाव को न प्राप्त हो जावें तब तक तुम्हारा समाज, व्यवहार, शिल्प, वाणिज्य, व्यवसाय, किस भांति से ठीक चल सकता है? भ्रातृगण! इसी कारण कहा जाता है कि हमें प्रकृत कविता की पूजा करके उस के गौरव से गौरवान्वित होना होगा। छंदोमय, सुर, लय, गान इत्यादि कविता की ओर न झुको; तुम्हें अपने मनही मनमें उस विश्वेश्वर के विशाल कार्य्य दृश्यमान इस अनन्त विश्व की महिमा का कविता के

रूप में ध्यान करना होगा, नहीं तो तुम मनुष्य भाव नहीं प्राप्त कर सकते; फिर देव भाव की प्राप्ति की बात तो दूर रही।

परन्तु भली भांति विचार कर देखने से जाना जाता है कि विज्ञान और काव्य के मूल में विशेष कुछ विरोध नहीं है, हमने स्थूल भाव से जो कुछ देखा उसी को समझना मानो एक दूसरे की सीमा से बाहर है। कविजन केवल आदर्श लेते हैं और वैज्ञानिक जड़ पदार्थों को लेकर ही अपना जीवन बिताते हैं; यह बात भी ठीक नहीं है। प्रकृत वैज्ञानिक भी कभी कवि है, तभी उन के काव्य का भाव कुछ छिपा रहता है। उन में अधिकतर भेद नहीं; जड़ जगत् को लेकर ही वह धीरे धीरे साधन मार्ग में आगे बढ़ते हैं केवल इतना ही भेद है।

परन्तु काव्य का ऊंचा आदर्श निरन्तर मनुष्य को पुकार कर कहता है,—"आओ! तुम थके हुए पथिक हो! जीवन के इस अनन्त मार्ग में अनन्त सुख दुःख तुमको कितने खेल खिला रहे हैं; आओ आओ! देखो तुम्हारे लिये यह अमूल्य उपहार रक्खा है! तुम क्या संसार के तुच्छ सुख दुःखों से अपनी आत्मा को तृप्त कर सकते हो? यह देखो, अनन्त दुःख तुम्हारे लिये रक्खे हैं! और अनन्त सुख भी तुम्हारे लिये धरे हैं। अनन्तकाल के लिये यह अनन्त जीवन तुमने पाया है। अनन्त सुख दुःख के अतिरिक्त क्या तुम तृप्त हो सकते हो? इस दुःख को देख कर भयभीत न होना, इस सुख को देख कर चंचल भी न होना; अपने भेद और अभेद को छोड़ कर कार्य्य क्षेत्र में आगे बढ़ो। ईश्वर में भक्ति, मनुष्य में प्रीति, हृदय में शान्ति, इन तीनों को मिलाकर तुम्हारे जीवन को सार्थक करो, तब तुम प्रकृत मनुष्यत्व के अधिकारी होगे!"

इस भाव से जो साहित्य का विचार करते हैं वही प्रकृत कवि हैं। उन की सृष्टि इस विश्व संसार की सृष्टि का दूसरा अंश है। संसार के हृदय में जो बातें छिप रही हैं हृदय की भाषा में उसको प्रकाश कर के कविजन स्वयं भी कृतार्थ होते और संसार को भी कृतार्थ करते हैं। इस कारण कवि ही यथार्थ लोकशिक्षक है, और कविता का अनुशीलन ही मनुष्यों का स्वाभाविक धर्म है।

इसी प्रकार **साहित्य में मनुष्यत्व का विकाश है और मनुष्यत्व में साहित्य की स्फूर्ति है**। मनुष्य जबतक मनुष्यभाव में रहेंगे तबतक अवश्य ही साहित्य का आदर करेंगे, और साहित्य के गौरव से स्वयं भी गौरववान होंगे *।

सुभद्रा देवी।
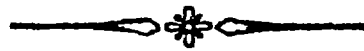
बौद्ध जातक ग्रन्थ। †

बौद्धधर्म बहुत प्राचीन है। इस धर्म का उल्लेख वाल्मीकिरामायण के अयोध्या काण्ड में भी उपलब्ध होता है; यथा—

'यथा हि चौरः स तथा हि बुद्धः
तथा गतं नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां
न नास्तिके नाभिमुखो बधः स्यात्॥'

---

* श्रीमती लेखिका ने यह नहीं लिखा कि यह लेख किस बंगला लेख का अनुवाद है। (समा० सम्पा०)

† डाक्टर रामदास सेन कृत "ऐतिहासिक रहस्य" के आधार पर लिखित।

इसके सिवाय वायुपुराण, कल्किपुराण आदि में भी बौद्धधर्म एवं बुद्धावतार का लेख प्राप्त होता है, इससे इस धर्म का प्राचीनत्व सिद्ध होता है। बौद्धधर्म हमारे वैदिकधर्मानुसार नास्तिक धर्मों में गिना जाता है। खृस्ताब्द पूर्व छठी शताब्दी में अन्तिम बुद्ध शाक्यसिंह का प्रादुर्भाव हुआ था। इन का जन्म अवतारों में गिना जाता है। इन के पूर्व भी कई बुद्ध उत्पन्न होचुके थे। पर शाक्यसिंह के प्रादुर्भाव के बाद इस धर्म का अधिक प्रभाव भारतीय आर्यगणों पर पड़ा; यहां तक कि उस समय अधिकांश मनुष्य बौद्ध धर्मानुयायी हो गये थे। उक्त अवतार मूर्त्ति के बाद बौद्धधर्म के बड़े प्रबल २ ग्रंथ बने और उन का प्रचार हुआ। जिन में से कई आजतक उपलब्ध होते हैं। उसके धर्म ग्रन्थों में एक "जातक" नाम से प्रसिद्ध भी धर्म ग्रन्थ है,-जिस के विषय में आज लेख लिखने का विचार है।

खुद्दकनिकेय नामक ग्रन्थ का दृशमभाग "जातकं" नाम से प्रसिद्ध है। बौद्ध लोग कहते हैं "पञ्चासमधिकानि पञ्चाश जातका शतानि" अर्थात् ५५० शत जातक हैं। ये सब ग्रन्थ आद्योपान्त पालि भाषा में लिखित हैं; और इन की टीकाएं सिंहलीय भाषा में बनी हैं। कोई २ अनुमान करते हैं कि, ये टीकाएं अशोक पुत्र महेन्द्र ने खृस्ताब्द के ३०० वर्ष पूर्व बनाई हैं। बौद्धशास्त्र प्रवीण बुद्धघोष नामक मगध देश के ब्राह्मण ने ५०० खृस्ताब्द में जातक ग्रन्थों के किसी २ अंश की अवतरणिका लिखकर प्रकाश की थीं। इन सब जातक ग्रन्थों में बुद्ध के पूर्वजन्म का विवरण और अनेक उपदेश पूर्ण कहानियां निबद्ध हैं। बौद्ध लोग कहते हैं कि जातक ग्रन्थ शाक्यसिंह के मुख से निकले हैं इसीलिये ये सब धर्म ग्रन्थ कहे जाते हैं। सब जातकों में बुद्ध की अलौकिक शक्ति और

गुणावली का वर्णन है। यथा-"देवदत्तानि आत्म भाषितानि सब्बा-नि जातकानि"। हम आज "दशरथ जातक" के विवरण का अनु-वाद देते हैं। इससे बौद्ध गणों ने श्री रामचरित्र कैसा वर्णन किया है पाठक गण उस को समझ सकेंगे।

एक बौद्ध धर्मावलम्बी मनुष्य पितृ-वियोग-दुःख से नितान्त अ-धीर और दुःखित था। उस के शोक संतप्त हृदय को शीतल करने के लिये बुद्धदेवने कहानी के बहाने से उस को यों उपदेश दिया—

पूर्व समय में वाराणसी में दशरथ नामक बड़े पराक्रमी राजा रहते थे। उन्होंने बहुत दिन तक सांसारिक वृथा आमोद में काल व्यतीत किया और अन्त में न्यायशील होकर राज्य कार्य करने में प्रवृत्त हुए। उन के सोलह हज़ार स्त्रियां थी। उन सब में प्रधान पत्नी के गर्भ से दो पुत्र और एक कन्या ने जन्म लिया इन में ज्येष्ठ पुत्र का नाम राम और छोटे का लक्ष्मण, एवं कन्या का नाम सीता हुआ। * कुछ दिनों के बाद रानी के शान्त हो जाने से राजा अतिशय दुः-खित हुए। सभासद्गणों के शान्ति देने से राजा प्रबुद्ध हुए और पुनः विवाह कर के उस रानी को मृत रानी के स्थान में अभिषिक्त किया। उस के एक पुत्र हुआ, उसका नाम भरत हुआ। राजा ने पुत्र मुख को देखकर, अति आनन्दित चित्त से रानी को, अपने अभिल-षित विषय के लिए प्रार्थना करने को आज्ञा दी। रानी ने उसका

---

* अथ वाराणस्याम् दशरथ महाराज नाम अगाति गमनम् प्र-हाय धम्मेन राज्यमकारेसि। तस्य षोलसन्त-मईखि सहस्समनम् जेट्ठिका अगमहेषिद्वपूत्त एकन सधितरम विजायि। ज्येठ्ठ पुत्तो राम पण्डितो अहोषि। दूतीय लक्षन कुमारो, भिता सीता देवी नाम॥' इत्यादि।

कुछ भी उत्तर न देकर चुप साधी। बाद में जब भरत आठ वर्ष के हुए तब रानी ने राजा से कहा। "आपने जो मेरे मनोरथ को पूर्ण करने का अभिप्राय प्रकाशित किया, आज उस के सफल होने की आज्ञा होनी चाहिए।" इस को सुनकर राजा ने प्रसन्न मुख से रानी को अभिलषित कहने के लिए आज्ञा दी। रानी ने कहा "महाराज! राज पुत्र भरत को अपना राज्य दे दीजिए।" राजा ने इस वाक्य को सुनकर क्रोध से उन्मत्त हो कर कहा "पापीयसि! मेरे दो पुत्र अग्नि के समान कान्तिधारी हैं, उन का नाश कर के तू अपने पुत्र के लिए राज्य लाभ की आशा करती है?" राजा की क्रोधाग्नि प्रज्वलित देखकर रानी डर कर अन्तःपुर को चली गई, किन्तु तो भी उस की आशा निवृत्त नहीं हुई। वह कुछ देर के बाद फिर आकर राजा से अपना अभिलाष प्रकट करने से कुछ भी संकुचित नहीं हुई। राजा ने यह सब सुनकर विचार किया कि स्त्रियां कभी नहीं कृतज्ञ होतीं, उन के द्वारा नानाविध आपत्तियों का होना सम्भव है। सुतरां यह मेरी पत्नी गुप्त रूप से उपद्रव रचकर राम, लक्ष्मण के प्राण विसर्जन पूर्वक अपना कार्य्य सिद्ध कर सकती है। इस प्रकार चिन्ता कर के दोनों पुत्रों को अपने पास बुलाकर उनको विपत्ति का विषय जना कर कहा, 'हे कुमारद्वय! तुम्हारे यहां रहने से तुम लोगों पर विपत्ति की आशङ्का है। इसलिए हमारे मृत्युकाल पर्य्यन्त तुम लोग किसी नगर किंवा अरण्य में वास करो। फिर हमारे मरने पर राज्याधिकार के लिए यत्नवान होना। यों कह कर राजा ने ज्योतिषी को बुलाकर अपने मृत्युकाल का निर्णय कराया। आयु बारह वर्ष और सिद्ध हुई। यों दोनों कुमारों को इस काल के अन्त में अपने राज्याधिकार के लिए आज्ञा दी। उन कुमारों ने सजल नेत्रोंसे पितृ आज्ञा पालन के लिए पितृचरण वन्दना कर के

वहाँ से प्रस्थान किया। राजकुमारी सीता भी पिता के पास से विदा होकर दोनों भाइयों की सङ्गिनी हुई। वाद वे तीनों हिमालय के सन्निकट जाकर कुटी वना कर फल मूल आहार कर के जीवन वि-ताने लगे। सीता और लक्ष्मण सर्वदा फल, कन्द बटोर कर रामच-न्द्र को दिया करते थे।

इधर इन लोगों के वन जाने के नव वर्ष व्यतीत होते ही राजा दशरथ की पुत्रशोक से मृत्यु हुई। भरत पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त कर के सिंहासनारूढ़ होने की चेष्टा करने लगे। किन्तु म-न्त्रिगण ने राम के जीवित रहते भरत का राज्याधिकारी होना उ-चित न समझ कर भरत को अनेक राज्याडम्वरोंके सहित राम के बुलाने के लिए वन को भेजा। पर्णकुटी के मध्य में राम के साथ उनका मेल हुआ। भरत ने देखा शान्तमूर्त्ति राम सुख से रहते हैं। फिर भरत ने बड़ी भक्ति के साथ प्रणामादि पूर्वक पिता के मृत्यु का हाल कहा। राम पितृवियोग संवाद को सुनकर गम्भीरभाव से रहे, उन ने कुछ भी शोक नहीं किया। भरत शोक में विह्वल हुए, उसी समय फलादि लेकर कुमार लक्ष्मण और सीता का आगमन हुआ। राम ने शोचा कि लक्ष्मण और सीता पिता के मृत्यु संवाद को सुन कर शोक नहीं रोक सकैंगे, दोनों व्याकुल हो जांयगे। इसलिए उन को सामने जो नदी वह रही थी उस में जाने के लिए आज्ञा दी और कहा कि आज तुम ने आने में कुछ देरी की इसलिए तुम्हें यह दण्ड दिया है। उस के वाद यह कवितार्द्ध कहा—

‘ ईथ लक्ष्मण सीतास ऊभ ऊतरथो दकानति ’

इस कवितार्द्ध को सुनकर लक्ष्मण और सीता दोनों ने जल में स्नान किया, उस के वाद राम ने उत्तरार्ध को पढ़ा। यथा—

“ ईवं भरतो आह राजा दशरथो मतोति। ”

इस कथा से दशरथ की मृत्युवार्त्ता सुनकर दोनों अधीर हुए। राम ने तीन बार इस श्लोक का उच्चारण किया, एवं उसके सुनने से लक्ष्मण और सीता तीनों वार ज्ञानशून्य हुए। भरत के राजकर्मचारियों ने दोनों को अधीर रोदन करते देख जल से बाहर निकाला। भरत ने रामचन्द्र को शोक संतप्त न देख कर बड़े विनय के साथ उसके कारण की जिज्ञासा की। विचारशील रामचन्द्र ने उत्तर दिया कि संसार के युवा, वृद्ध, ज्ञानी, अज्ञानी, धनी, दरिद्र सभी मृत्युके अधीन हैं। यथा—

"दहरा सहि बुद्ध सई बलई स पण्डित
अ स ईव दालिद्द से सब्बे मासू परायन"

जिस प्रकार पक्व फल शीघ्र भूमि में जा पड़ता है उसी प्रकार जीव मात्र ही सर्वदा मृत्युमुख में पड़ते हैं, इससे अधिक आश्चर्य क्या है ? यथा—

"फलनम् ईव पक्ननम्, निस्सम् पपातन् भयम्।
ईवम् यातानम्, निस्सम् मरणतो भयम् ॥"

निर्बोध मनुष्य संसार में केवल परिताप करके क्लेश को सहते हैं उससे अपना कुछ भला नहीं होता दीखता एवं मृतव्यक्ति भी पुनः नहीं लौट आता। मनुष्य एकाकी संसार में प्रवेश करता है एवं अकेला ही गमन भी करता है। संसार में सब पदार्थ क्षणभङ्गुर हैं उसके लिए शोकाकुल होना ज्ञानिमात्र का कर्त्तव्य नहीं है। राम के मुख से इस प्रकार ज्ञान गर्भ उपदेश पाकर सभी ने विलाप करना छोड़ा। भरत ने राम को वाराणसी चल कर पिता के शून्य सिंहासन पर बैठने के लिए कहा, उसके उत्तर में,राम ने कहा, भाई ! पिता ने हम को द्वादश वर्ष के बाद वाराणसी से लौटने की

आज्ञा दी थी, इस समय केवल नव वर्ष व्यतीत हुए हैं, इस समय गृहस्थाश्रम में जाने से पितृ आज्ञा का उल्लङ्घन करना होता है, इसलिए तुम, लक्ष्मण और सीता के साथ वाराणसी को जाओ और तीन वर्ष तक हमारी इस तृणनिर्मित पादुका को सिंहासन पर स्थापित करके हमारे सदृश होकर राज्यशासन करना। इस बात को सुन कर भरत, लक्ष्मण और सीता एवं साथी लोग उस तृणरचित पादुका को लेकर वाराणसी पहुंचे और उसको कथनानुसार सिंहासन पर रख कर, भरत स्वयं प्रतिनिधि स्वरूप होकर राज्यशासन करने लगे। इधर रामचन्द्र तीनवर्ष के बाद वाराणसी आए और उनने सीता के साथ विवाह किया। प्रजा ने और मन्त्रिगण ने महासमारोह के साथ नवदम्पती को सिंहासनारूढ किया। * इस कम्बुग्रीव महाबल पराक्रमी राम ने १६००० वर्ष राज्य करके परलोक को गमन किया। यथा—

दशवर्षस सहस्सानि षट्ठीवर्षष शतानि च।
कम्बुग्रीव महाबाहु रामे राज्यं अकारोति॥

पाठकगण! देखिये बौद्धों के हाथ से रामायण की कैसी घृणित दुर्दशा हुई है। इस दशरथ जातक में लिखा है "तदा दशरथ महाराजा सुद्धोदन महाराज, अहोसि, मता महामाया, सीता राहुल माता, भरतो आनन्दो, लक्ष्णो सारिपुत्तो, परिषा-बुद्ध परिषा, राम पण्डितो अहम् एव" इति (दशरथ जातक)। अर्थात् उस समय, दशरथ महाराज शुद्धोदन महाराज, राम माता महामाया, सीता राहुल की माता, भरत आनन्द, लक्ष्मण सारिपुत्र, बने और बुद्ध ने भी सभासद, साथी

* "तेस्सागत भावाम् नट्ट कुमार अमसूसपरिवर्त्तनम् गन्तु सीताम् अगमहेषिम् कत्वउे भिसम् पि अभिषेकम् करिम्सु।"

और मन्त्रिवर्ग के सहित जन्म लिया। एवं सुपण्डित राम के सदृश हमने (बुद्ध) जन्म ग्रहण किया॥

बौद्धों ने इस प्रकार बुद्धि वैभव से रामायण लिखा है। देखिये कितनी भ्रष्ट और असङ्गत अज्ञान कथा है। हेमचन्द्रने जैनरामायण में श्री रामचन्द्र को जैन धर्मावलम्बी लिखा है। परन्तु वह चरित्र दूषित नहीं है। इसप्रकार अश्लील, अज्ञानपूर्ण, दुराग्रह घटित कथा और ग्रन्थों से हमारे यहां का धर्म कर्म भगवान् शङ्कर के आविर्भाव काल के कई शताब्दि पहिले रसातल को पहुंच चुका था, और घोर आन्दोलन का समय वर्त्तमान था। उसी समय के गाढ़ हृदय परिताप से अनेक खण्डन मण्डन ग्रन्थ हमारे यहां बने हैं, जो सर्वथा विमल विज्ञान के प्रकाशक और दुष्टमतोच्छेदक हुए। बस, आज इस लेख की यहीं समाप्ति है। *

गिरिजाप्रशाद द्विवेदी

---

* आज कल के पुरातत्ववेत्ता ब्राह्मण द्वेषी बौद्धों के कथन को अभ्रान्त सत्य मानते हैं। अतएव श्रीयुत विजयचन्द्र मजूमदार ने 'प्रवासी' में वाल्मीकीय रामयण को बौद्ध रामायण की नकल ठहरा कर ईसा की तीसरी शताब्दी में फैंका है। पाठक ही विचारें कि हिन्दुओं को बौद्धों के चरित्र को आदर्श महापुरुष के रंग में रंगने की क्या ज़रूरत पड़ी थी? उन्हें भगिनी—विवाह को आदर्श दाम्पत्य में बदलने की क्या लौ लगी थी? इस के विरुद्ध बौद्धों को, आदर्श चरित्र को कलुषित करने में क्या कुछ स्वार्थ न था? किसी लेख में जैनरामायण, बौद्धरामायण और आर्यरामायण की तुलना करने की इच्छा है (समा० सम्पा०)

अत्र, तत्र, सर्वत्र ।

(१) स्वागत !!!

आ त्वा हार्षमन्तरेभि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥
इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥
इहैव स्तं, मा वियौष्टं, विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ।

(१)

जो जो वेद 'कुटीक[१] की कतरनी से हैं बचे आज लौं;
जो प्राचीन महत्व 'गप्प सब है, से भी बचा आज लौं;
गङ्गा में जल, पम्प वा नहर से, जो है बचा आज लौं;
श्रीमन् ! राजकुमार !! मङ्गल सदा तेरा करैं ये सभी ॥

(२)

सोवे क्षार-समुद्र में हरि सदा; ब्रह्मा बटे शून्य में;
मेरे शङ्कर हैं स्मशान बसते धारे हुए रुद्रता ।
आओ सर्व[२] सुरेश-रूप ! तुम को, स्वारा सदा दुःख से,
जीर्णारण्य, स्मशान, शून्य, कहता हूं, मूक भी, "स्वागतम्!"

---

१ कुटीक—समीक्षक २. सर्वदेवमयोतिथिः

(३)

घूमे थे जब ट्रान्सवाल, अथवा आस्ट्रेलिया, कैनडा,
"हुर्रे रूल वृटानिया" सब कहीं गाया सुना आपने।
मैं भी उत्सव हर्ष में यदि कहूं "वन्दे प्रियां मातरं"
हो जाता वह कर्णशूल कुछ को; हा कष्ट ! कैसे कहूं !!

(४)

प्रिन्सैस् मे ! युवराज जारज ! वही है देश पैरों तले,
सर्वोत्कृष्ट, महत्वयुक्त, जिस की मानी गई सभ्यता;
विद्या फ़ारिस, ग्रीस, चाल्डिक, तथा रोमादिकों ने पढ़ी;
माना है सब ने गुरू गणित का ले काम में "हिन्दसे"॥

(५)

ये वो देश नहीं जहां नृप चढ़े स्वच्छन्दता की बली;
जो आदर्श नृपाल, वे सब यहां पूजे गये विष्णु से।
"राजा हो जगदीश है" यह कभी चार्वाक-सिद्धान्त था;
माना है हमने !! तथापि अभयाशा है नृपों से नहीं !!

(६)

मेरे याद, दिलीप भूपति गये थे जो वनों में कभी,
होती शान्त दवाग्नि तो सब कहीं जल्दी, विना वृष्टि के।
होती थी फल-पुष्प-वृद्धि अधिका, औ' प्राणियों में, वहां,
जो थे दुर्बल जीव, मार उन को सक्ता बली था नहीं॥

(७)

है लोकोक्ति—" बहू ! त्वदीय घर है, छूना नहीं किन्तु" यों
आये हो; इस से विरुद्ध सब ही हूं देखता भाग्य से !
अग्नी स्वागत में लगी ! सब कहीं दुर्भिक्ष फैला पड़ा !!
श्रीमान् फूलरजङ्ग भी गरजते बङ्गालियों पै सदा !!!

---

४ हिन्दसे=अङ्क । ६ रघुवंश, सर्ग २.

(८)

तो भी प्लेग छिपाय, काल ढंक के, घोंटा असन्तोष को,
मांगे शाल, ढका प्रसन्न बनके कङ्काल कंकाल को।
आंसू पोंछ, कहूं सुहास्य मुख से, "आओ पधारो यहां,
लाखों मङ्गल सर्व-मङ्गल करे ! जोड़ी बनी ही रहे !!"

(९)

जो विद्या, वह राजपुत्र ! तुम को 'ऐड्रेस' देने खड़ी,
जो धीरत्व, कुमार आज वह भी छाता लिए है खड़ा।
लक्ष्मी जो कुछ है सभी वह लगी दीपावली में अभी,
या चन्दे लिखती फिरे सब कहीं जो आप आए यहां ॥

(१०)

जो तल्वार कुमार ! आज वह भी बूटों तले आपके,
अच्छा हो यदि सात टूक कर के वो आप पै वार दें !
है स्वातन्त्र्य नहीं तथापि उस की छाया खड़ी सोचती,
"ऐसा तो न कहूं कुमार जिस को विद्रोह माने कहो" ॥

(११)

'लेवी' से अभिमान आज अपना सन्मान है मानता,
जो सद्वन्श, सुवश्य वो अरदली या चोवदारी करै।
आई हैं गृहलक्ष्मियां सब करैं प्रिन्सेस की आरती;
देखो, केवल 'ताज' एक बढ़िया 'बेताज' के पास है !!

---

८ कंकाल—हड्डी

(१२)

तुम्हारी सेवा हो, तन-पतन से वा जतन से,
तुम्हारी पूजा हो, मन–शमन से वा दमन से।
तुम्हारी अर्चा हो, धन–निधन से वा दहन से,
तुम्हारे तोषार्थी तन–मन–धनों को नहीं गिनैं ॥

(१३)

माना रत्न मुझे प्रधान सबने इङ्गलैण्ड के ताज में,
मानैं कङ्कर सा कुमार ! मुझ को जो न्याय मांगू कभी।
औरों का मुख देखता थक गया, चाहूं बनाना स्वयं
मैं वस्त्रादि; कुमार ! देवि !! कह दो रोकै न कोई मुझे ॥

(१४)

आप हो, सब देखना मन लगा, होगा तुम्हें 'अस्ति' का
मेरा ज्ञान; भला लगूं जब, भला होगा कभी 'भांति' भी।
पीछे भाग्य हुए कुमार ! 'प्रिय' भी होऊं कभी आपका;
भागेंगे तब 'नामरूप' नकली जो शासकों ने धरे ॥

(१५)

राजा हैं सब घास पात, कुचलो चाहै, न खाओ कभी,
मट्टी हैं हम, रौंद दो, पर कभी खाओ हमें भी नहीं।
खोवैं जो वृक, रींछ, जम्बुक, बने भाई सभी आप के !
गैंडे वा गज हैं न !–खूब करिए–"शार्दूलविक्रीडितम्" !!!

भारतवर्ष ।

---

१५ शार्दूलविक्रीडितम्–सिंह का खेल और छन्द का नाम ।

सरस्वती—जिस प्रचण्ड पाण्डित्य से सम्पादक महाशय ने भाषा के नए पुराने सभी लेखकों को अपने व्याकरण के आगे अनर्गल और अशुद्ध समझा है उसपर "भारतमित्र" चाहे कुछ कहे, हम इस प्रौढ़लेख की स्तुति ही करेंगे। परन्तु क्या सम्पादक महाशय यह बतलावेंगे कि "अथ शब्दानुशासनम्" यह पाणिनि का सूत्र है यह उन्हें किसने बताया? यह पातञ्जल महाभाष्य का प्रथम वाक्य है, पाणिनि का नहीं। इस अनुशासन शब्द के उपसर्ग को पृथक् करके जो विलक्षण गमक निकाला गया है कि पाणिनी ने अपने समयतक के शब्दों का ही अनुशासन किया है, वह निरर्थक है। "यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यं" कौन नहीं जानता? और इसी हिसाब से द्विवेदीजी ने भी अपने पहले हिन्दी आचार्यों को सम्हाल ही लिया है। परन्तु यदि अनु होने से यह अर्थ निकाला गया तो अनुष्ठान=पीछे खड़े होना, अनुभान=पीछे नापना, अनुसार=पीछे रेंगना, अनुरोध=पीछे रोकना भी मानना चाहिए। एक बात हम और नहीं समझे। हिन्दी के पुराने लेखकों पर तो कृपा इस वास्ते हुई है कि उनने दुर्भाग्य से भली या बुरी वह हिन्दी लिखी थी जिसे आज द्विवेदीजी रौनक बख्शते हैं, परन्तु अंगरेजी, मराठी, बंगला, के वे टुकड़े क्यों दिए गए हैं जो निर्दोष कहे गए हैं? क्या उन के देने में अपनी बहुभाषाभिज्ञता दिखाने की छाया नहीं है। पण्डित बलदेवप्रसाद के लेख में कुछ निन्दा है, कुछ स्तुति। मक्काका लेख कुछ विस्तृत होना चाहिए था।

मध्याह्न में चाण्डाल—शुक्ल यजुर्वेद, अर्थात् माध्यन्दिन (वाजसनेयि) शाखा के पढ़ने वाले ब्राह्मणों को तैत्तिरीय (कृष्ण-यजुर्वेद) शाखा वाले कुछ घृणा से देखते हैं। इतिहास यों है कि शिष्य याज्ञवल्क्य ने गुरु की आज्ञा न मान कर उनके पढ़ाये यजु को

वमन कर दिया और और शिष्यों ने उन ज्वलद्ङ्गार यजुर्मन्त्रों को तित्तिरि बन कर उठा लिया। याज्ञवल्क्य ने सूर्य से शुक्लयजु पाया। इस के प्रातिशाख्य और शिक्षा में य को ज और ष को ख बोलने का जो निर्देश और प्रथा है उसे तैत्तिरीय शाखावाले यों कहते हैं कि गुरुके शापसे इनसे अक्षर शुद्ध नहीं निकलता। अवश्य ही शुक्ल यजुर्वेदी इस शाप को नहीं मानते और इसे अपना गुरु-परम्परागत उच्चारण क्रम मात्र मानते हैं। परन्तु एक और विलक्षण बात है। मद्रास प्रान्त में बहुत थोड़े, बहुत ही थोड़े, शुक्लयजुर्वेदी हैं। उन का विश्वास है कि हम लोगों को मध्यान्ह में चाण्डाल होने का शाप है जो याज्ञ-वल्क्य ने गुरु की अवज्ञा करके तैत्तिरीय संहिता का वमन कर के पाया था। इससे वे घड़ी भर के लिये अपने को प्रतिमध्यान्ह चा-ण्डाल मानते हैं। उस समय वे धोती लेकर ग्राम के बाहर कूप पर चले जाते हैं और मध्यान्ह बीतने पर घरमें स्नान करके प्रवेश करते हैं और प्रत्येक वस्तु को प्रोक्षण करते हैं। यह विलक्षण रीति बहुत ही कम कुटुम्बों में है, परन्तु धर्म के दृढ़ विश्वास की चरमदशा का अच्छा दृष्टान्त है।

विलायती राजनीति—भारतवर्ष को उचित है कि अपने प्रतिनिधि मि० गोखले को उन के चोखे भाषणों और मि० लाज-पत रायको उनकी भारतवर्ष की लाज और पत रखने के लिये प्रचुर धन्यवाद दे। अग्रणी बम्बई ने तो अपने पुरुषरत्न को भेजाही, परन्तु पश्चात्पद पंजाब ने भी और प्रान्तों के टालमटोल करते रहने पर भी योग्य प्रतिनिधि को भेज कर अच्छा कर्तव्य पालन किया। मि० लाज-पतराय भारतवर्ष के आत्म—निर्भर को प्रधान मानते हैं और विला-यती राजनैतिक पार्टियों पर अधिक भरोसा नहीं करते। मि० गो-खले, दादाभाई और सर फिरोजशाह की नैमिवृत्ति प्रजा के अनुकूल,

लिबरल पार्टी पर अपनी सारी आशाएं बांधते हैं। सत्य इन दोनों के बीच में है। यद्यपि अपने विना मरे स्वर्ग नहीं दीखता और कन्सर्वेटिव या लिबरल कोई भी ऐसा काम न करेंगे जिस से इङ्गलेण्ड के प्रत्यक्ष स्वार्थों का विरोध हो परन्तु सहारे मात्र के लिये उदार लिबरल ठीक ही हैं। लार्ड रोज़बरी फिर अपने दल में मिलने आये थे परन्तु होमरूल का नाम सुनते ही चिढ़कर चल दिये। जब ८० मेम्बरों वाले आयर्लेण्ड का यह हाल है तो हमारे बारे में कब लिबरल दल का एकमत हो सकता है? तो भी समय समय पर विलायत में प्रतिनिधियों के भेजने की आवश्यकता है। मि० बालफोर का बकी मन्त्रिदल अन्त को समाप्त होगया और वर्णनातीत मि० ब्राडरिक के स्थान में ग्लेडस्टोन के प्राइवेट सिकत्तर और जीवनचरित्र लेखक जानमार्लें भारतवर्ष के भाग्य में आये हैं। जिस समय तक हम लोग अपनी योग्यताओं से अधिकार पाने के योग्य न हो जांयगे तबतक हमारे भाग्य से चाहै कोई मन्त्रिदल और चाहै कोई सेक्रेटरी आवस्टेट हो हम वैसे के वैसे ही रहैंगे तो भी 'सच्चे जान' से आशाएं करना निर्मूल नहीं है।

कांग्रेस और स्वदेशी। कई अदूरदर्शी लोग कांग्रेस में स्वदेशी आन्दोलन को खैंच लाना चाहते हैं। वे बम्बई और भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में इस बारे में गुत्थम गुत्था होती बतलाते हैं। परन्तु भीड़ के साथ हल्ला करना जिन लोगों का उद्देश्य है उनके अतिरिक्त कांग्रेस के और सब नेता अपना सिर नहीं खो चुके हैं और वे उचित विचार करेंगे। अवश्यही कांग्रेस बंगदेश के विच्छेद, वहां के प्रजा मत की अवहेलना, और नए प्रान्त में शाइस्ताखां आदर्श के राज्य के विषयों पर मत प्रकाश करेगी; परन्तु यहां कांग्रेस का कार्य्य पूरा हो जाता है। राजनैतिक कांग्रेस यदि भारतवर्ष की सर्वतोमुख उन्नति को अपने भीतर डालने लगे तो सामाजिक परिषद्

शिल्प परिषद, प्रदर्शनी प्रभृति की क्या आवश्यकता है ? दूसरे कांग्रेस में मिलने से स्वदेशी आन्दोलन की क्षति होगी। यह एक पार्टी का कर्तव्य हो जायगा और सरकारी नौकर प्रभृति इसका अनुसरण नहीं कर सकेंगे। अभी यह सार्वजनिक कार्य्य है जिस में अंगरेज़ तक संयुक्त हो रहे हैं। अवश्य ही ऐसा होने से लोग कांग्रेस को केवल भिक्षुकमण्डल कहैंगे परन्तु क्या बायकाट नामक प्रतिबन्धक अस्त्र का प्रयोग सारे भारतवर्ष की कांग्रेस कर सकती है ? कोई कांग्रेस को रीपब्लिक बनाना चाहता है, कोई उस को न्याय मन्दिर बनाना चाहता है, परन्तु यों करके लोग उसके वास्तव उद्देश्य से दूर डालते हैं। अभी कुछ काल तक प्रजा मत को उत्पन्न करना और स्वरूप देना इसी में उस को और उन को सन्तुष्ट होना चाहिये।

नवीन भारत—हम को यह प्रकाशित करते बड़ा हर्ष होता है कि श्रीमान् भारतहितैषी सर हैनरीकाटन के बनाए न्यू इण्डिया नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होना ही चाहता है। अभी उस दिन एक विलायती पत्र में पढ़ाथा कि जापानियों को भारतवर्ष की वर्त्तमान स्थिति बताने के वास्ते वह पुस्तक स्वीकृत हुई है और उसका जापानी भाषा में अनुवाद हो गया है। मान्यवर सर हैनरीकाटन का सा स्वार्थत्यागी और सत्यप्रेमी मनुष्य विरला ही होगा जिसने भारत सरकार के उच्च पदों का लोभ न कर के विचारे कुलियों की हिमायत की, अपनी जाति का कोप सहा, और इस अमूल्य पुस्तक में अपने उदार सिद्धान्त निर्भीक हो कर प्रकाशित किये। अब पैंशन पाए पीछे भी ये जातीय महासभा के सभापति बनने के लिए भारतवर्ष में आये और पूरी नमकख्वारी के साथ भारतवर्ष के हितका उदार पक्ष ऐसी दृढ़ता से लेते हैं मानो वे भारतवर्ष के वकील हों। कलकत्ते में उन्हें विदा करने को जो सभा भरी थी उस

में यह प्रस्ताव हुआ था कि उनकी 'न्यू इण्डिया' सब लोग पढ़ें और भारतवर्ष की देशी भाषाओं में यह गौरव हिंदी भाषा को ही शीघ्र प्राप्त होने वाला है कि ऐसे अमूल्य ग्रन्थ का इस में अनुवाद छपा। राजस्थान के कुछ कृतविद्य सज्जनों ने इस के अनुवाद में बहुत ही परिश्रम किया है और मनीषि समर्थदानजी इस को इस शीघ्रता से प्रकाशित कररहे हैं कि काशी की जातीय महासभा में समवेत भारत-हितैषियों को यह कदाचित् मिल सकैगी। हमें जो इसके एडवान्स शीट्स मिले हैं उन से अनुमान होता है कि पुस्तक डिमाई २५० पेज से कम की न होगी और मूल्य एक रुपये से अधिक न होगा। वर्तमान राष्ट्रीय आंदोलन और जागरण के समय में इस पुस्तक का श्रेयस्कर प्रचार जितना अधिक हो उतना ही अच्छा। आजकल स्वदेशीय आन्दोलन जो छिड़ रहा है उसके विषय में, अपने ग्रन्थ में, सर हैनरी-काटन ने जो कुछ भारतवर्ष का इकानामिक प्राब्लेम पर लिखा है, वह अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। उस में से कुछ वाक्य यहां पर उद्धृत किये जाते हैं—"भारतवर्ष के इतिहास कर्त्ता प्रोफै. सर हेरिस हेमन विलसन साहब का निम्नलिखित कथन और भी प्रबलतर है:—

सन् १८१३ ई०में यह वर्णन कियागया था कि उससमय तक भारत का सूती ओर रेशमी माल इंगलैण्डके बाज़ार में वहां के बने हुए माल की अपेक्षा पचास से साठ प्रति सैंकड़े कम कीमत पर बेचा जासकता था। इसलिये भारतीय माल की कीमत पर सत्तर या अस्सी सैंकड़ा कर लगाकर अथवा प्रकाश्य रूपसे उसकी आमदको रोक कर इंगलैण्ड के मालकी रक्षा करना आवश्यक समझा गया। यदि ऐसा नहीं किया जाता, यदि ऐसा भारी कर लगा कर भारतीय माल का प्रचार इङ्गलैण्ड में न रोका जाता, तो पेसली और मेनचेष्टर के कारखाने प्रारम्भ ही में वन्द होगये होते और वे फिर वाष्प यंत्र के

बल से भी कदाचित् ही जारी होसकते । भारत के कारखानों की बलि चढ़ा कर ही इन कारखानों का जन्म इङ्गलैंड में होसकता था। यदि भारतवर्ष स्वतंत्र राज्य होता तो वह निस्संदेह यथोचित उत्तर देता, इङ्गलैंड से आने वाले माल पर बहुत भारी और हानि कर कर लगा कर अपना बदला लेता, और अपनी लाभदायक कारीगरी को भी नष्ट होने से बचा लेता। उस को अपनी आत्मरक्षा करने की आज्ञा इसलिये नहीं मिली कि वह विदेशियों की अधीनता में था। जो अङ्गरेजी माल भारतवर्ष में आता था उस पर कुछ भी कर नहीं लगाया जाता था और यही कारण है कि विदेशीय कारीगर पक्षपात और अन्याय द्वारा अपने प्रतिद्वंद्वी भारत के कारीगरों को दबा कर अन्त उन का सर्व नाश करने में समर्थ हुए; क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे लोग भारतवर्ष के कारीगरों की समता कदापि नहीं कर सकते थे"।

धर्मसङ्कट—काशी में जातीय आन्दोलन के साथ साथ ही बड़ा भारी धर्मसङ्कट भी उपस्थित हुआ है। सनातन हिन्दूधर्म त्रिधा बद्ध होगया है और उस की उन्नति का इसे सहायक कहैं, या विघातक, कुछ समझ में नहीं आता। सामाजिक परिषद्, महामण्डल का वर्त्तमान प्रबन्ध, और मालवीयजी की धर्मसभा, इस त्रयी से कुछ अदूरदर्शी आत्मश्लाघी लोगों को धर्म के लिए त्रिदोष सन्निपात खड़ा करने का अच्छा अवसर मिलगया है। इस त्रिपुष्कर योग में यदि गांठ सुलझेगी तो मालवीयजी के हाथ से। जो लोग काम कर रहे हैं उनकी चालों में आपस के इतने दाव पेच और पालिसी के भीतर पालिसियां खेली जारही हैं कि धर्म का पवित्र धर्मत्व दूर जाकर केवल बनियों की ले दे का व्यापार रह गया है। धर्म व्यवसाइयों और धर्मध्वजाधारियों की यह वणिक् अवस्था बहुत ही खेद जनक

है। हम नहीं चाहते कि उन लोगों के घृणित कर्त्तव्यों पर से उपेक्षा का पर्दा उठाकर उन्हें प्रसिद्धि दें जिसके वे योग्य नहीं हैं और जिस-के लिए वे "घटं छित्वा पटं भित्वा" का मार्ग लेरहे हैं। परन्तु यदि कर्त्तव्यवश हम को उन के रहस्यभेदन के लिए वाधित होना पड़ेगा, तो हम अभी से कहे देते हैं कि हम उस से न चूकेंगे। मालवीयजी अपने सत्यनिष्ठ धर्म-प्रेम से धर्मानुयायी हिन्दुओं के नेता बन गये हैं और वे जिधर लेजाना चाहेंगे उधर, वह मार्ग चाहे कण्टकाकीर्ण ही हो, हिन्दू जाने को तैयार हैं। मालवीयजी के से लोकप्रिय नेता के क-र्त्तव्यों को 'जेजुएट' नीति कह कर उड़ाने वाले डेढ पत्रे के अख-बार लिखने वाले या डेढ सभाओं के प्रवन्धक हिन्दुओं के नेता बनेंगे या यह काम वे महा हिन्दू करेंगे जिनकी मङ्गल्या मनोहरा कथा न्या-यालयों को पवित्र कर चुकी है? प्रथम तो काशी से सामाजिक प-रिषद् को उड़ाने का जो यत्न किया जा रहा है वह अनर्गल, इतिक-र्त्तव्यताशून्य, उपेक्ष्य, और एकदेशी है। इस का प्रधान उद्देश्य माल-वीयजी को अपदस्थ करना और गौण उद्देश्य कुछ आत्मंभरि लोगों की तिलक बनने की लालसा है। युक्त प्रान्त में बहुतसे लोगों को तिलक बनने की लालसा जागपड़ी है परन्तु चाहे वे त्रिवेणी में गोता खावें, चाहे त्रिलोकी घूम आवें, चाहे उन पर न्यायालयों में घृणित से घृणित अभियोग लगजावें, वे तिलक की षोडशी कला को भी नहीं पासकते। वर्षभर तक यारलोग चुप रहे। काशी में, सामाजिक परिषद् की स्वागतकारिणी में सुधाकरजी और राममिश्रजी दो महा-महोपाध्याय भी चुनेगए, वर्षभर कुछ विरोध नहीं किया। ये लोग भी ताने मारते अवसर तकते रहे। परन्तु जब पण्डित मालवीयजी के धर्ममहोत्सव का विज्ञापन निकला तो मनुष्य—दुर्बलता से सुलभ अभिमान जाग उठा और सामाजिक परिषद् का होना मालवीयजी

के सिर रक्खा गया। क्या हिन्दुओं में मालवीयजी का मान ऐसे कच्चे तागे पर है जो यों कम हो सकता है? माना कि सामाजिक परिषद् हिन्दू सिद्धान्तों की विघातक और इसी लिए निष्फल भी है, परन्तु उस के न कराने का यत्न क्या उस निन्दनीय जलाने बहाने के ज्वर के समान नहीं है जो डेढ़ दो वर्ष पहले हिन्दी साहित्य पर चढ़ा था? यदि विरोधियों का उत्तर उनका मुंह बन्द करना ही है तो क्यों "वन्दे मातरं" गाने की मनाई के लिए मि० फुलर का शासन बदनाम किया जाता है? यह भी कथन विकृत है कि सामाजिक परिषद् के नेता "अपनी विकृत वासनाओं को पूरी करने के लिए अपने सुधार या कुधार चाहते हैं"। उद्देश्य में भेद हो चाहे न हो, काम के ज्ञान और मार्ग में भेद है, इसलिये वासनाएं विकृत बताना बड़ी भारी भूल है। न्यायमूर्त्ति रानाडे या चन्द्रावर्कर प्रभृति के व्यक्तिगत आचरण इतने उज्ज्वल हैं कि छिद्रान्वेषी निगाह उनकी झलक से झंपजाती हैं और किसी भी समाज सुधारक का चरित्र इतना कलुषित न होगा, जितना एक पञ्जाबी धर्मव्यवसायी का, सच्चे झूठे, लोमहर्षण रीति से, प्रकट हुआ था! परन्तु स्वयं कुछ करना नहीं और और लोग अग्रसर हों तो सोश्यल कान्फ्रेन्स न रोकने का दोष उन के मत्थे! खण्डन करो, विरोध करो, परन्तु स्थान मात्र पर से कान्फ्रेन्स को हटा कर क्या तुम तिलक बन सकते हो?

महामण्डल काशी में लल्लोपत्तो कररहा है, "श्रीमती सोश्यल कान्फ्रेन्स मौडल भगिनी" प्रभृति भद्देमज़ाकों मात्र से अपनी गम्भीरता का परिचय देरहा है, कांग्रेस से मण्डल एक दिन के लिए मांगकर सामाजिक परिषद् के उसे ले सकने के अधिकार का प्रबल प्रमाण देरहा है, उस से कुछ कहना नहीं और वास्तव देशोपकारी काम में अग्रणी बनने के लिए मालवीयजी को उपालम्भ और ताने

और उन को राजनैतिक क्षेत्र से उदासीन होने के लिए उसकाना !!
राजनैतिक काम करने वाले युक्त प्रान्त में ढाई तीन, उन में माल-वीयजी के पञ्चहज़ारी बोर्डिङ्, लक्खी पत्र और सौलक्खी यूनिव-सिंटी के काकदन्तगणना के स्कीम जिन से वे अपना "ह्विप" पना छोड़ कर मध्यस्थ वृत्ति पर आगे ही पड़े हैं, और तिस पर भी यह 'क्षते क्षारावसेचनम्' !!! "स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः"।

इधर भारतधर्म महामण्डल का अजब हाल है। यदि उस के नए कार्यकर्ता पुराने कर्मचारियों के आडम्बर—पूर्ण और व्यय—मय कार्यों की हंसी करें तो उतना निन्दनीय नहीं, परन्तु वे लोग जिनने पुराने वाचारम्भणों में खूब हाथ गर्म किये हैं अब किस मुंह से अपने अन्नदाताओं की निन्दा करते हैं ? महामण्डल का वर्तमान कर्म, प्राचीनों की निन्दा, आगे केवल लेखाडम्बर और पब्लिक के सामने अपना व्यौरा देने से भागना—यही है। इधर "अज्ञातवास का अन्त" होजानेसे धर्म पुत्र युधिष्ठिर के समान (मित्र लोग वृथा ही उनकी तिलक जैसे हीन पुरुष से तुलना करते है। कहां राजनीति—मात्रावलम्ब तिलक और कहां धर्म महोदधि को चुलुकित करने वाले पण्डित गोपीनाथ ?) पण्डित गोपीनाथ महामण्डल के कार्य्याध्यक्ष बने है और उन्हें "निर्वाहमात्र के लिए ता० १४ मई से १००) सौ रुपया माहवार" सहायता दी जाती है, इससे सिद्ध होता है कि वे हज़ार दो हज़ार मासिक की जीविका छोड़कर धर्म सेवार्थ श्री चरणों में आए हैं। अच्छा होता यदि पण्डित गोपीनाथ राजनीति या देवनागरी प्रचार के सार्वजनिक काम में अपनी पुष्पिता वाणी का व्यय करते और फिर महामण्डल में न आते क्योंकि "अतथ्यस्तथ्यो वा हरति महिमा नं जनरवः" परन्तु कदाचित् कुमारिल भट्ट के समान पण्डितजी ने

भी अपनी सत्यानृत अप्रतिष्ठाका प्रायश्चित्त लोकप्रसिद्धि के तुषानल में करना विचारा हो। परन्तु वे सावधान रहें, गतं न शोचामि" चाहे सनातनधर्मियों का सिद्धान्त है, परन्तु अब के काशी में जो आर्य्यसमाज का महाधिवेशन होगा उस की टक्कर से पण्डितजी बचते रहें। कुछ लोगों की शोभा तभी तक होती है जब तक वे कुछ नहीं बोलते। आते ही आपने नई इंजील फर्माई है। 'निगमागम चन्द्रिका' के चैत्रादि श्रावणान्त संख्या के पृष्ठ १२५ में **उपदेशक महशयों से आवश्यक निवेदन** छपा है। उस में कहा गया है कि उपदेशकों की जो सुख्याति श्री भारतधर्म महामण्डल द्वारा हुई है वह किसी प्रकार होनी सम्भव न थी। "यद्यपि उन में बहुत से धुरन्धर विद्वान् और धर्मतत्त्ववेत्ता हैं" तथापि, साफ बातों में, बहुत से ऐसे भी हैं जिन्हें महामण्डल ने ही रोटियों सिर लगाया है। आगे यह सिद्धान्त और भी स्पष्ट है—"यह कहना सत्य ही है कि श्री भारतधर्म-महामण्डल ने सम्पूर्ण उपदेशक महोदयों के लिए **एक प्रकार की बड़ी भारी खेती** तैयार करदी है जिस में से अपने अपने परिश्रम के अनुसार प्रत्येक महाशय जितना चाहें लाभ उठा सकते और उठा रहे हैं"। नारायण! नारायण!! क्या यह उपदेशकों को साफ साफ कहना नहीं है कि चाहे जहां थाली फेरो, लूटो और खाओ। परन्तु महामण्डल के विषय में उन का "कुछ विशेष कर्तव्य" यह है कि वे इस की दल्लाली करें, याने मेम्बर बनावें। कौन कहता था कि पुराने मण्डल के उपदेशक लुटेरे हैं? नया मण्डल उन्हें साफ कमाने खाने और उन की लूट में से साझा मांगने की तरग़ीब दे रहा है!! उस के लिए पुरस्कार

और मेम्बर न बनाने का दण्ड भी नियत हो गया है ।। बड़े बड़े विद्यासागर उपदेशकों के जो कहीं पर जम कर धर्म सेवा कर रहे है, मन में अब यह डर लगा है कि नए नए बच्चे उपदेशक अधिक मेम्बरों की दल्लाली करके उन से ऊपर न बढ जांय। कितने ग्रामीण-भावसे उपदेशकों को धन बटोरने और दल्लाली करने को कहा गया है। प्रश्न है कि जो उपदेशक मेम्बर न बनाएंगे उनके नाम क्या यह 'फतवा' दिया जायगा कि सभाएं उन्हें भेंट न दें? अस्तु जलसे प्रभृति का विज्ञापन छपा है,—। वह सब हाथी के दिखाने के दांत हैं, विना सभाओं के पूछे घर ही घर में प्रावीजनल कमेटी को स्थायी कर लेना और यह किया वह किया छापना यही होना है। बड़े खेद की बात है कि हमारे तिलकंमन्य मित्रों की तरह महामण्डल भी मालवीयजी से घबड़ाता है और उनका "लक्ष्य किसी और तरफ" बतलाता है। मालवीयजी को वह अपना प्रतिद्वन्द्वी मान बैठा है। रहे मालवीयजी उनका धर्म महोत्सव भविष्यत् की अपेक्षा करता है। अब के चाहे वे वाचारम्भण करें, परन्तु उन के धर्म पुस्तक और संस्कृत विद्यालय का दूरव्यापी परिणाम, उन्हीं के इष्ट देव "अकुण्ठं सर्वकार्येषु" पूरा करें। इस नूतन धर्मान्दोलन के पण्डे का पीठ भी वही त्रिवेणी की पवित्र भूमि है जो पुराने पण्डों के मुंह फाड़ कर सुधार चाहने वाली कुरीतियों का लीलास्थल है। परन्तु पण्डों के दीयतां दीयतां में और मालवीयजी के ह्रिया देयं, भिया देयं, श्रद्धया देयं, अश्रद्धया देयं में बड़ा अन्तर है। क्या प्रयाग के पण्डे इस भीति से कि मालवीयजी उनकी भूमि में उन्हीं के अपदस्थ करने के लिये सभा भरते हैं उनकी सभा को त्रिवेणी तीरसे हटाना नहीं चाहते? इस विलक्षण कर्तव्य में उनकी पुष्टि उनके और मणिकर्णिका के कुछ अदूरदर्शी

पड़ोसियों के उस आचरण से होगी जो उनने स्वयं कर्म से कान्फरेन्स के कलुषित कर्तव्यों का कर्तन न करके कपटी करतूतों से कर्मपरायण कृती मालवीयजी की महिमा पर मलिनता न्यास, करने के निषिद्ध नियोग में किया है, और जिसका न्यक्कार नियति के नियम से नाति चिर काल में होने वाला है। ऐसे लोगों के वास्तव कार्य जानने के लिये हम अपने विशेष प्रतिनिधि उन के उत्सवों में भेजना विचारते हैं जो निष्पक्षभाव से उनकी पालिसियों की गुत्थी सुलझाने का उद्योग करेंगे। हम फिर दोहराते हैं कि उनके वास्तव भाव चाहे मालवीयजी को अपदस्थ करने के हो, परन्तु वे अपने ही लिए खाई खोद रहे हैं। श्रुति भगवती उन्हीं का वर्णन करती है—

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।

अर्थात् जो यों करता है, वह भी इसे नहीं जानता और जो त्यों देखता है उससे भी यह दूर है।

ऐतिहासिक ग्रन्थावलि।

हिन्दी भाषा में इतिहास का बड़ा अभाव है। इसे दूर करने के लिये हमने यह ग्रन्थावलि निकालना आरम्भ की है। इसके ग्रन्थकार उदयपुर के पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा हैं जो भारतवर्ष के पुरातत्त्व और इतिहास के शोधों के पूरे जानकार हैं। उनने वे शोधन किए हैं जो यूरोपीय एन्टिकेरियनों के भाग्य में भी न थे। इस ग्रन्थावलि में प्रतिवर्ष कमसे कम एक और अधिक से अधिक चार ग्रन्थ छपा करेंगे। पहले नाम लिखाकर ग्राहक बनने वालों को डाकव्यय माफ किया जायगा। समालोचक के मूल्य देचुकने वाले ग्राहकों से $\frac{3}{4}$ मूल्य लिया जायगा। ज्योंही कोई ग्रन्थ छप जायगा उसकी सूचना समालोचक द्वारा देदी जायगी। पहले नाम लिखवा देने वालों के नाम बिना पूछे वी. पी. कर दिया जायगा। इस ग्रन्थावलि में जो ग्रन्थ निकाले जांयगे वे पूरी ऐतिहासिक खोज से लिखे जांयगे। अभीतक इस ग्रन्थावलि में यह ग्रन्थ छपरहा है:—

१ सोलङ्कियों का इतिहास पहला भाग

और निम्नलिखित ग्रन्थ इसमें छपाए जाने के लिए तैयार है।

२ सोलङ्कियों का इतिहास दूसरा भाग

३ सोलङ्कियों का इतिहास तीसरा भाग

४ मौर्यों का इतिहास

५ क्षत्रपों (Satraps) का इतिहास

६ गुप्तवंश का इतिहास

इस ग्रन्थावलि से यह भी जान पड़ेगा कि उपाख्यान और दन्तकथा को छोड़कर केवल शिला लेखों और ताम्रपत्रों में ही कितनी इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है।

छपाई सफाई देखने लायक होगी।

मिलने का पता—मेसर्स जैन वैद्य एण्ड को। जयपुर।

SAMALOCHAK.

A Hindi monthly literary journal + + + + This vast and rapid development is clearly noticeable on perusing the pages of this excellent magazine. The SAMALOCHAK contains reports of the proceedings of religious and literary societies, criticisms on current Hindi literature, biographies of men of note, letters from correspondents, and articles on scientific, educational and other instructive topics, contributed by learned well-known writers. Vol II, 1903-04 contains amongst many other interesting articles the Commencement of a series of criticisms on the life and writings of the famous Hindi poet Bhushana + + + The SAMALOCHAK is well-printed, and full of interesting matter, and should be in the hand of every student of Hindi literature.

Extract from Luzac's Oriental List and book Review.

July-Oct 1903.

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्॥
(ऋक् १०। ७१। ४—५)

*स*मा*लो*च*क*

क्रमागत संख्या
४२, ४३, ४४
जनवरी से मार्च, १९०६

वर्ष ४ अङ्क ६, ७, ८

अग्रिम वार्षिक मूल्य
डेढ़ रुपया
इस संख्या का मूल्य
आठ आने

विषय

स्वामी और प्रकाशक.
जैन वैद्य एण्ड कम्पनी जौहरी बाजार, जयपुर।

समालोचक
जनवरी सन् १९०६

रवि ।

(१)

धन्य धन्य दिननाथ ! धाम कल्याण परम के !
हिमरिपु जीवनदातृ मूर्त्ति शुभ ज्योति चरम के !
रवि ! छवि तव बहु भांति विविध कविगन ने गाईं,
द्युमणि ! सुनहु कछु आज कुकवि के चित्त समाईं ।

(२)

हे खगोल के केन्द्र ! प्राण जीवन गणितन के !
अहो फलितसुरवृक्ष ! सहारा दैवज्ञन के !
ज्योतिर्विद नक्षत्रसूचि सब के अनदाता !
जय सिद्धान्त सम्राट धर्म कल्पद्रुम धाता !

(३)

नव गति गणना चारुचलन कलना चिन्तामनि !
जय प्रकास के आदि आचारज सुभमति धनि !
दिगदिगन्त गत तेज ! यन्त्रराजन के प्यारे !
म्लेच्छ तमिस्र हटाय पूज्य मूरति रखवारे !

(४)

यज्ञमूल यजु वाजसनेयी शाखा चालक !
अश्वमेध विध विविध पूज्य यज्ञन के पालक !
धर्म ग्लानि मिटाय कर्म विस्तार कियो जय !
शुभ ज्योतिषपथ देव ! कियो निष्कंटक निर्भय।

(५)

उलगबेग[1] लाहैर[2] मान्यवर, जनक 'जीच[3]' के।
नाथ ! उबारहु शास्त्र परयो तव बीच मीच के।
सायन निरयन वाद नाटिकल की नटखट भी।
दृश्य धर्म्य को भेद लेत हठि मिलि याको जी।

(६)

आर्य ब्रह्म कमलाकर मिहिर सूर्य पर-भास्कर !
केतक[4] फिरैं बेताल भ्रमैं रमनीय सुधाकर।
छिनमें सकल विवाद मिटै यदि रवि ! तुम आओ।
राशिवलय की चाल सत्य यदि तुम दिखलाओ।

(७)

रत्नाकर[5] को पुण्डरीक[6] तेरो कंह प्रियतम ?
नाम शेष वह आज, छयो सेवाल महातम।
निज कर प्रातःकाल संवारी जो तैं नगरी।
अन्धकार तंह निविड़, धर्म की फूटत गगरी।

---

१. एक समरकन्द का गणितवेत्ता। २. एक पोर्च्युगैल का गणितवेत्ता। ३. सारणी, पञ्चाङ्ग। ४. कितने ही। ५ समुद्र। ६ कमल।

(८)

सदा नित्य प्रत्यक्षदेव देवाधिदेव तव ।
महिमा घटती जाय, भूलते वा मनीषि अब ?
दुर्गति है यह नाथ ! तेरी वा तव अंश की ?
कीर्त्ति लोप हो जाय अदिति कश्यप[७] सुवंश की ?

(९)

कहां 'भर्ग सुवरेण्य'[८] हमारी मति जो प्रेरै ?
कहां पुरुष वह दिव्य वेद जिहि 'सोऽसौ'[९] टेरै ?
दीखै हम को नांहि 'हिरण्यश्मश्रु'[१०] मनोहर ।
कह दो वैदिक विष्णु ! कहां 'त्रेधा पद पांसुर'[११] ?

---

७ 'इत्येते द्वादशादित्याः काश्यपेयाः प्रकीर्त्तिताः' वेद में कश्यप=कच्छप=पश्यक । सूर्य अदिति और कश्यप (आकाश) का पुत्र है।

८ ऋग्वेद ३ । ६२ । १०, (गायत्रीमन्त्र) भर्ग=तेज । वरेण्य=चाहनेलायक ।

९ योऽसौ आदित्ये पुरुषः सोऽसौ अहम् (यजुर्वेद ४०।१५) सोऽसौ=वह ही वह ।

१० यः एषोन्तरादित्ये हिरणमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रु-र्हिरण्यकेशः आप्रणखा त्सर्व एव सुवर्णः (छान्दोग्य १ । ३ । ६ । ६ ।

११ ऋग्वेद १ । ५ । २२ । १७ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढ़ मस्य पांसुरे ।

(१०)

कहां तुरीय ब्रह्म[१२] अत्रि ने जासों जान्यो।
आसुर जब स्वर्भानु तोहि तम मांहि छिपान्यो?
हम भी खोजैं तोहिं होंय झटिति संशयरहित।
नहिं कहलावें 'मुग्ध' यथा पुरुष 'अक्षेत्रवित'

(११)

छिप्यो मेघ में सूर्य! राहु ने अथवा खायो?
जड़ विज्ञान प्रवीण छिद्र तो में दिखलायो।
हे मृताण्ड से जात[१३]! वदन क्यों नहिं दिखलावै?
मुरझाती यह देश-पद्मिनी क्यों न खिलावै?

(१२)

यह रजनी नहिं, नहिं दिशा, नहिं कैरविणी[१४] ही।
पावै मोद विकाश इन्दु-भूषण-जय से ही।
बिना तिहारे नाहिं पद्मिनी की गति जानहु।
छांडि मेघ, हनि राहु, याहि सन्मुख मन आनहु।

---

१२ यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुःतमसा अविध्यत् आसुरः। अक्षेत्रवित् यथा मुग्धो भुवनानि अर्दीधरु॰। + + गूढं सूर्यं तमसा अपव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणा अविन्दत् अत्रिः (ऋग्वेद ५। ४०। ५-६) तुरीय=चौथा ब्रह्म=कर्म, यन्त्र? आसुर=असुरवंशीय स्वर्भानु=राहु। अक्षेत्रवित्=क्षेत्र न जानने वाला। १३ अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जाता तन्वस्परि। देवां उपप्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डं आस्यत्। ऋग्वेद १०। ७२। ८॥ १४ कुमुदिनी।

(१३)

ऐसो मण्डल तेज चक्र तोहि घेरि रह्यो है ।
जा में गुरु कवि[15] आय मान विन अस्त लह्यो है ।
पास तिहारे छीन म्लान द्विज राज[16] कलाधर[17] ।
रहत सदा अति दूर जाय उन्नत सुषमाधर[18] ।

(१४)

विजय लोभ में आय हाय! खोयो लवणाकर[19] ।
त्वरितवेग रथ मूल्य खो दियो अति ऋजु बनकर ।
श्येन[20] श्वान[21] मदकुम्भ[22] अङ्गना[23] संग पतङ्ग[24] ले ।
होय सनातन विष्णु[25] विष्णुपद[26] पै तू पद दे !

(१५)

कन्यालय में सूर्य ! जाहु किमि सिंहासन तजि ?
तुला परीक्षा छांडि होहु झट वृश्चिक खिजि ?
वनि अधीन अनुसरहु कुजन—नृप—धूम केतु को ।
उच्च मार्ग तजि करहु कुसम्मत सङ्ग नीच को ।

---

१५ वृहस्पति शुक्र १६ चन्द्रमा १७ चन्द्रमा १८ शोभावाला १९ समुद्र २० एक तारापुञ्ज (Cygnus) २१ एक तारापुञ्ज लुब्धक (Sirius) २२ कुम्भराशि २३ कन्याराशि २४ सूर्य २५ पूषा विष्णुः सनातनः २६ आकाश

(१६)

अहो अहल्या-जार[२७] ! उर्वशी-प्रिय पुरूरवा[२८] !
कान्तिनाथ ! मर्य्याद छाँड़ि क्यों यह नई हवा ?
बालक तरु अरु पुष्पिता लता को रस चाखत ।
दिन में वदन छिपाय अन्य देसन निसि भरमत ।

(१७)

पूरब से पा वृद्धि वृथा क्यों पश्चिम धावै ?
छायापति ! निज दोष उदधि में जाय छिपावै ।
किरणभङ्ग, भय, अस्त, जलधि में मज्जन गिरिसों ।
निश्चय मिलै दिनेस ! वारुणी[२९] के सङ्गम सों ।

(१८)

जीवन तोय हमारो तू निज कर[३०] सों खैंचत ।
बरसावत इत नाहिं म्लेच्छ विषयन[३१] मंह फैंकत ।
कर डारत आदित्य ! अदिति[३२] ही के अम्बर[३३] पर !
धात्री[३४] पर करि राग[३५] सोय निम्नगा-पति-घर[३६] ।

---

२७ अहल्या रात्रि अथवा उषा; जार नष्ट वा वृद्ध करने वाला अतएव सूर्य ।
२८ उर्वशी = उरूची=उषा, पुरूरवा=सूर्य । २९ पश्चिम दिशा ।
३० किरण ३१ देशों में ३२ द्यौ ३३ आकाश ३४ पृथ्वी ३५ ल-
लाई ३६ नदियों का पति अर्थात् समुद्र ।

(१९)

वडवा[३७] हित वनि अश्व पाशवी वृत्ति दिखाई ।
सुत तेरे यम मन्द[३८] सृष्टि प्रतिकूल वताई ।
तारा रासी भोग मिटै नहिं प्रेम वासना ।
नीच गृहन में दृष्टि दिये विन रह्यो जात ना ।

(२०)

उदय पूर्व में पाय, पश्चिमासा[३९] को धावत ।
डारत वहां प्रकास यहां अन्धेर मचावत ।
जल थल नभ गिरि मांह छांह के पीछे धावत ।
भूतल-सायिनि ताहि करै; नहिं सरमावत ।

(२१)

पश्चिम जाय यहां पर कर उच्छिष्ट[४०] पठावत ।
लोकवन्धु ! खद्योत[४१] ! नयो यह न्याय चलावत !!
भास्कर ! हत तव कान्ति, आज दोषाकर[४२] चरनन ।
कर करवाल चढावत; मानहानि हिं गिनत न ?

(२२)

एक काल वनि द्वादशार्क[४३] सव देस जरावहु ।
अथवा वेद पढ़ाय यज्ञ मारग में लावहु ।
देहिं तुम्हें यज्ञांस किन्तु पेटहि अव खाली ।
"वाहर खावें मार देहिं घरकन कंह गाली" ।

---

३७ घोड़ी (छाया का रूप) ३८ यमराज और शनि ।
३९ पश्चिम दिशा ४० वाकी ४१ सूर्य ४२ चन्द्रमा ४३ प्रलयकाल में बारहों सूर्य साथ चमकते है ।

(२३)

रवि ! तेरो नहिं दोष, परम तेजोमय उज्वल !
हम ही हैं अतिनीच परम संसारी चञ्चल।
निज चञ्चलता, पाप, कलुष अरु नीच-वासना।
करि तो पर आरोप लखैं यह टेव जात ना।

(२४)

क्षमा करहु, जगचक्षु ! लोकसाक्षी ! अनुचित वहु।
कवि मयूर[४४] सम हृदय-ज्ञान-लव-कुष्ठ मिटावहु।
नहिं देखैं हम दीर्घ घोर अंधियारी[४५] रातें।
चित्रावसु[४६] के पार जांय, दिन की हों वातें।

(२५)

'अपत कटीली डार' सेइ चाहैं कुसुमन को।
'हारे को हरिनाम' 'रामही वल निर्वल को'।
मन ! वनि है कव दास मदन मोहन[४७] चरनन को ?
या लहि है सायुज्य चन्द्रधर[४८]पदकमलन[४९] को ?

---

४४ सूर्यशतककर्ता।

४५ उर्वश्यां अभयं ज्योतिः इन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन् तमिस्राः (ऋग्वेद २. २७. १४)

४६ चित्रावसो स्वस्ति ते पारं अशीय (तैत्तिरीयसंहिता १. ५. ५. ४) चित्रावसु = रात्रि। ४७ विष्णु ४८ शिव। ४९ [illegible] का अनुकरण, व्रजवासी [illegible] से क्षमा प्रार्थना पूर्वक।

कुण्डलिया ।

(गताङ्क से आगे)

"काजर सब कोउ देत है चितवन मांझ विसेख"

चितवन मांझ विसेख देत काजर सव कोई,
सुन्दर सुन्दर रूप सृष्टि विच देखन सोई ।
कोटि काम अभिराम वसै प्रभु हृदय सवन के,
जिन को लखनन कोउ जतन इक करत न मन के ।
'रसिक' एक काजर वही ब्रह्म जाहि वल देख,
काजर सव कोउ देत है चितवन मांझ विसेख ॥ १८

"सुखसों सोउ कुंभार नित चोर न मटिया लेय"

चोर न मटिया लेय फेरि चिन्ता किहि कारन,
जीव अमर अरु अजर सकै को मारन जारन ?
देह निराली जीवसों तनिक न वाकी साथ,
मूढ़ रहैं नित रत वृथा अन्त मलैं निज हाथ ।
नाश होत तन को 'रसिक' जीव न वाधा देय,
सुखसों सोउ कुंभार नित चोर न मटिया लेय ॥ १९

"कूकर चौक चटाइए चाकी चाटन जाय"

चाकी चाटन जाय दौरि कूकर घर मांही,
जन्म जन्म अभ्यास जात जनु छिन में नाहीं ।
इन्द्रिय इक सुख भोगि चहत नित नये निरन्तर,
दिन दिन आतम और वढ़त परमातम अन्तर ।
कवहु न लघु लघुता तजै 'रसिक' कहै समुझाय,
कूकर चौक चटाइए चाकी चाटन जाय ॥ २०

"जिहिं घर जितो बधावनो तिहिं घर तितनो सोग"

तिहिं घर तितनो सोग भोग जितनो ही बाढै,
रोग निरन्तर बढै अन्त जीवन हू काढै ।
साथ साथ सुख संपदा संतति दुख समुदाय,
जानत हू बुध जन सदा माया मोह भुलाय ।
'रसिक' तजहु संसार सुख दुःख मूल सब भोग,
जिहिं घर जितो बधावनो तिहिं घर तितनो सोग ॥ २१

"किस पर तत्ता जल चिड़ी गञ्जी नाम कपूरि"

गञ्जी नाम कपूरि रहे तुम किस पर भूले ?
यह क्षणभंगुर देह फिरत छे मन में फूले ।
उबटन तेल फुलेल वस्त्र भूषण वर सज्जित,
रोग दोष गन मूल बहत तन होत न लज्जित ।
मोह तजहु माया 'रसिक' देह न ममता–भूरि,
किस पर तत्ता जल चिड़ी गञ्जी नाम कपूरि ॥ २२

"लै पारोसिन झौंपड़ी नित उठ करती रार"

नित उठ करती रार मोहि यह बात न भावत,
कुछ दिन वासा देय विविध बहु नाच नचावत ।
काश श्वास ज्वर शीतला आदिक रोग अनेक,
घेरे रहत शरीर को पल न सुस्थ जो एक ।
पुनि अस्थिर देहहिं 'रसिक' दौरि डार हरिद्वार,
लै पारोसन झौंपड़ी नित उठ करती रार ॥ २३

(क्रमशः)

पुराण-प्रसङ्ग।

धर्मपरायण रीछ।

(१)

सायंकाल हुआ ही चाहता है। जिस प्रकार पक्षी अपना आराम का समय आया देख अपने अपने खोतों का सहारा ले रहे हैं उसी प्रकार हिंस्र श्वापद भी अपनी अव्याहत गति समझ कर कन्दराओं से निकलने लगे हैं। भगवान् सूर्य प्रकृति को अपना मुख फिर एक वार दिखाकर निद्रा के लिए करवट लेने वाले ही थे, कि सारी अरण्यानी "मारा है, बचाओ, मारा है" की कातर ध्वनि से पूर्ण हो गई। मालूम हुआ कि एक व्याध हांफता हुआ सरपट दौड़ रहा है, और प्रायः दो सौ गज की दूरी पर एक भीषण सिंह लाल आंखें, सीधी पूंछ और खड़ी जटा दिखाता हुआ तीर की तरह उसके पीछे आ रहा है। व्याध की ढीली धोती प्रायः गिर गई है, धनुष बाण बड़ी सफाई के साथ हाथ से च्युत हो गए हैं, नङ्गे सिर विचारा शीघ्रता ही को परमेश्वर समझता हुआ दौड़ रहा है। इसी का यह कातर स्वर था।

यह अरण्य भगवती जन्हुतनया और पूजनीया कलिन्दनन्दिनी के पवित्र सङ्गम के समीप विद्यमान है। अभी तक यहां उन स्वार्थी मनुष्यरूपी निशाचरों का प्रवेश नहीं हुआ था जो अपनी वासनाओं की पूर्त्ति के लिए आवश्यक से चौगुना पचगुना पाकर भी झगड़ा करते हैं, परन्तु वे पशु यहां निवास करते थे जो शान्तिपूर्वक समस्त अरण्य को बांट कर अपना अपना भाग्य आजमाते हुए न केवल धर्मध्वजी पुरुषों की तरह शिश्नोदर-परायण ही थे, प्रत्युत अपने परमात्मा का स्मरण करके अपनी निकृष्ट योनि को उन्नत भी कर रहे थे। व्याध,

अपने स्वभाव के अनुसार, यहाँ भी उपद्रव मचाने आया था । उसने वङ्ग देश में रोहू और झिलसा मछलियाँ और "हासेर डिम" को निर्वंश कर दिया था, बम्बई के केंकड़े और कछुओं को वह आत्मसात् कर चुका था, और क्या कहें मथुरा वृन्दावन के पवित्र तीर्थों तकमें वह बकवृत्ति और विडालव्रत दिखा चुका था । यहाँ पर सिंह के कोपन वदनाग्नि में उसके प्रायश्चित्तों का होम होना ही चाहता है । भागने में निपुण होने पर भी मोटी तोंद उसे बहुत कुछ बाधा दे रही है । सिंह में और उसमें अब प्रायः बीस ही तीस गज का अन्तर रह गया और उसे पीठ पर सिंह का उष्ण निश्वास मालूम सा देने लगा। इस कठिन समस्या में उसे सोम्हने एक बड़ा भारी पेड़ दीख पड़ा । अपचीयमान शक्ति पर अन्तिम कोड़ा मारकर वह उस वृक्ष पर चढ़ने लगा और पचासों पक्षी उसकी परिचित डरावनी मूर्त्ति को पहचान कर अमङ्गल समझकर त्राहि त्राहि स्वर के साथ भागने लगे। ऊपर एक बड़ी प्रबल शाखा पर विराजमान एक भल्लूक को देखकर व्याध के रहे सहे होश पैंतरा हो गये । नीचे मन्त्र बल से कीलित सर्प की भांति जला भुना सिंह और ऊपर अज्ञात कुलशील रींछ । यों कढ़ाई से चूल्हे में अपना पड़ना समझकर वह किंकर्तव्य विमूढ़ व्याध सहम गया, बेहोश सा होकर टिक गया, "न ययौ न तस्थौ" हो गया। इतने ही में किसी ने स्निग्ध गम्भीर निर्घोष मधुर स्वर से कहा—अभयं शरणागतस्य ! अतिथि देव ! ऊपर चले आइए । पापी व्याध, सदा छल छिद्र के कीचड़ में पला हुआ, इस अमृत अभय वाणी को न समझ कर वहीं रुका रहा । फिर उसी स्वर ने कहा—"चले आइए; महाराज ! चले आइए। यह आप का घर है । आप अतिथि हैं । आज मेरे बृहस्पति उच्च के हैं जो यह नपावन स्थान आप की चरणधूलि से पवित्र होता है। इस पापात्मा का आतिथ्य स्वीकार करके इसे उद्धार

कीजिए। "वैश्वदेवान्तमापन्नो सोऽतिथिः स्वर्ग संज्ञकः"। पधारिये—यह विष्टर लीजिए, यह पाद्य, यह अर्घ्य, यह मधुपर्क"।

पाठक जानते हो यह मधुर स्वर किसका था ? यह उस रींछ का था। वह धर्मात्मा विन्ध्याचल के पास से इस पवित्र तीर्थ पर अपना काल बिताने आया था। उस धर्मप्राण धर्मैकजीवन ने वंश शत्रु व्याधको हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया; उसके चरणों की धूलि मस्तक से लगाई और उसके लिए कोमल पत्तों का बिछौना कर दिया। विस्मित व्याध भी कुछ आश्वस्त हुआ।

नीचे से सिंह बोला—"रींछ! यह काम तुमने ठीक नहीं किया। आज इस आततायी का काम तमाम कर लेने दो। अपना अरण्य निष्कंटक हो जाय। हम लोगों में परस्पर की शिकार न छूने का कानून है। तुम क्यों समाज नियम तोड़ते हो? याद रक्खो तुम इसे आज रखकर कल दुःख पाओगे। पछताओगे। यह दुष्ट जिस पत्तल में खाता है उसी में छिद्र करता है। इसे नीचे फैंक दो।"

रींछ बोला—"बस मेरे अतिथि परमात्मा की निन्दा मत करो। चल दो। यह मेरा स्वर्ग है, इसके पीछे चाहे मेरे प्राण जांय, यह मेरी शरण आया है, इसे में नहीं छोड़ सकता। कोई किसी को धोखा या दुःख नहीं देता है जो देता है वह कर्म ही देता है। अपनी करनी सब को भोगना पड़ती है"।

"मैं फिर कहे देता हूं तुम पछताओगे", यह कह कर सिंह अपना नख काटते हुए दुम दबाए चल दिया।

(२)

प्रायः पहर भर रात आ चुकी है। रींछ अपने दिन भर के भूखे प्यासे अतिथि के लिए, सूर्योढ अतिथि के लिए, कन्दमूल फल लेने गया है। परन्तु व्याध को चैन कहां? दिन भर की हिंसा प्रवण प्रवृत्ति रुकी हुई हाथों में खुजली पैदा कर रही है। क्या करै? बिजली

के प्रकाश में इसी वृक्ष में एक प्राचीन कोटर दिखाई दिया और उस में तीन चार रींछ के छोटे छोटे बच्चेमालूम दिये। फिर क्या था? व्याध के मुंह में पानी भर आया। परन्तु धनुष बाण तलवार रास्ते में गिर पड़े हैं यह जान कर पछतावा हुआ। अकस्मात् जेब में हाथ डाला तो एक छोटी सी पेशकब्ज! बस काम सिद्ध हुआ। अपने उपकारी रक्षक रींछ के बच्चों को काटकर कच्चा ही खाते उस पापात्मा व्याध को दया तो आई ही नहीं देर भी न लगी। वह जीभ साफ कर के ओठों को चाट रहा था कि मार्ग में फरकती बांई आंख के अशकुन को "शान्तं पापं नारायण! शान्तं पापं नारायण" कहकर टालता हुआ रींछ आगया और चुने हुए रस पूर्ण फल व्याध के आगे रखकर सेवक के स्थान पर बैठ कर बोला—"मेरे यहां थाल तो हैं नहीं, यही पत्ते हैं, पुष्पं पत्रं फलं तोयं अतिथि नारायण की सेवा में समर्पित हैं"। जब व्याध अपने दग्धोदर की पूर्त्ति कर चुका तो इस ने भी शेषान्न खाया और कुछ प्रसाद अपने बच्चों को देने के लिए कोटर की तरफ चला।

कोटर के द्वार पर ही प्रेमपूर्वक स्वागत मय 'दादा हो' न सुनकर उसका माथा ठनका। भीतर जाकर उसने पैशाचिक लीला का अवशिष्ट चर्म और अस्थि देखा। परन्तु उस वीतराग के मन में "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः?"। वह उसी गम्भीर पद से आकर लेटे हुए व्याध के पैर दबाने लग गया। इतने में व्याध के दुष्कर्म ने एक पुराने गीध का रूप धारण कर रींछ को कह दिया कि तेरी अनुपस्थिति में इस कृतघ्न व्याध ने तेरे बच्चे खा डाले हैं। व्याध को कर्मसाक्षी में विश्वास न था, वह चौंक पड़ा। उसका मुंह पसीने से तर होगया, उसकी जीभ तालू से चिपक गई और वह इन वाक्यों को आने वाले यम का दूत समझकर थर थर कांपने लगा।

बूढ़े रीछ के नेत्रों में अश्रु आगये; परन्तु वह खेद के नहीं थे हर्ष के थे। उसने उस गृध्र को सम्बोधन करके कहा "धिक् मूढ ! मेरे परम उपकारी को इतउल्वण शब्दोंसे स्मरण करता है ! (व्याध से) महाराज ! धन्य भाग्य उन बच्चों के जो पाप में जन्मे और पाप में बढ़े; परन्तु आज आपकी अशनाया निवृत्ति के पुण्य के भागी हुए ! न मालूम किन नीचातिनीच कर्मों से उनने यह पशुयोनि पाई थी, न मालूम उनने इस गर्हित योनि में रह कर कितने पाप कर्म और करने थे। धन्य मेरे भाग्य ! आज वे 'स्वर्गद्वारमपावृतं' में पहुंच गए ! हे मेरे कुलतारण ! आप कुछ भी इस बात की चिन्ता न कीजिए। आपने मेरे 'सप्तावरे सप्त पूर्वे' तरा दिए !" जिसे मद नहीं और मोह नहीं वह रींछ व्याध का सम्बाहन कर के संसार यात्रा के अनुसार सो गया, परन्तु उसने अपना निर्भीक स्थान व्याध को दे दिया था, और स्वयं वह दो शाखाओं पर आलम्बित था। चिकने घड़े पर जल की तरह पापात्मा व्याध पर यह धर्माचरण और तज्जन्य शान्ति प्रभाव नहीं डाल सके; वह सारे गिनता जागता रहा और उस के कातर नेत्रों से निद्रा भी डर कर भाग गई। इतने में गश्त करते वहीं सिंह आ पहुंचे और मौका देख कर व्याध से यों बोले— "व्याध ! मैं वन का राजा हूं। मेरा फर्मान यहां सब पर चलता है। कलसे तू यहां निष्कण्टक रूप से शिकार करना। परन्तु मेरी आज्ञा न मानने वाले इस रींछ को नीचे फैंक दे।" पाठक ! आप जानते हैं कि व्याध ने इस यत्न पर क्या किया ? रींछ के सब उपकारों को भूल कर उस आशामुग्ध ने उस को धक्का देही तो दिया। आयुः शेष से, पुण्यबल से, धर्म की महिमा से, उस रींछ का स्वदेशी कोट एक टहनी में अटक गया और वह जाग कर सहारा ले कर ऊपर चढ़ आया। सिंह ने अट्टहास करके कहा "देखो रींछ ! अपने अतिथि चक्रवर्ती

का प्रसाद देखो । इस अपने स्वर्ग, अपने अमृत को देखो । मैंने तुम्हें सायङ्काल क्या कहा था ? अब भी इस नीच को नीचे फैंक दो "। रींछ बोला "इस में इनने क्या किया ? निद्रा की असावधानता में मैं ही पैर चूक गया, नीचे गिरने लगा। तू अपना मायाजाल यहां न फैला । चला जा" । रींछ उसी गम्भीर निर्भीक भाव से सो गया। उस को परमेश्वर की प्रीति के स्वप्न आने लगे और व्याध को कैसे मिश्र स्वप्न आये, यह हमारे रसज्ञ पाठक जान ही लेंगे । ' नहि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ' ।

(३)

ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर रींछ ने अलस व्याध को जगाया, और कहा. "महाराज मुझे स्नान के लिये त्रिवेणी जाना है और फिर लोकयात्रा के लिये फिरना है, मेरे साथ चलिये, मैं आप को इस कांतार से बाहर निकलने का मार्ग बतला दूं । परन्तु आप उदास क्यों हैं ? क्या आप के आतिथ्य में कोई कमी रह गई ? क्या मुझ से कोई कसूर हुआ ? " व्याध बात काट कर बोला " नहीं मेरा ध्यान घर की तरफ गया था । मेरे पर अन्न वस्त्र के लिये धर्मपत्नी और बहुत से बालक निर्भर हैं । मैंने सुख से खाया और सोया, परन्तु वे बिचारे क्षुत्क्षामकण्ठ कल से भूखे हैं, उनके लिये कुछ पाथेय नहीं मिला " । रींछ ने हाथ जोड़कर कहा " नाथ आज आप की छुरिका त्रिवेणी में यह देह स्नान करके स्वर्ग को जाना चाहता है । यदि इस दुर्मांस से माता और भाई तृप्त हों, और इस जरच्चर्म से उन की जूतियां बने तो आप ' तत् सदय ' करें । धन्यभाग्य आज यह अनेक जन्मसंसिद्ध आप के वदनाग्नि में परागति को पावै" । व्याध ने बरछी उठाकर रींछ के हृदय में झोक दी । प्रसन्न वदन रींछ ऋतुपर्ण की तरह बोला—

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति।

उस उदार महामान्य के आगे कर्ण का वह वाक्य क्या चीज़ था—

क्रियदिदमधिकं मे यद्द्विजायार्थयित्रे,
कवचमरमणीयं कुण्डले चार्पयामि।
अकरुणमवकृत्य द्राक्कृपाणेन तिर्यग्,
वहलरुधिरधारं मौलिमावेदयामि॥

(४)

सारा अरण्य स्वर्गीय प्रकाश और सुगन्ध से खिल रहा है। अनाहतनाद का मधुर स्वर कानों को आप्यायित कर रहा है। दिग्दिगन्तर से हरि हरि ध्वनि आकाश को पवित्र कर रही है। उसी वृक्ष के सहारे एक दिव्य विमान खड़ा है और परात्पर भगवान् नारायण स्वयं रींछ को अपने चरणकमल में ले जाने को आये हैं। भगवान् मृत्युञ्जय भी अपनी चन्द्रकलाओं से उस शरीर को आप्यायित कर रहे हैं। देवाङ्गनायें उसकी सेवा करने को और इन्द्रादिक उस की चरणधूलि लेने को दौड़े आ रहे हैं। जिस समय उस वर्छी का प्रवेश उस धर्मप्राण कलेवर में हुआ, भगवान् नारायण, आनन्द से नाचते और क्लेश से तड़फते, लक्ष्मी को ढकेल, गरुड़ को छोड़ और शेषनाग को पेल, 'न मे भक्तः प्रणश्यति' को सिद्ध करते हुए दौड़ आये और रींछ को गले लगा कर आनन्दाश्रु गद्गद कण्ठ से बोले—"प्रयाग में बहुत बड़े बड़े इन्द्र, वरुण, प्रजापति और भरद्वाज के यज्ञ हुए हैं, परन्तु सब से अधिक महिमा-पूर्ण यज्ञ वह हुआ है जिस की पूर्णाहुति अभी हुई है। प्रिय ऋक्ष! मेरे साथ चलो, और हे नराधम! तू अपने नीच कर्मों + + +"। ऋक्ष ने भगवान् के

चरण पकड़ कर कहा—" नाथ ! यदि मेरा चावल भर भी पुण्य है तो इस पुरुष रत्न को वैकुण्ठ ले जाइए । इस के कर्म का फल भोगने को मैं घोरातिघोर नरक में जाने को तैयार हूं " । भगवान् विस्मित होकर बोले "यह क्या ? लोक संग्रह को उत्सन्न करते हो ? ।" ऋक्ष हाथ जोड़ कर बोला:—

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा ।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिदपराध्यति ।

भक्त का आग्रह माना गया । भगवान्, व्याध और ऋक्ष एक ही विमान में वैकुण्ठ गए ।

भारतवासियो ! यह तुम्हारे ही महाभारत की कथा है । परन्तु अब पुराणों की भक्ति कहने ही की रहगई । पुराणों को सिवाय " वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे " के और किस वासना से कौन पढ़ता है ?

* * *

आयुर्वेद का प्राचीनत्व ।

भारत की सभ्यता प्राचीन है अथवा नवीन, इन दो विषयों पर देशी और विदेशी पण्डितों में बहुत दिनों से वाद विवाद चलरहा है । ग्रीक सभ्यता के अभिमानी पश्चिमी पण्डितों में बहुत से कहते ही नहीं, विविध प्रमाणों से यह सिद्ध करने में भी सचेष्ट होते हैं, कि भारत की सभ्यता स्वदेश की उत्पन्न नहीं है । विशेषतः, भारतीय आयुर्वेद के अनेक तत्त्व हिपोक्रेटिस के ग्रन्थों वा मतों से लिए गए हैं, सुतरां भारतीय प्राचीन पण्डितों की मौलिकता (निजता)

कुछ भी नहीं यह भी उनका मत है । युरोपीय पण्डित जो कहने हैं और नाना उपायों से जिसे सप्रमाण सिद्ध करने को उद्यत हैं, उस विषय में हम लोगों को कुछ वक्तव्य है या नहीं, इस बात का विचार पूर्वक देखने का समय उपस्थित हुआ है । यदि वेद, वेदाङ्गादि से प्रमाण संग्रह कर के दिखला सकें कि सभ्यता का फल स्वरूप हम लोगों का आयुर्वेद आधुनिक नहीं हैं, उस के मूल सूत्र और अनेक उपकरण वेद वेदाङ्ग से संगृहीत हुए हैं, तो इस का प्राचीनत्व निःसंदेह सिद्ध हो जायगा ।

वेद, मन्त्र और ब्राह्मण इन दो भागों में बटा हुआ है (१) । मन्त्र भाग संहिता नाम से प्रसिद्ध और अति प्राचीन है । ब्राह्मणभाग वेदसंहिता का भाष्यरूप है । ऋग्वेदसंहिता कितनी प्राचीन है, यह आज तक निश्चित नहीं हुआ । वेद पहले एक ही था (२) । सब को सुगमता से बोध कराने के लिए पराशर के पुत्र व्यास ने, वेद का विभाग कर के, वेदव्यास नाम पाया । पाणिनि मुनि का समय एक प्रकार निर्णीत है तो भी, उन के ग्रन्थ में लिखित महामुनि व्यास किस समय भारत में प्रादुर्भूत हुए, इस का निश्चित प्रमाण आजतक नहीं प्राप्त हुआ । इस से वेद, विशेषतः ऋग्वेदसंहिता, कितनी प्राचीन है यह कोई नहीं कह सकता, भविष्यत् में कह सकेगा कि नहीं इस में भी सन्देह है । यूरोपीय पण्डितों ने, केवल अनुमान ही के भरोसे ऋग्वेद का जो समय निर्णय किया है उस पर किसी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता ।

---

१ ब्राह्मणे मन्त्रेतरवेदाभगः । सिद्धान्तकौमुदी, टीका ।

२ एक एव पुरावेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ भागवत ।

भगवान् शाक्यसिंह ईसा से पहले छठी शताब्दी में विद्यमान थे, यह सब लोगों को सम्मत है। उन के पहले पाणिनि और वेदव्याख्याकार यास्क, और इन दोनों के भी पहिले महावैयाकरण शाकटायन, आविर्भूत हो चुके हैं। ऋग्वेद के प्रातिशाख्य में, यास्ककृत निरुक्त में, पाणिनि के सूत्रों में और पातञ्जल महाभाष्य में, शाकटायन का नामोल्लेख है (१) ये शाकटायन कितने प्राचीन वैयाकरण हैं, यह सप्रमाण सिद्ध न हो सकने पर भी, हम कई शास्त्रों के पौर्वापर्य को विचारने से सहज में ही अनुमान कर सकते हैं। शाकटायन ने अपने उणादि सूत्रों में **पायु** (anus) **जायु** (औषध और वैद्य), **मायु** (पित्त), **आयु और भिषक्** (वैद्य) प्रभृति आयुर्वैदिक शब्दों का व्युत्पादित किया है (२)। शाकटायन के पहले भी ये आयुर्वेद के शब्द विशेषरूप से प्रचलित थे और इन शब्दों की व्युत्पत्ति (बनावट) दिखलाने के लिए उन को कुछ सूत्र बनाने हुए।

वैदिक मन्त्र और ब्राह्मणों के बहुत दिनों पीछे कल्प सूत्रों की रचना हुई है। ये कल्पसूत्र, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र के भेद से तीन प्रकार के हैं। वेद के अन्तिम भाग उपनिषद् में कल्प-

---

(१) यास्क निरुक्त—नामान्याख्यातजातीनि शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च। पाणिनिसूत्र—लङः शाकटायनस्य ३।४।१११॥ व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ८।३।१८॥ वैयाकरणानां शाकटायनो रथमार्गे आसीनः शकटसार्थं यान्तं नोपलेभे। पातञ्जल सूत्रभाष्य ३।२।१२५॥

(२) उणादि सूत्र १।१, १।२, १२७ देखो।

सूत्र का उल्लेख है (१)। आश्वलायन श्रौतसूत्र में यज्ञीय पशुओं के किस अङ्ग को कौन पाता है इस विषय के निरूपण में शारीरस्थान के अनेक शब्द प्राप्त होते हैं (२)। अवश्य इस जगह यह कहना होगा कि सभी कल्पसूत्रों का विषय वेद से ही लिया गया है। दाक्षीपुत्र, पणिवंशोद्भव, अष्टाध्यायीकर्ता पाणिनि ने शाक्यसिंह के बहुत पहले गान्धार देश के शलातुर नगर में जन्म लेकर उस स्थान को चिरस्मरणीय किया था। उन की अष्टाध्यायी के सूत्रों में कल्पसूत्रों का उल्लेख है। (३) इसलिए बौद्धधर्म के आविर्भाव के पहले ही कल्पसूत्र बने हैं। अतएव कल्पसूत्रों में लिखित आयुर्वेद सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द ख्रिस्ट से पहले सातवें वा आठवें शतक में प्रचलित थे यह सहज में ही जाना जाता है। अर्थात् वर्तमान समय से प्रायः तीन हजार वर्ष पहले भी कल्पसूत्रों का उपादान वेद में वर्तमान था, यह कहना युक्तिशून्य नहीं है। इन कल्पसूत्रों के बनने के समय भारतवर्ष में नानाविध विषयों की उन्नति की पराकाष्ठा हो गई थी। वह सूत्रों का समय भारतवर्षीय शास्त्रों में सदा प्रसिद्ध हुआ है। उस समय कई तरह की विद्याओं का सूत्रपात और यथासाध्य उन्नति भी हुई। जिन को जिस जिस विषय में रुचि और ज्ञान था उनने उस उस विषय के ग्रन्थ बनाकर उस समय के मनुष्यों के अति दुर्गम ज्ञान मार्ग को यथासा-

---

(१) तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पः * * *। मुण्डकोपनिषत् १।१।५।

(२) ६।९।२-१८ आश्वलायन श्रौतसूत्र देखो।

(३) पुराणप्रोक्तेषुब्राह्मणकल्पेषु।

ध्य सुगम किया और वे ही हम जैसे हतभाग्य और परपद-दलित मनुष्यों को भारतीय इतिहास की आलोचना के पथप्रदर्शक हुए।

यहां यह आपत्ति हो सकती है कि माना, आयुर्वेदके मूल उपादान वेद, वेदाङ्ग में मिल सकते हैं। तो इस के द्वारा आयुर्वेद का प्राचीनत्व कैसे सिद्ध हुआ ? वेद किस समय वना है, इसका प्रमाण कोई नहीं देसकता। इसी से प्रतिज्ञात विषय के समय का निर्णय नहीं होता। वेद का प्राचीनत्व सिद्ध करने के लिए यदि आर्य शास्त्रों में कुछ है, तो उस को दिखलाना चाहिए। उक्त आपत्ति का उत्तर देने के लिए ज्योतिःशास्त्र में जो कुछ प्रमाण हैं, उन्हें यहां उद्धृत करेंगे। दुःख का विषय है कि यह ज्यौतिष की गणना भी भ्रम और प्रमाद से पूर्ण है ऐसा वेन्टर्ली, आर्कडेकन प्रैट प्रभृति पाश्चात्य पण्डितों ने सभ्य समाज में प्रचारित किया है। सप्तदश शताब्दी के प्रारम्भ में जिन महाराज जयसिंह ने युरोपीय ज्यौतिषियों की गणना शुद्ध की है, उन महाराज के समान खगोलवेत्ता आज भी भारतवर्ष में नहीं हैं। हम आशा करते हैं कि, महामति भास्कराचार्य के अनुयायी होकर इस समय ब्रह्मगुप्तादिकों के समान विद्वान् उत्पन्न होंगे और पुरातन ज्योतिःशास्त्र के भ्रमों का संशोधन करेंगे। आदित्यदास के पुत्र अवन्ती के ज्यौतिषी वराहमिहिर ईसा की छठी शताब्दी के हैं। उन की गणना से वर्तमान समय से ४३५४ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर ने राज किया था। वेद-विभागकर्ता वेदव्यास युधिष्ठिर के पितामह थे। इससे वराहमिहिर की गणना से ४३५४ वर्ष से भी पूर्व वेद विद्यमान था। राजतरङ्गिणीकार कल्हण की गणना से वराहमिहिर की गणना की पूरी एकवाक्यता होती है। ज्योतिर्निबन्ध के मत से श्रीकृष्ण के जन्मकाल में ग्रहों की विशेष विशेष राशि में स्थिति के अनुसार गणना से वर्तमान समय तक

४३६० वर्ष होते हैं । इन दो गणनाओं में केवल ६ वर्षों का अन्तर है। यह अन्तर अत्यन्त ही सामान्य है (१)। विष्णुपुराण की गणना से मालूम होता है कि परीक्षित के जन्म से मगध के राजा नन्द के अभिषेक काल पर्यन्त ११९६ वर्ष व्यतीत हुए हैं एवं महापद्म और उनके पुत्रों ने और भी १०० वर्ष तक राज्य किया है। (२) उस के वाद चन्द्रगुप्त को ख्रिस्ट पूर्व ३१५ में राज्य लाभ हुआ। अब इस के अनुसार १२१५ वर्षों में ३१५+११०३ जोड़ देने से परीक्षित का राज्य काल ३४३३ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। विविध शास्त्रों के वेत्ता विलायती ज्यौतिषी कोलब्रुक कहते हैं कि ख्रिस्ताब्द से १४०० वर्ष पहले व्यास मुनि ने वेद विभाग किया। इन दोनों गणनाओं को मिलाकर देखने से प्रतीत होता है कि व्यास मुनि कम से कम ३३०० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। इसलिए वेद ३३०० वर्ष पूर्व तो विद्यमान ही था इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं कर सकते। अर्थात् शाक्यसिंह के पूर्व प्रायः १००० वर्ष के काल में भारतवर्ष में नानाशास्त्रों की आलोचना होती थी। उसी समय **आत्रेय पुनर्वसु** के प्रधान शिष्य **अग्निवेश** ऋषि, **भेल**, **जतूकर्ण**, **पराशर** प्रभृति ने,

---

१ आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड् द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ बृहत्संहिता, सप्तर्षिचाराध्याय

२ यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद्वर्ष सहस्रंतु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥
महापद्मस्तत्पुत्राश्चैकवर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति । विष्णुपुराण ४ । २४ । ३२ ॥

शरीर चिकित्सा के मूलग्रन्थों को, एवं **धन्वन्तरि** के योग्यतम शिष्य **सुश्रुत, गोपुर, पौष्कलावत** आदि ऋषिओं ने शल्यतन्त्र के आदि शास्त्रों की रचना की है। चरक अग्निवेशतन्त्र के और नागार्जुन सुश्रुत ग्रन्थ के द्वितीय संस्करणकर्ता मात्र हैं, उन दोनों ग्रन्थों के प्रणेता नहीं है। (१)

माना कि वराहमिहर और ज्योतिर्निबन्ध की गणना में भ्रम रहगया है, ३३०० वर्ष पहले वेदव्यास वर्तमान थे, यह तो स्वीकार करते हैं। उन्हीं वेदव्यास के पिता ज्यामिति शास्त्र के उत्पादक हैं (२)। आत्रेय पुनर्वसु के छ शिष्यों में अन्यतम शिष्य पराशर तो और भी पूर्व वर्तमान थे, यहां तक कि वे प्राय: ३४०० वर्ष पूर्व थे, यह भी उक्त गणना से अवश्य सप्रमाण होता है। यह पराशर भी अग्निवेश की तरह शरीर चिकित्सा के कर्ता हैं। इनका नाम आयुर्वेद शास्त्र में अनेक स्थानों में लिखा है। सुतरां इन सब प्रमाणों से यह यथासम्भव सिद्ध होता है कि आयुर्वेद के मूल ग्रन्थ ३४०० वर्ष पूर्व बने हैं। पहले कह आए हैं कि आयुर्वेद के मूल उपादान वेद के मन्त्र और ब्राह्मणभाग में इधर उधर बिखरे हुए थे उन सब का संग्रह कर के अग्निवेश पराशर प्रभृति के गुरु आत्रेय पुनर्वसु ने और सुश्रुत आदि के उपदेशक धन्वन्तरि ने अपने अपने शिष्यों को लोकहितकारी आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश दिया। हमारी तुच्छ विचारशक्ति में

---

१ " History of Hiudoo chemistry " Introducion P p. V III-XVI.

(२) पराशराद्धिगतं गर्गेण विशदीकृतम्।
आर्याचार्येण रचितं गितिशास्त्रं प्रचक्षते॥
आर्यभट प्रणीत, दशगीतिका–परिशिष्ट।

यहीं आता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में धन्वन्तरि का नामोल्लेख है। कौशिकसूत्र में वायु, पित्त, और कफ इन तीन धातुओं का नाम मिलता है*।

अब एक बार परीक्षा कर देखना उचित है कि वेद के ब्राह्मण भाग में आयुर्वेद के क्या क्या विषय प्राप्त हो सकते हैं। पहिले ही कहा है कि वैदिक ब्राह्मण भाग भी वेद के ही भीतर है और उस का भाष्यस्वरूप है। यह ब्राह्मण-भाग नाना विद्याओं की, विशेष कर के शरीर तत्त्व की, विस्तृत और गंभीर खान है। मनुष्य जन्म के तत्त्व से लेकर अग्निवेश और सुश्रुतलन्त्र के शारीरकस्थान में जो जो विषय लिखे हैं, उन सब के प्रायः सभी तत्त्व शतपथ, ऐतरेय, गोपथ प्रभृति ब्राह्मणों में पाए जाते हैं। उक्त तीन ब्राह्मणों में शतपथ ब्राह्मण सब में श्रेष्ठ है। इस में नाना विषयों की आलोचना देखने में आती है। भारतीय पुरातत्त्व की आलोचना करनी हो तो इस ब्राह्मण का एकाग्रचित्त होकर प्रत्येक भारतवासी को पाठ करना कर्त्तव्य है। हमारा आलोच्य विषय आयुर्वेद है। इस विषय में उक्त ब्राह्मण में क्या क्या है, उस का लिखना ही हमारा उद्देश्य है। शतपथ ब्राह्मण में लिखित शारीरतत्त्व के साथ अग्निवेश और सुश्रुत ग्रन्थ के शारीरस्थान की तुलना की जाती है—

शतपथ ब्राह्मण।	चरक और सुश्रुत।
अथ यत्पत्नी अश्वस्य संतापमुपानंति प्रजननमेवैतत् क्रियते. यदा वै स्त्रियै च पुंसश्च	चरक द्वारा संस्कृत अग्निवेशतन्त्र, का शारीरस्थान ३य अध्याय, २य श्लोक।

* आश्वलायन गृह्यसूत्र १२ कण्डिका ७म ऋक् देखो। शतपथ ब्राह्मण ४र्थ काण्ड ३य अ०, ४र्थ ब्रा०, २१ मन्त्र में अत्रि और अत्रिगोत्रोत्पन्न आत्रेय का नाम लिखा है। कौशिकसूत्र २६।१।

संतप्यतेऽथ रेत: सिच्यते, तत् ततः प्रजायते, पराङुपावर्त्ति पराग्ध्येव रेत: सिच्यते। शतपथ ब्राह्मण ३ । ५ । ३ । १६

वर्ष में ३६० रात्रि हैं, पुरुष के शरीर में भी ३६० अस्थि हैं, वर्ष में ३६० दिन हैं, पुरुष में भी ३६० मज्जा हैं।

हृदय ही प्राण है या प्राण ही हृदय है, जब प्राण चला जाता है, तब प्राणी काष्ठ के समान भूमि पर सोता है अर्थात् गिर जाता है। (१)

सुश्रुत संहिता शारीरस्थान ३य अध्याय, ३य श्लोक।

दन्त, ओखल और नखों के साथ नरदेह में ३६० प्रकार की अस्थि हैं। सुश्रुत ने ६० प्रकार की अस्थियां गिना कर कहा है कि शल्यतन्त्र में अस्थि संख्या ३०० है। (२)

हे वत्स सुश्रुत! देहियों का हृदय ही चेतना का स्थान है। (३)

(१) त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्य रात्रयस्त्रीणि च शतानि षष्टिश्च पुरुषस्यास्थीनि इत्यादि शतपथ १२ । ३ । २ । ३

प्राणो वै हृदयं यावद्ध्येव प्राणेन प्राणिति तावत्पशुरेव यदास्मात् प्राणोऽक्रामति दार्व्वेव तर्हि भूतोऽनर्थ्यः शेते । शतपथ ३ । ८ । ३ । १५

(२) त्रीणि षष्ट्याधिकानि शतान्यस्थ्नां सह दन्तोलूखलनखैः।

चरक शारीरस्थान ७ । ५

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते, शल्यतन्त्रे तु त्रीण्येव शतानि । सुश्रुत, शारीरस्थान ५म अध्याय।

(३) हृदयं चेतनास्थान मुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम् । सुश्रुत, शारीरस्थान ४र्थ अध्याय ।

स्तोम ही प्राणी का मस्तक है, सुतरां मस्तक तीन पदार्थों से, त्वक्, अस्थि और मस्तिष्क से, बना है। (१) ग्रीवाः पञ्चदश। (ग्रीवाः seven cervical Vertebrae and seven dorsal Vertebrae.) शतपथ १२। २। ४॥

जत्रु, पशु (पशुका) प्रभृति शारीरस्थान के पारिभाषिक शब्द शतपथ ब्राह्मण में हैं। उल्व (amnion) जरायु (uterus) प्रभृति पारिभाषिक शब्द भी इस ब्राह्मण में देखे जाते हैं।

शतपथ और गोपथ ब्राह्मण में शारीरतत्त्व के जो कुछ प्रश्न विवेचित हैं, उन को पढ़ने से विस्मयान्वित होना होता है। ब्राह्मण काल में अति प्राचीन युग में, ऐसी खोज, विस्मय का ही विषय है। प्रश्न ये हैं— मनुष्य कैसे विना दन्त के उत्पन्न होता है, दांत बाल्यावस्था में क्योंकर गिरजाते हैं, और कुछ दिन स्थिर रहकर किस प्रकार शेषावस्था में नाश को प्राप्त होते हैं? बाल्य और वृद्ध काल में सन्तान क्यों नहीं होते? और युवावस्था में ही क्यों होते हैं (२)। विस्तार भय से समस्त अंश का अनुवाद नहीं दिया है। पाठक देखेंगे कि चरक और सुश्रुत में ऊपर लिखे किसी किसी प्रश्न का उत्तर दिया है (३)। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणयुग में आयुर्वेद का तत्वानुसन्धान आरम्भ हुआ, और अग्निवेश और सुश्रुत ग्रन्थों में

---

(१) शिर एवास्य त्रिवृत्। तस्मात्त्रिविधं भवति त्वगस्थि मस्तिष्कः। ६।

(२) शतपथब्राह्मण ११। ४। १। ५–७। गोपथब्राह्मण ३ अपाठक ७म ऋक्।

(३) सुश्रुत, सूत्रस्थान १४श अ० ४३ पृष्ठ। चरक चिकित्सास्थान, वाजीकरणाध्याय।

यथासम्भव विस्तार को प्राप्त हुआ। यों आयुर्वेद अति प्राचीन है, इस विषय में सन्देह नहीं हो सकता।

अथर्ववेद में आयुर्वेद के शारीर स्थान के अनेक पारिभाषिक शब्द हैं। अर्थात् अथर्ववेद में आयुर्वेद विशेपरूप से आलोचित हुआ है, और इसी लिए, चरक, सुश्रुत और चरणव्यूह के लेखके अनुसार, आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग वा उपवेद कहला कर जनसमाज में प्रचारित हुआ है। अथर्ववेद का एक समस्त सूक्त और उस के सायनभाष्य के अंश उद्धृत करते हैं। इस सूक्त का संक्षिप्त विवरण ऋग्वेद के दशम मण्डल में भी विद्यमान है। पढ़ने से मालूम होता है कि ऋग्वेद से ही इस सूक्त को लेकर इस की विशेष व्याख्या अथर्ववेद में की गई है। (१)

---

(१) अक्षिभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया विवृहामि ते॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां विवृहामि ते।
हृदयात्ते परिक्लोम्नो हलीक्षात् पार्श्वाभ्याम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते विवृहामसि॥ (इत्यादि)
अथर्ववेद, द्वितीयकाण्ड, ६।३३। १-७ और ऋक् १०।२।१७-२४
चुबुकात्, ग्रीवाशब्दे नतदवयवभूतानि चतुर्दश सूक्ष्माण्यस्थीनि- उच्यन्ते, बहुवचननिर्देशात्।

उष्णिहा Nape। कीकसाभ्यो जत्रुवक्षोगतास्थिभ्यः from dorsal Vertebrae। अनूक्य Spine, तथा च वाजसनेयकम्—अनूकं त्रय- स्त्रिंशः, द्वात्रिंशद्वा एतस्य करूकराणि, अनूकं त्रयस्त्रिंशम् इति।
(शतपथ १२।२।४।१४।)

अथर्ववेद में "सैकड़ों नाड़ियों" की बात है (१)।

बृहदारण्यक उपनिषद् में बाल के समान सूक्ष्म अनेक नाड़ियां हज़ारों तरह भिन्न होकर, रुधिर को चलाती हैं, इस प्रकार का वर्णन है॥

सुश्रुत छपगया है, उसका अनुवाद भी कदाचित् हुआ है। इसी से कुछ अंश प्रमाण स्वरूप यहां लिखा है, विस्तार भय से पूरा अनुवाद नहीं दिया। (२)

अथर्ववेद में जरायुशब्द है (३)। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि जरायु में गर्भ अधोमुख रहता है और प्रसवकाल में शिर प्रथम

---

(१) शत धमन्यः, ६।९०।२॥ शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः (उपनिषद्)

(२) तावा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तावदणिम्ना तिष्ठन्ति, शुक्लस्य, नीलस्य, पिङ्गलस्य, हरितस्य, लोहितस्य पूर्णाः। बृहदारण्यकोपनिषत्, ४। ३। २० यथाहि वर्णानां पञ्चानामुत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण शबल, बभ्रु, कपिश, कपोत, मेचकादीनां वर्णानामनेकेषामुत्पत्तिर्भवति। (सुश्रुत, प्रमेह निदान।) तत्र केचिदाहुः शिराधमनी स्रोतसामविभागः शिराविकारा एव धमन्यः स्रोतांसि चेति। तन्तु, न सम्यक्, अन्या एव हि धमन्यः स्रोतांसि च शिराभ्यः। (शारीरस्थान ९ अध्याय)। तिर्यग्गतानां तु चतसृणां धमनीनामेकैका शतधा सहस्रधा चोत्तरोत्तरं विभजन्ते, तास्तु असंख्येयाः ताभिरिदं शरीरं गवाक्षितं (?) विविद्धमाततं च। तासां मुखानि रोमकूपप्रतिबद्धानि। यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च। धमनीनां तथा खानि रसो यैरुपचीयते। इत्यादि……

(३) स्वं जरायु गौरिव ६। ४८। ४ ऋग्वेद में भी, एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा।

वाहर निकलता है (१) ऐतरेय ब्राह्मण में उदरी और कामला रोग लिखा है। ७-१५ । श्वित्र (श्वेतकुष्ठ, White leprosy) भी है। ऐतरेय ब्राह्मण ६ । ३३ ।

अथर्ववेद और ऐतरेय ब्राह्मण में जो कुछ है, वह सब चरक और सुश्रुत में वैज्ञानिक रीति से लिखा गया है। (२)

अथर्ववेद में रसायन शास्त्र की विधि प्राप्त होती है, क्यों कि उस में लिखा है कि रुद्र का मूत्र (हरवीर्यपारद) अमर करने वाला होता है। (३)

---

(१) तस्मात् परांचो गर्भा धीयन्ते पराचः सम्भवन्ति । तस्मान् मध्ये गर्भा धृताः । तस्मादमूर्तोऽर्वाञ्चो गर्भाः प्रजायन्ते प्रजात्यै । ऐ० ब्रा० ३ । १०

(२) त्र्यावर्ता सा प्रकीर्तिता । तस्या तृतीयावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥

यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः ।
तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥
आभुग्नोऽभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियाः ।
स योनिं शिरसा याति स्वभावात्प्रसवं प्रति ॥
शारीरस्थान ५ अध्याय ॥

(३) रुद्रस्य मूत्रममृतस्य नाभिः । (भाष्य) अमृतस्य अमरणस्य चिरकालजीवनस्य नाभिः बन्धकं स्थापकमासि । नद्दोभश्च (उ० ४ ।१२९) इति इञ्च । रसशास्त्रोक्तप्रकारेण ईश्वरवीर्यस्य रसस्य आसेवनेन हि सिद्धाः अजरामरत्वं लभन्ते इति तदभिप्रायेण उक्तं रुद्रस्य मूत्रमसि इति । सायनभाष्य ।

यजुर्वेद में यज्ञप्रकरण में हृदय, जिह्वा, वक्षःस्थल, यकृत्, वृक दोनों बगलें, श्रोणि, वसा आदि विविध अङ्गों का सूक्ष्म वर्णन मिलता है (१)।

ऋग्वेद में त्रिधातु अर्थात् वात, पित्त, कफ और ऋतुओं में उत्पन्न होने वाली औषधियें और भिषक् शब्द का लेख है। १। ३४। ६, १०। १७। १, २ और ६ ऋक्।

अथर्ववेद में शरीर के किसी अङ्ग में कटजाने से जो रक्त निकलता है उसको बन्द करने के लिए लाक्षा औषधि का व्यवहार लिखा है। (२)

अथर्ववेद देखने से मालूम होता है कि ज्वर का आविर्भाव पहले पहले वाह्लीकदेश में हुआ है। तब से ज्वर वाह्लीक देश में ी प्रचरित था और मुञ्जवान् तथा महावृष ज्वर का भी वही स्थान ा। (३)

---

(१) यजुर्वेदीय आरण्यक, ६ अध्याय।

(२) "रोहिण्यसि" इति सूक्तेन शस्त्राद्यभिघातजनितरुधिरप्रवाहनिवृत्तये अस्थ्यादिभङ्गनिवृत्तये च लाक्षोदकं कथितं अभिमन्त्र्य उषःकाले क्षतप्रदेशं अवासिञ्चेत्॥ ४। १२। १—७॥

अथर्ववेद में सूक्तों के सूक्त अस्त्रचिकित्सा के भरे पड़े हैं। सभी नाड़ियों से एक साथ रुधिरप्रवाह का भी वर्णन है, यथा अमूर्या यन्ति जामयः सर्वा लोहितवाससः। अभ्रातर इव योषास्तिष्ठन्ति हतवर्त्मनः॥

(३) उकदो अस्य मुञ्जवन्तो उकदो अस्य महावृषाः। यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बाह्लीकेषु न्योचरः॥ ५। २२। ५॥

आयुर्वेद का प्राणिविभाग वेद वेदाङ्गों से लिया गया है (१)। जैनों के आचाराङ्ग सूत्र में जो प्राणिविभाग देखा जाता है इस का भी कुछ अंश वेद वेदाङ्गों से संगृहीत हुआ है (२)

चरक और सुश्रुत की शिष्य शिक्षा विधि भी वेदानुसार ही है। (३)

ऋग्वेद में व्यवहारों का नियमित विभाग देखा जाता है। उस समय चिकित्सक संप्रदाय विद्यमान था उस का प्रमाण प्राप्त होता है (४) सिद्धान्त यह है कि शारीरतत्व, रोगतत्व, भैषज्यतत्व आदि

---

(१) तैत्तिरीय उपनिषत् और सुश्रुतसूत्रस्थान १ अध्याय देखो।

(२) Thus I say there are beings called the animate, *viz*, those who are produced 1. from eggs (birds &c.) 2. from foetus (as elephants &c) 3. from foetus with an enveloping membrane (as cows, buffaloes &c) 4. from fluids (as worms, &c.) 5. from sweat (as bugs, lice, &c.) 6 by coagulation as locusts, ants, &c 7. from sprouts (as butterflies, wagtails, &c) 8 by regeneration (men, gods, hell beings)

आचाराङ्ग सूत्र— Sixth lesson, p. 11 Jain Sutras translated by Herman Jacobi part I.

(३) सांख्यायनगृह्यसूत्र २। १ आश्वलायनगृह्यसूत्र १। २० पारस्कर २। ५ गोभिल २। १० खादिर २। ४ हिरण्यकेशी १। १ आपस्तम्ब पटल ४। १०
सुश्रुत सूत्रस्थान और चरक शारीरस्थान देखो।

(४) नानानं वा ऊनो धियो वि व्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्त मिच्छति इन्द्रायेन्दो परिस्रव।

आयुर्वेद के अङ्ग वेद वेदाङ्गों में यत्र तत्र बिखरे थे। आयुर्वेद के अनुसन्धानकर्ता पण्डितों ने निज निज प्रयोजन के अनुसार चुन चुन, विषयों को फैलाकर लोकहित के लिए आयुर्वेद शास्त्र को उत्पन्न किया। आयुर्वेद भी वेद वेदाङ्गों के ही अन्तर्गत है। इस से हम यह कह सकते हैं कि वेद-वेदाङ्ग जितना प्राचीन है उतना ही आयुर्वेद भी प्राचीन है। किन्तु वैदिक समय के बाद आयुर्वेद का फैलाव मात्र अधिक हुआ है। शाक्यसिंह के आविर्भाव के पूर्व अर्थात् खिस्ताब्द की षष्ठ या सप्तम शताब्दी से भी पूर्व, अग्निवेशतन्त्र और सुश्रुत किसी न किसी स्वरूप में विद्यमान थे, बौद्धशास्त्र की आलोचना करने से यह सहज ही ज्ञात होता है। अब बौद्धशास्त्रों में आयुर्वेद के क्या क्या विषय लिए गए हैं, उस का संक्षिप्त कुछ दिया जायगा।

शाक्यसिंह ने खिस्तपूर्व षष्ठ शताब्दी में भारत के अनेक स्थानों में व्यापक बौद्धधर्म का प्रचार किया। यह सब लोग स्वीकार करते हैं। **अमितायु** और पालिभाषा में लिखित **महावग्ग** नामक बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार ज्ञात होता है कि **जीवक** बुद्ध के समकालीन थे। और भी **महावग्ग** में स्पष्ट लिखा है कि बुद्ध के शिष्य और महाराज **बिम्बिसार** के चिकित्सक **जीवक कौमारभृत्यक** ने उक्त महात्मा की चिकित्सा की थी। (१) सुश्रुत के टीकाकार **डल्लन** क-

---

(१) येच विस्तरतो दृष्टाः कुमाराबाधहेतवः।
षट्सु कायचिकित्सासु ये प्रोक्ताः परमर्षिभिः।

सुश्रुत, उत्तरतन्त्र १ अध्याय।

पार्वतक, जीवक, बन्धक प्रभृतिभिः प्रणीताः कुमाराबाधहेतवः स्कन्दग्रह प्रभृतयः डल्लन टीका।

हते हैं कि जीवक और अन्य आयुर्वेद पडितों के ग्रन्थों से सुश्रुत का उत्तर तन्त्र संगृहीत हुआ है। **चरक** और **सुश्रुत** में आयुर्वेद आठ हिस्सों में बटा है। **वाग्भट** ने इन्हीं विभागों का अनुसरण कर के अपने प्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ **अष्टाङ्ग हृदय** को बनाया है। कौमारभृत्य वा कुमारभृत्या अष्टाङ्ग आयुर्वेद का एक अति प्रसिद्ध अङ्ग है। इस अङ्ग का विशेष वृत्त चरक और सुश्रुत में प्राप्त होता है। जीवक के समय से अर्थात् ख्रिस्त पूर्व्व षष्ठ शताब्दी से कौमारभृत्य नामक शास्त्र अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है। इस शास्त्र के जो पारदर्शी विद्वान् होते थे उन को कौमारभृत्यक उपाधि मिलती थी। जीवक कौमारभृत्यक ने **तक्षशिला** नगर के किसी सुप्रसिद्ध आयुर्वेदीय विद्वान् के पास कौमारभृत्य शास्त्र में शिक्षा पाई थी, यह **महावग्ग** देखने से मालूम होता है। चरक और सुश्रुत के सिवाय और किसी प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थ में इस कुमार भृत्या वा कौमार भृत्य शास्त्र का हाल नहीं है। जीवक ने स्वयं इसको उत्पन्न किया है इसका भी महावग्ग किंवा अन्य बौद्ध ग्रन्थों में लेख नहीं प्राप्त होता है। विशेषतः बौद्ध लोगों ने ब्राह्मणों के रचित जिन शास्त्रों द्वारा जगत् का हित होसकता था, उन के स्वीकार करने में कुछ भी संकोच नहीं किया। यहां तक कि प्रोफेसर मोक्षमूलर प्रभृति युरोपीय विद्वानों ने बौद्धधर्म को आर्य धर्म की बड़ी बेटी कहा है। इस से बौद्ध जीवक ने आत्रेय के शिष्य अग्निवेश की संहिता और धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत कृत सुश्रुतसंहिता को पढ़ करही कौमारभृत्य शास्त्र में पारदर्शिता पाई यह अनुमान करना असङ्गत

For the History of जीवक See महावग्ग VII, I. PP. 173-193, अमितायुर्ध्यान सूत्र 1. PP. 163-164 अङ्गुत्तर निकाय I, XIV. 6. P. 26 and the Jatak, book, I. PP. 14, 16-320.

नहीं है। चरक और सुश्रुत का नाम महावग्ग में स्पष्टरीति से यद्यपि नहीं लिखे है, तथापि आयुर्वेद का सब विवरण और वस्ति कर्म आदि पारिभाषिक संज्ञा उस में लिखे हैं उन को पढ़ने से स्वयं प्रतीत होता है कि उक्त दोनों ग्रन्थों का प्राचीनतर अंश अवश्य ही जीवक के समय में प्रचलित था। "प्राचीन तर" इस विशेषण देने का मतलब यह है कि वर्तमान सुश्रुत में बुद्ध के समकालीन **गौतम सुभूति** का नाम देखा जाता है *। टीकाकार डल्लन के लेखानुसार वह प्रायः दो हजारवर्ष पूर्व **नागार्जुन** द्वारा पुनः संशोधित हुआ है और वर्त्तमान चरक संहिता के अन्तिम ४१ अध्याय पञ्जाबी दृढबल ने जोड़े हैं।

बौद्ध पालिग्रन्थ **सूत्तपिटक** के **परित्त** अध्यायमें मनुष्यदेह के जिन बत्तीस उपादानों की बात की है वे सब प्रायः चरक, सुश्रुत में पाए जाते हैं। वास्तव में हिन्दुओं के चिकित्साशास्त्र के विशेष पक्षपाती बौद्धों ने भी इस शास्त्र का भलीभांति अनुशीलन किया है कोई अधिक नवीन बात नहीं उत्पन्न की। **जीवक** और **नागार्जुन** प्रभृति बौद्ध पण्डितों ने आयुर्वेद की ही औषध व्यवस्थाकी है। **आयुर्वेद गजायुर्वेद** और **अश्वायुर्वेद** का तत्व लेकर ही उनने मनुष्यचिकित्सा और पशुचिकित्सा देशदेशान्तरों में प्रचलित की थीं।

वराहमिहिर कृत बृहज्जातक के टीकाकार **भट्टोत्पल** शक ८८८ अर्थात् ९६६ खिस्ताब्द में वर्तमान थे। उन्होंने अ-

---

* सुश्रुत, शारीर स्थान में, अङ्गुत्तर निकाय में १।१४। २ और **प्रज्ञापारमिता** में सुभूति का नाम लिखा है।

पनी टीका में **चरक** का नाम, लिखा है। इसलिये दशमशताब्दी में चरकसंहिता प्रचलित थी। महाकवि **कालिदास** पञ्चम शताब्दी में और **वराहमिहिर** षष्ठशताब्दी में वर्तमान थे। इन दोनों ने अपने अपने ग्रन्थों में आयुर्वेद का जो जो विषय लिखा है, वह चरक और सुश्रुत के अनुवाद के सिवाय और कुछ नहीं है। इसलिए, यद्यपि उक्त विद्वानों ने चरक और सुश्रुत का नाम नहीं लिखा है, तो भी, ये दोनों ग्रन्थ षष्ठशताब्दी में पढ़े जाते थे, यह सहज ही अनुमान हो सकता है। **बुद्धचरित** के कर्ता **अश्वघोष** **कनिष्क** के समकालिक हैं। **कनिष्क** खिस्ताब्द की प्रथम-शताब्दी में वर्तमान थे और उनने बौद्ध धर्म की सहायता की थी। अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित में स्पष्ट लिखा है कि जो चिकित्सा शास्त्र अत्रि ने नहीं बनाया, वह उन के बाद उन के पुत्र द्वारा बनाया गया है। यह, चिकित्सा ग्रन्थ **अत्रिपुत्रपुनर्वसु** कथित **अग्निवेशतन्त्र** के सिवाय दूसरा नहीं होसकता। इसलिए अग्निवेशतन्त्र ईसा की प्रथम शताब्दी में वर्त्तमान था, इस में सन्देह नहीं है। अश्वघोष ने "चकार" इस लिट् लकार के रूप का प्रयोग किया है। पाणिनि, कलाप आदि प्राचीन वैयाकरणों ने, परोक्ष में अर्थात् जिसे स्वयं नहीं देख सके हैं, ऐसे अर्थ में, लिट् लकार का व्यवहार किया है। इसलिए अत्रिपुत्र पुनर्वसु, अश्वघोष के बहुत पूर्व वर्तमान थे, यह अनुमान करना युक्ति सिद्ध है।

अन्त में हमारा कहना यह है कि युरोपीय पण्डितों ने हमारे प्राचीन शास्त्रों का अनुसन्धान करके हम लोगों के ज्ञान रूप वृत्त की परिधि की बहुत कुछ वृद्धि की है। उन लोगों की असावधानी से या

अन्य कारणों से जगह जगह उन के ग्रन्थों में भ्रम और प्रमाद प्राप्त होता है, उस को विनीत भाव से दिखलाना हम लोगों का कर्तव्य है। हम उसी का कुछ उदाहरण देकर अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं।

अत्रि के पुत्र भगवान् पुनर्वसु के अन्यतम शिष्य भेल ने अपनी संहिता में गान्धारभूमि और स्वर्ग का मार्ग देने वाले राजर्षि नग्नजित की कथा लिखी है। तंजोर राज्य के हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की सूची बनाने वाले बर्नेल साहब ने लिखा है "The repeated mention of गान्धार and the neighbouring countries suggests that it was composed thereabout, and therefore probably under Greek influences" p. 64. इस प्रकार कहना उन के समान पण्डितों को उचित नहीं है। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण में गान्धार और नग्नजित का नाम प्राप्त होता है। विशेषतः, भेल संहिता में चन्द्रभागातनय पुनर्वसु यह प्रयोग देखा जाता है। महामति अद्वितीय वैयाकरण पाणिनि मुनि ने इस शब्द और इस के समान अन्य शब्दों को विचार कर सूत्र बनाया है "अवृद्धाभ्यो नदी मानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ४। १। ११३"। इस सूत्र के प्रयोगों को देखकर मन में आता है पुनर्वसु की माता का नाम चन्द्रभागा था। चन्द्रभागा नाम की नदी सिन्धु नदी की शाखा भी है। रस सार ग्रन्थ कर्ता अपने ग्रन्थ के अन्त में लिखते हैं कि बौद्धों के मत को जान कर रस सार लिखा है और भोट देशी बौद्ध इसी प्रकार समझते हैं। इसे देख बर्नेल साहब लिखते हैं "By Buddhas he probably meant the Mahommedans * * * though studies of this nature were

much pursued by the late Bauddhas" ऐसा कहना उन के लिए शोभा नहीं देता। यहां पर बौद्ध मुसलमान नहीं हैं। संस्कृत साहित्य के इतिहास लेखक वेबर साहब ने पाणिनि सूत्रों में श्रमण शब्द देख कर सिद्धान्त किया है कि यह शब्द तैत्तिरीय आरण्यक एवं बृहदारण्यक उपनिषद् में भी बौद्ध सन्यासी वाचक ही उल्लिखित है। वेबर और बर्नेल दोनों ही ने पातञ्जल महाभाष्य खिस्ताब्द की सातवीं या आठवीं शताब्दी का बना है यों कहते भी नहीं संकोच किया!! इस प्रकार युरोपीय पण्डितों के अनेक भ्रम हैं।

हिन्दुओं के आयुर्वेद में वात, पित्त, कफ इन तीन धातुओं का वैषम्य ही सब रोगों का कारण है, यह सविस्तर आलोचित हुआ है। उक्त तीन कारणों से पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र "humoral pathology" का भी कुछ कुछ सादृश्य होता है। इतना सादृश्य विना ऋण लिए नहीं हो सकता। युरोपीय पण्डित इन तत्वों को हिन्दुओं का उत्पन्न किया नहीं स्वीकार करना चाहते। ग्रीक चिकित्सक हिपक्रितिस का उत्पन्न किया यह तत्व आधुनिक भारतवर्ष में लाया गया ऐसा उन लोगों का मत है। फरासीसी पण्डित लिएटार्ड ने हिन्दुओं के आयुर्वेद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आलोचना कर के कहा है कि हिन्दुओं में त्रिधातु तत्व हिपक्रितस के जन्मकाल से पूर्व विद्यमान था, ऐसा निश्चयरूप से सिद्ध है। तब हिन्दुओं का चिकित्सा शास्त्र ग्रीक वालों से प्राचीन माना जायगा यही नहीं; ग्रीक लोगों ने ही हिन्दुओं से यह तत्व लिया है, यह भी अनुमान हो सकता है। हम सिद्ध करना चाहते हैं कि हिपक्रिटिस के पूर्व उक्त त्रिधातु तत्व हिन्दुओं के शास्त्रों में विद्यमान था। अथर्ववेद में एक जगह "वातीकृतनाशनः" (१) इस शब्द का प्रयोग है। इस शब्द

(१) अथर्ववेद संहिता—VI, 44, 3. (?)

का स्पष्ट अर्थ "वात कोप का नाशकारी" है। इस के सिवाय और किसी प्रकार का अर्थ यहां सङ्गत नहीं है। ब्लूमफिल्ड और जौलि साहबों ने भी उक्त अर्थ को स्वीकार किया है। यों अथर्ववेद के समय में वात के प्रकोप से पीड़ा होती है यह तत्व वर्तमान था। अथर्ववेद को जो लोग अत्यन्त आधुनिक कहते हैं वे भी हिपक्रितिज् से परवर्त्ती कहने का साहस नहीं करेंगे (१)

और भी एक प्रमाण देते हैं। बौद्धों के विनयपिटक में **आनन्द** को **बुद्धदेव** ने कहा है कि दोष से पीड़ा उत्पन्न हुई है उस को अच्छा करो (२)। इस दोष शब्द का आयुर्वेदानुसार "त्रिधातु का वैषम्य" अर्थ है। इस का अंग्रेजी अनुवाद Disturbance of the humours है। **रिसडेविडस** और **ओलडेनबर्ग** के मत से **विनयपिटक** के जिस अंश में यह कथा है वह अंश बुद्ध निर्वाण के १५० वर्ष बाद बना है। यों विनयपिटक का उक्त अंश खिस्ताब्द पूर्व ४००-५५० के मध्य में बना है। **हिपक्रितिस का** जन्मकाल ४६० वर्ष खिस्ताब्द के पूर्व है। उसने प्रायः सौ वर्ष की अवस्था में देह त्याग किया। यों हिपक्रितिस के जीवनकाल में ही विनयपिटक का उक्त अंश बना था, यह स्वीकार करना होता है। उस के जीवनकाल में ही उस के उत्पन्न किए तत्व भारतवर्ष में आए और मनुष्य समाज में प्रचरित हुए यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। विशेषतः जब सिकन्दर के भारत में प्रवेश के पहले अर्थात् ३२७ पूर्व खिस्ताब्द के पहिले, ग्रीक लोगों के साथ भारत-

---

(२) M. Lietard; Bulletin de 1' Academie de Medicin Paris, mai, 5, 1896, et mai 11, 1897.

(३) विनयपिटक—Introduction P XX III.

ासियों के घनिष्ठ संपर्क का कोई प्रमाण नहीं है, तब **विनयपिटक**
ऽखित त्रिधातुतत्व भारतवासियों ने ग्रीक लोगों से प्राप्त किया
यह कैसे स्वीकार किया जाय। इस प्रकार आयुर्वेद का त्रिधातु-
त्व, ग्रीक लोगों से नहीं लिया गया, वह हिपक्रितिस के समय
, सम्भवतः उस के भी बहुत पूर्व, भारतवर्ष में प्रचलित था, यह
ना माने निर्वाह नहीं है।

युरोपीय विद्वान् ग्रीक सभ्यता के पक्षपाती है, और जन्म से
ऽकर ग्रीक भाव की उलट पुलट से पुष्ट हुए हैं। तब उन का ग्री
; पक्षपात स्वाभाविक ही है। इस के लिये उनको दोष देना व्यर्थ
। हमारे यहां कितने लोग अपना शास्त्र पढ़ते हैं? और कितने पु-
ातत्वानुसंधान करते हैं? युरोपियन विद्वान् ही हम लोगों के पथ-
ाद्रर्शक हैं। उन लोगों का अनुसरण करके यदि भारत के इतिहास
ा संग्रह हो सके तभी आनन्द की बात है। नहीं तो केवल उनके
ोषों को दिखाने से कोई फल नहीं है *।

गिरजाप्रसाद द्विवेदी।

---

* वङ्गीय साहित्यपरिषत् की आज्ञा से, साहित्यपरिषत् पत्रिका में प्रकाशित डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय और श्रीनवकान्तगुह कविभूषण के लेख का अनुवाद। (समा० सं०)

जय भारतभूमि !

इस विश्व में निज नाम की महिमा पुनीत प्रचारिणी ।
सद्धर्म रक्षण हेतु मा ! निज शक्ति बहु विधि धारिणी ।
दुर्दान्त दानव दल सकल निज दैवबल संहारिणी ।
जय जय सुभारतभूमि ! भगवति ! सर्वमङ्गलकारिणी ॥ १

*

मनु, अत्रि, भारद्वाज की जननी ! सुविद्याशालिनी ।
तव शक्ति अतुलित मात ! जग विख्यात सुर-नर-पालिनी ॥
शुभनीति सात्विक धर्म सत्यव्रत परम संचारिणी ।
जय जय सुभारतभूमि ! भगवति ! सर्वमङ्गलकारिणी ॥ २

*

अज, रघु, दिलीप, ककुत्स्थ, देव व्रतसदृश रणवीरवर ।
उत्पन्न कर वीरप्रसू ! गोविप्रकुल का त्रास हर ॥
हे समर-निपुणा ! चण्डिका ! दुर्भाग्य-दुर्गति-हारिणी
जय जय सुभारतभूमि ! भगवति ! सर्वमङ्गलकारिणी ॥ ३

*

तीस कोटि सुकण्ठ कलकल नाद से विकराल है ।
हे कालिका ! शिव शक्ति है तू काल की भी काल है ।
अमरमाता ! निर्जरा ! अभया ! अभय-विस्तारिणी !
जय जय सुभारतभूमि ! भगवति ! सर्वमङ्गलकारिणी ॥ ४

श्री राधाकृष्ण मिश्र ।

काशी।

(१)

आर्यधर्म में, हिन्दू सभ्यता में और भारतवर्षीय विद्या में, जो कुछ दृढ़, दुर्भेद्य और सारभूत है, वह 'काशी' इन दो मधुर अक्षरों में आजाता है। घर के कुतर्कों और बाहर के विधर्मियों से वैदिक धर्म का लोप क्यों नहीं हो गया, कभी कभी जीवन संग्राम में अनुपयुक्त होने पर भी क्यों नहीं यहां की सभ्यता नामावशेष होगई, उपेक्षा अज्ञान और आडम्बर के होते हुए भी प्रचीन अपरा और परा विद्या क्यों नहीं संसार से उठ गई,—इन प्रश्नों का 'काशी' यही पूरा उत्तर है। काशी! तेरे शीतल प्रभाव में देशभर का धर्म विषयक अनुताप हटता रहा है, तेरे आप्यायनकारी प्रकाश में चारों दिशाओं का अज्ञानान्धकार मिटता रहा है, तेरे अनुकरणीय उदाहरण में आर्यसमाज अपना सांग भरता रहा है।

काशी! तू नित्य है, तू दुर्धर्ष है, तू अजेय है! तू सदा के लिए हिन्दू धर्म, सभ्यता और विद्या का केन्द्र है! जब डैमस्कस में झोपड़े भी न थे, जब मिस्र के पिरैमिडों की जगह नील नदी का बालू ही बालू था, जब बैक्टीरिया के कुम्हारों ने अपने शराकृति लेखों के पुस्तक न पकाए थे, तब तू थी और तब तू पूजित थी! 'तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स' उपदेश, 'देवानां पिय पियदस्सी' राजा अशोक की धर्म लिपियां, भगवान् शङ्कराचार्य का अद्वैत, तुरुष्कों की जज़िया, वीर बुक्क का वेदार्थ प्रकाशन, और चेतसिंह का कारागार—सभी तेरी गोद में खेल चुके हैं! जो काशी बौद्ध और जैननीति को पुरुकित कर गई, जो मुसलमानों के दुराग्रह को बिना डकार निगल गई, जिस में महाराष्ट्रों का चौथ का ऐश्वर्य और सिक्खों

की फतह, घाट और सोने की चादर बनकर, आ चढ़े, जिस में पण्डितों को कृस्तान बनाने का डाक्टर बालंटाइन का हठ क्वीन्सकालेज की उन्नति में परिणित होगया, जो एनीबेसेन्ट से भी एक उत्तम कालेज ले बैठी और जो रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज़ से भी नागरीप्रचार करा रही है, वह काशी धन्य है! भगवति वाराणसि! तेरी सीमा के बाहर समय और विवर्त और परिणाम टक्करें मार जावें, तेरी जादू की जमीन में वही मर्त्य में अमर्त्य की सदाबहार है। गङ्गाजी के किनारे किनारे, हिन्दी के प्रधान कवि तुलसीदासजी का घाट, पुरैतिहासिक दस अश्वमेधों का घाट, दैवज्ञशिरोमणि सवाई जयसिंह के यन्त्रों के नीचे काबुलविजयी राजा मान का मानघाट, भक्त यवन का मीरघाट, विष्णु भगवान् का मणिकर्णिका घाट और महास्मशान, सैंधिया के और शिवाजी महाराज के वंशधर भौंसलाओं के घाट, दोनो भुजाएं उठाकर विजेताओं की प्रबलता और हारे हुओं की मर्मकातरता दिखाने वाली काशी की अधिदेवी के समान ऊंचे मीनारों वाली मसूजिद के नीचे विन्दुमाधव घाट,—कितने इतिहासों का दृश्य है, कितने परिवर्तनों का तमाशा है, कितनी भावनाओं को जगाने वाला चित्र है!

यहां नंगे पैर चलना फैशन के डर से भाग नहीं गया है। वही चिल्ले के जाड़े में तड़के जागना, वही कमण्डलु लिए और राजकम्बल ओढ़े गंगातीर जाना, गुरुचरणों की धूलि से पवित्र वही एकान्त घाट, वही भगवती गंगा का पावन मज्जन, वही इतर—जन—साधारणतया तीर में सन्ध्यावन्दन, वही गीली धोती लेकर स्नानार्थियों और बलीवर्दों से बचते हुए भगवान् विश्वनाथ के यहां जल चढ़ाने जाना, पुष्प लोभी बैलों से बचते हुए प्रेम के मधुर धक्के खाना,

'दर्शनं देवदेवस्य स्पर्शनं पापनाशनं', वही परिक्रमा, वही सभामण्डपेश्वर, वही भगवती अन्नपूर्णा के यहां गोमय का कर्दम, वही बङ्गाली चण्डी पाठ और तैलङ्ग दुर्गापाठ का सम्मिलित स्वर, वही ढुंढिराज, वही ज्ञानवापी, वही भैरव—चाहे यहां विद्यार्थी बनकर आवें चाहे दर्शक बनकर, काशी ! तू तो सदा वैसे ही मन्दास्तिमित कृपाकटाक्ष से सब को देखती है ! तेरे में हिन्दुओं की और भारतवर्ष की एकता का वास है । एक तेरे में देश देश के विद्यार्थियों का समूह है जो मिलकर, बङ्गालियों और तैलंगों, मद्रासियों और काश्मीरियों में सख्य पैदा करता है । अध्यापकों, सत्रों और सङ्गति का प्रबन्ध ठीक न होने से चाहे विद्यार्थी यहां आकर 'बनारसी' पने का ही पास हासिल करें, परन्तु सामग्री प्रचुर है और यदि धर्म मानकर, भिक्षा मांगकर, अर्थकरी विद्याओं को छोड़कर 'बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते' पर बीसों वर्ष बिताने वाले इस दल को जातीयभाव से अनुप्राणित कर दिया जावे तो ? एक तेरे में धर्मपरायणा कल्पवासार्थ आगता विधवाओं का दल है जो प्रातःकाल से सायंकाल और सायंकाल से प्रातःकाल जल चढ़ाने और जप में लगी रहने पर भी देशदेशान्तर की समानशीलव्यसना स्त्रियों को धर्म की बहन बनाकर जातीयता का मार्ग खोल रही हैं । यदि उन्हें समझा दिया जाय कि कल्पवास का पुण्य और दुरितक्षय न केवल मन्दिर मन्दिर भटकने में है प्रत्युत बालिकाओं और बालकों के रोगनिवारण और विद्यादान में दया की भगिनी बनने में भी है, तो ? एक तेरे में दान का वह क्रम विद्यमान है जो चारों दिशाओं के पुण्यार्थ दिये हुये धन को विना भेदभाव के धार्मिक भारतवासी मात्र में सत्रादिरूप में बांटता है । यदि वह वृथा पुष्टों और कलह—प्रियों को न दिया जाकर आलस्य का वर्धक न बनै, पात्रों की तरफ़ लगाया जाकर देश का

बल बढ़ा सकै तो ! एक तेरे में विद्वानों का वह समूह है जो प्राचीन शास्त्रों की पावनी त्रिपथगा में अपने मैथिलत्व, दाक्षिणात्यत्व, वा पंजाबीपने को धो, 'शास्त्री' बनकर, देशकाल पात्र की परवाह न कर के, प्रकारता की कुक्षि में प्रविष्ट विशेषता की नब्ज सम्हाला करता है और खाने पीने की सुधि तक भूलकर वेद से लेकर अर्वाचीन परिष्कारों तक की मूर्त्ति में शब्दब्रह्म और भगवती वीणा । पाणि की आराधना करता है । यदि इस समूह को, समयानुसार, मुंह फाड़कर देश का अहित चाहने वाली आपत्तियां और आवश्यकताएं समझा दी जांय, यदि वह दल नियत काम कर के यूरोपीय पण्डितों के वेदों में टक्कर मारने के स्थान पर उचित गवेषणा चलादे, यदि जो शक्ति अवच्छेद का प्रकारता की चक्की में या फर्माइशी व्यवस्थायें गढ़ने में वृत्तरूप से पर्यवसान पाती है वही सरलरेखा में चलाकर पहाड़ फोड़ सकने वाली बनसकै तो ? बस, फिर क्या है, देश के भाग न जाग जाय !

परन्तु काशी ! तेरे में बड़ी भारी एकदेशिता है, यह विद्या और धर्म का स्रोत तेरे में अखण्ड होने पर भी खण्डित है, नित्य होकर भी नश्वर है । बङ्गाल और मिथिला में ऐसे बहुत से पण्डित कुटुम्ब मिलेंगे जो पन्द्रह बीस पीढ़ियों से परम्परा से शास्त्रों के पारदृश्वा विद्वान् होते आए हैं । काशी की प्राचीनता से यदि हम यह नहीं पूछ सकते कि गौतम बुद्ध से शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित तो बता, तो नहीं सही, परन्तु यहां एक वंश में दो पीढ़ी भी पण्डितों की नहीं मिलती । यहां पढ़कर कोई पण्डित हुआ, वह या तो कहीं राजाश्रय में चला गया और या कोई पण्डित राजाश्रय पाकर पढ़ने पढ़ाने में दिन बिताने यहां पर आया। बस । यहां पर 'पण्डितपुत्र' मूर्खवाचक गाली है । फिर नए पण्डित हुए, फिर चले गये । इतने पण्डित मण्डल में एक वि-

द्वान् की भी स्त्री विदुषी नहीं जो मण्डन मिश्र की सरस्वती की उ-पमा नहीं तो छाया तो बने ! यही नहीं, पण्डितों का जीवन कर्कशा और अननुरूपा अर्धाङ्गियों के क्लेश से दुःखमय रहता है !

परन्तु काशी ! आज तेरे में विलक्षण भीड़ है। बङ्गाली विश्वनाथ की पुरी में अनाथ की तरह चिल्लाने आये हैं। अन्नपूर्णा की पुरी में अन्न के अभाव को मिटाने के उपाय सोचे जा रहे हैं। ढुण्ढिराज के पड़ौस में आपत्तियों से बचने का उपाय ढूंढा जाता है। पञ्चक्रोशी के भीतर-पंच कांसे जाते है। बनारस में रस बना रखने के लिये प्रदर्शिनी लगती है। काशी में धर्म करवट ले रहा है जिस में उस का कुसं-शोधन कुरीति दोष मिटकर सुरीति पुनर्जन्म हो। सभा मण्डपेश्वर के सामने बीसों सभाओं के मण्डप बने हैं। भगवति ! क्या ये आशाएं पूरी होंगी ? 'काशीमरणान्मुक्तिः' क्या आज से भारत के सब दुःखों की मुक्ति मान लें ? दुर्गे ! क्या हमने सब दुर्ग जीत लिए ! अन्नपूर्णे ! क्या हमारे लिए सदापूर्ण बनोगी ? ज्ञान वापी ! क्या हमारे लिए तेरा जल सुधामधुर होगा, पत्रकलुषित नहीं ? गङ्गे ! क्या हम अपनी निम्नाभिमुख गति को बदलेंगे ? धर्मकूप ! क्या हम कूपपतन के लायक नहीं रहेंगे ! भैरव ! क्या आज से हम शत्रुओं के लिए भैरव बन जायंगे ? सारनाथ ! क्या हम में कुछ सार होगा ? पिशाचमोचन ! क्या हम कुरीतिपिशाचों से मुक्त होंगे ? भागीरथि ! सुरधुनि ! क्या हमारी गृहलक्ष्मियां तुम्हारी तरह जगत्पावन होंगी ! और हे प्राचीन और अर्वाचीन को मिलाने वाली काशी ! सदा नि-त्य वाराणसी ! क्या हम तेरी तरह स्थायी, नित्य, दुर्धर्ष और पू-जनीय बनेंगे ? क्या हमारा स्त्रियों की जड़ता का अर्धाङ्ग और सम-यानुसार प्रतीक्षा' न सोचने की हृदय शून्यता 'औषधं जाह्नवीतोयं' में न रहेगा ?

(क्रमशः)

अत्र, तत्र, सर्वत्र।
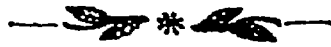
इसी वर्ष, कानपुर से, 'कान्यकुब्ज' नामक मासिकपत्र निकला है। जिस रीति से इस के जनवरी, फरवरी के अङ्क सम्पादन किये गये हैं वैसे ही यदि यह पत्र चला तो बहुत उपकारी होगा। जैसा "योनूचानः स नो महान्" इस का सिद्धान्त है वैसे ही इस के नवयुवक लेखकों को न पुराने दुराग्रहों का पक्ष है, न नई उच्छृङ्खलता का मण्डन। यद्यपि छोटे छोटे जाति विशेष सम्बन्धी पत्रों की बढ़ती हानिकारक है तो भी उचित सम्पादन से वे बहुत कुछ हित कर सकते हैं। फरवरी की संख्या में पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० और पं० शुकदेवबिहारीमिश्र बी० ए० ने सिद्ध किया है कि पढ़े लिखे कान्यकुब्ज दब्बू न बनें तो क्या करें? क्योंकि 'वे समाज से' 'पृथक् होकर उन्नति करना नहीं चाहते'। 'अपनी जाति की प्रचलित रीतों को देखकर अपने अपने हृदय की उदारता तथा संकीर्णता के हिसाब से प्रत्येक मनुष्य सुधार की एक सीमा स्थापित कर लेता है। उस सीमा के आसपास यदि वह किसी को देखता है तब तो वह उस दूसरे मनुष्य से हार्दिक सहानुभूति प्रगट करता है किन्तु ज्यों ही वह किसी अन्य व्यक्ति को उक्त सीमा से बहुत आगे वा बहुत पीछे देखता है कि वह उस मनुष्य पर बाजसा टूट पड़ता है' 'जो कुरीतियां हम लोगों में घुस आई है उन्हें बाहरी मनुष्य बड़ी सुगमता से जान लेते हैं....पर स्वयं कान्यकुब्जों को वे देख ही नहीं पड़तीं........इसी भांति सर्व साधारण हिन्दु समाज में भी बहुतेरी कुरीतियां अपने आप घुस आई हैं और बाहरी लोगों को

थोड़ासा भी ध्यान देने पर : दृष्टि गोचर हो जाती हैं परन्तु सर्व साधारण हिन्दू लोग बातचीत चलते ही उन कुरीतियों का चट समर्थन करने लगते हैं"। बहुत सत्य है। कान्यकुब्ज या और ऐसी ही किसी बिरादरी के स्थान में छोटी टोली और सर्व साधारण समाज के लिए बड़ी टोली शब्द रखकर इस सत्यको यों प्रकाशित कर सकते है कि बड़ी टोली वाले छोटी टोली के दोषों को जल्दी देख लेते हैं परन्तु अपने दोष उन्हें स्वयं नहीं दीखते और उन कीसी दूसरी बड़ी टोलियों को वे दीखते हैं। इस axiom की एक corollary भी है जिस पर शायद मिश्र युगलने ध्यान नहीं दिया होगा। वह यह है कि छोटी टोली वाले अपनी टोली के दोषों की बात पर तो फूंक फूंक कर पांव धरते हैं और बड़ी टोली के दोषों पर, जो उन्हें भी बड़ी आसानी से देख पड़ते हैं, ऊर्ध्वबाहु होकर चिल्लाने लगते हैं। छोटी टोली के बारे में तो वे सिद्ध करते हैं कि हम दब्बू न बनें तो क्या करें, पर बड़ी टोली के बड़े दोषों को, जो बड़े परिश्रम से धीरे धीरे हटाए जा सकेंगे, वे एक कलम हटाना चाहते हैं। वहां 'समाज से पृथक् होकर भी उन्नति' करने दौड़ते हैं। लेख के आरम्भ में वे सात कलम बड़ी टोली के दोष गिना जावेंगे परन्तु छोटी टोली की बात चलने पर 'मलाई की बर्फ का खाया जा सकना' ही सन्तोषदायक मानेंगे। छोटी टोली में तो 'सजनों से नम्रता पूर्वक क्षमा मांगने' का 'दब्बूपन' चलावेंगे पर बड़ी टोली की बातों में उनका 'कान्शन्स' मुंह को आता है और 'धर्म धर्म का शोर मचाने वाले अखबारों का लेना बन्द' करके 'हिम्मत वाले' बनना चाहते है! छोटी टोली के 'धर्मधुरन्धर आंख पर पट्टी बांध कर दौड़ने वाले' लोगों से डरकर तो छोटे सुधारों को 'लम्बी जकन्द' मानते हैं और बड़ी टोली का

ध्यान 'उन्नतिशील समाज की सातों सभ्यताओं और भारतेन्दु के प्रसिद्ध छन्दों' पर खैंचते हैं ।

* * *

पण्डित राधाकृष्ण मिश्र ने सात भागों में **धर्म सङ्गीत** नामक उपादेय संग्रह निकालना आरम्भ किया है । इन में पहला 'जातीयसंदर्भ' श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस में छप गया है और तीन आने में श्री भारत धर्ममहामण्डल कार्यालय से मिलता है । भूमिका में सङ्गीत और ऐसे संग्रह की आवश्यकता अच्छी तरह बताई गई है और संग्रह में बहुत ही सुन्दर सुन्दर पद हैं। हिन्दी के कई प्रसिद्ध लेखकों के प्रायः लुप्त पदों को यों फिर व्यवहार में लाने के लिए हम सम्पादक के कृतज्ञ हैं । यदि धर्म सभाओं की मण्डलियां कलहमय गीत न गाकर इस का उपयोग करें तो धर्मभाव के साथ साथ जातीय भाव भी बढ़े । इस में से **'जय भारत भूमि'** समालोचक की इस संख्या में उद्धृत किया है । हम चाहते हैं यह सातों भागों का संग्रह शीघ्र पूरा छपे और एक क्रन्दमान अभाव की पूर्ति करे ।

* *

ता० २७ दिसम्बर १९०५ को **सर हेनरी काटन के 'न्यू-इण्डिया'** का हिन्दी अनुवाद काशी में प्रकाशित होगया । इस **'नवीनभारत'** के अनुवादकर्ता श्री गणेशनारायण सोमाणी हैं, प्रकाशक मनीषि समर्थदान, राजस्थानसमाचार यन्त्रालय, अजमेर हैं । पुस्तक में प्रायः ३०० पृष्ठ हो गए है और मूल्य डेढ़ रुपया है । पहले हम लिख चुके है कि इस का हिन्दी में प्रकाशित होना हिन्दी का एक प्रकार से सौभाग्य मानना चाहिए । राजनीति विषयों का कोई

भी पुस्तक हिन्दी में इतना बड़ा नहीं था, और हम आशा करते हैं कि इस का इतना प्रचार होगा कि साधारण अंग्रेज़ी न जानने वाले मनुष्य भी इस के पढ़ने से सामयिक राजनीति में अच्छी योग्यता पाने का अवसर न चूकेंगे। इस के दशों अध्यायों में भारतवर्ष की सरकार और प्रजा के सम्बन्ध प्रबल प्रमाणों से दिखलाये गये हैं। 'ज्यों ज्यों भारतवासी सुशिक्षित, स्वतन्त्रता प्रिय, और देशभक्त होते जाते है, त्यों त्यों यह बात और भी स्पष्टरूप से प्रगट होती जाती है। जो योग्य और साहसी भारतवासी हम से ही विद्या प्राप्त कर के सभ्य हो गए हैं, वे अपने विस्तृत होते हुए नए विचारों के कारण आत्मोन्नति की इच्छाग्नि से प्रदीप्त हो कर हम से ऐसी ऐसी बातें मांगने लगे हैं जो सर्वथा उचित है और जिन का अस्वीकार करना बहुत कठिन है। भारतवासियों की उन्नति के महासागर की लहरें अंग्रेज़ों के पक्षपातरूपी बन्धे से टकराती हैं '(भूमिका पृ० १)' मैं जिस नीति का समर्थन करता हूं उस की सफलता में बहुत से वर्ष ही क्या, बहुतसी पीढियां भी व्यतीत हो सकती हैं। परन्तु यह वह नीति है कि जिसे हम को सदैव दृष्टि में रखना चाहिए और जिसे पूरा करने के लिए हमारा सदैव प्रयत्न रहना चाहिए। कभी न कभी (शीघ्र हो या देर में) भारतवर्ष पूर्वीय राष्ट्रों में अपनी पुरानी योग्यता को अवश्य पावेगा। इसलिए हम को चाहिए कि उसकी स्वतन्त्रता के मार्ग को सुगम करें '(पृ० २०३)' इङ्गलैण्ड की वास्तविक राजनीति की यही कुंजी है कि वह अपने बड़े बड़े उपनिवेशों को अपने राज्य में नहीं मिलाता बल्कि उन को आत्मशासन का स्वत्व प्रदान करता है। भारतवर्ष के भावी भाग्य की भी यही कुंजी होनी चाहिए। रूस की दशा से हमारी दशा बिलकुल नहीं मिलती। '(पृ० २०५) अनु-

१७८-भी बहुत अच्छा हुआ है और छपाई भी खासी है। वास्तव में पुस्तक तो यह ऐसी अच्छी है और ऐसे सुन्दर विचारों से भरी है कि हम और कुछ न कहकर हिन्दीपढ़ने वाली पब्लिक से निवेदन करते हैं कि आगामी कांग्रेस तक इसका कम से कम द्वितीय संस्करण करने के लिए प्रकाशकों को उत्साहित करें।

* *

मथुरा के सेठ **कन्हैयालालजी** पोंद्दार ने कृपा पूर्वक हमें अपना **'पञ्चगीत'** नामक पुस्तक भेजा है। इसमें उन ने 'रचना अनुपम रस खान मनोहर मञ्जु मधुर अति सुधा समान' भागवत के वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत का समश्लोकी अनुवाद किया है। जैसी छपाई सफ़ाई सुन्दर है, वैसी ही कविता की सरसता और सुखपाठ्यता भी है। भूमिका में सेठ साहब 'संस्कृत जैसी सर्वोच्चश्रेणी की भाषाका यथार्थभाव और रोचकता' भाषान्तर में लाना नितान्त कठिन मान कर भी कहते हैं कि 'समश्लोकी अनुवाद प्रायः इस अभाव की पूर्ति कर सकता है'। हमारे मत में समश्लोकी अनुवाद का पक्षपाती संस्कृत जैसी समासबहुल और संक्षेपसह भाषा को विस्तारभार भरित हिन्दी में लाने की कठिनाई के साथ साथ संस्कृत की तुकान्तहीन कविता में तुकान्त बैठाने की दिक्कत के भी परवश हो जाता है। तो भी सेठ साहब का अनुवाद प्राञ्जल है, सरस है, श्रवणमधुर है। पण्डित लेले ने मराठी में जो मेघदूत का समश्लोकी अनुवाद किया है, उतना मधुर यह न हो सका। लेलेजीने समश्लोकी के पक्षपाती होकर भी चारही चरणों में पूरे मूलको जकड़ना उचित न समझा, प्रत्युत आवश्यकतानुसार डेढ़, अढ़ाई वा तीन श्लोक तक अर्थ को फैलाया है। 'अपि-

गी पुस्तक हिन्दी में इतना बड़ा नहीं था, और हम गाशा करते हैं कि इस का इतना प्रचार होगा कि साधारण अंग्रेज़ी न जानने वाले मनुष्य भी इस के पढ़ने से सामयिक राजनीति में अच्छी योग्यता पाने का अवसर न चूकेंगे। इस के दशों अध्यायों में भारतवर्ष की सरकार और प्रजा के सम्बन्ध प्रबल प्रमाणों से दिखलाये गये है। 'ज्यों ज्यों भारतवासी सुशिक्षित, स्वतन्त्रता प्रिय, और देशभक्त होते जाते है, त्यों त्यों यह बात और भी स्पष्टरूप से प्रगट होती जाती है। जो योग्य और साहसी भारतवासी हम से ही विद्या प्राप्त कर के सभ्य हो गए हैं, वे अपने विस्तृत होते हुए नए विचारों के कारण आत्मोन्नति की इच्छाग्नि से प्रदीप्त हो कर हम से ऐसी ऐसी बातें मांगने लगे हैं जो सर्वथा उचित है और जिन का अस्वीकार करना बहुत कठिन है। भारतवासियों की उन्नति के महासागर की लहरें अंग्रेज़ों के पक्षपातरूपी बन्धे से टकराती हैं '(भूमिका पृ० १)' मै जिस नीति का समर्थन करता हूं उस की सफलता में बहुत से वर्ष ही क्या, बहुतसी पीढियां भी व्यतीत हो सकती हैं। परन्तु यह वह नीति है कि जिसे हम को सदैव दृष्टि में रखना चाहिए और जिसे पूरा करने के लिए हमारा सदैव प्रयत्न रहना चाहिए। कभी न कभी (शीघ्र हो या देर में) भारतवर्ष पूर्वीय राष्ट्रों में अपनी पुरानी योग्यता को अवश्य पावेगा। इसलिए हम को चाहिए कि उसकी स्वतन्त्रता के मार्ग को सुगम करें '(पृ० २०३)' इङ्गलैण्ड की वास्तविक राजनीति की यही कुंजी है कि वह अपने बड़े बड़े उपनिवेशों को अपने राज्य में नहीं मिलाता वल्कि उन को आत्मशासन का स्वत्व प्रदान करता है। भारतवर्ष के भावी भाग्य की भी यही कुंजी होनी चाहिए। रूस की दशा से हमारी दशा बिलकुल नहीं मिलती। '(पृ० २०५) अनु-

पाद-भी बहुत अच्छा हुआ है और छपाई भी खासी है। वास्तव में पुस्तक तो यह ऐसी अच्छी है और ऐसे सुन्दर विचारों से भरी है कि हम और कुछ न कहकर हिन्दीपढ़ने वाली पब्लिक से निवेदन करते हैं कि आगामी कांग्रेस तक इसका कम से कम द्वितीय संस्करण करने के लिए प्रकाशकों को उत्साहित करै।

* *

मथुरा के सेठ **कन्हैयालालजी** पोद्दार ने कृपा पूर्वक हमें अपना '**पञ्चगीत**' नामक पुस्तक भेजा है। इसमें उन ने 'रचना अनुपम रस खान मनोहर मञ्जु मधुर अति सुधा समान' भागवत के वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत का समश्लोकी अनुवाद किया है। जैसी छपाई सफ़ाई सुन्दर है, वैसी ही कविता की सरसता और सुखपाठ्यता भी है। भूमिका में सेठ साहब 'संस्कृत जैसी सर्वोच्चश्रेणी की भाषाका यथार्थभाव और रोचकता भाषान्तर में लाना नितान्त कठिन मान कर भी कहते हैं कि 'समश्लोकी अनुवाद प्रायः इस अभाव की पूर्त्ति कर सकता है'। हमारे मत में समश्लोकी अनुवाद का पक्षपाती संस्कृत जैसी समासबहुल और संक्षेपसह भाषा को विस्तारभार भरित हिन्दी में लाने की कठिनाई के साथ साथ संस्कृत की तुकान्तहीन कविता में तुकान्त बैठाने की दिकत के भी परवश हो जाता है। तो भी सेठ साहब का अनुवाद प्राञ्जल है, सरस है, श्रवणमधुर है। पण्डित लेले ने मराठी में जो मेघदूत का समश्लोकी अनुवाद किया है, उतना मधुर यह न हो सका। लेलेजीने समश्लोकी के पक्षपाती होकर भी चारही चरणों में पूरे मूलको जकड़ना उचित न समझा, प्रत्युत आवश्यकतानुसार डेढ़, अढ़ाई वा तीन श्लोक तक अर्थ को फैलाया है। 'अपि-

वत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः' का अनुवाद है- 'सुनि रुचिर बड़ाई साँच ही वो ठगाई' । राधाचरण गोस्वामीजी ने इसी को यों बनाया था—'अहह ! मन हरो है उत्तमश्लोकवाणी' । गोस्वामीजी ने ब्रजभाषा ही से काम लिया है, सेठ साहब ने आधुनिक हिन्दी कविता के सभी रूपों को काम में लिया है, इसीलिये कीयो, प्रीय प्रभृति भी उन्हें काम में लेने पड़े है । अनुवाद की मनोहरता का एक नमूना दे देते है—

भ्रमरगीत ।

मधुप ! कितवबन्धो ! मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

सेठ कन्हैयालाल का अनुवाद ।

मधुप ! पद हमारे नाँ छुओ धूर्तप्यारे !
सँवत कुचन-माला कुंकु मूछैं लगा रे !
धरहु मधुपती उन मानिनी के प्रसादू,
हंसत यदुसभा जो दूत ऐसा बना तू । *

---

* गोस्वामी राधाचरण का अनुवाद—
मधुप ! कितवबन्धो ! छून पा सौतिनी के,
कुचविलुलितमालाकेसरी मुच्छसे मो ।
वहतु मधुपती वा मानिनी के प्रसादै,
यदुसभहिं विगोयो जासु को दूत ऐसो ॥

गोपी गीत और युगलगीत का पाठ बहुत ही आनन्ददायक मालूम हुआ ।-सेठ जी की अच्छी शक्ति के सदुपयोग का हम और भी नमूना देखना चाहते हैं ॥

* * *

पण्डित **श्रीधर पाठक** की स्फुटकविताओं का दूसरा संग्रह **मनोविनोद** चारआने में पं० गिरिधर पाठक नं० ४ पाश्चिम खुसरोबाग, इलाहाबाद से मिलता है । इसमें ३९ विषय हैं और—

योग्यता उपेक्षित रहती है, विज्ञता अनादृत रोती हैं ।
आपस का नेह नस जाने से शिष्टता भ्रष्ट पद होती है ।

इसका सिद्धान्तवाक्य है । कुछ कविताएं तो इसमें अधूरी होने पर भी इतनी मनोहारिणी है कि पाठकजी के सुकवित्व की मर्यादा की ठीक रक्षा करती हैं । इस संग्रह में एडविन अञ्जलेना, ग्रीष्मवर्णन, वर्षावर्णन, स्फुटपद, और चिन्तय मातरं, बहुत ही सुन्दर जाने पड़े । मनोविनोद के प्रथमखण्ड की भूमिका में प्रकाशक ने लिखा था कि अपने बालकपन की कविता श्रीधरजी को अब पसन्द नहीं । फिर 'आत्मन्यप्रत्ययं' चेतः होने भी प्रकाशकों ने इसे प्रकाशित कर दिया है । यद्यपि माधुर्य और विषयबाहुल्य में यह मनोविनोद के प्रथम खण्ड को नहीं पाता, तोभी संग्रह के योग्य है । क्या इसके प्रकाशकों को पाठक जी की कविता के अमरत्व में इतना विश्वास है कि उन के पत्रों में से साधारण श्लोक और आगरा कालेज की मासिक परीक्षाओं में अनुवाद के छन्दोबद्ध उत्तर तक भी छाप दिये और भूल जाने योग्य नहीं माने गये ? यों तो पं० श्रीधर जी सुकवि हैं, सम्भव है कि उनने पोपकवि की तरह पिता की ताड़ना का भी उत्तर कविता में दिया हो और उनका बालकपन का गुनगुनाना भा॰

अकवियों की कल्पना से खरा माना जाय, परन्तु 'उजाड़ गाम' के कर्त्ता का महत्व इन पत्रों और परीक्षानुवादों के छापने से कहां तक बढ़ा है ! खैर, " सत्सूत्रं सर्वदामोघं सूक्तयः सर्वदाऽनघाः "

* * *

प्रयाग के उत्सव के पीछे समझ में आया, क्यों पण्डित गोपीनाथ खास तौर से भारतधर्ममहामण्डल में लाये गये थे । पुराने मण्डल के जानकार और प्रबन्धकर्त्ताओं में यद्यपि कई प्रबन्ध विषयों में पण्डित दीनदयालु के विरोधी रहे हों, तो भी वे सर्वसाधारण अधिवेशन में उनकी कूटनिन्दा करने पर कभी राजी न होते, जो कुछ लोगों को इष्ट था । पण्डित गोपीनाथ की भी पण्डित दीनदयालु ने ऐसी कोई हानि नहीं की थी जिस से वे इस मित्रद्रोह को धर्म समझकर दौड़े आते । हां, पण्डित दीनदयालु का यह अपराध तो अवश्य था कि जिस समय एक लाहोरी पत्र के सम्पादक के विरुद्ध दिशा प्रदिशाएं भी खड़ी हो रही थीं उस समय सारा पञ्जाब दांतों तले अंगुली काट कर कहता था कि दीनदयालु इस के चरित्र की रक्षा करना चाहते हैं, आश्चर्य की बात है । अस्तु पण्डित गोपीनाथ आकर ' मण्डल-रहस्य' और ' रिपोर्ट ' के लिखने में केवल बिल्ली के पञ्जे ही बने, या ' यस्तित्याज सचिविदं सखायं ' बने, इस का निर्णय मण्डल के पर्दे के भीतर रहने वाले ही कर सकते हैं । काशी के अधिवेशनों में बन्दरिया के बच्चे की तरह उस पुण्यपाठ के पत्रों को छाती से लगाये पंडित महाशय खड़े रहा करते थे और रोज़ पबलिक को उस के सुनाने की धमकी दिया करते थे । या तो आकाश के चंदुए और घास की फर्श पर थोड़े से आदमियों को देखकर वे सहम जाते या जिन्हें वे उसे सुनाना चहाते थे उनके न आने से कार्यकर्त्ताओं

का जी खट्टा पड़ गया, काशी में वह पारायण नहीं हुआ । प्रयाग में मौका मिला । महाराज दर्भङ्गा भी थे। पण्डित दीनदयालु और पण्डित मदनमोहन भी थे। सनातनधर्मसभा के साथ सन्धि होने से व्याख्यानलोलुप पबलिक भी आगई थी । आज वर्षों के "चिन्दे" पूरे हुए । आज्ञानुसार पण्डित गोपीनाथ ने खड़े होकर जम्हाइयां लेती पब्लिक की पर्वाह न करके वह धर्मकथा सुना ही तो दी। सुनने वाले निश्चेष्ट निस्पन्द हो गये । दर्भङ्गा नरेश ने जो सभापति होने का फ़क्र करते हैं, वे बातें नहीं सुनी थीं ! उनने अपने को इस बारे में बिलकुल अन्धेरे में बताया, और जिस समय मण्डल अपनी 'सफलता' पर प्रसन्न हो रहा था, पण्डित मालवीय ने यह कह कर कि रिपोर्ट पास नहीं समझी जाय, रङ्ग में भङ्ग कर दिया । इस बाज़ाबूता कार्रवाई के सदक़े जाना चाहिए कि सभापति को विना दिखाए रिपोर्ट छपा भी ली गई और पब्लिक को विराट् अधिवेशन में सुना भी दी गई। क्या कोई धर्मावतार शरीरों से पूछेगा भी कि उनके मुंह में कै दांत हैं ? अच्छा, गोपीनाथजी का मिशन पूरा हुआ । उन के पीछे बोलने का सौभाग्य पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र को मिला। उन के व्याख्यान को अधूरा छोड़ कर थकी और विरक्त पब्लिक भाग गई, भाग जाय, विराट् धर्म पुरुषार्थ का फल मिल गया। हमने गताङ्क में जो पण्डित गोपीनाथ पर लिखा था उसे 'दिष्टहत मुद्गराघात, कहने वालों से हम पूछते है कि इस अश्लील शीघ्रता से इस जघन्य 'नियमबद्ध' कार्रवाई की क्या ज़रूरत थी ? क्यों पण्डित गो-

पीनाथ का एकान्तवासके पीछे रङ्गभूमि में प्रथम प्रवेश इसी भूमिका में कराया गया ! अस्तु, अब भी मद म ः क-कम्बल उन्हें छोड़ दें तो वे अपनी चिरप्रार्थित विस्मृति के मङ्गलमय मार्ग को पकड़ें ।

* * *

"पञ्चों का कहना सिर माथे पर, पर यारों की मोरी तो इधर ही गिरैगी" इस कहावत में सूचित वज्रलेप टर्र का दृष्टान्त अब के प्रयाग में देखा गया है । जब मालवीयजी के प्रस्ताव पर, सर्वसाधारण के विरोध पर और सभापति के अनजान होने पर धर्म पुरुषार्थी शरीरों की रिपोर्ट दूषित ठहराई गई तो, राघवेन्द्र में छपी रिपोर्ट के अनुसार, राय वरदाकान्त लाहिड़ी से कहलवाया गया कि 'न ब्रूयात्सत्यमप्रियं' को मान कर यह रिपोर्ट छटाई कटाई जायगी। इन लोगों के सामने चाहै ढोल बना कर कहा जाय कि आपने अनुचित किया है, और वह अप्रिय सत्य ही नहीं कुछ लोगों का प्रिय असत्य है, तो भी यारों की टर्र नहीं मिटैगी। यह संशोधन पण्डित माधवप्रसाद मिश्र करेंगे । क्या प्रयाग में रिपोर्ट सुनाए जाने पीछे ही पण्डित मिश्र ने इस काम को अपनी शोधक लेखिनी के योग्य समझा या मण्डल को इस के पहले पण्डित माधवमिश्र के महामण्डल की प्राचीन अवस्था से अभिज्ञ होने का ज्ञान न था ! या वे पहले मण्डल के लिए दुर्भेद्य थे ! आगे एक और मजेदार प्राविजो है-"यदि दो महिने तक पण्डित माधवप्रसाद मिश्र इस रिपोर्ट को ठीक न करदें तो यही रि-

पोर्ट सही मानी जाय"। बलिहारी! दो महीने पीछे यह 'असत्य' 'अप्रिय' नहीं रहेगा, और दरभङ्गानरेश भी अपने न पूछे जाने के विस्मय को संवरण करलेंगे!! इस विलक्षण प्राविज़ो के रहते क्या यह असम्भव है कि चतुरचूड़ामणि पण्डित माधवमिश्र को शोधन का अवकाश ही न दें और यही रिपोर्ट पत्थर की लकीर हो जाय! अब यह देखना है कि पं० माधवमिश्र अपनी चाल चलते हैं वा 'सब को प्रसन्न' करने की कथा के अनुसार रिपोर्ट की टांगें लट्ठ से बांध अपने कन्धे पर धरते हैं। दूसरा दृष्टान्त लीजिए। जब मण्डल और महासभा में सन्धि हुई तो इस बात पर बारंबार ज़ोर दिया गया था कि महासभा नैमित्तिक और आनुषङ्गिक मानी जाय, नित्य और स्थावर नहीं। मानो मण्डल मारे भय के कांप रहा था कि महासभा कहीं उस के स्वाधीन नरपतिगणों के पट्टे न छीन लेवे। जब महासभा के शान्तिप्रिय नेता ने माण्डलिकों की इच्छानुसार विश्वविद्यालय और धर्मसंग्रह के काम को अपने हाथ में रखकर शेष काम अनैमित्तिक महामण्डल को देदिये, तो एक वक्ता ने खड़े होकर उसी टर्र का नमूना दिखाया। उस ने कहा कि ये सब उद्देश्य (और सारा माया—कल्पित जगत्) कमण्डलु के महोदर में पहले से ही हैं (उद्देश्य ही हैं, कर्म नहीं)। कोई यह न समझे कि महासभा ने मण्डल को नए सुझाए हैं (नहीं महाराज! सूझ के ठेकेदार तो आप लोग हैं। सच कहना प्रयाग अधिवेशन किस ने सुझाया?) केवल पण्डित मालवीयजी ने "त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये" किया है। इस निरर्थक, अरुन्तुद और दम्भपूर्ण वाक्य से वक्ता ने महासभा के सन्धिपत्र पर अच्छी मोहर लगादी है और अन्न को

स्पष्ट दिखा दिया है कि मण्डल का यत्न महासभा का साहाय्य करने का न था, उसे निगल जाने का था !

* * *

कुछ मास पहिले, जब राव महावीरप्रसाद नारायणसिंह बहादुर के पौत्र युगल का जन्म हुआ था तब राघवेन्द्र (मासिक पत्र) ने उस जन्म को राघवेन्द्र (श्री रामचन्द्र ही अर्थ होना चाहिए) की कृपा का फल बतलाया था । परन्तु अब के महामण्डल के विराट् अधिवेशन में जिस भारत भूषण की उपाधि से बरांवाधिपति शोभित किए गये हैं उसे राघवेन्द्र मासिकपत्र की ही कृपा का फल मानना चाहिए । धन्य राघवेन्द्र ! लार्डकर्जन के दिल्लीदरबार की पृष्ठ पोषकता कर के टाइम्स आफ़ इण्डिया तो अपने स्वामी को ही सी० आइ० ई० दिला सका था, परन्तु तू महामण्डल का एडवोकेट और और लोगों का प्रतिपक्ष बन कर अपने स्वामी और सम्पादक दोनों को सुशोभित करा सका है ! ! त्रिवार धन्य ! इस का मुकाबला तब ठीक होता यदि मण्डल की उपाधिवर्षा में अमृतलाल चक्रवर्त्ती भी पुजते और सेठ खेमराज भी, पण्डित गोपीनाथ भी अलङ्कृत होते और उन के पत्र के स्वामी भी ! अवश्य ही हम राव बहादुर की धार्मिकता, धनिता वा योग्यता से उन लोगों की तुलना नहीं कर रहे हैं, तुलना केवल महामण्डल के सम्बन्ध में इन तीन पत्रों के वर्तमान मत पक्ष से है ।

* * *

मण्डल में उपाधि वितरण भी हुआ । बड़े शामियाने का छत्र भङ्ग हो जाने पर एक छोटे तम्बू में सौ डेढ़ सौ मनुष्य एकत्र हुए और यह अनभ्र वृष्टि टूट पड़ी । उपाधियां किस किस को और

कितनी दी गई इसका पूरा पता नहीं चलता । न तो वे समाचार पत्रों में छपी हैं और न मण्डल अपनी 'नामुकम्मिल' सूची किसी को भेजता है । केवल इतना पता गणित से लगा लीजिए कि एक जल्दी बोलने वाला पण्डित डेढ़ घण्टे में जितने नाम पढ़ सकता है, उतनों को उपाधि मिली । सुना है बम्बई और मद्रास के लोगों की उपाधियां पीछे प्रकाशित होंगी । क्यों ? कदाचित् इसलिए कि वहां के लोगों से मण्डल अभी तक उतना ही अपरिचित है जितना पुराना मण्डल था जिसे ये नए मसीहा बात बात में 'एकदेशी' कहा करते हैं । हमारा प्रश्न है कि उपाधि सुनाने का काम पण्डित मधुसूदन ओझा को क्यों दिया गया ? जब कि महामण्डल के आधे दर्जन मन्त्री विद्यमान थे—शिवपुरीजी थे, पण्डित गोपीनाथ थे, जनरल सुपरिन्टेण्डेन्ट लाहिड़ी बाबू और बाबू तुलापतिसिंह थे, तो एक ऐसे विद्वान् को जो तीन सप्ताह पहले ही मण्डल से अपरिचित थे, यह काम क्यों दिया ? क्या इसलिए कि वे मैथिल हैं और जयपुराधीश के अन्यतम पण्डित हैं और इसलिए लोग धोखे में आजांय कि ये उपाधियां मिथिलेश और आमेरपति दे रहे हैं ! और पण्डितजी ने इस उपाधिपारायण में क्या महत्व माना ? जिन लोगों के उनने नाम पढ़े उन के दशमांश को भी क्या वे जानते हैं ? यदि वे उनका नाम भर भी जानते होते, और उन के पीछे उठकर कोई उपाधियों का समर्थन करता, तो हम इसे उनका 'प्रस्ताव' मानकर समाधान कर सकते थे ।

* * *

काशी में कई उपदेशक उपाधियों के लिए लालायित पाये गये थे । उन्हें समझाया जा रहा था कि मण्डल की उपाधि केवल विद्वानों

के लिए नहीं है । उपाधियों में श्रीमान् काश्मीर नरेश को 'भारत-धर्ममार्तण्ड' या ऐसी ही कोई उपाधि दी गई है । यदि यह बात सत्य हो तो जिज्ञासा है, मण्डल की क्या सत्ता है और क्या अस्तित्व है जिससे वह एक प्रायः स्वाधीन नृपति को उपाधि देता है ! और काश्मीरेश्वर इस उपाधि को क्या कुछ समझ कर वर्तेंगे या रद्दी की टोकरी में डाल देंगे ? कल्याण है, काशी में जो मण्डल की उदयपुराधीश्वर को उपाधि देने की अफवाह थी, वह उड़ गई, नहीं तो मण्डल की हिमाकृत, धृष्टता और दिल्लगी का कोई पार न रहता जब 'यावदार्यकुलकमलदिवाकर हिन्दुआ सूरज' को मण्डल की उपाधि अपने साथ चिपकाना पड़ती ! पण्डित दीनदयालु अपनी आस्तीन में हंसते होंगे कि जो उपाधि उनने निर्धन ब्राह्मण और विद्वान्, गट्टूलालजी और अम्बिकादत्तजी, को दी थीं उसी उपाधि से आज मण्डल धनकुबेर काश्मीरेश की खुशामद करता है । बड़ों की बड़ी बड़ाई पूछना ठीक नहीं, परन्तु हम पूछते हैं कि 'रणवीर धर्म-संग्रह' के कारयिता के वशरत्न को किस कार्य के लिए मण्डल ने यह उपाधि दी ? अवश्य ही म्लेच्छभावापन्न देश में जो राजा दो घण्टे आसन पर बैठकर धर्मानुष्ठान कर सकने की हिम्मत रखता है वह पूजनीय है, परन्तु क्या मण्डल की एक मात्र आधार मासिक सहायता के भेजने का यह पारितोषिक है ? या रणवीर पाठशाला और सदाव्रत को 'एनीबेसेन्टसात्' कर देने का ? या वर्षभर में तीन दफा—लार्ड एम्पथिल, लार्ड कर्जन, और युवराज–राजप्रतिनिधि का स्वागत करने का ? सैलाना नरेश अवश्य ही अपने सदाचार के कारण मध्य भारत के अन्धकार में 'भारत धर्मेन्दु' होने के लायक हैं, परन्तु यों राजाओं को उपाधि देने में मण्डल ही की क्या, उस के सभापति

स्वामी दर्भङ्गापति की भी धृष्टता है। उपाधियों में एक रमणी को 'धर्मलक्ष्मी' की पदवी मिली है।-हम माण्डलिक पण्डितों से पूछते हैं (क्योंकि उन में बहुत से विद्यावाद:पति हैं) कि इस में 'यूपाय दारु' की तरह चतुर्थीतत्पुरुष ही है या और कुछ? क्या मण्डल के चन्दे में श्रीमती लक्ष्मीत्व दिखा चुकी है?

* * *

जिन के पास धन है, वे धन देंगे, जिन के पास विद्या बुद्धि है वे उससे ही सेवा करते हैं। मण्डल ने पण्डित दीनदयालु जी को कोई उपाधि क्यों न दी? अब वे मण्डल का काम न करेंगे, और अब तक उन ने भला बुरा बहुत कुछ मण्डल का हित किया है। अब मण्डल से पृथक् होने के समय उन्हें क्या कुछ भी स्मरणार्थ कहना मण्डल को नहीं भाया? "मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य गुरुघातिनः। चतुर्णां वयमेतेषां निष्कृतिं नानुशुश्रुम"। बाबू तुलापतिसिंह 'मिथिलाराजकुलभूषण' बनाये गये सुने जाते हैं। यदि यह सत्य हो, और दर्भङ्गेश्वर भी राजकुल में शरीक माने जांय, तो मण्डल ने अपने सभापति का खासा अपमान कर दिया है! मज़ा होता यदि मण्डल स्वयं सभापति को उपाधि देता! पण्डित माधवप्रसाद मिश्र को भी कोई उपाधि देकर उन से निषेध करा लेना चाहिए था, क्योंकि वे उपाधि की व्याधि में नहीं फंसते। पण्डित गोपीनाथजी को भी उनके आत्मसमर्पण के लिये कोई पद दिया गया या नहीं? राव महावीरप्रसाद नारायणसिंह बहादुर को 'भारतभूषण' की उपाधि मिली है। राव बहादुर की किसी प्रकार की अप्रतिष्ठा न करने का वचन देकर और क्षमा मांग कर, जिज्ञासा है कि मालवीयजी की सभा के 'कल्पित'

उपसभापतित्व को छोड़कर मण्डल की महाअकल्पित स्वागतकारिणी सभा के सभापतित्व का ही क्या यह पारितोषक है? या राघवेन्द्र सदृश पत्र के स्वामी होने का इनाम है जो मण्डल की इतनी सेवा कर गया? या 'स्मार्त धर्म' नामक पुस्तक के प्रकाशन का व्यय उठाने का इनाम है? राघवेन्द्र साहब अकबरी धर्म के बड़े विरोधी हैं। अकबरी धर्म से उन का अभिप्राय सब सम्प्रदायों के सौमनस्य से है। ऐसे मेल मिलाप को अच्छा कहने वालों को वे साम्प्रदायिक रहस्यों से अनभिज्ञ कहा करते हैं। साम्प्रदायिक रहस्यों से मुराद शायद उन पवित्र सत्यों से है जो स्मार्त धर्म में उन के एक लेखक ने लिखे हैं और उन के स्वामी ने छपवाये हैं! परन्तु वैसी पुस्तक महामण्डल के के भी उद्देश्यों की विघातक है। हुआ करे, अट्ठारह वर्ष से मण्डल के साथ कभी जिन का नाम न सुना गया था, वे अब के मण्डल के 'भारतभूषण' बन गये!

* * *

बाकी जो उपाधियां हैं वे 'मृदङ्गो मुखलेपेन' के सदृश हैं! सुना गया है, मण्डल में एक महाशय ने पूछा था कि उपाधिधारियों का हम से परिचय तो करा दीजिये! छोटे छोटे बालक, खड़े होकर व्याख्यान, अनुमोदन और प्रस्ताव कर रहे थे! पण्डित मधुसूदन ओझा को 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि मिली है। चाहे पण्डित जी की योग्यता से अनभिज्ञ लोग इस पर आंखें -फाड़ें और चाहे उन्हें अपनी श्रेणी में घसीटना चाहने वाले उपदेशक इस पद की ईर्षा करें, हमें तो यह उपाधि पढ़कर दुःख हुआ और हताशता आ गई। काशी में पचासों दफा—

> लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुधावति।
> ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

पण्डित गोपीनाथ उन्हें 'महामहोपाध्याय' कह चुके थे। 'रामो द्विर्नाभिभाषते' वाला राघवेन्द्र भी उन्हें एक दफा महामहोपाध्याय छाप चुका था। शायद मण्डल को पीछे जान पड़ा कि उसे जैसे कल्पित एम० ए० और कल्पित राव बहादुर बनाना सहज है वैसे 'महामहोपाध्याय' पद देना उस के हाथ नहीं है। यदि यह जागृति हुई हो तो मण्डल को उचित था कि अपने डेढ़ दर्जन स्वाधीन नरपतिगण में से किसी से सरकार के यहां पण्डित जी की महामहोपाध्यायता के लिये सिफ़ारिश करवाता। उस में न केवल पण्डित जी का मान होता, प्रत्युत उस उपाधि की भी शोभा होती। विद्यावाचस्पति से मिलती जुलती उपाधियां नवद्वीप के विद्वान् औरों को भी देदिया करते हैं, और पुराना और नया मण्डल विद्वत्ता के लिये नहीं, सेवा और गुप्त कार्यवाही के लिये कई लोगों को इस से मिलती उपाधियां दे चुका है—ऐसों को जिन की विद्वत्ता पण्डित मधुसूदन जी की पण्डिताई के पासङ्ग में भी नहीं चढ़ती। अतएव पण्डित ओझा को यह उपाधि भूषण नहीं माननी चाहिये।

* * *

अब हमें और विद्या सम्बन्धी उपाधियों पर कुछ कहना पड़ता है। पहले वृन्दावन के महामण्डल में केवल चार उपदेशकों को उपाधि दी गई थीं, उन में कुछ 'देशभूषण' के ढंग की थीं, और कुछ विद्यासम्बन्धी। इस पर उपदेशकों में बहुत कुछ दिलजली हुई। यहां विद्या की गणना नहीं है, यहां गणना है—'मुखमस्तीति वक्तव्यं' की और येनकेन प्रकारेण धर्मसभाओं को उलटे छुरे से मूंडने की। उस कलकल से डर कर दिल्ली के महामण्डल में इस फैयाज़ी से उपाधियां बांटी गईं कि लघुकौमुदी न पढ़ सकने वाले महोदधि

बन बैठे । परन्तु पण्डित दीनदयालु ऐसा करने पर भी सब को सन्तुष्ट न कर सके, और उसी ईर्षाग्नि ने मण्डल के भविष्यत् 'दुःखशङ्कु' पैदा कर दिये, जिन का उपद्रव आज तक नहीं हटा । फिर यह कहा गया कि ये उपाधियां इन की व्याख्यान शक्ति की सूचिका हैं, **विद्या की नहीं** । अब फिर वही झमेला आ पड़ा है । विद्वानों को कौन उपाधियां दे रहा है ? कार्यालय । वह विद्वानों के विषय में श्वेत कृष्ण क्या जान सकता है ? वह एक परीक्षक विद्वानों की कमेटी बना दे जो विद्या वा विद्यासम्बन्धी काम देख कर उपाधि दिया करे । **उपदेश या मण्डल की सेवा के लिए विद्यासम्बन्धि उपाधि कभी न दी जानी चाहिए** । परन्तु एक उपदेशक ने अब के दुहाई तिहाई देकर विद्यासम्बन्धी उपाधि गिड़गिड़ा कर ले ही तो ली । उस ने यह कहा कि जब मण्डल से सब उपदेशक किनारा कसते थे तो मेरा 'अयं भुजः' ही असहाय मण्डल का एकमात्र कर्णधार था । यदि मुझे विद्या सम्बन्धी उपाधि न मिलेगी तो मेरा राज दरबार में अपमान है । मान लीजिये 'तुष्यतु दुर्जनन्याय, से मण्डल ने इस उपाधिलोलुप को **विद्यानिधि** की उपाधि दी । यही उपाधि मण्डल के किसी प्रधान कार्यकर्त्ता ने अपनी प्राइवेट सेवा के लिए किसी को दिलवा दी । यही मण्डल ने किसी सम्भावित विद्वान् को गुण देखकर दी । यही किसी विद्वान् ने नवद्वीप की परीक्षा देकर वङ्गीय स्वनामधन्य विद्वानों से पाई । यही किसी को जगद्गुरु शङ्कराचार्यजी ने दी । अब कहिए इस में उन तीनों विद्वानों का शुकवत् उपदेशकों से क्या भेदक रहा ? क्या इस में उनका अपमान नहीं है ? क्या उन्हें " मुबारक " कहने वाले उन्हें चिढ़ाते नहीं है ? क्या यह दिल्लगी नहीं है ! एक मुरादाबाद का भाषा लेखक भी

विद्यावारिधि और एक जयपुर का षट्शास्त्री पण्डित भी विद्यावारिधि ! अहो न्यायः ! मण्डल अपनी सेवा करने वालों की उपाधियां नियत कर ले और उन्हें विद्वान् होने का फतवा न दे। विद्याकी उपाधियां वह ऐसी नियत करले जो नवद्वीप आदि के पदों से न टकरावें। और यदि कोई उसका अभागा उपदेशक नवद्वीप से या विद्वानों से पद पालेवै तौ उस पदको चुलकयामास न करै प्रत्युत उससे प्रसन्न हो। उसकी विशेष कृपा होगी यदि वह पुराने विद्वानों को अपने उपाधि के वडिश में न बांधे और कोकिलकण्ठ उपदेशकों पर ही उसे चरितार्थ करै। पुराने पण्डितों ने मण्डलकी उपाधि के विना ही राजसन्मान भी पाया, हजारों विद्यार्थी भी पढ़ाये, भरसक संस्कृत शास्त्रों की सेवामें जन्म बिताया। मण्डल उन्हें माफ़ करै। वे यही नहीं सह सकते कि उनके स्वनामधन्य महामहोपाध्याय शिष्य प्रशिष्य मण्डल की कूट नीतिमें पड़कर रामायणकी चौपाई गाने और थाली फेरने वाले उपदेशकों से, उपाधिकी व्याधि के कारण, अभिन्न हो गये। इस पर मण्डल अधिक चापल करके उन्हें उपाधि दानकी धृष्टता न दिखावे। उसकी उपाधियां उसे और उसके 'मुखे पिण्डेन पूरितः' उपदेशकोंको मुबारक रहें ! हम इतना कदापि न लिखते परन्तु परमेश्वरवत् पूजनीय एक पदवाक्यप्रमाणपारावारीण विद्वान् के इस वाक्य पर हमें इतना कहना पड़ा कि— "निर्ह्रीमोनेनोपाधिना न नन्दामः। पत्रमवकरेऽक्षेपि"

* * *

क्या महामण्डल की दृष्टि में वर्तमान आर्यसमाजमें कोई विद्वान् है या नहीं ! यदि है तो यतिप्रवर स्वामीदयानन्दजी के उस अनुयायी को मण्डलने उपाधि दी है या नहीं ? उपाधिपाने वालों में कोई थियासोफिस्ट है या नहीं ! ब्राह्मो है या नहीं ! यह प्रश्न हम इस द्विविधा में

करते हैं कि महामण्डल सम्प्रदायभेद को नहीं मानता और उसका पिट्ठू राघवेन्द्र अकबरी धर्म को साम्प्रदायिक रहस्यों से अनभिज्ञों का बतलाता है । महामण्डल ने सोश्यल कान्फरैंस पर कान तक नहीं हिलाया था और राघवेन्द्र ने आकाश पाताल मिला कर भले सज्जनों की निन्दा तक कर डाली ! इसी से पूछते हैं कि ब्रह्म सत्य है या माया ?

* * *

महामण्डल के शास्त्रप्रकाश- विभाग द्वारा 'श्री भारतधर्ममहामण्डल रहस्य' नामक उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है । इस में २१९ पृष्ठ हैं। इस का मूल्य १॥) अधिक है । उत्तम पुस्तकों के प्रचार का उपाय उन्हें बांटना और कम मूल्य पर बेचना ही है। इस के विषय में यह कहा जा सकता है कि आत्मश्लाघा और व्यर्थ आडम्बर के पृष्ठों को छोड़कर एक भी ऐसा पुस्तक महामण्डल प्रतिवर्ष निकाल दिया करै, तो वह अपने कर्त्तव्य के मार्ग में आ सकता है, कागज़ी घोड़ों और पालिसियों से नहीं । भूमि में 'ग्रन्थकार की आज्ञानुसार' पण्डित गोपीनाथ ने 'यह ग्रन्थरत्न श्री भारतधर्ममहामण्डल के श्रद्धास्पद संरक्षक महोदय, माननीय प्रतिनिधि महाशय, वन्दनीय व्यवस्थापक महोदय, श्लाघनीय सहायक महाशय और प्रशंसनीय साधारण सभ्य महोदयों * के अर्थ' समर्पण किया है। बेचारे उपदेशक लोग कहां गए ? वकौल कल्लू अल्हइत के उन का "सरगौ नरक ठेकानानाहिं" । इस ग्रन्थरत्न के नाम के पाठ करने से कोई महाशय ऐसा न समझें कि यह ग्रन्थ **महामण्डल का अनुशासन** ग्रन्थ है; (इतनी सावधानी क्यों ! क्या मधुसूदनसंहिता विभ्राट् के पीछे मण्डल फूंक फूंक कर पैर रखता है ? मोटे टाइप में छपे अंशों का पण्डित महावीरप्रसाद

द्विवेदी यह अर्थ करेंगे—पहले महामण्डल, पीछे उसका शासन) वास्तव में इस ग्रन्थरत्न के प्रकाशित करने का प्रथम उद्देश्य यह है कि जिन्होंने असाधारण यत्न द्वारा भारतवर्ष की अनेकानेक धर्मसभाओं के सम्मेलन से जो इस नियम—बद्ध विराट् सभा की स्थापना की है उन का आन्तरिक तात्पर्य विदित हो (यह काम तो पण्डित दीनदयालु ने किया था परन्तु उन का यह ग्रन्थरत्न हो नहीं सकता) दूसरा उद्देश्य यह है कि जिन्होंने आर्यजाति के कल्याणार्थ और सनातनधर्म के पुनरभ्युदय के अर्थ बहुत काल तक बहुत कुछ चिन्ता की है उनकी चिन्ता का यथासम्भव लाभ (याने बहुत कुछ लाभ) श्री भारतधर्ममहामण्डल के सभ्य महोदयगण और विशेषतः कार्य्यकर्त्ता गण उठा सकैं। (इस से सिद्ध हुआ कि महामण्डल के गणपाठ के कार्यकर्त्ता गण में इस के कर्त्ता नहीं है, या हैं तो उस गण में गिने और लोग उनकी चिन्ता से अनभिज्ञ हैं। अस्तु, चाहे ग्रन्थकार अपने पवित्र नाम को छिपाना पसन्द करें , परन्तु जिसे इसे पढ़ कर उन के विज्ञान का आनन्द मिलेगा वह शतमुख से उनके उदारभाव और हितचिन्तन की स्तुति करेगा)। ग्यारह पृष्ठों के शुद्धिपत्र के पीछे ग्रन्थ का आरम्भ है। प्रथम टिप्पणी में भारत का, अर्थात् वृटिश इण्डिया का, परिमाण नए श्लोकों में दिया गया है जिन का प्रमाण नहीं लिखा गया। ऐसे ही अमूलक (अर्थात् और प्रमाणों की तरह जिन का मूल नहीं लिखा गया) धर्म के लक्षण श्लोकों में 'सुभगे' पद से अनुमान होता है कि मङ्गलाचरण के फुटनोट का मङ्गलाचरण शायद मधुसूदन संहिता में से किया गया है। आगे 'महामण्डल शब्द का तात्पर्य महासभा से है। सनातनधर्म—सम्बन्धी जहां कहीं जो कुछ व्यष्टिरूप से सभा धर्म्मालय आदि का पुरुषार्थ हो रहा है सब

का समष्टि रूपी विराट् धर्मसभा यह महामण्डल है ' यों समझाया गया है । (इसी से तो मुम्बई का पञ्चाङ्गशोधन कमंडलु में लीन हो गया है और इसी से 'स्वदेशबन्धु' नामक नवजात लाहौरी पत्र की द्वितीय संख्या में कहा गया था कि मण्डल के पुरुषार्थ से ग्वालियर में हिन्दी का प्रचार हो गया है) । 'जबतक इस भारतभूमि में पूज्यपाद त्रिकालदर्शी आर्य ऋषिगणों का प्रकाश रहा तबतक इस पवित्र धर्ममार्ग में किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं दिखाई दिया' (पृ० ३) परन्तु 'अविद्या बढ़ने से प्रजा की धर्मशिक्षा जितनी न्यून होती रही उतना ही प्रजागण सनातनधर्म का सार्वभौम—भाव भूलते रहे और क्रमशः आपस में विरोध बढता रहा और सम्प्रदाएं अपना २ लक्ष्य छोड़ धर्म से ही अधर्म की उत्पत्ति करने लगीं । उसी समयजीवों की दुर्गति देख × × **दया अवतार श्री भगवान् बुद्धदेव का आविर्भाव हुआ** (पृ० ५) बौद्धधर्म के अत्याचारों से पीड़ित होकर आर्यगणों ने पुनः मस्तक उठाया । उसी समय दार्शनिक शिरोमणि कुमारिलभट्ट आदि ऋषि तुल्य आचार्यों का जन्म होने से बौद्ध धर्म हीनबल होने लगा। तब सुअवसर जान श्री भगवान् शङ्कराचार्य प्रकट भये और अपनी पूर्वलीला में जो २ अभाव रक्खेथे उनको पूर्ण कर दिये' (पृ०६) [हिन्दी चिन्त्य है । पूर्वलीला माने बुद्धावतार ?] पीछे मुसलमानी राजत्वकाल में 'वैष्णवधर्म का आविर्भाव हुआ और राजा यवन रहने पर भी एक बार समस्त भारतवर्ष में धर्मप्रवाह बहने लगा और उस से मलिनता बहुत कुछ धुल कर सनातनधर्म की श्रेष्ठता स्थापन हुई और इसी स्रोत से बहुत जीवों का कल्याण हुआ' (पृ० ९) इस स्रोत में 'विशिष्टाद्वैतमतप्रवर्तक पूजनीय श्रीरामानुजाचार्य, शुद्धाद्वैत सम्प्रदायप्रवर्तक श्रद्धास्पद श्री विष्णुस्वामी,

तथा श्रद्धास्पद श्री वल्लभाचार्य, द्वैताद्वैत सम्प्रदाय प्रवर्तक माननीय श्री निम्बार्काचार्य, द्वैतमत प्रवर्तक आराध्य श्री माध्वाचार्य तथा यतिवर श्री चैतन्याचार्य प्रभृति और धर्मसंस्थापकों में ऋषि तुल्य श्री मधुसूदनाचार्यजी, सिद्धवर श्री नानकजी, भक्ताग्रगण्य श्री तुलसीदासजी, कविवर श्री सूरदासजी, यतिवर श्री रामदासस्वामी आदि महात्मागणों ने धर्म की रक्षा करने में पूर्ण सहायता की' (पृ० ९) यद्यपि यवन राज्य नाश होने पर मरहठा और सिख राज्य स्थापित हुआ 'परन्तु अधर्म के द्वारा धर्म की रक्षा नहीं हो सकती, हिन्दुओं को दासत्व करते हुए बहुत काल बीत गया था, वे राज धर्मरक्षा न कर सके' (पृ० १०) 'ईसाईधर्म प्रचारकों द्वारा पुनः हिन्दू-धर्म हृदय पर बहुत ही धक्के लगे, तो पुनः तमोगुण प्राप्त हुए सनातन धर्म ने करवट ली' (१०) 'इस बात को अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि पंडितवर राजा राममोहनरायजी का प्रतिष्ठित ब्रह्मसमाज और यतिवर स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का प्रतिष्ठित आर्यसमाज इन दोनों मतों से सनातन धर्म को उसके आपत्काल में बहुत ही सहायता मिली (११) फिर, 'असाधारण बुद्धिमती परम विदुषी श्रीमती मैडम ब्लैभस्की उत्पन्न हुई ।(१२) विशेषतः श्रीमती उसी जाति की थी कि जिस के द्वारा आर्यप्रजा की श्रद्धा का नाश हुआ था, इसी कारण जब उसी जाति की एक असाधारण तेज और शक्तिसम्पन्ना विदुषी के द्वारा अपने आर्य विज्ञान के अनुकूल उपदेश आर्यप्रजा को मिलने लगे तो तुरत ही वे अपने भूले हुए स्वरूप को जानने में समर्थ होने लगे । वास्तव में श्रीमती की असाधारण शक्ति प्रतिभा और पुरुषार्थ के द्वारा तथा उन के शिष्य परम्पराय (बवजन सांपराय ?) द्वारा इस समय के धर्मप्रवाह

की उन्नति करने में बहुत ही सहायता मिली (१४) वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ स्थानीय हैं, और आश्रम में संन्यास शीर्ष स्थानीय है अतः ब्राह्मणों के भी गुरु संन्यासी ही कहाते हैं" (१५) [यह पूजा पकाना है] धर्म पुरुषार्थ में दोनों गुरु ही लगे। ' जिन में से धर्म प्रचार कार्य में शारदा मठाधीश परमहंस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्रीस्वामी मद्रा (?) जराजेश्वर शङ्कराश्रम शङ्कराचार्यजी महाराज ने और विद्याप्रचार के विषय में परमहंस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्रीमान् स्वामी ब्रह्मनाथ आश्रमजी महाराज ने [वजन खूब बराबर मिलाया है] बहुत कुछ कार्य किया' [प्रथम ने तो उपदेश यात्रा की और दूसरे ने ?]। 'संस्कृत ग्रन्थों के अनुसन्धान करने में इटावा नगरस्थ पुस्तकोन्नतिसभा' के 'असाधारण कार्य' [हैं !] और पञ्जाब की धर्म सभाओं और बङ्गाल की हरि सभाओं के बहुत कुछ सत्पुरुषार्थ को शाबासी देकर लिखा गया है—

' प्रथम हरिद्वारतीर्थ के महाकुम्भ मेले के समय वर्ण गुरु ब्राह्मणों के द्वारा [नाम तो दिया होता !] भारतधर्ममहामण्डल नामक महासभा का जन्म हुआ। तदनन्तर त्रिवेणी तीर्थ के महाकुम्भ के मेले के समय आश्रमगुरु संन्यासिगणों के द्वारा निगमागम मण्डली नामक दूसरी महासभा की सृष्टि हुई, एकने प्रचार कार्य और दूसरी ने प्रबन्ध कार्य (सच्चे ही ?) में सफलता प्राप्त की। और तत्पश्चात् कलेर्गताब्दाः ५००१ में दोनों का पुरुषार्थ एक होकर कार्य करने का सुअवसर हुआ' तो 'उक्त दोनों सभाओं के सम्मेलन से कलेर्गताब्दाः ५००२ में श्री मथुरापुरी के महा अधिवेशन में नियमबद्ध विराट् सभा श्री भारतधर्ममहामण्डल का जन्म हुआ (१७)

परम आनन्द परिपूर्ण कैलाशकानन में शिवशक्ति सम्मेलन से जिस प्रकार परमपदरूपी मुक्तिफल की प्राप्ति होती है उसी प्रकार भारत कानन में इस धर्ममण्डल व धर्ममण्डली के सम्मेलन द्वारा मानो त्रिताप से तापित आर्यजाति को धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी फलों की प्राप्ति कराने के लिए श्री भारत धर्म महामण्डल की उत्पत्ति हुई है' (१८) [यह तो किसी रसिकने लिखा है] 'निरपेक्ष विचार द्वारा यह मानना ही पड़ेगा कि पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षि गणों के तिरोभाव के अनन्तर राजकीय सार्वभौम सुशासन के विचार से स्थायी सुअवसर आर्यजाति को अभी मिला है'। (१९) 'सनातन धर्मावलम्बी समाज में धर्मानुशासन का **यथा देशकाल और यथा सम्भव अधिकार** प्रवृत्त कराकर धर्म का पुनरभ्युदय और सद्विद्या का विस्तार करने के अर्थ ही सर्वशक्तिमान् श्री हरिः की अपार कृपा से इस विराट् सभा की उत्पत्ति हुई है, (२०) इस वंशावली और प्रतिज्ञा से प्रथम अध्याय 'आर्यजाति की दशा का परिवर्तन' बताकर समाप्त होता है।

* * *

द्वितीय अध्याय में **चिन्ता का कारण** वर्णित है। वैज्ञानिक युक्तियों के सहारे सृष्टि जाति और ब्रह्म का विचार करके जरायुज जाति की चार संज्ञा की हैं— 'यथा आर्य जाति, अनार्यजाति, उन्नत पशुजाति और निकृष्ट पशुजाति। (२४) त्रिगुण विभाग से वर्णचतुष्टय के भेद को समझाकर, मानसिक सृष्टि का वर्णन करके, महाभारत के (शान्तिपर्व अध्याय १८८) श्लोक उद्धृत करके चातुर्वर्ण्य का निम्नगामी स्रोत समझाया गया है—

असृजत् ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन् ।
आत्मतेजोभिनिर्वृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभान् ॥
न विशेषोस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्राह्मणाः पूर्वसृष्टा हि कर्मभिर्वर्णतां गताः ॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः ।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः ।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥

यों जाति-भेद-हीन-काल का उल्लेख कर के पूर्वकथित जड़प्रवाह और चेतनप्रवाह के जीव सम्बन्धी विज्ञान की आलोचना द्वारा सिद्ध किया है कि 'कोई जाति अपने कर्मों को उन्नत करने पर एका एक उन्नत नहीं हो सकती क्योंकि आदि में पूर्ण मानवकी उत्पत्ति हुई है और मनुष्य के अन्तःकरण की स्वाभाविक गति अधोमुखी है ।' (३५) 'तमोगुण पक्षपातिनी एशिया वा अफ्रिका की विशेष विशेष जातियां' रजोगुणप क्षपातिनी वर्त्तमान यूरोप और अमेरिका की विशेष विशेष जातियां, और सत्वगुण पक्षपातिनी आर्यजाति के बहिः आचारों में बहुत ही अन्तर देख' (३७) कर साभिमान कहा गया है कि 'अपने जातीय भाव की रक्षा तभी हो सकती है, अपना जातिगत जीवन तभी रह सकता है जब तक वह जाति अपनी जातिगत रीति, नीति, खान, पान, भूषण, आच्छादन भाषा और सदाचार में दृढ़ और तत्पर रहती है । पृथिवी भर में केवल आर्य

जाति ही तेजस्विता पूर्वक कह सकती है कि हम हीं अपने क्षेत्र की पवित्रता रक्षा करने में समर्थ हैं'। (२८) वारम्वार पराजित होने पर भी आर्यजाति स्वरूप को बिलकुल न भूल सकी, क्योंकि 'किसी जाति की शक्ति लघु होने पर ही वह दूसरी जाति से नाश को प्राप्त हुआ करती हैं।....आजतक जितनी विदेशीय जातियों ने इस भूमि को जय किया है वे सब ही आध्यात्मिक विचाररूप सात्विक शक्ति के विचार से इस आर्यजाति से लघु ही रही हैं। इसी कारण राजसिक अवनति की पूर्णता को प्राप्त करने पर भी....यह मृतप्राय होने पर भी अभीतक जीवित ही है' (पृ० ४१, ४२) 'धर्मप्राण आर्यजाति को अपने (?) राजसिक शक्ति के नाश का विशेष विचार नहीं है। यदि च बुद्धिमान् गणों को अभी तक इस प्रकार का भय तो नहीं उत्पन्न हुआ है कि आर्य्यजाति में से सात्विक शक्ति भी जाती रही है, तथापि दूरदर्शी पुरुषगण अब बहुत कुछ सन्देह करने लगे हैं। सदाचार-पालन की ओर से आर्यजाति की प्रवृत्ति दिन प्रतिदिन तीव्र वेग के साथ घटती जाती है। हिन्दू धर्मसमाज से विषय वैराग्य का प्रवाह घटकर दिन प्रतिदिन विषयतृष्णा का प्रबल वेग होता जाता है' (४२) 'अन्तःशुद्धि जो सनातनधर्म का प्रधान लक्ष्य था उसका लोप होकर बाह्याडम्बर की ओर इस जाति का अधिक लक्ष्य पड़ने लगा है। परोपकार प्रवृत्ति, स्वजाति अनुराग, स्वदेश प्रेम, उत्साह, न्यायदृष्टि, सरलता, पवित्रता, ऐक्य, आस्तिकता, शौर्य, पुरुषार्थ, शक्ति आदि मनुष्यजाति की उन्नत गुणावली का अभाव इस जाति में दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है। गुण परीक्षा की शक्ति समाज में से बिलकुल ही जाती रही है, समाज में यहां तक लघुता आगई है कि जो महापुरुष देश के लिये, जाति के लिये और अपने प्रिय सनातन

धर्म के लिये कदाचित् आत्मोत्सर्ग करते हैं उसी को लोग स्वार्थी, प्रवञ्चक और कपटी समझ कर उसके साथ दुर्व्यवहार करने में प्रवृत्त होते है और वाह्याडम्बर युक्त स्वार्थी लोग धर्मसेवी माने जाते हैं' (४३) [यह वाक्य शायद राघवेन्द्र साहब की नज़र से भी गुज़रना चाहिए] इसलिए ' इस निम्नगामी स्रोत को रोकने के लिए प्रबल यत्न होना उचित है' ।

व्याधि निर्णय नामक तृतीय अध्याय भारतवर्ष की पूर्ण ओजस्विनी स्तुति से आरम्भ होता है । 'मुसलमान साम्राज्य के समय में आर्यजाति बहुत ही अधःपतित हो जाने पर भी अपने स्वजातिभाव को विस्मृत नहीं हुई थी । उस समय का इतिहास पाठ करने से यही प्रतीत होता है ।कि उस घोरतर आपद्काल में भी यह आर्य्यजाति अपनी रीति, नीति, धर्म, कर्म, शिल्प, वाणिज्य, वेश, भाषा और सदाचार आदि आर्यभावों को विस्मृत नहीं हुई थी' (४९) अंगरेज राज्य ने कुछ सैन्यबल लेकर भारतवर्ष को जय नहीं किया है, किन्तु 'गुणप्रभाव के कारण आलस्य तथा प्रमाद पक्षपाती भारतवासियों ने कर्म्मठ और बुद्धिमान् अङ्गरेज जाति को अपना रक्षक करके **मान** लिया है' (५२) यों 'अति प्राचीन काल से जो जाति जगद्गुरु नाम से प्रसिद्ध थी उसी आर्य्यजाति की वर्त्तमान हीनावस्था देखकर पृथिवी के अन्यान्य जातिगण उपहासपूर्वक अंगुली उठाने लगे हैं । अनुकरण शून्यता और एकता के न होने से जातीयभाव की उन्नति नहीं हो सकती, एवं विना जातीयभाव की रक्षा के कोई जाति चिरकाल पर्य्यन्त जीवित नहीं रह सकती (५५) सूक्ष्म विचार द्वारा यह अनुमान में आ सकता है कि नानाप्रकार से लांछित और पीड़ित होने पर भी मुसलमान साम्राज्य के समय इस आर्य्यजाति के सात्विक

तेज की इतनी क्षति नहीं हुई थी जितनी अब इस नवीन समय में प्रतीत होती है, (६३) क्योंकि, 'इस वर्तमान शान्तियुक्त साम्राज्य में अभीतक जातीयभाव की कोई भी उन्नति नहीं दीख पड़ती। इस बीच में ऐसे कोई धर्मोद्धारक नहीं प्रकट हुए' (५६) और शिल्प वाणिज्य, और मातृभाषा का नाश होकर सब में विदेशीय भाव की ज्वाला लग गई है। इस प्रमादवृत्ति की अपूर्व लीला देखकर कभी तो चित्त में हास्यरस का उदय होता है, कभी घोरतर करुणा से हृदय विदीर्ण होने लगता है (६१) यों 'कर्मभ्रष्ट, तपोभ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट, आचारभ्रष्ट, और शक्तिभ्रष्ट' (६२) होने का कारण यह है कि 'जाति में जातिगत पुरस्कार अथवा जातिगत तिरस्कार दोनों प्रकारों ही की रीति एक बार ही लुप्त हो गई है'। (६४) [सत्य है, परन्तु क्या लेखक को यह नहीं सूझा कि जिनके हाथ में जातिगत पुरस्कार वा तिरस्कार है वा जिनके हाथ में वे इसको देना चाहते हैं, वे उसके मुन्सिफ़ बनने में अपनी अयोग्यता सिद्ध कर चुके हैं, और उन की अयोग्यता ही जातिबन्धन की शिथिलता की जड़ है और विना उन्हें पूरी तौर से हिलाए वा गिराए **'जाति की सात्त्विक शक्ति'** नया जीवन नहीं पा सकेगी !।]

*

'सफलता का बीजमन्त्र नियम है। अनुशासन के द्वारा ही नियम की रक्षा हुआ करती है' (६७) यह औषधि प्रयोगनामक चौथे अध्याय का आरम्भ है। इस अनुशासन को 'योगानुशासन, राजानुशासन, और शब्दानुशासन' में बांटा है, जिसमें राजानुशासन गौण माना गया है, और प्रथम को वर्तमान समय के अनुपयुक्त बताया गया है। शब्दानुशासन के आचार्याज्ञा और शास्त्राज्ञा दो भेद किये गये हैं, और

'तथापि लोक हितार्थ आचार्य्यानुशासन को ही प्रधान अवलम्बन समझ सकते हैं' (७२)। गुरु और आचार्य्य एक ही भावप्रकाशक हैं (७३) और 'अज्ञानयुक्त कलियुग में मनुष्यों की बुद्धि बहुत ही मलिन हो गई है, अतएव आचार्यानुशासन की और भी दृढ़ता होना उचित है (७४)। प्रत्यक्ष दण्ड की बड़ी भारी आवश्यकता है, परन्तु आचार्यानुशासन अधिक हितकारी हो सकने पर भी राजदण्ड के आश्रय से चल सकता है (७६) परन्तु सम्राट् अन्य धर्मावलम्बी होने के कारण सामाजिक अनुशासन ही से आर्य्यजाति का कल्याण हो सकता है (७७) इस समय सामाजिक अनुशासन की बहुत कुछ प्रशंसनीय रीति यूरोप और अमेरिका के मनुष्यसमाज में देखने में आती है। (७८) 'राजनीति विचार में यदि च आज दिन यूरोपीय जाति ने नाना नूतन आविष्कार कर दिखाये है परन्तु उनका राजनीतिक विज्ञान सदा परिवर्त्तनशील ही देखने में आता है, किन्तु आर्य राजनीति अपरिवर्त्तनशील तथा दृढ़ है।' 'प्रजातन्त्रभाव को तो सनातन धर्मावलम्बी स्वीकार ही नहीं कर सकते, उन की दृष्टि में प्रजातन्त्र भाव तो अधर्म का भावी घर अनुमान होता है' (७९) [लेखक महात्माजी घबरा रहे हैं कि कहीं प्रजातन्त्र का नाम भी पसन्द हो जायगा तो हमारी लाठी पर कोई न नाचेगा। प्रजातन्त्र ही संसार का भविष्य है, और 'संगच्छध्वं संवदध्वं' आदि श्रुति और 'संघशक्तिः कलौयुगे' आदि स्मृति से वह भारतवासियों के धर्मानुकूल है। यदि आचार्य वास्तव में 'आचारं ग्राहयंति' के योग्य हों तो लोग उनका चरण धोवेंगे और वे नेता ही रहेंगे। परन्तु यदि आज कल की तरह जिसी किसी काषायाम्बरधर को वा तिलकावृतभाल को पोप वा जगद्गुरु बनाना ही महामण्डल का एक मात्र औषधि प्रयोग है तो उसे दूर ही से प्रणाम है]

धर्माचार्य बहुत पुज चुके और बहुत खा चुके। उस पन्द्रहवीं शताब्दी मरी परिपाटी को क्यों जगाया जाता है? इससे ही राजभक्ति की दुहाई दी जाती है? इसीसे पुण्यश्लोक लक्ष्मीश्वर सिंह (जिनने कांग्रेस के आपत्काल में विशाल प्रासाद देकर उस की प्राणरक्षा की थी) के अनुज सुरेन्द्र बाबू और बन्दे मातरं के सम्बन्ध से स्वदेशी यूनिवर्सिटी से भागते हैं? अप्रसङ्ग तो है, पर प्रश्न है कि सारी हिन्दू जाति की तरफ से मण्डल युवराज को जो मङ्गलकामनापूर्वक एड्रेस देना चाहता था और जो काशी और प्रयाग के उत्सवों का प्रधान उद्देश्य बनाया गया था, वह एड्रेस क्या हुआ? युवराज तो भारतवर्ष से विदा भी हुए पर उस विराट् एड्रेस की सफलता नहीं सुनी गई। धर्माचार्यों और मठाधीशों की अभ्रान्तता और योग्यता अब स्वप्न होगई है मण्डल उसे फिर क्यों जगाना चाहता है? जिस दिन आचार्य महापुरुष बन जायंगे, या समय के भूमिकम्प से महापुरुष आचार्य बन जायंगे, उस दिन उन के अनुशासन, नैपोलियन की तरह, पुज जायंगे। मण्डल उस वाञ्छित परिवर्तन का मार्ग सुगम करै, 'चारों मठों की श्री वृद्धि तथा अन्यान्य साम्प्रदायिक आचार्य स्थानों की उन्नति करते हुये आचार्य मर्यादा की पुनः स्थापना' (८४) आचार्यों की योग्यता के पहले क्यों करता है?] इस के पीछे मण्डल और प्रान्तीय धर्मसमाजों की बनावट और प्रबन्ध का स्कीम है। प्रान्तीय वा प्रधान सभापति के अनुशासन (जैसे पोप के बुल?), देशभर में अकीर्ति विस्तार, तिरस्कार और पुरस्कार को कार्यक्रम मानकर 'आर्य जाति की पुनरुन्नति तथा सनातनधर्म का पुनरभ्युदय होना निश्चय' कहा गया है (८९)। खैर, इस कागज़ी कल्पना के

बाद ' वर्णों के नेता ब्राह्मण, और वर्णों के गुरु तथा आश्रमों के नेता संन्यासियों के वर्तमान आचार विचारों का संस्कार अवश्य ही होना उचित ' माना गया है। ' सांसारिक लोग प्रायः ऐसा विचार करते हैं कि ज्ञानवान् होने पर ही, संन्यास आश्रम धारी होने पर ही, जड़वत् निश्चेष्ट हो जाना उचित है'। (९२) इस पूर्वपक्ष को उठा कर, युक्ति से, गीता के वाक्यों का प्रकृतानुग अर्थ देकर, सिद्ध किया है कि ' जो पुरुष कर्मफल की इच्छा न रखकर अवश्य कर्तव्य समझते हुए विहित कर्म किया करते हैं वे ही संन्यासी हैं; और निष्काम पुरुषार्थ की पूर्णावस्था ही संन्यासपद वाच्य है ' (९४)। निष्काम कर्म योग की बहुत कुछ स्तुति की गई है। [इस हिसाब से कई 'उदर निमित्तं बहुकृतवेशः ' की अपेक्षा श्रीमान् गोखले और तिलक ही 'निष्काम कर्म में जो कर्म का न होना मानते है और बलपूर्वक कर्म त्याग में जो कर्म का होना अनुभव करते हैं मनुष्यगण में वे ही यथार्थ में बुद्धिमान् हैं और पुरुषार्थकारी होने पर भी वे ही ब्रह्म में युक्त अर्थात् जीवन्मुक्त हैं, (९८), । यदि आलस्यकलहपरायण वर्त्तमान काषायवस्त्रधारी मनुष्यों में मण्डल यह भाव फैला देवे, तो क्या ही कहना। उपसंहार में, ' ब्रह्मचर्य आश्रम की पुनः प्रतिष्ठा करके निष्काम व्रतपरायण मनुष्य उत्पन्न करने पड़ेंगे, प्रत्येक गृहस्थ को यथासंभव निष्काम कर्म की प्रतिज्ञा करके गृहस्थ आश्रम में प्रवृत्त होना पड़ेगा, कर्मयोगी वानप्रस्थ आश्रमधारी पुरुषगण जब दिन और रात लोकहित में प्रवृत्त होंगे और संन्यास आश्रम का एक मात्र अवलम्बन जब श्रीगीतोपनिषद् का विज्ञान हो जायगा, उसी समय इस घोर रोग की शान्ति होगी। अनुशासनाभावरूपी क्षयरोग के साथ स्वार्थपरतारूपी वीर्यभङ्ग रोग की उत्पत्ति से आर्य जाति की

दशा अब बहुत ही कठिन और शोचनीय होगई है' (६९) 'सुपथ्य सेवन' नामक पञ्चमाध्याय का आरम्भ 'प्रकृतिपुरुष विज्ञान के सिद्धान्त' से यह सिद्ध करने से होता है कि 'यदि सृष्टि कर्त्ता आदि पुरुष और सृष्टिकर्त्री मूलप्रकृति के साथ नर और नारी देह का समष्टि और व्यष्टि सम्बन्ध विज्ञान सिद्ध है तो यह भी मानना ही पड़ेगा कि उसी आदि नियम के अनुसार नारी शरीर की शारीरिक और मानसिक चेष्टाएं निजपति के सम्पूर्ण अधीन रहना स्वभाव अनुकूल है (१०२) पृष्ठ१०४,५ में विज्ञान के नाम से बहुपत्नी विवाह और पुरुषों के दुराचार को सहारा दिया गया है। 'धर्माधर्म से अतीत कोई भी स्थान अथवा वस्तु नहीं है' (१०७) इस से मनुष्य समाज में नर और नारी दोनों का कदापि समान अधिकार नहीं हो सकता (१०५) पीछे कन्या विवाह काल निर्णय करते समय, 'सृष्टि क्रिया में नारी देह ही प्रधान है' 'बालक और बालिका इन दोनों के शरीर की प्रकृति को जब देखते हैं तो यही सिद्धान्त होता है कि अष्टवर्ष का बालक परमहंसवत् निर्द्वन्द्व ही रहता है, परन्तु अष्टवर्ष की कन्या अपने आप को नारी शरीर मान कर लज्जा, शीलता, संकोच आदि गुणों से युक्त हो जाती है (१०९) [क्या बालक में यह शताब्दियों के अज्ञान और पराधीनत्व का फल नहीं है और कन्याओं में शताब्दियों की जड़ता, दासत्व और श्वश्रू और माता के दबाव का निवारणार्ह परिणाम नहीं है ?] 'स्त्री प्रकृति स्वभावतः मोहमयी और चञ्चला है उस का पूर्णरूपेण शुद्ध रहना तभी सम्भव है कि नारीशरीर अपनी चञ्चलता को प्राप्त करने से पूर्वही विवाह संस्कारद्वारा पति केन्द्र स्थापन पूर्वक सीमाबद्ध हो जाय तो उस अन्तःकरण में पुनः चञ्चलता होने पर भी अन्य अधर्म संस्कार पड़ न सकेंगे,

(१११) ' धर्मशास्त्र विरुद्ध लोक अकीर्त्ति कर और पापजनक विधवा विवाह का सिद्ध होना तो सम्भव ही' नहीं सिद्ध किया है (१११) नारी जाति की पवित्रता वृद्धि और उसकी आध्यात्मिक उन्नति जितनी की जायगी उतनी वर्तमान सामाजिक रोग की शान्ति होगी, (११२) इसके आगे शिक्षा की समीक्षा चली है । मातृभाषा को शिक्षा का प्रधान आश्रय बताया है । संस्कृत की प्राचीन शिक्षा पूर्ण परन्तु एकदेशीय होने के कारण एवं नवीन संस्कृत शिक्षा विस्तृत परन्तु असम्पूर्ण रहने के कारण वर्तमान दोनों प्रकार की संस्कृत शिक्षाप्रणाली ही भारतवर्ष के सर्वसाधारण जनों को पूर्ण फलदायी नहीं हो सकती हैं' (११८) 'फलतः आजकल केवल मुख से जो धर्म धर्म कहने की रीति प्रचालित होती जाती है वैसे वाचनिक धर्म से भारत का कल्याण होना सर्वथा असम्भव है (११९) । इसी लिए शिक्षाप्रचार आवश्यक है । ' लौकिकशिक्षा के प्रचार करनें में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का विचार कदापि करना उचित नहीं है । धर्म के क्रिया सिद्धांश शिक्षा देने में और वेद तथा वैदिक विज्ञान के शिक्षा देने में अवश्य ही वर्णाश्रम अधिकार का विचार रखना कर्तव्य है। परन्तु आर्यजाति के पुनरभ्युदय के अर्थ जबतक सार्वजनिक शिक्षा का विचार न किया जायगा तब तक सफलता की सम्भावना नहीं है।'(१२१)यहां से शारदामण्डल का कागज़ी स्कीम आरम्भ होता है। 'विशुद्ध हिन्दी भाषा ही को'...'थोड़ासा यत्न करने परही'...'सर्वसाधारण भारतवासियों के लिए केन्द्ररूपेण स्थापित करना' और 'परमविशुद्ध स्वर्गीय संस्कृत भाषा को पितृस्थानीय और इस हिन्दी भाषा को मातृस्थानीय करके ज्ञान राज्य में लालित पालित करने की (१२४) सम्मति दी गई है । 'ब्राह्मण धर्म्मोन्नतिकारी शिक्षाविस्तार ही के साथ

शिल्प, वाणिज्य और कृषि की उन्नति के (।) उपयोगी शिक्षा का भी विस्तार होना उचित है। (१२८) इस में तो सन्देह नहीं कि जब तक संन्यास आश्रम की पुनः प्रतिष्ठा नहीं होगी, जब तक संन्यासी गण निष्काम व्रत की पराकाष्ठा को पहुंचते हुए सदा लोकहित कार्यों में रत न रहेंगे तब तक आर्य्य जाति की उन्नति असम्भव है (१२८)। इस से गृहस्थ आश्रम में एक निवृत्ति मार्ग की श्रेणी बना कर शिखा सूत्र की रक्षा करवाते हुए कर्म संन्यासियों, और निष्काम कर्म योग परायण कुल कामिनीगण को, वर्त्तमान सामाजिक घोर रोग का शान्तिकारक पथ्य बता कर यह अध्याय समाप्त होता है।

* * *

बीज रक्षा छठे अध्याय का नाम है। धर्म के कुछ तत्त्वों का वर्णन करके कहा है कि 'सनातनधर्म के इन अङ्गों में से किसी एक को भी पूर्णरूपेण सात्विक रीति से साधन करने से मुक्ति पद तक पहुंचना होता है' (१२५) और इसका दृष्टान्त बौद्धधर्म और जापान की उन्नति से दिया गया है। 'सनातनधर्म ही बहुपुत्रवान् पिता की न्याई पृथिवी के वैदिक अथवा अवैदिक सब धर्मसम्प्रदायों का प्रतिपालक है'। (१३६) प्राचीन सम्प्रदाय भेद का वर्णन करके, आधुनिक 'पन्थों के आचार्यों ने आर्ष शास्त्रानुशासन के अतिरिक्त कुछ नवीनता भी करली है। इन सब पन्थों में एक विलक्षणता यह है कि वास्तव में चार वर्ण और चार आश्रम के स्थान पर इन्होंने केवल दो आश्रम (गृहस्थ और विरक्त) और दो वर्ण (दीक्षित और अदीक्षित) ही नियत रक्खे हैं (१३८)' यह कह कर वर्णाश्रम धर्म की जन्ममूलकता पर कुठाराघात किया है। 'इस काल में चतुर्थाश्रम

नाम से कितना प्रपञ्च हो रहा है सो आश्चर्य्य जनक है, प्राचीनकाल में चतुर्थाश्रम में बहुत अल्पसंख्यक तत्वदर्शी ब्राह्मण ही पहुंचा करते थे, परन्तु अब नीच से नीच जातिपर्यन्त इस आश्रम के वेष और नाम को धारण करके वर्ण और आश्रम धर्म का नाश कर रहे है। इस प्रकार के पन्थाई अनाचारों से सनातनधर्म को बहुत कुछ हानि पहुंची है किन्तु [इतना ही स्वतन्त्रता से कह दिया सो बहुत किया] ··ये सम्प्रदाय और पन्थसमूह सब ही वेदानुयायी कहे जा सकते हैं (१३९)' पीछे आर्य्यसमाज और ब्रह्मसमाज को किञ्चित् वेदानुयायी कहा है और ' दूरदर्शी पुरुषों का यही विचार है कि अपने निजकुलद्रोही होने पर भी कालान्तर में सनातनधर्म के साथ विरोध की न्यूनता करके ये उस के एक पन्थ ही बन जायंगे' (१४०) आगे नैकट्य सम्बन्ध के विचार से बौद्धधर्म जैनधर्म और पारसी धर्म को लेकर बौद्धधर्म को ' वैज्ञानिक भावों की उन्नति के विचार से उत्तम' कहा है और 'इनमें जितने दोष हैं वे अधिदैव सम्बन्ध से दूर हो सकते थे, इसी कारण सनातनधर्मरूपी पिता की ताड़ना है, नहीं तो सनातनधर्म अन्य धर्ममतों के साथ विरुद्धाचरण करना जानता ही नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से पृथिवी भर के सब वैदिक और अवैदिक धर्म मत समूह ही समदर्शी सनातनधर्म के निकट पुष्टि और तुष्टि के योग्य है, केवल आचार के तारतम्य से ही धर्ममतों को वैदिक और अवैदिक संज्ञा में विभक्त किया जाता है' (१४२) । इस निरपेक्ष और सार्वभौम दृष्टि (१४२) से यहूदी, ईसाई, और मुसलमान धर्मों के 'आचार्य्यों की सनातनधर्म के गम्भीर सिद्धान्तों को समझने की योग्यता थी अथवा न थी, इस के विषय में विचार करने की विशेष आवश्यकता नहीं है, परन्तु यह तो स्वीकार ही करना

पड़ेगा कि उन के पशुवत् देशवासी गण उस समय सनातनधर्म के सिद्धान्तों के समझने की योग्यता नहीं रखते थे' (१४३) 'यद्यपि शास्त्रों में अभ्युदय का अर्थ स्वर्ग और निःश्रेयस का अर्थ मोक्ष कहा गया है परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि जिससे जीवों की क्रमोन्नति हो उसी को अभ्युदय कहते हैं (१४४) । बाइबल आदि ग्रन्थों के पाठ से इन्हें 'शास्त्रीय ग्रन्थों के छाया से अनुवादित' कहा है और ' उन धर्म मतों की ईश्वरभक्ति, दान, तप, आदि धर्माङ्गों का स्थूल अवलम्बन, उनकी स्वर्गसुख भोग की सद्वासना, उन की उपासना विधि में स्तुति और जप साधन का अस्तित्व आदि धर्माङ्ग और उपाङ्ग सनातनधर्म मूलक हैं (१४५) । बहुपुत्रवान् स्नेहमय पिता के सदृश सनातनधर्म ही ज्ञान ज्योति की सहायता देकर पुत्ररूपेण उनकी रक्षा कर रहा है'। परन्तु 'काल दुरत्यय है' काल के जिस विभाग में जिस प्रकार के गुण का परिणाम हुआ करता है सो अवश्य ही होगा (१४७) जिस युग में मनुष्यों की जैसी उत्पत्ति और उनके जैसे जैसे गुणकर्म स्वभाव होना निश्चय है सो अवश्य ही होगा। (१४८) जिस प्रकार एक ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्नों के बीज की रक्षा अति सावधानता पूर्वक दूसरे ऋतुओं में इस विचार से कृषिजीवी गण किया करते हैं कि जिससे उक्त अन्नोंकी उत्पत्ति का जब पुनः ऋतु आवै तो उस सुरक्षित बीज से पुनः अन्न उत्पन्न हो सके, उसी प्रकार इस घोरतम प्रधान कलियुग में अन्य युगों के अन्तर्भाव होते समय धर्म और सद्विद्या की बीजरक्षा होना विज्ञानसिद्ध है (१४९) [यह निराशा का मूल मन्त्र है । यदि यह टूटी कमर ही महामण्डल की आशा की लकड़ी है तो कुछ नहीं होगा। । पुरुपार्थी का लक्ष्य बृहत् और सदाशामय चाहिए। बीजरक्षार्थी पेड़ों को सुखा कर बीज

रखते है] आजकल 'जब सब वर्ण तथा उन की क्षुद्र क्षुद्रशाएं अपनी२ अढ़ाई चांवल की खिचड़ी अलग २ पकाने में यत्नवान् हैं (१५०)' जब पक्षपाती आचार्यों में परस्पर विरोध करना ही साधनाङ्ग समझा जाता है, (१५१) जब धर्मविरुद्ध, स्तुति, निन्दा, ईर्षा, प्रमाद, खण्डन विग्रह, वाचालता, दम्भ, दोषदृष्टि, प्रेमराहित्य, वितण्डा, और जल्प आदि की वृत्तियां उसके आचार्य्य उपदेशक और साधकों में दृष्टिगोचर होती हैं (१५२) तब महाशा में न फंस कर माया को तरते हुए अपौरुषेय वेदों का अधिकार सर्वोपरि रख कर यथा देश, काल, पात्र, भारतवर्ष के सब प्रान्तों में **बीजरक्षारूप** से वैदिक कर्मकाण्ड के सब अंगों के क्रिया सिद्धांश की रक्षा करना सर्वथा हितकारी है' । (१६०) 'जगदीश्वर की नित्य शक्तियों के विभागानुसार ऋषि, देवता और पितर उनकी साक्षात् विभूति हैं और इन तीनों की पूजा जिस जाति में जितनी अधिक रहती है वह जाति उतनी ही उन्नत होजाया करती है और इनकी पूजा लोप होने के साथ साथ जातियां नष्ट भ्रष्ट होजाया करती हैं' (१६०) अन्यान्य जातियां 'पूज्यपाद महर्षियों के प्रीतिकर ऐसे अनेक कर्म करते हैं जैसे नियमित शास्त्राभ्यास की प्रवृत्ति, विद्या और विद्वानों पर श्रद्धा । स्वार्थत्याग, स्वदेशानुराग आदि धर्मसाधन द्वारा वे देवताओं के प्रीति सम्पादन करने में स्वतः ही समर्थ होरहे है । मातृ सेवा की असाधारण प्रवृत्ति, अपने पूर्वजों की कीर्त्ति और सन्मान रक्षा आदि धर्मवृत्तियों से वे विना पितृ यज्ञसाधन किये भी पितरों के आशीर्वाद के भाजन हुआ करते है (१६२) [प्रश्न उठ सकता है कि हम गन्धाक्षत छोड़ कर उन्हीं की सी पूजा स्वीकार क्यों न करलें ? या तो जिसें हम पूजा कहते है वह पूजा ही नहीं और या अत्र देवता पितर और

ऋषि दूसरी तरह की पूजा चाह कर तदनुसार प्रसन्न होने लग गए हैं] बीजरक्षा में एक आदर्शप्रदेश बनाए रखने का परामर्श दिया गया है जहां शास्त्रों की पूर्ण मर्यादा की कालोनी उसी तरह रहे जैसे म्यूजियम में 'फोसिल्स' पड़े रहते हैं। योग युक्त होकर समाधि दशा में शरीर त्याग करना और धर्म युक्त हो कर युद्ध में शरीर त्याग करना यह दोनों अभ्युदय कर हैं। इन दोनों संस्कारों की बीजरक्षा अवश्य कर्तव्य है (१६६)। संन्यास आश्रम सब आश्रमों का गुरुस्थानीय है परन्तु उस की बीजरक्षा में असुविधा यह है कि इस आश्रम पर अन्य किसी का भी आधिपत्य नहीं है, सन्यासाश्रम स्वाधीन और प्रबल है (१६५) इस से उस के पीठाध्यक्ष भी उसे सुधारें [हाथ जोड़ कर निवेदन है कि जो धर्म की मारी खलकत इन्हें रोटियां खिलाती है वह क्यों न कुछ कहै? सब आश्रम गृहस्थ का उपजीवन करते हैं। हिन्दू समाज के संशोधकों को यह मालूम होता है कि ब्राह्मणों या नाम मात्र ब्राह्मणों का अत्यधिक और दुरुपयुक्त प्राबल्य भी हिन्दू धर्म का अधिक अवनति कारक है। समाज उस बन्धन को ढीला करने के लिए छटपटा रहा है जिससे योरोप में हिन्दू धर्म की परिभाषा ब्राह्मणों का रोटियां खा सकने का एकच्छत्र स्वाधीनत्व होगई है। उस पर यह नया निगड़ डाला जायगा क्या?] अस्तु सनातनधर्म के उन अङ्गों की बीजरक्षा सब तरह से कर्तव्य है जिन के द्वारा सनातन धर्म के महत्त्व का विकाश बना रहे, प्रजा में ब्रह्मतेज और क्षात्र तेज की बीजरक्षा हो, वर्णाश्रमधर्म नष्ट

न हो सकें, सतीत्व का तीव्र संस्कार * आर्य नारियों में से विलुप्त न होने पावे, आर्य प्रजा में ज्ञानशक्ति और अर्थ शक्ति बनी रहें और साथ ही साथ जाति का लौकिक अभ्युदय भी होता जाय (१७३) तथास्तु। सातवें अध्याय का आरम्भ कुछ खैंच खांच से सिद्ध करता है कि श्री भारतधर्ममहामण्डल का विराट् धर्म कार्य साधारणतः सर्वलोकहितकर और विशेषतः आर्यजाति का पुनरभ्युदयकारी होने से महायज्ञपदवाच्य है इस में सन्देह नहीं (१८०) उस के ठीक चलाने के लिए वेदव्यासजी के अनुसार।

त्रेतायां मन्त्रशक्तिश्च ज्ञानशक्तिः कृते युगे।

द्वापरे युद्धशक्तिश्च सङ्घशक्तिः कलौ युगे॥

नियमबद्ध प्रबन्धशक्ति की उचित प्रधानता दिखाई गई है (टट्टी की ओट में पुतलियों का नाच न कराया जाय तो यही आदर्श है)। सुकौशल पूर्ण कर्म को योग कहते हैं (१९१) और तदनुसार प्रतिनिधि के चुनाव करने का अधिकार देकर समझाया गया है कि ऐसे नियम द्वारा प्रजा की प्रतिनिधि चुनने की योग्यता बढ़ेगी (१९३) (क्या यह प्रजातन्त्र नहीं है ?) बड़ा सुन्दर प्रोग्राम और

* माघ मेले पर न मालूम क्यों राघवेन्द्र साहब डेली हुए थे। न उन ने माघ मेले का इतिहास दिया न समाचार। इधर उधर के कटाक्ष और प्रलापों में उन का 'ह्रिर्नाभिभाषते' होगया। उनने दर्भङ्गा नरेश की राजभक्तिमय वक्तता के तर्जुमे में जो 'तीक्ष्ण स्वार्थ' का फिकरा सुप्रयुक्त किया है उसी के वज़न का यह तीव्र संस्कार है।

प्रोस्पेक्टस देकर पश्चिमी शिक्षा से विकृत मस्तिष्क मनुष्यों के धर्म हीन उन्नति के उन्माद का यों खण्डन किया गया है "यह अति प्राचीन जाति अपने अति प्राचीन संस्कारों से इस प्रकार आवद्ध है तथा सर्व मनुष्य जाति की पितामह रूपी आर्य्यजाति अपने एक अलौकिक धर्मसिद्धान्त और वैज्ञानिक भाव समूह के तीव्र संस्कारों से ऐसी ओतप्रोत है कि उन के विना इस जाति की स्थिति और उन्नति असम्भव है, (२०५) वस्तुतः सनातनधर्म भिन्नेष्व-भिन्नं कई बाजों का मिला हुआ वाद्य है जो भिन्न २ होने पर भी एक मधुर स्वर देते हैं (२०८) [यदि कोई असहिष्णु कर्णकटु तान छेड़ कर स्वारस्य को न बिगाड़े तो] 'काल पितारूप है। पितृ सेवा द्वारा जिस प्रकार पुत्र को सब प्रकार के कल्याण के साथ ही साथ उस को समग्र पैतृक विभूति प्राप्त हो जाया करती है उसी प्रकार **काल के अनुसार प्राकृतिक प्रवाह के अनुकूल चलने पर** मनुष्यों को सब प्रकार का अभ्युदय प्राप्त हुआ करता है और काल के विरुद्ध चलने पर विपत्ति और विफलता का होना अवश्य सम्भवी है। अस्तु, आर्य जाति को भी अपने सदाचार अपने सद्भाव और अपने धर्म की रक्षा करते हुए **काल प्रवाह के अनुकूल** आत्मोन्नति करना कर्त्तव्य है। (२०८) जिस प्रकार अन्य धर्ममतों के नेतागण पदार्थ विद्या आदि ज्ञान की वृद्धि से भयभीत हुआ करते है उस प्रकार सनातन धर्म के नेताओं को भयभीत होने का कुछ कारण नहीं है (२०९) कालवादी, प्रारब्ध पक्षपाती और पुरुषार्थ हीन व्यक्ति गण की इस दुःशङ्का का, कि काल के विरुद्ध कुछ भी पुरुषार्थ नहीं हो सकता, यों समाधान किया गया है कि एक काल विशेष में उत्पन्न हुए जीवसमष्टि के कर्मों के द्वारा ही काल

का स्वरूप भासमान होने लगता है, नहीं तो यथार्थ में काल निर्लिप्त और निर्विकार है (२२१)। कर्म का फल अवश्य सम्भावी है (२१३) इस के पीछे परात्पर परमेश्वर की स्तुति से लेखिनी पवित्र करके लेखक अपनी इस रचना को समाप्त करता है ।

* *
*

इस पुस्तक को पढ कर हृदय में यह भाव उठता है कि वर्त्तमान व्यवहार में जो धर्म का अर्थ लिया जाता है, उस अर्थ में यह धर्म की पुस्तक नहीं है । आज कल वह सार्वजनिक प्रीतिभाव 'जातीयता' के नाम से कहा जाने लगा है । यद्यपि नाम में कुछ नहीं है, और समाज के धारण की शक्ति रखनेवाला विचार और उदार भाव ही कर्म, जातीयता, धर्मपरम, धर्म, ड्यूटी, सत्य वा राइट (ऋत) कहलाया करता है, तो भी यह पुस्तक जातीयता वा नैशनेलटी बना सकती है, और यदि यह महामण्डल का अनुशासन ग्रन्थ है, तो महामण्डल पहले जातीय भाव को रख कर धर्मभाव को उस पर चिपकाना चाहता है; न कि धर्म विहीन उन्नति को दुर्गति कह कर दुर्गति सहित धर्मान्धता को ही परमोन्नति मानता है । महामण्डल का वास्तव में जन्म खण्डन मण्डन में हुआ था । समय प्रभाव से उसके सिद्धान्तों में इस प्रकार की सार्व भौमता आगई कि विधवा विवाह के आनुषङ्गिक खंडन के सिवा उस में कोई भी सीधा या तिरछा आक्षेप औरों पर नहीं है । या यों कहो कि यह एक **अकबरी धर्म की पुस्तक है** । हमारे एक मित्रसे हमें सखेद निवेदन करना पड़ता है कि यह पुस्तक अकबरी धर्मकी ही है । उनने एक महापुरुष के देशोपकारी कार्यों का अनुमोदन करने वाले एक मनुष्य को आत्मघात करने की सलाह दी है । यह

मनुष्य चाहे आत्मघात करे चाहे न करे, हम एक दूसरे मनुष्य के कई आत्मघात देख चुके हैं। एक काशी नागरीप्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में से कृष्णपरीक्षा आदि पुस्तकों के न निकाले जानेपर हुआ, एक रमेशचन्द्र दत्त के इतिहास के छप जाने पर त्रिवेणी में झम्पा हुई और एक प्रयाग में महासभा के सफलता से हो जानेपर हुआ होगा। शायद चौथा इस पुस्तक को पढ़ने पर होगा, क्योंकि यह खासा अकबरी धर्म है जो साम्प्रदायिक ईर्ष्या द्वेष के बुरा मानता है, थियासाफी के नाम पर ही नहीं चिढ़ता, और जापान और बौद्ध धर्म तक को अपने उदारवक्षःस्थल से प्रेम पूर्वक लगाता है। अब वे लोग क्या कहेंगे जो राजनीति और देशप्रेम के फैलाने वालों को राममोहन राय का अनुयायी कहते हैं, जब महामण्डल ही स्वदेश के अभ्युदय को कर्तव्य कोटि में आगे रखता है जैसा हमारे दिए विपुल अवतरणों से स्पष्ट हो गया होगा? परन्तु जिनका मत औरों के काम में दोष मात्रदेखने और स्वयं कुछ भी न कर सकने या दांत पीसने का ही मतवालापन है उन्हें इससे क्या शिक्षा मिल सकती है? दूसरे का अभ्युदय देखकर, दूसरे की योग्यता और ख्याति सुनकर, औरों का यश और परोपकार सुनकर, जिन्हें पुराना दाह याद आजाता है या जो पुराने घावों के हरे होजाने से ईर्षा के चक्र में पिसने लगते हैं, उन्हें ईश्वर ही सुमति दे! खैर—

परनिन्दासु पाण्डित्यं स्वेषु कार्येष्वनुद्यमः।
विद्वेषश्च गुणज्ञेषु पन्थानो ह्यापदां त्रयः॥

* *

भारतमित्र सम्पादक से हम क्षमा मांगते हैं कि उनके इस वर्ष के उपहार की हम अब तक समीक्षा न कर सके और आज भी और विषयों में अधिक समय दे चुकने पर अपना वक्तव्य संक्षेप से कहते है । हिन्दी के पत्रों में सब से अच्छा उपहार भारतमित्र का होता है जो न केवल पत्र के लिए ग्राहकों और पाठकों को खैंचता है, प्रत्युत भाषासाहित्य में उन अमूल्य ग्रन्थों को भी छाप देता है जिनका प्रकाशन और तरह असम्भव होता । इसका दृष्टान्त इस वर्ष के उपहार का प्रधान पुस्तक ' जहांगीरनामा ' है । मुन्शी देवीप्रसाद जी ने इस उपयोगी इतिहास को शोधा ही नहीं, परन्तु सरल और रोचक भी बना दिया है । संवत् १९६३ में, संवत् १६६३ का जहांगीर का राजपूताने का दौरा पढ़कर आश्चर्य होता है कि वह फलसस्य सम्पन्न जलमय देश क्या यही मरुस्थल है और तीनसौ वर्ष की भारतवर्ष की आर्थिक अवनति का अस्थिमय चित्र आंख के सामने अङ्कित होजाता है । अच्छा होता यदि भिन्न रुचि के पाठकों का प्रसाद उतना प्रधान न होता तो, यही ग्रन्थ उपहार में एक भाग न दिया जाकर समग्र दिया जाता । अभी राजतरङ्गिणी का ऋण भारतमित्र पर है । 'शिवशम्भु का चिट्ठा' उपहार की दूसरी पुस्तक है जिसने अच्छी प्रसिद्धि पाई है । सरल भाषा में राजनैतिक परिहास के साथ निशाने की चोट विरल ही होती है । 'दशकुमारचरित का हिन्दी छायानुवाद' छोटा और संक्षिप्त होने पर भी पठनीय है । भूमिका में विप्रचन्द कहते हैं कि " दश–कुमार–चरित भाषा और साहित्य के गुण से खूब प्रशंसा के योग्य है किन्तु मनुष्य चरित्र के जो आदर्श इस में दिखाये गये हैं उन के कारण निन्दा के योग्य है "।।

* ** *

हमारी दृष्टि में इस उपहार की प्रधान और अवेक्षणीय पुस्तक बाबू बालमुकुन्द गुप्त की 'स्फुट कविता' है । इस में हिन्दी के नश्वर सामयिक पत्र साहित्य के रसांश को अमर करने का यत्न किया गया है जो हम आशा करते हैं सफल और अनुकरणीय होगा । पं० प्रभुदयालु पांडे की ऐसी कविताओं का संग्रह करना भी हम उनके प्राचीन सखा भारतमित्र सम्पादक का ही कर्त्तव्य समझते हैं । जो कविताएं पहले कभी राग द्वेष या अखबारी लड़ाई के समय में लिखीं वा पढ़ी गई थी, उन्हें अब झगड़े की आग बुझ जाने पर यों पढ़ने में एक अपूर्व भाव का उदय होता है । भूमिका में क्या चोट के वाक्य लिखे गए हैं "भारत में अब कवि भी नहीं हैं कविता भी नहीं है । कारण यह कि कविता देश और जाति की स्वाधीनता से सम्बन्ध रखती है । जब यह देश देश था और यहां के लोग स्वाधीन थे तब यहां कविता भी होती थी । उस समय की जो कुछ बची खुची कविता अब तक मिलती है वह आदर की वस्तु है और उसका आदर होता है । कविता के लिये अपने देश की बातें, अपने देश के भाव और अपने मन की मौज दरकार हैं । हम पराधीनों में यह सब बातें कहां ? फिर हमारी कविता क्या और उसका गुरुत्व क्या ? इस से उसे तुकबन्दी ही कहना ठीक है । पराधीन लोगों की तुकबन्दी में कुछ तो अपने दुःख का रोना होता है और कुछ अपनी गिरी दशा पर पराई हंसी होती है, वही दोनों बातें इस तुकबन्दी में हैं"। चाहै गुप्तजी इसे तुकबन्दी कहैं, और हंसी दिल्लगी की मात्रा अधिक होने से चाहै यह वैसी कहला भी सके परन्तु शोभा और श्रद्धा में कहीं कहीं कवि को कवि के स्वर्गीय मनोराज्य की छटा का दर्शन होगया है । और क्यों न हो,—

न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना-
गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम् ।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता,
सदा करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ।

विशेष बात यह है कि यह कवि भारतवर्ष का कवि है, दुःखी रोगी, भूखे भारत का तुकबन्द है । दिल्लगी के दालान में, श्रद्धा शोभा के श्रृङ्गार में, वा स्तुति के सुमनोराज्य में, वह भारतवर्ष से भाग कर आकाश में जाकर नहीं टंक जाता। यहां तक कि लक्ष्मी स्तुति में भी वह कहता है-

गज, रथ, तुरग, विहीन भये ताको डर नाहीं,
चंवर छत्र को चाव नाहिं हमरे उर मांहीं ।
सिंहासन अरु राजपाट को नाहिं उरहनो,
ना हम चाहत अस्त्र वस्त्र सुन्दर पट गहनो ।
पै हाथ जोरि हम आज यह,
रोय रोय विनती करें ।
या भूखे पापी पेट कहं,
मात कहो कैसे भरें !

यही रंग सर सैयद के बुढ़ापे के पङ्खेवाले में है और यही मेघागमन में-

'तेरे बल जो दाने निकसे परयत फार,
बिन तो सो होय गये जरि बरि के छार' ।

इसी लेखक ने अपनी पहली तुकबन्दी 'भैंसका स्वर्ग' नामक में वह 'दिव्य अस्थान' ऐसा बनाया है—

कच्चे तालाबों में आधा कीचड़ आधा पानी है ।

वहां नहीं है मनुष्य कोई बन्धन ताडन करने को।
है सब विधि सुविधा स्वच्छन्द विचरने को और चरने को।
वहां करै है भैंस हमारी क्रीड़ केलि किलोल।
पूंछ उठाये म्यां म्यां रिडके मधुर मनोहर बोल।
कभी मस्त होकर लोटे है तालावों के बीच।
देह डुबोये थूथन काढ़े तन लपटाये कीच।
कभी वेग से फदड़क फदड़क करके दौड़ी जाती है।
हलकी क्षीण कटीका सब को नाजुकपन दिखलाती है।
सींग अड़ा कर टीले में करती है रेत उछाल।
देखते ही बन आता है वस उस शोभा का हाल॥

परन्तु कवि ने यह ठीक नहीं किया;— जहां न पहुंचे रवि, वहां जाय कवि—उस की आत्मा तो वहां पहुंच गई और उसने सुख के परममूल तत्व 'वहां नहीं है मनुष्य कोई **बन्धन ताड़न** करने को' को स्मर्तव्यशेष कर दिया! अब स्वच्छन्द विचरना, चरना और रौंथना नहीं हो सकता!! यह भैंस भवानी की सेवा करने के अभ्यास का फल है!!! अस्तु स्वर्ग का ध्यान टूट जाने से रुष्ट भैंस चाहै पूंछ उठाकर टांग उछाले, परन्तु—

सर्वथा व्यवहर्तव्ये कुतो ह्यवचनीयता?
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।

* * *

सुना गया है कि पण्डित बुलाकीरामजी शास्त्री विद्यासागर (यह उपाधि महामण्डल की नहीं है, वङ्गदेश की है) एक धर्म

संग्रह की क्रमिक पुस्तकमाला बना रहे हैं। इधर मान्यवर पण्डित मदनमोहन मालवीयजी का धर्मसंग्रह सान्तःपत्र होकर विद्वानों में बांटा जा रहा है। विशुद्धानन्द विद्यालय की ऋजुस्तवमञ्जूषा की भी बहुत स्तुति हो रही है। मद्रास में भी एक जातीय भाव का पोषक संग्रह ग्रन्थ छपा है। कलकत्ते में शिक्षाविभाग के एक सज्जन ने बङ्गला में धर्म के मूलतत्त्वों और प्रमाणों का छोटा सा संग्रह छापा है। इस से सिद्ध होता है कि वर्त्तमान समय में ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है और समाज 'अपास्य फल्गु' संक्षिप्त धर्मनियमों में अपवाद और उत्सर्ग का नियम प्रवृत्त करना चाहता है।

प्रेरित पत्र।

प्रिय महाशय,

बहुत दिनों से नीचे लिखे कवित्त को सुनता हूं परन्तु न मालूम अर्थ में क्या पेच है साफ साफ नहीं खुलता। सम्भव है कि कहीं पर छन्द अशुद्ध हो या पाठ बदल गया हो। आपके पाठकों में से किसी की दृष्टि में यदि यह आया हो तो वे इसके कवि का नाम मूल पाठ और अर्थ कृपापूर्वक लिख भेजें जिससे मेरा सन्देह हटै।

> कुम्भ से वदन वैन मीन से हमारे नैन,
> देखतही लेख मेख मन भटकायो है।
> वृष हू के जरे पात, मिथुन हू जरायो गात,
> करक और नाहर ने हार छिटकायो है।

कन्या और तुल वृश्चिक में मिले जाय,
निर्धन हूको दान. धन मकर अटकायो है॥
छोत जो निखालिस आवते हजार बार,
बैरन वसन्त मेरो कन्त अटकायो है।

राजपूताना में बहुत लोगों के मुंह से यह टुकड़ा सुना गया है--

चित चन्देरी मन मालवे हिय हाड़ौती माहि।*

परन्तु इसका दूसरा अर्ध कहीं नहीं मिला। क्या कोई आपके लोकोक्तिप्रेमी पाठक इसे पूरा कर देंगे ? *

आपका—अमर

होली की ठठोली, वा एप्रिल फूल।

अनुकरणशीलता में भारतवासी पीछे नहीं रहेंगे। अच्छे गुणों का अनुकरण तो उनके अनुष्ठान की पहली सीढी है, परन्तु व्यर्थ या अनर्थक बातों के अनुकरण में ही हमारी सब शक्तियां पर्यवसान पा जाती हैं। सभ्यता के मद में होली की समयानुमोदित ठठोली का अपाकरण चाहते हुए भी हम लोग 'एप्रिल फूल' की नई प्रथा को अपना रहे है और न्यूईयर्स डे पर कार्ड या डाली भेजने का रिवाज़ तो इतना बढ़गया है कि अपना वर्षारम्भ हम लोग पञ्चाङ्गों में ही पढ़ते हैं। हिन्दी के एक सर्वज्ञ मासिकपत्र ने तो अब के खास

---

* पुराना तो कहीं सुना नहीं, परन्तु इसका यह नया अर्ध शायद 'अमर' साहब को पसन्द आवै—

पूंगल प्रान सनेह सर जीव जामरे जाहि (समा० सं०)

एप्रिल एडिशन निकाल दिया है! किसी सार्वजनिक विशेष बात पर या धर्म, इतिहास वा जाति की उन्नतिपर, संवाद पत्र अपनी विशेष संख्या निकाला करते है। प्रयाग के हिन्दुस्थान रिव्यूने कांग्रेसपर कांग्रेस नम्बर और नैशनल नम्बर निकाले है और अवध की अंगरेजी राज्य में प्रविष्ट होने की जुबिली पर अवध नम्बर निकाला है। 'जमाना' अकबर के राज्य के ३०० वर्ष पीछे उसके स्मरणार्थ अकबर नम्बर में निकलाथा। परन्तु इस पत्रकी धर्म संरक्षणार्थैव प्रवृत्ति जन्माष्टमी वा रामनवमी नम्बर न निकाल सकी, रामानुज नम्बर की कल्पना भी न कर सकी, और अप्रेल एडिशन में परिणत होगई! धन्य! इन के लिए संसार ही एप्रिल है, सारा जीवन ही पहली एप्रिल है और उसका परमलक्ष्य एप्रिल के टुकड़े घनना बनाना ही है! एप्रिल का समकक्ष भारतवर्ष में वैशाख मास है न! अतएव फूल फूल कर, कुद कुद कर, एप्रिल में ही अपनी जयन्ती मनाने वाले इस पत्र को इस वर्ष की होली का नायक Lord of Misrule कहना चाहिये। होली के उपहार इन्हीं को सम्पूर्ण रूपसे अर्पण करने चाहिएं। यों सर्वप्रधान आसन इन्हें देकर दूसरा आसन एक उचकन प्रिय वीर को दिया जाता है। ये काटने के लिए आरे और जलाने के लिए आग तो हैं पर गढ़ने के लिए हथोड़ा नहीं है। इनने एक मनुष्य को एक श्लोक 'पसन्द आवै' के लिए लिख भेजा है, वह प्रेमसे एक के बदले में तीन हाजिर करता है——

उत्तरङ्गो महानक्रवक्रोक्तिचक्रभीषणः।
शब्दोदधिः सुदुर्गम्यो दुस्तरोऽकृतबुद्धिभिः।

येषां सद्गुरुकर्णधारभजनं प्रज्ञावहित्रागमोऽ
भ्यासश्चानुगुणो मरुत् प्रतिदिनं शब्दागमाम्भोनिधौ।
पारं यत्नवशादवाप्य नितरां रत्नानि लभ्यानि तै
दूरात्तीरगतैस्तु दर्शनभिया स्वादिष्टरप्यानि किम्॥
नो चक्षुषापि कलिता किल कौमुदी यै,
र्भाष्यादिदीपनिवहोधिगतो न वा यैः।
येषां च पाणिनिमतार्कसमागमो नो।
तेषां तमः प्रचय एव न चास्य शान्तिः।

(तारानाथ तर्कवाचस्पतिः)

नीचे उनकी मनस्तुष्टि के लिए थोड़े से वाक्य बाइबल से उद्धृत किये जाते है। बाइबल से इस लिये कि उन्हें वैदिक साहित्य के प्रचण्ड पण्डित नापसन्द हैं। उनका वर्तमान आचरण इन वाक्यों से खूब प्रकाशित होगा। लोगों ने उन को उन्हीं की नाप से नापा है, उन्हीं के आईने में उनका मुंह दिखला दिया है। इस पर आप सह नहीं सके। बार बार नहीं नहीं कहकर, मन भावे मूंड हिलावे की चाल पर, 'प्राङ्मामेति' भर्तृहरि के श्लोक के अनुसार, [पूरा श्लोक इम्ला तक की गलतियों के भय से नक़्ल नहीं किया गया] प्रलाप ही करने लग गए। जो औरों को मज़ाक़ में 'सहस्राक्ष' कह देता है उसे उन के 'सहस्रजिह्व' कहने पर आंखें नहीं दिखानी चाहियें। जो औरों के व्यर्थ निन्दा के सिद्धान्त के ठट्टे में एक स्वतन्त्रता विषयक पुस्तक लिखने दौड़ता है, उसे अपनी समालोचनाओं को तो उचित और औरों के कथन को चरखा कातती बुढ़ियों के गीत नहीं मानना चाहिए। जो चिढ़कर पुरानी सेवाओं को और शेष के झगड़े की सहायता को

याद कर सकता है, वह यह भी सोच देखे कि उस 'प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती' को श्रीहर्ष क्या कहते जो वंश के भूषण और ज्ञान दाता खण्डनखण्डखाद्यकार का ठट्ठा उड़ाता है? जितना अनुपात आपके समालोचकों में और आप में हैं क्या उतना भी आप अपने में और श्री हर्ष में न मानेंगे? जो यह कह सकता है कि हरिश्चन्द्र अपने ही निकाले हुए मार्ग के मुसाफिर से रुष्ट नहीं होते, वही क्यों अपने ही पथ के पथिक को मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि और 'कुत्सा पूर्ण निःसार वर्णना' कहता है? परन्तु क्या करें 'दुनिया में उपदेश एक ऐसी चीज़ है जो अपने लिये नहीं बल्कि औरों के लिए ही बनाई गई है' ॥

भगवान् करै इस दो चार के युग की आठ आंखें सदा दोष खोजने में सलामत रहैं।

तब पितर ने उस पास आ कहा हे प्रभु मेरा भाई कै बेर मेरा अपराध करे और मैं उस को क्षमा करूं क्या सात बेर लों। यीशु ने उससे कहा मै तुझ से नहीं कहता हूं कि सात बेरलों परन्तु सत्तर गुणे सात बेर लों। (मत्ती १८-२१। २२) दूसरों का विचार मत करो कि तुमारा विचार न किया जाय। क्यों कि जिस विचार से तुम विचार करते हो उसी से तुमारा विचार किया जायगा और जिस नाप से तुम नापते हो उसी से तुमारे लिए नापा जायगा। जो तिनका तेरे भाई के नेत्र में है उसे तू क्यों देखता है और तेरे ही नेत्र में का लट्ठा तुझे नहीं सूझता। अथवा तू अपने भाई से क्योंकर कहेगा रहिये मै तेरे नेत्र से यह तिनका निकालूं और देख तेरे ही नेत्र में लट्ठा है। (मत्ती ७. १—५)। लोग पूरा

नाप दबाया और हिलाया हुआ और उभरता हुआ तुम्हारी गोद में देंगे क्यों कि जिस नापसे तुम नापते हो उसी से तुमारे लिये भी नापा जायगा (लूक ६—३८) कोई अच्छा पेड़ नहीं है जो निकम्मा फल फले और कोई निकम्मा पेड़ नहीं है जो अच्छा फल फले। हर एक पेड़ अपने ही फल से पहचाना जाता है क्योंकि लोग कांटों के पेड़ से गूलर नहीं तोड़ते और न कटैले झूड़से दाख तोड़ते हैं। भला मनुष्य अपने मन के भले भण्डारसे भली बात निकालता है और बुरा मनुष्य अपने मनके बुरे भण्डार से बुरी बात निकालता है क्योंकि जो मन में भरा है सोई उसका मुंह बोलता है (लूक ६—४३।४५) तब अध्यापकों और फरीशियों ने एक स्त्रीको जो व्यभिचारमें पकड़ी गई थी उस के पास लाके बीच में खड़ी किई। और उस से कहा हे गुरु यह स्त्री व्यभिचार कर्म करते ही पकड़ी गई। व्यवस्था में मूसा ने हमें आज्ञा दिई कि ऐसी स्त्रियां पत्थर वाह किई जावें सो आप क्या कहते है। ×× जब वे उस से पूछते रहे तब उसने उठके उनसे कहा कि तुम्हों में से जो निष्पापी होय सो पहिले उस पर पत्थर फैंके। × ×। पर वे यह सुनके और अपने २ मन से दोषी ठहरके बड़ोंसे लेके छोटों तक एक एक करके निकल गये। (योहन ७। ३ ४, ५, ७, ९,)

शुभम्।

—*—

आगामी संख्या के लिए उपक्रान्त लेख ।

१ दर्पदलन, । अर्थात् लोहं लोहेन घातयेत् (साहित्यसमालोचना)

२ अनु का अनुशासन ।

३ कल्लूखण्ड पर भाष्य [नमूना देखिए] 'निगुरन के पुरवांमां आजौ ठाडि हमारि मंडैया आय' अत्र केचिदितिहास माचक्षते ' कहिन हो दाता दीन' 'कहिन हो माता दीन' 'गुरु आइत है' 'को गुरु हो, ऊजोतीरे पनिया चीखत' 'ईतो मनही है हो; मनही क गुरु मनही कस कस ? मोर तोर गुरु कमतवानाथ' । और दुइसै कास । 'खाटा लैकर ख्यात में गइन याको स्यार आवा सो खाटा लै ख्यादत ख्यादत द्वै कासपर छांड आइन ।' यह वही पवित्र भापा है जिसकी डाक्टर ग्रियर्सन की गलतियां सरस्वती सम्पादकने निकाली थीं]

४ ब्रह्मसमाज और बायकाट ।

५ स्वदेशी यूनिवर्सिटी

६ चण्डूल की अपील। जम्बुकराज के फैसले पर। मिस्टर जस्टिस शाखामृगालेहाद् भमभेदोजी के इजलास में।

७ कूपखानक ।

८ विलायत की चिट्ठी ।

९ गोपीविलाप [उपदेशपूर्ण वियोग काव्य]

१० हमारा आदर्श त्योहार—शीतलाष्टमी

(प्रभृति) ।

ऐतिहासिक ग्रन्थावलि।

हिन्दीभाषा में इतिहास का बड़ा अभाव है। इसे दूर करने के लिये हमने यह ग्रन्थावलि निकालना आरम्भ की है। इसके ग्रन्थकार उदयपुर के पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा हैं जो भारतवर्ष के पुरातत्त्व और इतिहास के शोधों के पूरे जानकार हैं। उनने वे शोधन किए हैं जो यूरोपीय एन्टिक्केरियनों के भाग्य में भी न थे। इस ग्रन्थावलि में प्रतिवर्ष कमसे कम एक और अधिक से अधिक चार ग्रन्थ छपा करेंगे। पहले नाम लिखाकर ग्राहक बनने वालों को डाकव्यय माफ किया जायगा। समालोचक के मूल्य देचुकने वाले ग्राहकों से ¾ मूल्य लिया जायगा। ज्योंहीं कोई ग्रन्थ छप जायगा उसकी सूचना समालोचक द्वारा देदी जायगी। पहले नाम लिखवा देने वालों के नाम विना पूछे वी० पी० कर दिये जायंगे। इस ग्रन्थावलि में जो ग्रन्थ निकाले जांयगे वे पूरी ऐतिहासिक खोज से लिखे जांयगे। अभी तक इस ग्रन्थावलि में यह ग्रन्थ छपरहा है:—

१ सोलङ्कियों का इतिहास पहला भाग

और निम्नलिखित ग्रन्थ इसमें छपाए जाने के लिए तैयार हैं।

२ सोलङ्कियों का इतिहास दूसरा भाग
३ सोलङ्कियों का इतिहास तीसरा भाग
४ मौर्यों का इतिहास
५ क्षत्रियों (satraps) का इतिहास
६ गुप्तवंश का इतिहास

इस ग्रन्थावलि से यह भी जान पड़ेगा कि उपाख्यान और दन्तकथा को छोड़कर केवल शिला लेखों और ताम्रपत्रों में ही कितनी इतिहास की सामग्री भरा पड़ा है।

छपाई सफाई देखने लायक होगी।

मिलने का पता — मैनेजर जैन वैद्य एण्ड को। जयपुर।